जैनाचार्यरविषेणकृत 'पद्मपुराण' और तुलसीकृत 'रामचरितमानस'

समर्पणम्

प्रालेयाचलतुल्य काय, रत्नाकरोपम चित्तम् ।
कविप्रतिभामिव वाणी, यो बिभ्रत्सज्जनाभासी ॥

य दृष्ट्वा ब्रह्माण वाग्देवी तरलहृदयाऽभूत् ।
प्रागन्याम्बुधिपूत विद्यानद्यो यमनुजग्मु ॥

आत्मजपञ्चकधारी पञ्चाननता च यो यात ।
गौर्या समर्च्यमाण नित्य मुमुदे 'प्रियम्वदया' ॥

वदन प्रसादसदन हृदय सदय, सुधामुचो वाच ।
करण परोपकरण यस्य सदैवाभवँल्लोके ॥

वाग्देवतावतारो वाग्देवीमर्चयन्नित्यम् ।
वाग्देवीपञ्चम्यां वाग्लीनो योऽभवज्जनक ॥

कीर्तिमय य स्मृत्वा सरस्वती सर्वशुक्लाऽस्ते ।
आद्य हरति च यो मे श्रीब्रह्मानन्दशुक्लाख्य ॥

तस्य स्मृतिस्वरूपा विभ्रमम पश्यतोहर्यां ।
तस्य कृपैवोदारा विलसतु लोके कृति सेयम् ॥

—'रमा'

आचार्य श्री ब्रह्मानन्द शुक्ल-ग्रन्थमाला, प्रथम पुष्प

जैनाचार्य रविषेण-कृत 'पद्मपुराण'

और

तुलसी-कृत 'रामचरितमानस'

लेखक :

डॉ० रमाकान्त शुक्ल

एम० ए० हिन्दी (स्वर्णपदक), एम० ए० संस्कृत, साहित्याचार्य, पी-एच० डी०

अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, राजधानी कालेज (दिल्ली विश्वविद्यालय)

कीर्तिनगर, नयी दिल्ली-११००१५

प्रकाशक :

वाणी परिषद्, दिल्ली

प्रकाशक　वाणी परिषद्
आर ७, वाणी-विहार, नयी दिल्ली-११००१८

मुद्रक　हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस
ए-४५, नारायणा इण्डस्ट्रियल एरिया,
फेस II नयी दिल्ली ११००२८
दूरभाष　५८३५३८

संस्करण　प्रथम १९७८

मूल्य　• साठ रुपये मात्र

JAINĀCHĀRYA RAVISENA-KRITA PADMA-PURAṆA AUR TULASĪ-KRITA RAMACHARITAMANASA

(Thesis)

By

SHUKLA, RAMAKANT.　Rs 60.00

अनुक्रम

प्रकाशकीय वक्तव्य

वाणी-परिषद् की स्थापना सवत् २०३० की वसंत-पचमी के अवसर पर हुई थी। परिषद् की संकल्पना के अनुरूप एक प्रकाशन-योजना भी कार्यान्वित की जा रही है जिसमें श्रेष्ठ साहित्य-ग्रथों का प्रकाशन किया जाएगा। इसी योजना के अन्तर्गत डॉ० रमाकान्त शुक्ल द्वारा पी-एच० डी० उपाधि के लिए लिखित शोध-प्रबन्ध 'जैनाचार्य रविषेण कृत पद्मपुराण और तुलसीकृत रामचरितमानस' 'स्व० आचार्य श्री ब्रह्मानन्द शुक्ल-ग्रन्थमाला' के प्रथम पुष्प के रूप मे, परिषद् के तत्त्वावधान में, प्रकाशित किया जा रहा है।

मानस-चतुश्शती एव भगवान् महावीर की २५००वी परिनिर्वाण-जयन्ती के पर्व-वर्ष में पद्मपुराण और रामचरितमानस के भाव, भाषा और कला-पक्षो का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने वाले ऐसे ग्रंथ का प्रकाशन एक पुण्य-प्रयास है। इस ग्रंथ में डॉ० शुक्ल ने दो भिन्नयुगीन कृतियों की तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुत कर अपने गहन अध्ययन, श्रम और विद्वत्ता का परिचय दिया है। जैनाचार्य रवि-षेण की साहित्यिक प्रतिभा का अब तक अपेक्षित रूप में अध्ययन सामने नही आया था। इस दिशा मे सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि कुछ छुटपुट निबन्धो के अतिरिक्त उनके विषय मे कोई स्वतन्त्र ग्रथ नहीं लिखा गया था। इस अभाव की पूर्ति डॉ० रमाकान्त शुक्ल ने की है। साहित्य-संवर्द्धन उनका शाश्वत धर्म हो, यही हमारी कामना है।

मुद्रण और बाजार की विवशताओं के कारण इस ग्रंथ का प्रकाशन पूर्व निर्धारित समय पर नही हो पाया जिसके लिए हमें खेद है।

हम आशा करते है कि वाणी-परिषद् भविष्य मे भी महत्त्वपूर्ण कृतियों का प्रकाशन कर अपनी सर्जनात्मक भूमिका का परिचय देगी।

२० मई, १९७४

—रमाशंकर श्रीवास्तव
सचिव, वाणी-परिषद्
७, वाणी-विहार, नई दिल्ली-११००१८

दो शब्द

परिवर्तित युग-बोध और परिवेश के सन्दर्भ में प्राचीन पौराणिक काव्य का पुनर्मूल्यांकन और पुनराख्यान सर्जनात्मक धरातल पर तो अपनी प्रासंगिकता सिद्ध कर ही चुका है, आलोचनात्मक स्तर पर उसकी अनिवार्यता और भी अधिक गहराई से अनुभव की जाने लगी है। जैनकाव्य के पुनर्मूल्यांकन में अब साम्प्रदायिक दृष्टि अवरोध उपस्थित नहीं करती। उसके प्रति विद्वानों का दृष्टिकोण, मात्र साम्प्रदायिक न रहकर, गहन अनुसन्धान और जिज्ञासा का बनता जा रहा है। डॉ० रमाकान्त शुक्ल की प्रस्तुत शोध-कृति **'जैनाचार्य रविषेण-कृत पद्मपुराण और तुलसी-कृत रामचरितमानस'** इस दिशा में एक महत्त्वपूर्ण शोध-उपलब्धि है। लेखक ने निष्ठा एवं अन्तर्दृष्टि से रविषेण-कृत पद्मपुराण (पद्म-चरित) की मूल सवेदना और शिल्प के विविध आयामों का उद्घाटन किया है।

रविषेण मे जैन साम्प्रदायिकता का स्वर अत्यन्त प्रखर था और तुलसी में वैष्णव सिद्धांतों के प्रति आग्रह कम नही था, किन्तु शुद्ध साहित्यिकता के स्तर पर उनकी उपलब्धियाँ विवेच्य एव तुलनीय है। जैन-परम्परा के अनुसार रामायण के पात्रो का जो स्वरूप सम्मुख आता है, वह आस्था एव परम्परा में पोषित विचारको को किञ्चित् भिन्न एवं अग्राह्य भी प्रतीत हो सकता है किन्तु सशय की भाव-भूमि में पल्लवित आधुनिक मनीषा को वह कुछ अधिक आकृष्ट करता है। प्रति-पात्रों मे नायकीय महद्गुणो की परिकल्पना तथा उपेक्षित पात्रों के प्रति सहानुभूति, जो आधुनिकता का गुण कहा जा सकता है, जैन रामकाव्य-परम्परा में इन दोनों तत्वो का स्पष्ट आभास मिलता है।

लगभग ३० वर्ष पूर्व साकेत का अध्ययन एवं विवेचन करते समय मैंने साकेतवासियों की रणसज्जा के प्रसङ्ग को गुप्तजी की मौलिक उद्भावना के रूप में रेखांकित किया था। परवर्ती लेखको ने इसी मत की पुष्टि की। किन्तु 'पद्मपुराण' का अध्ययन प्रस्तुत हो जाने के उपरान्त मुझे इस विषय पर नये सिरे से सोचने का अवसर मिला। कुछ समय पूर्व एक गोष्ठी में रमाकान्तजी ने साकेत के उक्त स्थल

पर पद्मपुराण के प्रभाव की सप्रमाण चर्चा की थी। यह समानता आकस्मिक प्रतीत नहीं होती; गुप्तजी ने उपजीव्य सामग्री के रूप में उसका प्रयोग किया है—ऐसा प्रतीत होता है।

वस्तुतः जीवन-दर्शन की भिन्नता एवं नूतनता तथा रामकाव्य के परवर्ती विकास पर पड़ने वाले प्रभाव के आकलन की दृष्टि से पद्मपुराण का अध्ययन एक महत्त्वपूर्ण अनिवार्यता है। रामचरितमानस के तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में इस अध्ययन का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। विविध भाषाओं में लिखित विभिन्न सम्प्रदायों का प्रतिनिधित्व करने वाले रामकाव्यों के मूल में कोई अन्तःसूत्र अवश्य विद्यमान है—भारतीय चिन्तन की मूलभूत एकता की इस धारणा को भी प्रस्तुत अध्ययन से बल मिलता है।

इस प्रकार यह कृति न केवल विषय का युक्तिसंगत आख्यान तथा मूल्याङ्कन प्रस्तुत करती है, अपितु भविष्य के शोधार्थियों एवं जिज्ञासुओं के लिए नये तथ्य एवं सामग्री भी प्रकाश में लाती है।

मानस-चतुश्शती पर्व, सं० २०३१ वि० —नगेन्द्र

सम्मति

भारतीय वाङ्मय मे रामकथा से अधिक व्यापक दूसरी कोई कथा नही है। रामायण को उपजीव्य बनाकर संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में अनेक काव्य, नाटक आदि लिखे गये हैं। जिन धर्मों में राम को अवतार नहीं माना गया और ईश्वर का स्थान नहीं दिया उनमें भी रामकथा के आधार पर काव्यादि का प्रणयन हुआ है। विशेषतः जैन कवियों ने रामकथा के आधार पर प्राकृत, अपभ्रंश और संस्कृत में सुन्दर काव्य लिखे हैं। अनेक भाषाओं के विचक्षण विद्वान् आचार्य रविषेण रचित 'पद्मचरित (पद्मपुराण)' संस्कृत का एक उच्च कोटि का महाकाव्य है। पद्म (राम) का चरित्र इस महाकाव्य में जैन-धर्म की मान्यताओं के आधार पर वर्णित हुआ हे। आचार्य रविषेण ने यद्यपि जैन-धर्म की विचारसरणि को प्रधानता दी है किन्तु उनके व्यापक अध्ययन की छाप इस काव्य मे सर्वत्र व्याप्त है। वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति आदि की रचनाओं के सुन्दर स्थल रविषेण ने सहज ही ग्रहण कर लिये हैं। गीता तथा अन्य पुराणों से भी उपदेशात्मक प्रमाणों का अकन पद्मपुराण में मिलता है। ऐसे सुन्दर एवं उत्कृष्ट कोटि के महाकाव्य का तुलनात्मक शैली से अभी तक अध्ययन नहीं हुआ था। डा० रमाकान्त शुक्ल ने पद्मपुराण तथा रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर इस अभाव की पूर्ति की है। डा० शुक्ल हिन्दी-संस्कृत के विद्वान् हैं। अत. इस कार्य के वे अधिकारी भी हैं। पद्मपुराण के अनुशीलन से एक ऐसे महाकाव्य का स्वरूप हिन्दीभाषियो के लिए उद्घाटित हुआ है जो धर्म की भूमि पर पृथक् होने पर भी संस्कृति, भाषा एव विचार के स्तर पर भी भारतीय मनीषा का ही अग है। डा० शुक्ल ने पद्मपुराण का अध्ययन करते समय अपनी दृष्टि को व्यापक परिप्रेक्ष्य से सयुक्त रखा है। अर्थात् केवल सामान्य तुलना ही नहीं वरन् पद्मचरित की गरिमामयी शैली और भाव-वस्तु को काव्यशास्त्रीय दृष्टि से परखा है। रामचरितमानस के विविध प्रसगों की सूक्ष्म स्तर पर तुलना को पढ़ कर आचार्य रविषेण और गोस्वामी तुलसीदास की कारयित्री प्रतिभा का पाठक को परिचय प्राप्त होता है। डा० शुक्ल ने अपने अध्ययन से एक ऐसे अल्पज्ञात

संदर्भ को पठनीय बनाया है जिसकी ओर अभी तक विद्वानों का ध्यान नहीं गया था। इनका यह प्रयास शोध की वैज्ञानिक प्रक्रिया के सर्वथा अनुरूप है। मेरा यह विश्वास है कि रामकथा का यह तुलनात्मक अनुशीलन हिन्दी-जगत् में समादृत होगा और मानस-चतुश्शती-वर्ष के समय इसका प्रकाशन महाकवियों के प्रति श्रद्धांजलि होगा।

२९-४-७२

विजयेन्द्र स्नातक
आचार्य एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

विषय-प्रवेश

भारतीय-वाङमय की महत्त्व-कथा के समय जैन-साहित्य की चर्चा अपोहित नहीं की जा सकती। परन्तु यह दु.ख की बात है कि साम्प्रदायिक दृष्टिकोण के कारण जैन-साहित्य अपेक्षित रूप में प्रकाश में नही आ सका। एक ओर 'हस्तिना ताड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैनमन्दिरम्' जैसी घोषणाओं ने और दूसरी ओर अपने ग्रन्थों को 'असूर्यम्पश्य' रखने की प्रवृत्ति ने ज्ञान की अपार राशि को, सुचिन्तित अध्ययन को और मनीषियों की अनुपम साधना को जिज्ञासुओं से बहुत दिनों तक दूर रखा है। अपने ही देश के चिन्तन से हम वचित रहें—इससे अधिक विडम्बना और क्या हो सकती थी ?

जैन-साहित्य के महार्घ रत्नो से भारती का भण्डार भरा हुआ है परन्तु अनायास प्राप्त उनके आलोक का लाभ भी हम नही उठा पाते, उन्हें एकान्त रूप से प्राप्त करने के प्रयत्न की बात तो दूर रही। आश्चर्य तो तब और भी होता है जब साहित्य के परिचायक इतिहास-ग्रन्थों में भी इन ग्रन्थ-रत्नों का स्पष्ट उल्लेख नही होता जबकि साहित्यिक दृष्टि से ये ग्रन्थ किसी भी भाषा के कण्ठहार बन सकते हैं।

इन ग्रन्थों का साहित्यिक महत्त्व तो है ही, सांस्कृतिक महत्त्व भी कम नही है। 'कथाकोप प्रकरण' की भूमिका मे जैन-कथा-ग्रन्थो की महत्ता बताते हुए मुनि जिन-विजयजी लिखते हैं :—"भारतवर्ष के पिछले ढाई हज़ार वर्ष के सांस्कृतिक *इतिहास का सुरेख चित्रपट अंकित करने मे जितनी विस्तृत और विश्वस्त उपादान* सामग्री इन कथा-ग्रन्थो में मिल सकती है उतनी अन्य किसी प्रकार के साहित्य में नहीं मिल सकती। इन ग्रन्थों में भारत के भिन्न-भिन्न ग्रन्थ, सम्प्रदाय, राष्ट्र, समाज, वर्ण आदि के विविध कोटि के मनुष्यों के नाना प्रकार के आचार, विचार, व्यवहार, सिद्धान्त, आदर्श, शिक्षण, संस्कार, नीति-रीति, जीवन-पद्धति, राजतंत्र वाणिज्य-व्यवसाय, अर्थोपार्जन, समाज-संगठन, धर्मानुष्ठान एवं आत्म-साधन आदि के निदर्शक बहुविध वर्णन निबद्ध हुए हैं जिनके आधार से हम प्राचीन

भारत के सांस्कृतिक इतिहास का सर्वांगीण और सर्वतोमुखी मानचित्र तैयार कर सकते हैं।"[1]

जैनाचार्य श्री रविषेण द्वारा रचित 'पद्मचरित' या 'पद्मपुराण' ऐसे ही महत्त्व का ग्रंथ है। इसमें 'पद्म' (राम) का चरित्र वर्णित है। इसकी रचना में कवि का उद्देश्य है—आर्य रामायणों की अतिमानवीय घटनाओं का बौद्धिक विश्लेषण करके राम को जिनदीक्षा दिलाकर मोक्ष-प्राप्ति का साधन जिनदीक्षा को ही सिद्ध करना। वाल्मीकीय-रामायण की धारा से परिचित व्यक्ति को 'पद्म-पुराण' की राम-कथा अटपटी प्रतीत हो सकती है परन्तु जैन-रामकथा की परम्परा से परिचित व्यक्ति को इसमे कोई आश्चर्य नहीं होगा। इन जैन कवियों ने नामावलीनिबद्ध 'पद्म' (राम)-चरित को इस प्रकार पल्लवित किया जिससे जैन-दर्शन के प्रति लोगों को आवर्जित किया जा सके। स्पष्टतः इस प्रयत्न में यत्र क्वचित् अनावश्यक खींच-तान भी हुई है परन्तु इन कवियों के कवित्व और वैदग्ध्य में संदेह नहीं किया जा सकता।

संस्कृत-ग्रंथों की परम्परा में 'पद्मपुराण' या 'पद्मचरित' अभी तक उपेक्षित था। यद्यपि संस्कृत-साहित्य के समस्त उदात्त गुण इसमें विद्यमान है तथापि संस्कृत के इतिहास ग्रन्थों मे इसकी चर्चा का लेखकों को अवकाश तक नही मिला है। यह उन्होने जानबूझ कर किया अथवा उन्हें इसका परिचय ही नही था—यह वे जाने। वाचस्पति गैरोला ने अवश्य अपने संस्कृत-साहित्य के इतिहास मे इस पर अत्यन्त संक्षिप्त रूप से कुछ लिखा है और जैन-साहित्य के संस्कृत ग्रंथों को संस्कृत-साहित्य के इतिहास मे समाविष्ट करने की ओर विद्वानो का ध्यान आकृष्ट किया है। अस्तु, जैन-रामकथा के इस प्रसिद्ध ग्रथ का गोस्वामी तुलसी दास जी के रामचरितमानस से अध्ययन प्रस्तुत करना इस प्रबन्ध का उद्देश्य है।

पद्मपुराण और रामचरितमानस—दोनों ही रामकाव्यमाला के वरेण्य रत्न हैं। यदि पहले की जिनसेन, कुवलयमालाकार, स्वयम्भू तथा भट्टारक सोमसेन आदि ने सराहना की है तो दूसरे की भी अनेक देशी-विदेशी विद्वानो ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। न केवल हिन्दी के अनेक विद्वानों ने अपितु फोर्ट विलियम के मुशी अदालत खाँ, मैकफी, ग्रियर्सन, महात्मा गान्धी, गार्सादे तासी, एफ. एस. ग्राउज, एफ. ई. केई, एडविन ग्रीव्ज, जे. ई. कार्पेण्टर, डब्ल्यू डगलस पी. हिल तथा डॉ. मुहम्मद हाफिज सैयद सदृश अनेक अहिन्दीभाषी विद्वानों ने भी रामचरितमानस की गुण-गाथा गायी है। आचार्य रविषेण ने, रामकथा के बहाने, जैनधर्म के सिद्धान्तों को

[1] कथाकोषप्रकरण—प्रास्ताविक वक्तव्य, पृ० १५।
सिन्धी-जैन-शास्त्र-शिक्षा-पीठ, भारतीय विद्या भवन, बम्बई वि० सं० २००५।

प्रस्तुत किया और तुलसी ने 'नानापुराण-निगमागमसम्मत' तत्त्व को। रविषेण का प्रधान लक्ष्य है, अपने धर्म का प्रचार और तुलसी का स्वान्तःसुखाय रामचरित का वर्णन करना। रविषेण का धर्म-प्रचार और तुलसी का भाषा-निबन्ध—दोनों ही संसार के कल्याणार्थ जिन-दीक्षा और राम-राज्य की संकल्पना करते हैं। दोनों का मार्ग भिन्न है, किन्तु लक्ष्य प्रायः समान। दोनों अपने काल और समाज की विडम्बनाओं से आलोडित हुए हैं और युग को एक दिशा देना चाहते हैं।

तुलसी 'पद्मपुराण' से प्रभावित थे या नहीं—यह इदमित्थ रूप से नहीं कहा जा सकता, परन्तु अनेक स्थलों से यह अनुमान किया जा सकता है कि उन्होंने इस ग्रन्थ को संभवत: देखा हो परन्तु अपने इष्टदेव की प्रतिमा के प्रतिकूल उन्होने जो कुछ भी अनुचित समझा उसमें काट-छाँट करने में वे कभी नहीं हिचके। अपना आदर्श वाल्मीकि को मानकर भी यदि उन्होंने सीता-परित्याग-जैसी दारुण घटना का परित्याग कर दिया हो तब अपनी भावना के प्रतिकूल लगने वाले किसी सम्पूर्ण ग्रन्थ को ही यदि उन्होंने उपेक्षित कर दिया हो तो कोई आश्चर्य नहीं है।

जो हो, इन दोनो ग्रन्थों का तुलनात्मक अध्ययन करने के उद्देश्य से इस शोध-प्रबन्ध का प्रणयन किया गया है। मूल-रूप मे प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध ग्यारह अध्यायों में विभक्त था।

प्रथम अध्याय में, विषय-प्रवेश और प्रस्तावना थी। इसमें शोध-कार्य की आवश्यकता एव शोध-प्रबन्ध का संक्षिप्त परिचय दिया गया था।

द्वितीय अध्याय में, पौराणिक-काव्य का सामान्य विवेचन किया गया था। चरित-काव्यो और पौराणिक-काव्यों के अन्तर पर विचार किया गया था। इस प्रसग में 'हिन्दी-साहित्य-कोश' के 'पौराणिक-काव्यों के विवेचन' पर अपना वैमत्य प्रकट किया गया था। संस्कृत पौराणिक-काव्यों की परंपरा एवं उनकी सामान्य विशेषताएँ बताई गयी थी तथा हिन्दी पौराणिक काव्यो पर उनके प्रभाव की विवेचना की गयी थी।

तृतीय अध्याय में, आचार्य रविषेण के जीवन, काल, कृतित्व एवं व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया था। इस प्रसग में रविषेण के 'लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षण' पर विचार किया गया था जिसमें उनके स्फीत अध्ययन का विशद परिचय दिया गया था। रविषेण अपने आस-पास हुए गद्य-सम्राट् बाण और कालिदास से पर्याप्त प्रभावित थे जिसका परिचय उनके ग्रन्थो को देखने से मिल जाता है। इस प्रभाव को पुष्ट करने के लिए एक विशद सूची दी गयी थी जिसमें बाण, कालिदास तथा अन्य कवियो के ग्रन्थों से तुलनात्मक उद्धरण दिये गये थे। 'पद्मपुराण' का एक विवेचनात्मक परिचय प्रस्तुत किया गया था। उसकी प्राप्त प्रतियों, कथासार

एवं काव्य-स्वरूप आदि पर विचार किया गया था। प्राकृतकवि विमलसूरि के 'पउमचरिय', अपभ्रंश-कवि स्वयम्भू के 'पउमचरिउ' और संस्कृत-कवि आचार्य रविषेण के 'पद्मचरित' (पद्मपुराण) की तुलनात्मक दृष्टि से संक्षिप्त चर्चा एवं 'पद्मचरित' तथा 'पउमचरिय' के पौर्वापर्य पर उहापोह की गयी थी। जैन रामकथा के स्रोतों पर विचार करते समय विमलसूरि और गुणभद्र की परम्पराओं का निर्देश किया गया था। जैन एवं जैनेतर शास्त्रों, विशेष रूप से वाल्मीकि रामायण का, 'पद्मपुराण' पर प्रभाव कहाँ तक पड़ा है—यह विस्तार से दिखलाया गया था।

चतुर्थ अध्यय़ाय में, रामकाव्य-परम्परा एवं तुलसी से पूर्व हिन्दी-राम-काव्य का विस्तृत परिचय दिया गया था। तुलसी के जीवन और कृतित्व का परिचय देते हुए 'रामचरितमानस' में उनके काव्य-कौशल की एक झाँकी प्रस्तुत की गयी थी।

पंचम अध्याय में, आचार्य रविषेण तथा तुलसी के समय की परिस्थितियों का तुलनात्मक विवेचन किया गया था। दोनों कवियों ने जिन परिस्थितियों में अपनी रचनाओं का प्रणयन किया वे उनके अनुकूल थी या प्रतिकूल—इस प्रश्न की मीमांसा की गयी थी।

षष्ठ अध्याय में, 'पद्मपुराण' और 'मानस' की कथावस्तु के साम्य और वैषम्य की समीक्षा की गयी थी। तुलसी और रविषेण में से कथा के मर्मस्पर्शी स्थलों को किसने अधिक पहचाना और किस रूप में चित्रित किया—यह दिखाते हुए 'पद्मपुराण' और 'रामचरितमानस' के उपाख्यानों पर विचार के साथ यह अध्याय समाप्त किया था।

सप्तम अध्यय में, 'पद्मपुराण' और 'मानस' के पात्रों और चरित्र-चित्रण पर तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया था। दोनों ग्रन्थों में आये हुए पात्रों के चरित्र का तुलनात्मक विश्लेषण तो किया ही गया था, ऐसे पात्रों की भी एक विशद सूची दी गयी थी जो दोनों रचनाओं में समान न होकर एक (पद्मपुराण) में ही विशेष रूप से आये है। इस विशद सूची को अकारादिक क्रम से पर्व की संख्या के निर्देश के साथ प्रस्तुत किया गया था।

अष्टम अध्याय में, 'पद्मपुराण' और 'मानस' के भावपक्ष पर विचार किया गया था। विभाव-अनुभाव-संचारी की योजना में दोनों कवियों को कहाँ तक सफलता मिली है, कल्पना का दोनों ने किस प्रकार उपयोग किया है, एवं विचार-तत्त्व दोनों के ग्रन्थों में कैसा है, इसका सांगोपांग सप्रमाण विवेचन किया गया था।

नवम अध्याय में, दोनों कृतियों के कलापक्ष पर विचार किया गया था। दोनों

की शैलियों पर प्रकाश डाला गया था। दोनो की भाषा, छन्द, अलंकार, गुण, रीति, वृत्ति, दोष, संवाद, प्रकृति-चित्रण एवं वर्णन-कौशल पर विचार किया गया था। दोनों कवियों की अभिव्यंजना-शैली के युक्तायुक्तत्व का निर्णय किया गया था। इस अध्याय में सबसे विशिष्ट पद्मपुराण के वर्णनों की विशद सूची थी जिसमें लगभग ढाई सौ वर्णनों का वर्गीकरण किया गया था।

दशम अध्याय मे, दोनों कृतियों की सांस्कृतिक तथा धार्मिक दृष्टि से तुलना प्रस्तुत की गयी थी। 'पद्मपुराण' तत्कालीन संस्कृति का अत्यन्त व्यापक परिचय देता है। गुप्तकाल एवं गुप्तकालोत्तर भारतीय संस्कृति का ऐसा विशद परिचय बाण के बाद सम्भवत रविषेण ही देते है। इस ग्रंथ पर सांस्कृतिक परिचय के दृष्टिकोण से स्वतन्त्र कार्य किया जा सकता है जो कि आवश्यक भी है। तुलसी के 'मानस' मे यद्यपि आदर्श संस्कृति ही चित्रित है तथापि लोक-संस्कृति के भी पर्याप्त संकेत वहां मिल जाते है। दोनों ग्रन्थों का इस दृष्टि से ससंदर्भ परिचय दिया गया था।

एकादश अध्याय में, 'मानस' पर 'पद्मपुराण' के प्रभाव की चर्चा की गयी थी, एवं 'पद्मपुराण' और 'मानस' का रामकाव्य परम्परा मे स्थान-निर्धारण किया गया था। 'पद्मपुराण' के 'मानस' पर प्रभाव की चर्चा करते समय यह दिखाया गया था कि 'पद्मपुराण' का 'मानस' पर यथा व्यवस्थित एवं साग्रह प्रभाव बिलकुल नही पड़ा है। हाँ, यदि कही तुलनात्मक उक्तियाँ दोनों ग्रन्थों में आ गयी हैं तो उनका या तो मूल स्रोत कोई तीसरा ग्रंथ है अथवा तुलसी की मधुकरी वृत्ति का परिणाम जिसके कारण उन्होंने सुभाषित-चयन किया होगा। ऐसी तुलनात्मक उक्तियों की एक विशद सूची दी गयी थी। हो सकता है कि ये घुणाक्षर-न्याय से ही सिद्ध हों।

इस प्रकार इन दोनों रचनाओं के साहित्यिक मूल्यांकन का यथामति प्रयास किया गया था। इस प्रयास में इस बात का ध्यान रखा गया था कि इन दोनों कृतियों का साहित्यिक सौन्दर्य पूर्ण रूप से उजागर हो जाय। संस्कृत-उद्धरण देते समय उनके हिन्दी अर्थ को कलेवर-स्फीति के भय से नही दिया गया था, इस आशा से कि सुधी सहृदय मूल उद्धरणों में ही आनन्द ग्रहण कर लेंगे।

प्रस्तुत शोधप्रबन्ध १९६६ मे आगरा विश्वविद्यालय में प्रस्तुत किया गया था जिस पर १९६७ में पी-एच. डी. की उपाधि दी गयी थी।

अब, जब कि शोधप्रबन्ध के प्रस्तुतीकरण के लगभग आठ वर्ष बाद इसके मुद्रण की बात बनी तब यह उचित प्रतीत हुआ कि इसमें से उस अंश की छँटनी कर दी जाय जो किसी भी रूप में अनावश्यक या अमौलिक, कहा जा सकता था;

उदाहरणार्थ मूल शोध-प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत आने वाली तुलसी-सम्बद्ध सामग्री तथा अगले अध्यायों में समागत तुलसी के रामचरितमानस से सम्बद्ध सामग्री। इस सामग्री को शोध-प्रक्रिया के 'पुनराख्यान' अंग के अन्तर्गत रखना आवश्यक था किन्तु अब केवल तुलनापरक अश को पुनर्व्यवस्थित करके "पद्मपुराण और रामचरितमानस" नामक एक ही अध्याय में समाविष्ट कर दिया गया है। तुलसी के विषय में तो कितने ही विद्वान् लेखनी चला चुके हैं, किन्तु रविषेण पर इस शोधप्रबन्ध से पहले नही के बराबर ही लिखा गया था; अतः रविषेण सम्बन्धी सामग्री को पाठकों के सम्मुख लाने की लालसा अधिक बलवती रही अपेक्षाकृत अपनी सञ्चयवृत्ति को प्रदर्शित करने के। अतः अब प्रथम अध्याय में पौराणिक काव्य का सामान्य विवेचन तथा संस्कृत पौराणिक काव्यों की परम्परा एवं सामान्य विशेपताएँ, द्वितीय अध्याय में आचार्य रविषेण का जीवन-परिचय एवं कृतित्व, तृतीय अध्याय में रविषेण के समय की परिस्थितियों का परिचय, चतुर्थ अध्याय में 'पद्मपुराण' की विषयवस्तु का परिचय, पञ्चम अध्याय में 'पद्मपुराण' के पात्रों के चरित्र-चित्रण का विवेचन, षष्ठ अध्याय में 'पद्मपुराण' के भावपक्ष पर विचार, सप्तम अध्याय में 'पद्मपुराण' के कला-पक्ष पर विचार, अष्टम अध्याय में 'पद्मपुराण' में जैन धर्म-दर्शन पर विचार, नवम अध्याय में पद्मपुराण में संस्कृति पर विचार, दशम अध्याय में जैन-रामकाव्य-परम्परा में 'पद्मपुराण' का स्थान-निर्धारण एवं एकादश अध्याय में 'पद्मपुराण और रामचरितमानस' का विविध दृष्टियों से तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। एकादश अध्याय में प्रसक्तानुप्रसक्तया तुलसी से पूर्व रामकाव्य-परम्परा का सर्वेक्षणात्मक परिचय, तुलसी के रामचरितमानस का प्रकृतोपयोगी परिचय, पद्मपुराण और मानस की परिस्थिति, विषयवस्तु, पात्रों के चरित्र-चित्रण, भावपक्ष, कलापक्ष, धर्म एवं संस्कृति की दृष्टि से तुलना एवं 'रामचरितमानस' पर 'पद्मपुराण' के प्रभाव की चर्चा की गयी है।

परिशिष्ट (१) में पद्मपुराण की सूक्तियों की सूची दी गयी है जो रविषेण के सुभाषितों पर कार्य करने की इच्छा वाले व्यक्तियों के विशेष प्रयोजन की है। परिशिष्ट (२) में पद्मपुराण की प्रमुख वंशावलियाँ दी गयी हैं जो जैन-रामकाव्य-परम्परा के अन्य ग्रन्थों मे समागत वंशावलियों के साथ रविषेण के ग्रन्थ की वंशा-वलियों की तुलना में सहायक हो सकती हैं। परिशिष्ट (३) में संकेतिक ग्रन्थ-सूची दी गयी है। विचार तो परिशिष्ट (४) में शोध-प्रबन्धान्तर्गत समागत व्यक्ति-वाचक संज्ञाशब्दानुक्रमणी देने का भी था किन्तु ग्रन्थ की कलेवरवृद्धि के भय से ऐसा नहीं किया जा सका।

प्रस्तुत ग्रन्थ के पाठक, निरसन्देह, एम. ए. या पी-एच. डी. स्तर के आस-पास के होंगे। ऐसे सुधी पाठकों के लिए संस्कृत उद्धरणों का हिन्दी अनुवाद देना मैंने अनावश्यक समझा है। इसी प्रकार काव्याङ्गों के उदाहरण देते समय काव्याङ्गों का विवेचनात्मक परिचय नही दिया इसी विश्वास के कारण कि कम-से-कम ये विद्वान् पाठक सम्बद्ध काव्याङ्ग की परिभाषा से तो परिचित होंगे ही। जिस उत्खात सामग्री का मैंने प्रस्तुतीकरण किया है, उसमें शायद भावी शोध को भी कुछ दिशाएँ मिल सकें। उदाहरण के लिए—'रविषेण की उपमा' 'रविषेण के रूपक', 'रविषेण की उत्प्रेक्षाएँ' तथा 'रविषेण के वर्णन' आदि स्वतन्त्र शोध के विषय प्रस्तुत ग्रन्थ से अवश्य कुछ-न-कुछ सहायता पा सकते हैं। रामचरितमानस के 'दसानन', 'सूर्पनखा' आदि शब्दों को विवेचन के समय 'दशानन', 'शूर्पनखा' आदि लिख दिया गया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध अग्रजकल्प डॉ० ओमप्रकाश जी दीक्षित एम. ए. (हिन्दी-संस्कृत पी-एच. डी., शास्त्री (रीडर तथा अध्यक्ष हिन्दी-विभाग, जे. वी. जैन कालेज, सहारनपुर) के निर्देशन में सम्पन्न हुआ था। डॉ० दीक्षित ने जैन-साहित्य-सम्बन्धी शोध को एक नवीन दिशा दी है। जैन-रामकाव्य और कृष्णकाव्य का जैनेतर (ब्राह्मण या वैष्णव) रामकाव्य और कृष्णकाव्य के साथ तुलनात्मक अध्ययन करना और कराना डॉ० दीक्षित के शोध-जीवन का बहुमूल्य प्रसंग है। स्वयभू के 'पउमचरिउ' और तुलसी के 'मानस' पर उन्होंने स्वतः कार्य किया था और रविषेण के 'पद्मचरित' पर मुझे कार्य करने की प्रेरणा दी। उनके कार्य के बाद तो अनेक विश्वविद्यालयों में 'पउमचरिय', 'पद्मचरित' और 'पउमचरिउ' के पात्रों, कथानक तथा अन्य पहलुओं पर शोध-विषय स्वीकृत हुए। जैन-रामकाव्य के महनीय ग्रन्थों के साथ 'रामचरितमानस' के तुलनात्मक अध्ययनो के निर्देशन के अतिरिक्त डॉ० दीक्षित जैन कृष्णकाव्य-परम्परा के महार्घ रत्न 'हरिवंश-पुराण' और हिन्दी कृष्णकाव्य परम्परा के महान् ग्रन्थ 'सूरसागर' के तुलनात्मक अध्ययन का, मेरठ विश्वविद्यालय में, निर्देशन कर रहे हैं। यह अध्ययन मेरे अनुज चि० श्री विष्णुकान्त शुक्ल एम. ए. (हिन्दी-संस्कृत), साहित्याचार्य, प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग, जे. वी. जैन कालेज, सहारनपुर द्वारा किया जा रहा है जो शीघ्र ही विद्वानो के सम्मुख प्रस्तुत होने वाला है। शोध-ग्रन्थ के प्रकाशन के अवसर पर मैं डॉ. दीक्षित के सौहार्द एवं पाण्डित्य के प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के लिखने में अपने निर्देशक के अतिरिक्त डॉ० ए. एन. उपाध्ये, एम. ए. डी. लिट्. (कोल्हापुर), डॉ० अगरचन्द नाहटा (बीकानेर), महामहोपाध्याय विनयसागर जी (जोधपुर), डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन (लखनऊ),

एवं स्व० प्रोफेसर एमरिटस, डॉ० एस. एस. कुलश्रेष्ठ, एम. ए., पी-एच. डी., एल-एल. बी. (मोदीनगर) आदि विभूतियों का वैचारिक सौहार्द प्राप्त हुआ है। इनके अतिरिक्त, इसके लेखन और प्रकाशन में हमारे अग्रजद्वय प्रो० कृष्णकान्त शुक्ल (संस्कृत-विभाग, बरेली कालेज, बरेली) तथा प्रो० उमाकान्त शुक्ल (संस्कृत-विभाग, एस. डी. कालेज, मुजफ्फरनगर), सुहृद्वर श्री सुलेखचन्द्र शर्मा (हिन्दी-विभाग, देशबन्धु कालेज (सान्ध्य), दिल्ली), सुख-दु:ख के समान साथी, प्रियवर 'राज', जिनके विषय मे कुछ भी लिखना थोड़ा है, ऐसी हमारी अन्वर्थनाम्नी अर्द्धाङ्गिनी श्रीमती रमा शुक्ला एव आत्मजद्वय चि० चन्द्रमौलि शुक्ल और चि० अनुपम शुक्ल जिन्हे बचपन मे प्यार से क्रमश 'कुट्टी' और 'बम्बू' कहा, जाता रहा है—किसी न किसी रूप में सहायक रहे है। इन सबके प्रति अपनी यथोचित मनोभावनाएँ प्रकाशित करने के लिए अपनी झोली में शब्द नही पा रहा।

अध्ययन और साधना के प्रतीक एव गुणज्ञता के आगार डा० नगेन्द्र ने **'दो शब्द'** लिखकर इस ग्रन्थ को गौरवान्वित करने की जो कृपा की है, वह 'वाचामगोचर' है। ग्रन्थ के विषय मे, डा० विजयेन्द्र स्नातक (प्रोफेसर तथा अध्यक्ष-हिन्दी-विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय) की सम्मति ने भी 'अश्मापि याति देवत्वं महद्भिः संप्रतिष्ठितः' वाली कहावत को चरितार्थ किया हैं।

वाणी-परिषद्, दिल्ली ने इस ग्रन्थ को **'आचार्य श्री ब्रह्मानन्द शुक्ल-ग्रन्थमाला'** के प्रथम पुष्प के रूप में प्रकाशित करना स्वीकार किया है, एतदर्थ उसके प्रति कृतज्ञ हूँ।

ग्रन्थ में छापे की इक्का-दुक्का भूल रह गयी हैं। पृष्ठ ५८ पर पुष्पदन्तकृत 'तिसट्ठीमहापुरिसगुणालकार' प्रमाद से 'अपभ्रंश' के स्थान पर 'प्राकृत' की रचना छप गया है। आशा है, कृपालु पाठक इन भूलों को सुधार लेंगे—**"गुणदोष-समाहारे गुणान् गृह्णन्ति साधवः।"**

२७-५-१९७४
आर ६, वाणी-विहार
नयी दिल्ली-११००१८

विद्वज्जनकृपाकांक्षी :
—रमाकान्त शुक्ल

प्रथम अध्याय

पौराणिक काव्य : स्वरूप और परम्परा

काव्य के अनेकानेक भेद हुए हैं और होते जा रहे हैं। 'पौराणिक-काव्य' भी उनमें अन्यतम है। पद्यात्मक श्रव्य-काव्य के दो भेद है—प्रबन्ध और मुक्तक। प्रबन्ध के महाकाव्य और खण्ड-काव्य भेद होते हैं।

'हिन्दी-साहित्य-कोश' के अनुसार पौराणिक-काव्य का परिचय इस प्रकार है –

"महाकाव्य मुख्यत: दो प्रकार के होते हैं—(१) साहित्यिक परम्परा में विकसित और (२) लोक-कण्ठ में रहकर विकसित लोक-महाकाव्य।

अलंकृत महाकाव्य की मुख्यत. निम्नलिखित शैलियाँ है . (१) शास्त्रीय, (२) रोमासिक, (३) ऐतिहासिक, (४) पौराणिक, (५) रूपक-कथात्मक, (६) नाटकीय, (७) प्रगीतात्मक, (८) मनोवैज्ञानिक या मनोविश्लेषणात्मक। पौराणिक शैली के महाकाव्य का उदाहरण 'रामचरितमानस' आदि हैं।[१]

जिस प्रकार महाकाव्य 'पौराणिक शैली' के भी होते हैं, उसी प्रकार चरित-काव्य भी 'पौराणिक-शैली' के पाये जाते है।[२] शैली की दृष्टि से चरितकाव्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है—(१) **पौराणिक-शैली के चरित-काव्य**—'पद्यचरित', 'पार्श्वनाथचरित', 'पउमचरिय', 'पउमचरिउ', 'महापुराण', 'पास-पुराण', 'त्रिषष्टि-शलाकापुरुषचरित' आदि। (२) **ऐतिहासिक-शैली के चरित-काव्य**—'पृथ्वीराजविजय', 'विक्रमांकदेवचरित', 'राजतरंगिणी', 'कुमारपाल-चरित', 'हम्मीरमहाकाव्य', 'गउडवहो' आदि। (३) **रोमांसिक शैली के चरित-**

---

१ हिन्दी-साहित्य-कोश, भाग—१, पृ० ६२८

२. वही, पृ० ३१५-१६

काव्य—'नवसाहसांकचरित', 'चन्द्रप्रभचरित', 'शान्तिनाथचरित', 'मलयसुन्दरी-कहा', 'अजनासुन्दरीचरिय', 'भविसयत्तकहा', 'करकण्डुचरिउ', 'जसहरचरिउ' आदि।

उद्देश्य और विषयवस्तु की दृष्टि से चरित-काव्य छः प्रकार के होते हैं—(१) धार्मिक-पौराणिक, (२) प्रतीकात्मक, (३) वीरगाथात्मक, (४) प्रेमाख्यानक, (५) प्रशस्तिमूलक, (६) लोकगाथात्मक। इनमे—धार्मिक, पौराणिक, चरित-काव्य के उदाहरण है—'रामचरितमानस' 'कृष्णचन्द्रिका', 'दशावतार' आदि।"[3]

'हिन्दी-साहित्य-कोश' में प्राप्त पौराणिक-काव्य का विवेचन पर्याप्त उलझा हुआ है। उससे कोई भी स्पष्ट निर्णय हमारे समक्ष नहीं आता। पृ० ४९६ पर 'पुराण-काव्य' के आगे लिखा हुआ है—'दे० 'चरितकाव्य', 'कथाकाव्य' 'महाकाव्य।' पृष्ठ ६२८ पर 'महाकाव्य' के विवेचन में अलंकृत महाकाव्य की छः शैलियों मे एक पौराणिक भी बताई गई है जिसका उदाहरण 'रामचरितमानस' बताया गया है। पृष्ठ ३१६ पर उद्देश्य या विषयवस्तु की दृष्टि से 'चरितकाव्य' के छः प्रकारों में धार्मिक प्रकार को अन्यतम बताया गया है जिसका उदाहरण 'धार्मिक-पौराणिक' कहकर 'रामचरितमानस' को बताया गया है। ऐसी अवस्था मे 'रामचरितमानस' को 'चरितकाव्य' माना जाय अथवा 'महाकाव्य'?—यह प्रश्न लटकता ही रह जाता है। यदि 'रामचरितमानस' दोनों ही प्रकारों का प्रतिनिधित्व करता है तो 'महाकाव्य' और 'चरितकाव्य' का स्पष्ट भेद करना चाहिए जोकि नही किया गया है। केवल इतना कह देने से कोई तात्त्विक परितोष नही होता—'चरितकाव्य प्रबन्धकाव्य का ही एक विशेष रूप या प्रकार है।'[4] और भी—प्रबन्धकाव्य के भेदो में 'चरित-काव्य' भेद स्वीकार ही नहीं किया गया है। साथ ही एक ओर तो यह कहा गया है कि काव्य-पौराणिक नही होता बल्कि उसकी शैली पौराणिक होती है,[5] और दूसरी ओर उद्देश्य या विषयवस्तु की दृष्टि से छः भागो में विभक्त कर 'धार्मिक-पौराणिक' चरित-काव्य का उदाहरण 'रामचरितमानस' प्रस्तुत किया गया है।

एक समस्या और है। पृ० ३१५ पर 'पौराणिक शैली' के चरितकाव्य के उदाहरण ये दिये गये है—'पद्मचरित', पार्श्वनाथ-चरित', 'पउमचरिय', 'पउमचरिउ', 'महापुराण', 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित' आदि। पृ० ३१६ पर प्रबन्धकाव्य के मुख्यतः दो रूपों—शास्त्रीय प्रबन्धकाव्य और चरितकाव्य का उल्लेख करके 'चरित-

३. वही, पृ० ३५६
४. वही, पृ० ३१५
५. वही, पृ० ३१५

काव्य' के ये लक्षण बताये गये हैं—

(१) 'चरितकाव्य' की शैली जीवनचरित की शैली होती है। उसमें प्रारम्भ में या तो ऐतिहासिक ढंग से नायक के पूर्वज, माता-पिता और वश का वर्णन रहता है या पौराणिक ढंग से उसके पूर्व भावों (भवों?) का वृत्तान्त तथा उसके जन्म के कारणों का वर्णन होता है अथवा कथाकाव्य की तरह उसके माता-पिता, देश और नगर का वर्णन रहता है। उसमें चरितनायक के जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त तक की अथवा कई जन्मों (भवान्तरों) की कथा होती है। उसमें शास्त्रीय प्रबन्धकाव्यो की तरह महत्त्वपूर्ण और कलात्मकता उत्पन्न करने वाली मुख्य घटनाओं का चुनाव और वर्णनात्मक अशो की अधिकता नही होती। **अतः वह कथात्मक अधिक और वर्णनात्मक कम होता है। चरितकाव्य का कवि कथा को छोड़कर वस्तुवर्णन या प्रकृति-चित्रण में अधिक देर तक नहीं उलझता।** इसी कारण वह कथाकाव्य के अधिक निकट तथा शास्त्रीय प्रबन्ध काव्यो की अपेक्षा अधिक स्वाभाविक, सरल और लोकोन्मुख होता है।

(२) चरितकाव्य में प्राय प्रेम, वीरता और धर्म या वैराग्यभावना का समन्वय दिखलाई पडता है। सब मे कोई न कोई प्रेमकथा अवश्य होती है और उनका स्थान, गौण नही, महत्त्वपूर्ण होता है। उनमे पौराणिक कथानक मे भी प्रेमाख्यानक रग भरने का प्रयत्न दिखाई पड़ता है। प्राय सभी चरित्रकाव्यो में प्रेम का प्रारम्भ समान रूप मे स्वप्न-दर्शन, गुणश्रवण, चित्रदर्शन या प्रथम साक्षात्कार द्वारा होता है। विवाह के पहले या बाद मे नायक-नायिका के मार्ग मे अनेक विघ्न-बाधाएँ आती हैं, युद्ध करने पडते है और अन्त मे उनका मिलन होता है। जैन चरितकाव्यो मे प्राय. अन्त म नायक किसी प्रेरणा या उपदेश से ससार से विरक्त होकर जैन मुनि बन जाता है।

(३) प्राय. सभी चरित-काव्यों मे कथारम्भ के लिए वक्ता-श्रोता योजना अवश्य होती है। यह प्रश्नोत्तर-योजना इतने रूपों में मिलती है—(क) धर्मगुरु और शिष्य, पौराणिक कथाविद् और भक्त-जन, अथवा श्रावक और श्रोता के बीच, (ख) शुक-शुकी, शुक-सारिका, भृग-भृंगी अथवा किसी वक्ता पक्षी और मानव श्रोता के बीच, (ग) कवि और कविपत्नी या कवि और उसके शिष्य के बीच।

(४) उनमे अलौकिक, अतिप्राकृत और अतिमानवीय शक्तियों, कार्यों और वस्तुओं का समावेश अवश्य रहता है, जो पौराणिक और रोमासिक शैली के कथा-काव्यों, पौराणिक-कथाओ और लोक-कथाओं की देन है। इस कारण उसमे साहस-पूर्ण, आश्चर्योत्पादक और रोमासिक कार्यों तथा तत्त्वो की अधिकता होती है और उन सभी कथानक-रूढ़ियों की भरमार होती है जो लोककथा और कथा-आख्या-

यिका में बहुत अधिक मिलती है ।

(५) उनका कथानक शास्त्रीय प्रबन्धकाव्यों जैसा पंचसन्धियों से युक्त और कार्यान्विति वाला नहीं होता, वह कथाकाव्य की तरह स्फीत, विशृंखल, गुम्फित या जटिल होता है ।

(६) उसकी शैली कथाकाव्यों से अधिक उदात्त होती है, पर शास्त्रीय प्रबन्ध-काव्यो जैसी अतिशय अलकृत, चमत्कारपूर्ण या पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति से युक्त नहीं होती, जिससे उसमें अधिक सरलता, सादगी और सामान्य जनता के लिए पर्याप्त आकर्षण होता है ।

(७) चरितकाव्य प्रायः उद्देश्यप्रधान होता है, कथाकाव्यो की तरह केवल मनोरंजन करना उसका लक्ष्य नहीं होता। यह उद्देश्य कभी धार्मिक, कभी प्रशस्तिमूलक और कभी लोककल्याणाभिनिवेशी होता है । परन्तु उसका उद्देश्य अधिक उभरा हुआ और स्पष्ट होता है, शास्त्रीय प्रबन्धकाव्यों जैसा कलात्मक सौन्दर्य के भीतर निहित नहीं होता। इसी कारण चरितकाव्य उपदेशात्मक, प्रचारात्मक या प्रशस्तिमूलक प्रतीत होते हैं ।''

इन लक्षणो में कुछ की 'पद्मचरित' या 'पद्मपुराण मे अव्याप्ति है। संख्या (१) लक्षण का अन्तिम भाग 'पद्मपुराण' के विषय मे उपयुक्त नही है। उसमें वर्णनों की भरमार है। लगभग २५० वर्णन उसमें हैं जिनका उल्लेख हम 'कलापक्ष' के अन्तर्गत करेंगे । इसी प्रकार संख्या (५) लक्षण भी खण्डित हो जाता है क्योकि 'पद्मपुराण' की कथा को भी पंचसन्धि समन्वित किया जा सकता है। संख्या (६) का तो उसमे नितान्त विरोध है, उसकी शैली शास्त्रीय प्रबन्धकाव्यों जैसी अतिशय अलकृत चमत्कारपूर्ण एवं पाण्डित्य प्रदर्शन वाली है जिसका पता ग्रन्थ को देखने से ही चल सकता है।

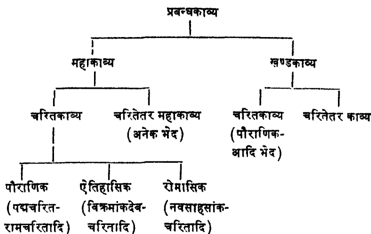
इस प्रकार या तो 'पद्मचरित' को **पौराणिक शैली का चरितकाव्य** नहीं कहना चाहिए अथवा चरितकाव्य की सामान्य विशेषताओं मे संशोधन करना चाहिए।

इसके अतिरिक्त यदि शास्त्रीय प्रबन्धकाव्य के भेद 'महाकाव्य' के लक्षणों पर 'पद्मपुराण' को कसा जाय तो वह उन सभी पर खरा उतरता है।

चरितकाव्य (जिसका एक भेद पौराणिक भी है) की सामान्य प्रवृत्तियाँ अनेक पुराणों में भी देखी जा सकती है। अतः पुराण और पौराणिक-काव्य की सामान्य प्रवृत्तियों मे कोई स्पष्ट भेद दिखायी नहीं देता।

इस प्रकार 'हिन्दी-साहित्य-कोश' हमें पौराणिक काव्य का कोई निर्भ्रान्त परिचय नहीं देता। हमें उसका स्पष्ट विवेचन करना है।

हमारे विचार से ऊपर उदाहरणस्वरूप उपस्थापित पौराणिक शैली के चरितकाव्य 'महाकाव्य' ही हैं। इसके अतिरिक्त खण्डकाव्य में भी चरितकाव्य के ये भेद हो सकते हैं, अतः इनका वर्गीकरण इस प्रकार होना चाहिए--



इस प्रकार 'पौराणिक काव्य' प्रबन्धकाव्य के दोनों ही भेद हो सकते है-- 'महाकाव्य' भी और 'खण्डकाव्य' भी। पौराणिक महाकाव्यो मे महाकाव्य के समस्त तत्त्व पौराणिक आवरण मे रहते हैं और पौराणिक खण्डकाव्यों में खण्ड-काव्य के समस्त तत्त्व पौराणिक आवरण में रहते हैं। महाकाव्योचित गरिमा और वर्णन-प्रचुरता आदि पौराणिक चरितकाव्यो में यथेच्छ हो सकते हैं। अन्य सभी चरितकाव्यो की विशेषताएँ इन पौराणिक चरितकाव्यों मे ऊपर के अनुसार ही जानी जा सकती है। हमारे आलोच्य ग्रन्थ—'पद्मपुराण' और 'रामचरितमानस' **'महाकाव्य के पौराणिक चरितकाव्य'** भेद के उदाहरण है।

संस्कृत के पौराणिक काव्यो की परम्परा 'वाल्मीकीय रामायण' से ही मानी जा सकती है। 'श्रीमद्भागवत' भी पौराणिक काव्य ही है। किन्तु जैन साहित्य में पौराणिक काव्यों की अधिक रचना हुई। क्या प्राकृत, क्या अपभ्रंश और क्या संस्कृत—सभी मे पौराणिक चरितकाव्यो की बाढ़ सी आ गई। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक जैनेतर कवियों ने भी पौराणिक काव्यों की रचना की है। इनका परिचय प्रस्तुत है—

'पद्मपुराण' या 'पद्मचरित'—आचार्य रविषेणकृत 'पद्मचरित' या 'पद्मपुराण' पौराणिक काव्य का सुन्दर उदाहरण है। इसकी रचना ६७७-७८ ई० में हुई है।

इसमें पद्म (राम) का चरित निबद्ध है। रामायण की असम्भव प्रतीत होने वाली घटनाओं की बौद्धिक व्याख्या यहाँ प्रस्तुत की गयी है।

इसी ग्रन्थ का अध्ययन हमारा विषय है जिसका पूर्ण परिचय आगामी अनेक अध्यायों में दिया जायेगा।

'रामचरित'—यह अभिनन्दकृत माना जाता है। अभिनन्द नवी शताब्दी विक्रमी के मध्यकाल मे ठहरते है। इनके पूर्वज मूलतः गौड़ (बंगाल) देश के निवासी थे। बाद मे वे काश्मीर आकर बस गये थे। इनके पिता का नाम जयन्त भट्ट था।

रामचरित मे ३३ सर्ग है जिनमे रामायण के किष्किन्धाकाण्ड से युद्धकाण्ड तक का कथानक आ जाता है। यह ग्रन्थ अधूरा ही है। पूर्ति के लिए अन्त में चार-चार सर्गो के दो परिशिष्ट है। एक अभिनन्दकृत है और दूसरा किसी भीम नामक कवि के द्वारा रचित है। इस काव्य की शैली शुद्ध वैदर्भी है। ऋतु तथा प्रकृति के वर्णन अत्यन्त सुन्दर है। अभिनन्द का अनुष्टुप्-रचना पर पूर्णाधिकार है।

'दशावतारचरित'—इस पौराणिक चरित काव्य के रचयिता काश्मीरी कवि क्षेमेन्द्र है। ये १०६६ ई० के आसपास विद्यमान थे। ये प्रकाशेन्द्र के पुत्र और साहित्यशास्त्र मे अभिनवगुप्त के शिष्य थे। संस्कृत महाकवियों मे इनकी प्रतिभा अलौकिक थी। तत्कालीन काश्मीरनरेश अनन्त और उनके पुत्र कलश के युग मे निराशा और षड्यन्त्रो का बोलबाला था। क्षेमेन्द्र के पूर्वपुरुष अमात्य होते थे, परन्तु इस कवि ने परिस्थिति को सुधारने के लिए राज्याश्रय को न अपनाकर काव्य का ही सहारा लिया। इन्होंने काव्य के नाना अगों की रचना की है। इन्होने 'व्यासजी' को अपना आदर्श बनाया था। इनकी रचनाओ में 'कलाविलास', 'चतुर्वर्गसग्रह', 'चारुचर्या', 'नीतिकल्पतरु', 'समय-मातृका', 'सेव्यसेवकोपदेश', 'रामायणमजरी' और 'भारतमजरी' आदि उल्लेखनीय है।

दशावतार उनकी अन्तिम रचना है। इसमे विष्णु के दशावतारो का बड़ा ही रोचक तथा विस्तृत वर्णन किया गया है। इसकी भाषा अत्यन्त मधुर, सरल और सुबोध है। अरण्यवास का यह वर्णन कितना सुन्दर है :

"दयितजनवियोगोद्वेगरोगातुराणा
विभवविरहदैन्यम्लानमानाननानाम्।
शमयति शितशल्य हन्त नैराश्यनश्य-
द्भवपरिभवतान्तिः शान्तिरन्ते वनान्ते॥"

'आदिपुराण' और 'उत्तरपुराण'—'जिनसेन स्वामी ने समस्त (तिरसठ)

शलाकापुरुषों का चरित्र लिखने की इच्छा से महापुराण का प्रारंभ किया था परन्तु बीच में ही शरीरान्त हो जाने से उनकी वह इच्छा पूरी न हो सकी और महापुराण अधूरा ही रह गया, जिसे पीछे उनके शिष्य गुणभद्राचार्य ने पूरा किया। महापुराण के दो भाग है—'आदिपुराण' और 'उत्तरपुराण'। आदिपुराण मे प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ या ऋषभदेव का चरित है और 'उत्तरपुराण' मे शेष तेईस तीर्थंकरों और अन्य शलाकापुरुषों का। आदिपुराण में बारह हजार श्लोक और सैतालीस पर्व या अध्याय हैं। इनमे से बयालीस पर्व पूरे और तैंतालीसवें पर्व के तीन श्लोक जिनसेन के और शेष चार पर्वों के सोलह सौ बीस श्लोक उनके शिष्य के है। इस तरह आदिपुराण के १०३८० श्लोकों के कर्त्ता जिनसेन स्वामी है। इनकी प्रशसा मे कहा गया है .

'सकलच्छन्दोऽलंकृतिलक्ष्य सूक्ष्मार्थगूढपदरचनम्।
व्यावर्णनोरुसार साक्षात्कृतसर्वशास्त्रसद्भावम्॥
अपहस्तितान्यकाव्य श्रव्यं व्युत्पन्नमतिभिरादेयम्।
जिनसेनभगवतोक्त मिथ्याकविदर्पदलनमतिललितम्॥

० ० ०

यथा महार्घ्यरत्नाना प्रसूतिर्मकरालयात्।
तथैव सूक्तिरत्नाना प्रभवोऽस्मात्पुराणतः॥
सुदुर्लभ यदन्यत्र चिरादपि सुभाषितम्।
सुलभ स्वैरसग्राह्य तदिहास्ति पदे-पदे॥"

जिनसेन और दशरथ गुरु के शिष्य गुणभद्रस्वामी भी बहुत बडे ग्रन्थकर्त्ता हुए। जैसा कि पहले कहा जा चुका है इन्होंने आदिपुराण के अन्त के १६२० श्लोक रचकर उसे पूरा किया और फिर उसके उत्तरपुराण की रचना की जिसका परिमाण आठ हजार श्लोक है। जिस ढग से महापुराण प्रारम्भ किया गया था और जितना विस्तार उसके प्रथम अश आदिपुराण का है, यदि वही ढग आगे भी अपनाया जाता तो यह ग्रन्थ महाभारत जैसा विशाल होता और भगवज्जिनसेन की इच्छा भी शायद यही थी, परन्तु गुणभद्र ने अतिशय विस्तार के भय से और हीनकाल के अनुरोध से इसे थोडे मे ही समाप्त करना उचित समझा और इस तरह केवल आठ हजार श्लोको मे ही शेष तेईस तीर्थकरो और अन्य महापुरुषो का चरित्र लिख डाला और गुरु के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन किया—

"अतिविस्तरभीरुत्वादवशिष्टं संग्रहीतममलधिया।
गुणभद्रसूरिणेदं प्रहीणकालानुरोधेन॥"[६]

६. उत्तर पुराण, प्र० २०

'उत्तरपुराण' यद्यपि संक्षिप्त है, उसमें कथा भाग की अधिकता है, फिर भी उसमें कवित्व की कमी नहीं है और वह सब तरह से जिनसेन के शिष्य के अनुरूप है।

उक्त प्रमुख पौराणिक काव्यों के अतिरिक्त संस्कृत में द्वितीय जिनसेन का 'हरिवंशपुराण,' 'पार्श्वनाथ चरित,' 'वर्द्धमानपुराण,' 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित,' आदि अनेक पौराणिक काव्य मिलते हैं जिनका पूर्ण परिचय न देकर हमने संकेत ही कर दिया है क्योंकि 'प्रकृतानुसरण' का यही अनुरोध है।

संस्कृत के पौराणिक काव्यों का अनुशीलन करने पर उनकी ये सामान्य विशेषताएँ सामने आती हैं:——

(१) संस्कृत पौराणिक काव्यों में धार्मिकता और काव्यात्मकता का सामंजस्य होता है। एक ओर तो उसमें धर्म के प्रचार की भावना गूढ़ रहती है और दूसरी ओर ऊँची से ऊँची काव्यप्रतिभा का प्रदर्शन। यही कारण है कि पौराणिक काव्यों में वर्णन-प्राचुर्य, निपुणता-प्रकाशन एवं शास्त्रीय विचारधारा का काव्यात्मक अभिव्यंजन रहता है।

(२) संस्कृत पौराणिक काव्यों का प्रारम्भ प्रायः वक्ता और श्रोता के वार्तालाप से होता है। श्रोता अपनी शंकाओं को वक्ता के समक्ष रखता है और वक्ता उसका उत्तर देता हुआ काव्य-कथन करता है।

(३) इन काव्यों का प्रधान रस शान्त होता है और अंग रूप में वीर-शृंगार सर्वाधिक प्रयुक्त होते है। यही कारण है कि युद्ध एवं विलास आदि के बाद पात्रों के वैराग्य का वर्णन होता है। वीर-शृंगार के अतिरिक्त अन्य रसों की भी अंग रूप से पर्याप्त व्यंजना होती है।

(४) इन पौराणिक काव्यों में आधिकारिक कथा के अतिरिक्त प्रासंगिक कथाएँ पर्याप्त रूप में निबद्ध होती हैं। आधिकारिक कथा में किसी अवतार या तीर्थंकर का चरित्र निबद्ध होता है। प्रासंगिक कथाओं को उपाख्यान कहा जाता है। इनसे तत्कालीन सामाजिक स्थिति का पर्याप्त ज्ञान होता है।

(५) इन काव्यों में अलौकिक, अतिप्राकृत तथा अतिमानवीय शक्तियों, कार्यों तथा वस्तुओं का समावेश अवश्य रहता है। यह श्रोताओं की श्रद्धा अर्जन करने का साधन होता है।

(६) इन काव्यों में अपने धर्म की अभिधा और व्यंजना से प्रशंसा एवं परधर्म की गर्हणा होती है। इसीलिए उपदेशात्मक प्रवृत्तियों और सूक्तियों का बाहुल्य रहता है।

(७) प्रायः अनुष्टुप् छन्द का प्रधान रूप में प्रयोग किया जाता है।

(८) कथा-संचालन के लिए 'अथ' और 'ततः' पदों की भरमार रहती है।

(९) कथा-कथन के पूर्व 'अनुक्रमणिका' दी जाती है।

(१०) काव्य के माहात्म्य-कथन तथा अपने धर्मग्रहण के प्रति श्रोता को बद्धपरिकर करने की प्रवृत्ति का इनमें स्पष्ट परिलक्षण होता है।

(११) सृष्टि के विकास, विनाश, वंशोत्पत्ति और वंशावलियों का वर्णन रहता है।

(१२) अनेक स्तुतियों की योजना होती है।

संस्कृत के पौराणिक काव्यों के हिन्दी के पौराणिक काव्यों पर प्रभाव की चर्चा करते समय हमारे सामने 'रामचरितमानस' आता है। इसमें संस्कृत पौराणिक काव्य की समस्त प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं। इसमें काव्यात्मकता और धार्मिकता का सामंजस्य है। जहाँ एक ओर इसमें वैष्णव भक्ति का प्रचार है वहाँ दूसरी ओर काव्यप्रतिभा का प्रदर्शन भी। 'वर्णानामर्थसङ्घानां रसानां छन्दसामपि। मंगलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ' का कथन करने वाले तुलसी की काव्य प्रतिभा अप्रतिम है। इसमें वक्ता और श्रोता की कल्पना है। शिव-पार्वती, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज, काक भुशुण्डि तथा गरुड़ इसके वक्ता श्रोता हैं। इसका प्रधान रस शान्त या भक्ति है, शेष रस अंग रूप में है। इसकी आधिकारिक कथा में अवतार श्रीराम का चरित निबद्ध है, साथ ही समय-समय पर अनेक उपाख्यान भी संक्षिप्ततया निबद्ध है। अलौकिक अतिप्राकृत और अतिमानवीय शक्तियों, घटनाओं तथा कार्यों (समुद्रलंघनादि) का समावेश है। अपने धर्म की प्रशंसा एवं उत्तरकाण्ड के कलियुग वर्णन में परमतों की व्यंजना से निन्दा है। सूक्तियों का प्राचुर्य है। काव्य का माहात्म्य कथन किया गया है। वंशोत्पत्ति, स्तुति आदि की भी योजना है। अन्तर छन्द का है, जो गौण है। हिन्दी मे यह छन्द चलता नहीं, अतः यहाँ चौपाई छन्द है। इससे कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता।

इन सभी विशेषताओं से युक्त हिन्दी में 'मानस' के अतिरिक्त सम्भवतः कोई अन्य काव्य नहीं है। अतः यही कहा जा सकता है कि हिन्दी में पौराणिक काव्य 'मानस' ही है जो समय की माँग थी। समय को देखते हुए आज ऐसे काव्यों की अधिक माँग नहीं रही—अतः वर्तमान काल में पौराणिक काव्य लिखना ही बन्द हो गया है।

द्वितीय अध्याय

आचार्य रविषेण और उनका पद्मपुराण : सामान्य विवेचन

आचार्य रविषेण : परिचय और कृतित्व

तिथि-निर्णय—संस्कृत-कवियों में अंगुलिगण्य ही ऐसे हैं जिन्होंने अपने विषय में कोई ऐतिहासिक विवरण दिया हो। उनमें आंशिक रूप में रविषेण भी अन्यतम है। अपने जन्म-स्थान का यद्यपि इन्होंने कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है, 'पद्म पुराण' ग्रंथ की समाप्ति का इन्होंने अवश्य संकेत कर दिया है जिससे तिथि-विषयक कोई समस्या नहीं उठती।

पद्मपुराण (पद्मचरित) का उपसंहार करते हुए रविषेण ने लिखा है :

"द्विशताभ्यधिके समासहस्रे समतीतेऽर्धचतुर्थवर्षयुक्ते ।
जिनभास्करवर्द्धमानसिद्धे चरितं पद्ममुनेरिदं निबद्धम् ।।"[3]

(अर्थात् जिन समय भगवान् महावीर के निर्वाण होने के १२०३ वर्ष ६ महीने बाद यह पद्ममुनि का चरित्र निबद्ध किया गया।) यदि वीर निर्वाण से ४७० वर्ष बाद विक्रम संवत् प्रारम्भ माना जाय तो इस ग्रंथ की रचना विक्रम संवत् प्रारम्भ ७३३-७३४ अर्थात् ६७७-६७८ ई० में पूर्ण हुई है। यह रचना कवि के जीवन में प्रौढता आने पर ही हुई होगी, अतः कवि का जीवन-काल ६४०-६९० ई० के मध्य का भाग माना जा सकता है।

आचार्य रविषेण का उल्लेख परवर्ती कवियों ने भी किया है। पुन्नाटसंघी

३ पद्मपुराण, भारतीय ज्ञानपीठ, १२३/१८२

आचार्य जिनसेन के 'हरिवंशपुराण' (वि०सं० ८४०) में भी रविषेण के 'पद्मचरित' या 'पद्मपुराण' का संकेत है—

"कृतपद्मोदयोद्योता प्रत्यहं परिवर्तिता।
मूर्तिः काव्यमयी लोके रवेरिव रवेः प्रिया॥"[८]

इसी प्रकार 'कुवलयमाला' (वि० सं० ८३५) में रविषेण के 'पद्मचरित' की चर्चा है:—

"जेहि कए रमणिज्जे वरंग-पउमानचरितवित्थारे।
कहव ण सलाहणिज्जे ते कइणो जडय रविसेणो॥"[९]

स्वयंभू ने भी अपने 'पउमचरिउ' मे रविषेण का नामस्मरण किया है।[१०]

इस प्रकार रविषेण के तिथि-निर्णय की समस्या पूर्ण समाहित है। उसमे किसी ननु-नच का अवकाश नहीं है।

जन्मस्थान—आचार्य रविषेण ने अपने जन्मस्थान का कोई उल्लेख नही किया है। इस विषय मे कई विद्वानो से मेरा विचार-विमर्श हुआ है। किन्तु समस्या ज्यों की त्यों पड़ी रह जाती है। डा० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये अपने ६-२-१९६६ के पत्र में लिखते है :—We do not know definitely anything about the birth place of Ravisena. All that we know about him is only from his own PRASASTI Some later authors also refer to him praising his qualities." इसी प्रकार ३-१२-१९६५ के पत्र में श्री अगरचन्द नाहटा लिखते है :—"रविषेण के जन्म स्थान का कोई पता नही ...।" प० नाथूराम प्रेमी ने इस विषय को यों ही छोड दिया है : "... रविषेण ने न तो अपने किसी सघ या गण-गच्छ का कोई उल्लेख किया है और न स्थानादि की ही कोई चर्चा की है। ... "[११]

यह तो निश्चित है कि शब्द प्रमाण रविषेण के जन्म-स्थान के विषय में (आज तक की खोज के अनुसार) हमे साफ जवाब दे जाता है। अब अनुमान प्रमाण के अतिरिक्त और कोई गति ही नही रह जाती। इस विषय में डा० ज्योति प्रसाद जैन (ज्योति-निकुंज, चारबाग, लखनऊ-४) का ८-२-१९६६ का एक पत्र मुझे मिला है जिसमें उन्होंने लिखा है : "रविषेण ने अपने ग्रन्थ मे किसी स्थल पर भी अपने जन्म स्थान या निवास स्थान का सकेत नही किया है ...। वैसे मेरा

---

८. हरिवंशपुराण १/३४

९. कुवलयमाला—४१

१०. पउमचरिउ, १।२।९ "पुणु रविसेणायरियपसाए।"

११. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० २७३

अनुमान है कि वह दक्षिण भारतीय नही थे, उत्तर में ही, और बहुत करके मध्य भारत में किसी स्थान पर उन्होने इस ग्रन्थ का प्रणयन किया है। यों तो वह दिगम्बराचार्य थे, किसी एक स्थान पर रहते नही थे, भ्रमण ही करते रहते थे, तथापि सम्भावना उनके उत्तर भारतीय होने की ही अधिक है। अपने जिन गुरु आदिक का उन्होंने उल्लेख किया है वे भी उत्तर की ओर के ही प्रतीत होते हैं ··।"

गुरुपरम्परा—रविषेण ने अपनी गुरुपरम्परा का सकेत इस प्रकार दिया है :–

"आसीदिन्द्रगुरोर्दिवाकरयतिः शिष्योऽस्य चार्हन्मुनि-
स्तस्माल्लक्ष्मणसेनसन्मुनिरदः शिष्यो रविस्तु स्मृतः ॥"[१२]

(अर्थात् "इन्द्र गुरु के दिवाकरयति, दिवाकरयति के अर्हन्मुनि, अर्हन्मुनि के लक्ष्मणसेन एव लक्ष्मणसेन का मैं रविषेण शिष्य हूँ।")

यद्यपि रविषेण ने अपने किसी सघ या गण-गच्छ का उल्लेख नही किया है तथापि "सेनान्त नाम से अनुमान होता है कि शायद वे सेनसंघ के हों; किन्तु नामो से सघ का निर्णय सदैव ठीक नही होता। इनकी गुरुपरम्परा के पूरे नाम इन्द्रसेन, दिवाकरसेन, अर्हत्सेन और लक्ष्मणसेन होंगे, ऐसा जान पड़ता है।"[१३]

पारिवारिक जीवन. रविषेण के 'पद्मपुराण' को देखने के अनन्तर उनके पारिवारिक जीवन के विषय मे कुछ अनुमान निकलते है। उनके माता-पिता का यद्यपि कोई उल्लेख नही मिलता तथापि यह अवश्य प्रतीत होता है कि रविषेण दीक्षा लेने से पहले अच्छा विलासी जीवन व्यतीत करते होंगे, शृगार का खेल उन्होने खूब खेला होगा। पवनजय-सम्भोग तथा शृंगार के अन्य यथार्थ वर्णन ऐसा कुछ आभास देते है। प्रतीत होता है कि यौवन में ही इन्हे स्त्री-विरह सहन करना पड़ गया था जिसके कारण इन्होंने विरक्त होकर दीक्षा धारण की है। निम्न-लिखित उक्तियाँ कवि की उक्त अनुभूति की परिचायक सी लगती है —

"गृहमेतत्तया शून्य वन मे प्रतिभासते।
आकाशमेव क्षिप्त वा तस्या वार्ताधिगम्यताम् ॥"[१४]

"रतिं न लभते क्वापि रहितः प्रियया तया।
शुष्यत्यहनि रात्रौ च पतितोऽग्नाविवोरगः ॥"[१५]

---

१२ पद्म० १२३।१६८
१३ प० नाथूराम प्रेमी "जैन साहित्य और इतिहास" पृ० २७३
१४ पद्म० १८।१३
१५. 'पद्मपुराण' २६।३१

"अरण्यमपि रम्यत्वं याति कान्तासमागमे।
कान्तावियोगदग्धस्य सर्वं विन्ध्यवनायते ॥"[१६]

धार्मिक विचार : यों 'पद्मपुराण' में कई स्थानों पर 'शिव' सम्बन्धी उपमा अथवा अन्य रूप में 'शिव' का उल्लेख है यथा : 'कृतमीश्वर-मार्गणै:', 'त्रिपुरस्य जिगीषुताम्,' 'गौर्यश्च विभवाश्रया:' और 'पिनाकिवत्' आदि, किन्तु इस आधार पर दीक्षा लेने से पूर्व उन्हें 'शैव' सिद्ध करना उचित नहीं है। ये उपमाएँ तो कवित्व के कारण हैं अथवा जैनधर्म ग्रन्थों की आकर्षकता सिद्ध करने के लिए ही इनका प्रयोग किया गया होगा। वैसे रविषेण कट्टर जैन थे। स्थान-स्थान पर उन्होंने वैदिक ऋषियों, वैदिक ग्रन्थों, ब्राह्मणों तथा वैदिक धर्म का खुलकर खण्डन किया है।[१७] उन्होंने सैकड़ों स्थलों पर जैनधर्म का अभिधावृत्ति से प्रचार किया है यथा :—

"सिद्धाः सिद्ध्यन्ति सेत्स्यन्ति कालेऽन्तपरिवर्जिते।
जिनदृष्टेन धर्मेण नैवान्येन कथचन ॥"[१८]

एकादश-पर्व मे तो वैदिक-धर्म का शास्त्रार्थ की रीति से खुला खण्डन किया किया गया है तथा 'यज्ञदीक्षारूपपातक' की धज्जियाँ उड़ायी गयी है। चतुर्दश पर्व मे इस कट्टरपन्थी की पराकाष्ठा ही हो गई है, जहाँ कि ऐसे-ऐसे श्लोक धड़ल्ले से साथ लिखे गये है :—

"पशुभूम्यादिकं दत्तं जिनानुद्दिश्य भावतः।
ददाति परमान् भोगानत्यन्तचिरकालगान् ॥"

इसी प्रकार आगे वे देवताओं की निन्दा करते हुए तथा धर्म को व्यापार की उपमा देते हुए अधिक लाभकारी जैनधर्म का ही स्वीकरण कराने के प्रति अपना अभिनिवेश प्रस्तुत करते हैं :—

"वीतरागान् समस्तज्ञानतो ध्यात्वा जिनेश्वरान्।
दान यद्दीयते तस्य कः शक्तो भाषितुं फलम् ?
आयुधग्रहणादन्ये देवा द्वेषसमन्विताः।
रागिणः कामिनीसगाद् भूषणाना च धारणात् ॥
रागद्वेषानुमेयश्च तेषां मोहोऽपि विद्यते।
तयोर्हि कारणं मोहो दोषाः शेषास्तु तन्मयाः ॥

१६. वही, ४६।९९

१७. इस विषय पर हम 'भावपक्ष' के अन्तर्गत 'विचारतत्त्व' शीर्षक में विस्तृत विचार करेंगे।

१८. "पद्म०' ३१।१२

मनुष्या एव ये केचिद्देवा भोजनभाजनम् ।
कषायतनवः काले देशकामादिसेविनः ॥
एवंविधाः कथं देवा दानगोचरता गताः ।
अधमा यदि वा तुल्याः फलं कुर्युर्मनोहरम् ॥
दृष्टोऽपि तावदेतेषां विपाकः शुभकर्मणः ।
कुत एव शिवस्थानसम्प्राप्तिर्दुःखितात्मनाम् ॥
तदेतत्सिकतामुष्टिपीडनात्तैलवाञ्छितम् ।
विनाशनं च तृष्णाया सेवनादाशुशुक्षण ॥
पशुना नीयते पशुर्यदि देशान्तरं ततः ।
एतेभ्य. क्लिश्यतो जन्तोर्देवेभ्यो जायते फलम् ॥
एषा तावदियं वार्ता देवाना पापकर्मणाम् ।
तद्भक्ताना तु दूरेण सत्पात्रत्व न युज्यते ॥
लोभेन चोदितः पापो जनो यज्ञे प्रवर्तते ।
कुर्वंतो हि तथा लोको धन नहि प्रयच्छति ॥
तस्मादुद्दिश्य यद्दानं दीयते जिनपुंगवम् ।
सर्वदोषविनिर्मुक्त तद्ददाति फलं महत् ॥
वाणिज्यसदृशो धर्मस्तत्राप्वेग्यात्पभूरिता ।
बहुना हि परभूनि. क्रियतेऽल्पस्य वस्तुनः ॥
यथा विषकण. प्राप्तः सरसी नैव दुष्यति ।
जिनधर्मोद्यतस्यैव हिंसालेशो वृथोद्भव. ॥
प्रासादादि नत कार्यं जिनाना भक्तितत्परैः ।
माल्यधूपप्रदीपादि सर्वं च कुशलैर्जनैः ॥
स्वर्गे मनुष्यलोके च भोगानत्यन्तमुत्तमान् ।
जन्तव. प्रतिपद्यन्ते जिनानुद्दिश्य दानतः ॥
तन्मार्गप्रस्थिताना च दत्त दान यथोचितम् ।
करोति विपुलान् भोगान् गुणानामिति भाजनम् ॥
यथाशक्ति ततो भक्त्या सम्यग्दृष्टिसु यच्छतः ।
दानं तदेकमात्रास्ति शेषं चोरैर्विलुण्ठितम् ॥"[१९]

ऐसे कितने ही स्थल है जहाँ यथावस्थित रूप मे जैन धर्म की ग्राह्यता का निर्द्वन्द्व उद्घोषण किया गया है, वहाँ कि 'स्वोत्कर्ष' एव 'परगर्हण' का यथेच्छ

१९. 'पद्मपुराण' १४।७८-९६

उपयोग किया गया है जिनसे रविषेण की 'कट्टरजैनिता' स्पष्ट सिद्ध हो जाती है।

रविषेण का लोकशास्त्रकाव्यावेक्षण बड़ा विशाल था। वे बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति थे। उनके काव्य को देखकर ऐसे कथन अक्षरशः अन्वर्थ प्रतीत होते हैं—

"न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
जायते यन्न काव्यांगमहो भारो महान् कवेः॥"

न जाने कितना समय रविषेण ने लोक, शास्त्र एवं काव्य के सूक्ष्म निरीक्षण के लिए दिया होगा।

समाज के व्यापारों, पाखण्डों, उपद्रवों, व्यवसायों तथा लोक-व्यवहारों का सांगोपांग ज्ञान रविषेण को प्राप्त था, जिनका आभास 'पद्मपुराण' को देखने से हो जाता है। मन्दिरों की बनावट के वर्णन, गर्भिणी की अवस्था का यथार्थ वर्णन, कलह-झगड़ों के वर्णन, नगरों के वर्णन तथा वृद्धावस्था आदि के यथार्थ वर्णनों से तो ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे कवि ने उन सभी चीजों को पास से देखा हो। वृद्धावस्थाजन्य श्वेतिमा, मुँह की खकार, दन्तस्थानीय लृतुलस वर्णों का लोप आदि का वर्णन उदाहरणार्थ प्रस्तुत है :—

"सखत्कार मुहुः कुर्वन् स्फुरयन्नधरौ मुहुः।
हृदय सस्पृशन् कृच्छ्रादुपनीतेन पाणिना॥
पश्चान्मस्तकभागस्थश्चन्द्रांशुस्थितमूर्द्धजः।
मन्दवाताहतश्वेत — चामरोगमकूर्चकः॥
मक्षिकाच्छदनच्छानत्वक्तिरोहितकैकसः।
धवलभ्रूवलिच्छन्नशोणप्रभ — निरीक्षण.॥
० ० ०
दन्तस्थानभवा वर्णाश्चिर क्वापि गता मम।
ऊष्मवर्णोष्मणा तापमशक्ता इव सेवितुम्॥"[२०]

नारियों के भावालाप वर्णन करने में, तरुण को देखकर विह्वल होकर उनके भागने, झपटने एवं उत्सवों या विजय-यात्राओं पर राजाओं के स्वागत आदि का वर्णन करने में तो कवि ने कमाल ही कर दिया है। प्रतीत होता है कि कवि ने अन्तःपुरों में घुस-घुसकर विह्वल नारियों की उक्तियाँ सुनी थीं। इस प्रकार रविषेण ने लोक को पर्याप्त मनोयोग से देखा था।

रविषेण का शास्त्रज्ञान भी गहन है। जैन तथा जैनेतर धर्मशास्त्र, कामशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, शकुनशास्त्र, युद्ध-शास्त्र, कलाशास्त्र, संगीतशास्त्र, ज्योतिष

---

२०. 'पद्मपुराण', २९।६४-६७

शास्त्र, व्याकरणशास्त्र, अलंकारशास्त्र तथा अन्य खड्गतुरगादिशास्त्रों का पुष्कल ज्ञान रविषेण ने अधिगत किया था। चाणक्य के 'अर्थशास्त्र' का भी उन्होंने मनोयोग से अध्ययन किया था। दूतप्रेषण, मन्त्रयुद्ध, व्यूहरचना, राजनीति आदि सम्बन्धी पद्मपुराण के वर्णन इसके प्रमाण हैं। वेद गीता और मनुस्मृति का रविषेण ने अच्छी तरह अध्ययन किया था, ऐसा अन्तःसाक्ष्य के आधार पर सिद्ध होता है। श्रौत सूत्रों एवं वैदिक कर्मकाण्ड का भी उन्हें ज्ञान प्राप्त था। कुछ तुलनात्मक पद्यों से इस तथ्य की पुष्टि होती है :—

१—"सर्वं पुरुष एवेदं यद्भूतं यद्भविष्यति।
ईशानो योऽमृतत्वस्य यदन्नेनातिरोहति॥" (पद्म० ११।९०)

तुल०—"पुरुष एवेद सर्व यदमूत यच्च भाव्यम्"। (पुरुषसूक्त)

२—'प्राणिनो ग्रन्थसंगेन रागद्वेषसमुद्भवः।
रागात्सजायते कामो द्वेषाज्जन्तुविनाशनम्॥
कामक्रोधाभिभूतस्य मोहेनाक्रम्यते मनः।
कृत्याकृत्येषु मूढस्य मतिर्न स्याद्विवेकिनी॥" (पद्म० ११।१३६-३७)

तुल०—"ध्यायतो विषयान्पुंसः सगस्तेषूपजायते।
सगात्सजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्र शाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति॥" (गीता)

३—"मुखादिसम्भवश्चापि ब्रह्मणो योऽभिधीयते।
निर्हेतुः स्वगेहेऽसौ शोभने भाषमाणक.॥" (पद्म० ११।१९९)

तुल०—"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" (पुरुषसूक्त)

४—"विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिता स. समदर्शिनः॥" (पद्म० ११।२०४)

तुल०—"विद्या-विनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥ (गीता)

५—"चातुर्वर्ण्यं यथान्यच्च चाण्डालादिविशेषणम्।
सर्वमाचारभेदेन प्रसिद्धि भुवने गतम्॥" (पद्म० ११।२०५)

तुल०—'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।" (गीता ४।१३)

६—"राजान हन्त्यसौ सोम वीर वा नाकवासिनाम्।
सोमेन यो यजेत्तस्य दक्षिणा द्वादश स्मृतम्॥" (पद्म० ११।२११)

तुल०—'सोमोऽस्माक ब्राह्मणानां राजा' (श्रुति)
गवां शतं द्वादश चातिक्रामति' (कात्यायन श्रौतसूत्र १०।२।१०)

७—"मानापमानयोस्तुल्यस्तथा यः सुखदुःखयोः।
तृणाकांचनयोश्चैव साधु पात्रं प्रशस्यते ॥" (पद्म० १४।५७)

तुल०—"समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः ॥" (गीता १२।१८)

८—"यद्यप्यूर्ध्वं तपःशक्त्या व्रजेयुः परलिंगिनः।
तथापि किंकरा भूत्वा ते देवान् समुपासते ॥
देवदुर्गतिदुःखानि प्राप्य कर्मवशात्ततः।
स्वर्गच्युताः पुनस्तिर्यग्योनिमायान्ति दुःखिनः ॥" (पद्म० ४।४३-४४)

तुल०—"ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ॥ (गीता ९।२१)

९—"जातस्य नियतो मृत्युस्ततो गर्भस्थितिः पुनः ॥" (पद्म० ३०।११५)

तुल०—"जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।" (गीता २।२७)

१०—"आचाराणां विघातेन कुदृष्टीनां च सम्पदा।
धर्मं ग्लानिपरिप्राप्तमुच्छ्रयन्ते जिनोत्तमाः ॥" (पद्म० ५।२०६)

तल०—'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥" (गीता ४।७)

११—"मया जन्मानि भूरीणि परिप्राप्तानि यानि तु।
वेद्म्येकमपि नो तेषां तत्सर्वं विदितं त्वया ॥
तान्यहं ज्ञातुमिच्छामि भगवन्नुच्यतामिति।
भवत्प्रसादतो मोहं निराकर्तुं महं भजे ॥" (पद्म० ३१।५-६)

तुल०—"बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।" (गीता ४।५)
"वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः।" (गीता १०।१६)
"नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।" (गीता १८।७३)

१२—"नरास्ते दयिते श्लाघ्या ये गता रणमस्तकम्।
त्यजन्त्यभिमुखा जीवं शत्रूणां लब्धकीर्तयः ॥" (पद्म० ५७।२१)

तुल०—"यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्।" (गीता २।३२)

१३—"एकाग्रध्यानसम्पन्नो नासाग्रस्थितलोचनः।" (पद्म० ६९।१०)

तुल०—"तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥" (गीता ६।१२-१३)

उपयुक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि रविषेणको जैन एवं जैनेतर शास्त्रों तथा ग्रन्थों का भी पर्याप्त ज्ञान था। इसी प्रकार 'पवनंजय-अंजना' के सम्भोग तथा

अन्य अनेक वर्णनों से उनकी कामशास्त्रज्ञता का स्पष्ट प्रतिभान होता है। राजाओं की दिनचर्या तथा पात्रों के विविध राजनीतिक व्यापारों से उनकी राजनीति-शास्त्र-निपुणता, विविध अवसरों पर शकुनों के संकेत से शकुनशास्त्र-पारंगतता, युद्धप्रक्रियाओं से युद्धलाघवपरिचिति, केकया की कलाओं के वर्णन से विशाल कला-ज्ञान-धारिता, गन्धर्व के ज्योतिष-विषयक वार्तालाप से ज्योतिषशास्त्र-पारावारीणता, अतिवीर्य की सभा में नर्तकीवेशधारी राम के वर्णन से नृत्यकलाविशारदता, आलंकारिक वर्णनों से अलंकारशास्त्रवशीकारकता तथा अन्यान्य वर्णनों से उनके अन्य अनेक प्रकार के ज्ञानों का परिचय होता है। न जाने कितनी विद्याओं शास्त्रों तथा कलादिक का ज्ञान उन्हें प्राप्त था। संगीत की बारीकियों के ज्ञान का दिङ्मात्र उदाहरण प्रस्तुत है :—

"तयोर्घनं कृतं वाद्यं सुषिरं च कृतं ततम्।
परिवर्गेण गम्भीरकरतालक्रमोचितम् ॥
पाणिघैरेकतानेन मन्द्रध्वनिममन्वितम्।
तथा वैणविकैर्बाढं प्रवीणैर्भ्रूविलासिभिः ॥
प्रवीणाभः प्रवालाभा वीणा चारूपमानिकाम्।
कोणेनाताडयद्यक्षो गन्धर्वः काकलीबुधः ॥
मध्यमर्षभगान्धारषड्जपञ्चमधैवतान्।
निषादसप्तमाश्चक्रे स स्वरान्क्रममत्यजन् ॥
भेजे वृत्तीर्यथास्थानं द्रुतमध्यविलम्बिना।
एकविंशतिसंख्याश्च मूर्च्छना नर्तितेक्षणा ॥
हाहाहूहूसमानं स गानं चक्रेऽथवाधिकम्।
प्रायो गन्धर्वदेवानां प्रसिद्धिमिदमागतम् ॥"[२१]

उनकी शास्त्रज्ञता का असली पता तो हमें तब लगता है जब हम २४ वें पर्व के २८ श्लोकों में कैकेया की कलाओं का विस्तृत वर्णन पढ़ते हैं।

रविषेण ने अपने पूर्ववर्ती कवियों के ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया था— ऐसा उनके 'पद्मपुराण' को देखकर प्रतीत होता है। आदि कवि वाल्मीकि की 'रामायण' का तो 'पद्मपुराण' पर पर्याप्त प्रभाव है ही, साथ ही 'महाभारत,' 'पञ्चतन्त्र' तथा अनेक कवियों की रचनाओं का भी उस पर प्रचुर प्रभाव पड़ा है। कविकुलगुरु कालिदास और कथाकाव्य-पञ्चानन बाण की लेखन-सरणि का तो उन्होंने अनेक स्थलों पर अनुसरण किया है। कालिदास की सी उपमाएँ

२१. "पद्म०,' १७।२७४-२७९

रविषेण की वशंवद सी है। बाण के से नगर-वन-नदी-प्रासाद-नारी-भावालापादि के वर्णन उनसे मोह सा किये हुए हैं, भारवि आदि अन्य अनेक कवियो की चमत्कार-वादिता कट्टर जैनी रविषेण को अनेक स्थलो पर अभिभूत कर चुकी है। अधिक विस्तृत उदाहरण न देकर कुछ तुलनात्मक सकेत ही प्रस्तुत किये जाते हैं—

कालिदास

१—"भास्वता भासितानर्थान् सुखेनालोकते जनः।
सूचीमुखविनिर्भिन्नं मणि विशति सूत्रकम् ॥" (पद्म० १।२०)

तुल०—"अथवा कृतवाग्द्वारे वंशेऽस्मिन् पूर्वसूरिभिः।
मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः॥" (रघुवंश १।४)

२—"विपुलं शिखरे चैक धरण्या दशसंगुणम्।
राजते तिर्यगाकाश मातु दण्ड इवोच्छ्रित.॥ (पद्म० ३।३६)

तुल०—"अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधीवगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः॥"
(कुमार सम्भव १।१)

३—"क्षतत्राणे नियुक्ता ये तेन नाथेन मानवाः।
क्षत्रिया इति ते लोके प्रसिद्धि गुणतो गताः॥" (पद्म० ३।२५६)

तुला०—"क्षतात्किल त्रायत इत्युदग्र क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढ़.।"
(रघु० २।५३)

४—"नराश्चन्द्रमुखा शूरा सिंहोरस्का महाभुजा.।" (पद्म० ३।३३६)

तुल०—"व्यूढोरस्को वृषस्कन्ध शालप्रांशुर्महाभुजः।" (रघु० १।१३)

५—"प्राणा धर्मस्य हेतवः।" (पद्म पुराण, ४।६७)

"भगवन्नपि ते देहे कुशल कुशलाशय।
मूलमेव हि सर्वेषा साधनाना सुवेष्टित॥" (पद्म० १७।२६)

तुल०—"शरीरमाद्य खलु धर्मसाधनम्।" (कुमार० ५।३३)

६—"अथ स्वयवराशानां प्रवृत्ता व्योमचारिणाम्।
मदनाश्लिष्टचित्तानामिति सुन्दरविभ्रमा.॥
निष्कम्पमपि मूर्द्धस्थ मुकुट कश्चिदुन्नतम्।
अकरोत् किल निष्कम्पं रत्नांशुच्छन्नपाणिना॥
कश्चित् कूर्परमादाय कटिपार्श्वे सजृम्भण.।
चक्रे देहस्य वलनं स्फुटत्सन्धिकृतस्वनम्॥

प्रदेशोऽपि स्थितां कश्चिदुज्ज्वलामसिपुत्रिकाम् ।
असारयत् कराग्रेण कटाक्षकृतवीक्षणाम् ॥
पार्श्वगे पुरुषे कश्चिच्चलयत्येव चामरम् ।
सलीलमंशुकान्तेन चक्रे वीजनमानने ॥

० ० ०

पादांगुष्ठेन कश्चिच्च नेत्रान्तेक्षितकन्यकः ।
कृत्वा पाणितले गण्डं लिलेख चरणासनम् ॥
गाढमप्यपरो बद्धमुन्मुच्य कटिसूत्रकम् ।
बबन्ध शनकैर्भूयः शेषाणमिव चक्रकम् ॥

० ० ०

पार्श्वस्थस्यापरो हस्त सख्युरास्फाल्य सस्मितम् ।
कथां चक्रे विना हेतो. कन्याक्षिप्तचलेक्षणः ॥
अपरोऽभ्रमयत् पद्मं बद्धभ्रमरमण्डलम् ।
सव्येतरेण हस्तेन विसर्पन् कणिकारजः ॥"[२२]

(पद्म० ६।३६४-३७८)

तुल०—"ता प्रत्यभिव्यक्तमनोरथाना महीपतीना प्रणयाग्रदूत्य. ।
प्रवालशोभा इव पादपानां शृगारचेष्टा विविधा बभूवु ॥
कश्चित्कराभ्यामुपगूढनालमालोलपत्राभिहतद्विरेफम् ।
रजोभिरन्त. परिवेषबन्धि लीलारविन्द भ्रमयांचकार ॥
विस्रस्तमसादपरो विलासी रत्नानुविद्धागदकोटिलग्नम् ।
प्रालम्बमुत्कृष्य यथावकाश निनाय साचीकृतचारुवक्त्र ॥
आकुचिताग्रागुलिना ततोऽन्यः किंचित्समावर्जितनेत्रशोभ ।
तिर्यग्विसर्पिनखप्रभेण पादेन हैम विलिलेख पीठम् ॥
निवेश्य वाम भुजमासनार्धे तत्संनिवेशादधिकोन्नताम ।
कश्चिद्विवृत्तत्रिकभिन्नहारः सुहृत्समाभाषणतत्परोऽ भूत् ॥
विलासिनीविभ्रमदन्तपत्रमापाण्डुरं केतकबर्हमन्यः ।
प्रियानितम्बोचितसंनिवेशैर्विपाटयामास युवा नखाग्रैः ॥
कुशेशयाताम्रतलेन कश्चित्करेण रेखाध्वजलाछनेन ।
रत्नाङ्गुलीयप्रभयानुविद्धानुदीरयामास सलीलमक्षाम् ॥

२२. स्वयम्वर मे स्थित राजाओ की चेष्टाओ, सखी द्वारा उनके परिचय, स्वयम्वरोत्तर वर-वधू की सहृदयो के द्वारा प्रशसा तथा सफल राजा के साथ अन्य राजाओ के युद्ध की तुलना के लिये देखिये—(पद्म०, ६।३५९-४२३) तथा रघु० (६।१२-८६)

कश्चिद्यथाभागमवस्थितेऽपि स्वसंनिवेशाद्व्यतिलंघिनीव ।
वज्रांशुगर्भाङ्गुलिरन्ध्रमेकं व्यापारयामास करं किरीटे ।।

(रघु०, ६।१२-१६)

७—"सत्यमन्येऽपि विद्यन्ते नाममात्रेण खेचराः ।
तेषां खद्योततुल्यानामयं भास्करतां गतः ।।

(पद्म० ६।३६८)

तुल०—"कामं नृपाः सन्तु सहस्रशोऽन्ये राजन्वतीमाहुरनेन भूमिम् ।"

(रघु०, ६।२२)

८—"ततोऽसौ चन्द्रलेखेव व्यतीता यान्नभश्चरान् ।
पर्वता इव ते प्राप्ता श्यामतां लोकवाहिनः ।।" (पद्म० ६।४२३)

तुल०—"सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा ।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः ।।"

(रघु० ६।६७)

६—"व्रजन्ती व्रज्यया युक्ते तिष्ठन्ती स्थितिमागते ।
छायेव साऽभवत् पत्यावनुवर्तनकारिणी ।।" (पद्म० ७।१७०)

तुल०—"स्थितः स्थितामुच्चलितः प्रयातां निषेदुषीमासनबन्धधीरः ।
जलाभिलाषी जलमाददानां छायेव ता भूपतिरन्वगच्छत् ।।"

(रघु० २।६)

१०—अनंगविषया सृष्टिमपूर्वामिव कर्मणा ।
आहृत्य जगतोऽशेषलावण्यमिव निर्मिताम् ।।" (पद्म० ८।६८)

तुल०—"चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्वयोगा रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृता नु ।
स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः ।।

(अभिज्ञान० २।६)

११—"कन्या नाम प्रभो देया परस्मायेव निश्चयात् ।" (पद्म० ६।३२)

तुल०—"अर्थो हि कन्या परकीय एव ।" (अभिज्ञान० ४।२२)

१२ —"अयमेव महाबंधुः सर्वेषां प्राणिनामभूत् ।" (पद्म० ११।३५४)

तुल०—"त्वयि तु परिसमाप्त बन्धुकृत्य जनानाम् ।।" (अभिज्ञान० ५।८)

१३—"कीर्तयन्त्यां गुणानेव तस्य सख्या सुमानसा ।
लिलेख लज्जयांगुल्या कन्याधिनखमानता ।।" (पद्म०, १५।१५२)

तुल०—"एवं वादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी ।
लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती ।।" (कुमार०, ६।८६)

१४—"नेत्रे निमील्य सोढव्यं कर्म पाकमुपागतम् ।"

तुल०—"शेषान्मासान् गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा।" (उत्तरमेघ, ५३)

१५—"अवस्थितं जगद्व्याप्य नु देदर्के. कथं तमः।
सव्येष्टा चेद्भवेदस्य न मूर्तिररुणात्मिका।।" (पद्म० २४।१२८)

तुल०—"किं वाऽ भविष्यदरुणस्तमसां विभेत्ता
त चेत्सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत्।।" (अभिज्ञान०, ७।४)

१६—"अधत्त य. पुरा शक्ति रिपुदारणकारिणीम्।
करेण यष्टिमालम्ब्य तेन भ्राम्यामि साम्प्रतम्।।" (पद्म०, २६।५६)

तुल०—आचार इत्यधिकृतेन मया गृहीता या वेत्रयष्टिरवरोधपुरेषु राज्ञः।
काले गते बहुतिथे मम सैव जाता प्रस्थानविक्लवगतेरलम्बनार्था।।"
(अभिज्ञान०, ५।३)

१७—"भद्रं किं किमय स्वप्न. स्याज्जाग्रत्प्रत्योऽथवा।" (पद्म० ३०।१५०)

तुल०—"स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो नु?" (अभिज्ञान० ६।१०)

१८—"धन्या पुण्यवती सुस्त्री यया नेऽगानि शैशवे।
क्रीडना धूसराण्यके निहितानि सुचुम्बितम्।।" (पद्म० ३०।१६१)

तुल०—"आलक्ष्यदन्तमुकुलाननिमित्तहासै-
रव्यक्तवर्णरमणीयवच.प्रवृत्तीन्।
अकाश्रयप्रणयिनस्तनयान् वहन्तो
धन्यास्तदगरजसा मलिनीभवन्ति।।" (अभिज्ञान० ७।१७)

१९—"केशभार मयूरीषु तस्याः पश्यामि सुन्दरम्।
अर्धाप्तशशाके च लक्ष्मीमलिकसम्भवाम्।।
त्रिवर्णाम्भोजखण्डेषु श्रिय लोचनगोचराम्।
शोणपल्लवमध्यस्थसितपुष्पे स्मितत्विषम्।।
स्तबकेषु सुजातेषु कान्तिमत्सु स्तनश्रियम्।
जिनस्नपनवेदीना शोभा मध्येषु मध्यमाम्।।
तासामेवोर्ध्वभागेषु नितम्बभरताकृतिम्।
ऊरुशोभा सुजातासु कदलीस्तम्भिकासु ताम्।।
पद्मेषु चरणाभिख्या स्थलसम्प्राप्तजन्मसु।
शोभा तु समुदायस्य तस्या. पश्यामि न क्वचित्।।" (पद्म०४८।१४-१८)

तुल०—"श्यामास्वङ्ग चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपात
वक्त्रच्छाया शशिनि शिखिना बर्हभारेषु केशान्।
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्
हन्तैकस्मिन्क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति।।" (उत्तर मेघ, ४६)

२०—"घटस्तनविमुक्तेन पुत्रस्नेहान्निरन्तरम् ।
पयसा पोषिता. स्त्रीभिर्वृक्षका ध्वसमाहृता: ॥" (पद्म० ५३।२२६)

तुल०—"यो हेमकुम्भस्तननि:सृताना स्कन्दस्य मातु: पयसां रसज्ञ: ॥"
(रघु० २।३६)

"अतन्द्रिता सा स्वयमेव वृक्षकान् घटस्तनप्रस्रवणैर्व्यवर्धयत् ।
गुहोऽपि येषा प्रथमाप्तजन्मनां न पुत्रवात्सल्यमपाकरिष्यति ॥"
(कुमार० ५।१४)

२१—"शयनीयगतै. पुष्पैर्या स्वकेशच्युतैरपि ।
अग्रहीत् खेदमेवासौ स्थण्डिलेऽशेत केवले ॥" (पद्म० ६४।८०)

तुल०—"महार्हशय्यापरिवर्तनच्युतै: स्वकेशपुष्पैरपि या स्म दूयते ।
अशेत सा बाहुलतोपधायिनी निषेदुषी स्थण्डिल एव केवले ॥"
(कुमार० ५।१२)

२२—"भास्करेण विना का द्यौ: क्व निशा शशिना विना ?" (पद्म० ६६।६५)

तुल०—'शशिना सह याति कौमुदी सह मेघेन तडित्प्रलीयते ।" (कुमार० ४।३३)

२३—"गम्भीर भुवनाख्यानमुदार लवण गता ।
मन्दाकिनी यदेत हि नापूर्ण कृतमेनया ॥
० ० ०
इति तत्र विनिश्चेरु. मज्जनाना गिर: परा ॥" (पद्म० ११०।२२-२५)

तुल०—"शशिनमुपगतेय कौमुदी मेघमुक्त
जलनिधिमनुरूप जह्नुकन्यावतीर्णा ।
इति समगुणयोगप्रीतयस्तत्र पौरा:
श्रवणकटु नृपाणामेकवाक्य विवव्रु ॥"
(रघु०, ६।६८)

२४—"दुस्त्यजानि दुरापानि काममौख्यान्यवारितम् ।" (पद्म० १११।५)

तुल०—"न च खलु परिभोक्तु नैव शक्नोमि हातुम् ।" (अभिज्ञान० ५।१२)

इसके अतिरिक्त विमान से अयोध्या लौटने के समय राम का सीता को विविध प्रदेशों का अवलोकन कराना तथा हनूमान् का मेरुपर्वत की ओर जाते हुए अपनी स्त्रियों को विविध दृश्य दिखाना आदि भी रघुवश के त्रयोदश सर्ग से पर्याप्त प्रभावित है जिसका वास्तविक अनुभव मूलग्रन्थ पढ़कर ही हो सकता है।

बाण : जहाँ एक ओर सस्कृत-कविता-कामिनी के विलास कविकुलगुरु कालिदास का रविषेण पर प्रभूत प्रभाव है वहाँ सस्कृत-गद्य के सम्राट् बाण की

भी रविषेण पर गहरी मुद्रा है। विन्ध्याटवी तथा नारियों के भावालापों पर तो 'हर्षचरित' तथा 'कादम्बरी' की ही गहरी छाप दिखाई देती है। नगरादि के वर्णन में भी रविषेण बाण से पर्याप्त प्रभावित हैं। कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं—

१—"अथ जम्बूमति द्वीपे क्षेत्रे भरतनामनि।
मगधाभिख्यया ख्यातो विषयोऽस्ति समुज्ज्वलः॥
निवासः पूर्णपुण्यानां वासवावाससन्निभः।
व्यवहारैरसंकीर्णैः कृतलोकव्यवस्थितिः॥
क्षेत्राणि दधते यस्मिन्नुत्खातान् लांगलाननैः।
स्थलाब्जमूलसघातान् महीसारगुणानिव॥
क्षीरसेकादिवोद्भूतैर्मन्दानिलचलद्दलैः।
पुण्ड्रेक्षुवाटसन्तानैर्व्याप्तानन्तरभूतलः॥
अपूर्वपर्वताकारैर्विभक्तः खलधामभिः।
सस्यकूटैः सुविन्यस्तैः सीमान्ता यस्य संकटाः॥
उद्घाटकघटीमिक्तैर्यत्र जीरकजूटकैः।
नितान्तहरितैरुर्वी जटालेव विराजते॥
उर्वराया वरीयोभिः यः शालेयैरलंकृतः।
मुद्गकोशीपुटैर्यस्मिन्नुद्देशाः कपिलत्विषः॥
तापस्फुटितकोशीकैं राजमाषैर्निरन्तरा।
उद्देशा यत्र किर्मीरा निक्षेत्रियतृणोद्गमाः॥
अधिष्ठितः स्थलीपृष्ठैः श्रेष्ठगोधूमधामभिः।
प्रशस्यैरन्यशस्यैश्च युक्तः प्रत्यूहवर्जितैः॥
महामहिषपृष्ठस्थगायद्गोपालपालितैः।
कीटातिलम्पटोद्ग्रीवबलाकानुगतव्वभिः॥
विवर्णसूत्रसबन्धघण्टारटितहारिभिः।
क्षरद्भिरजरस्त्रासात् पीतक्षीरोदवत्पयः॥
सुस्वादुरससम्पन्नैर्बाण्पच्छेदैरनन्तरैः।
तृणैस्तृप्ति परिप्राप्तैर्गोधनैः सितकक्षपूः॥
सारीकृतसमुद्देशः कृष्णसारैर्विसारिभिः।
सहस्रसंख्यैर्गीर्वाणस्वामिनो लोचनैरिव॥
केतकीधूलिधवलाः यस्य देशाः समुन्नताः।
गंगापुलिनसकाशा विभान्ति जनसेविताः॥

शाककन्दलवाटेन श्यामलः ध्रीघरः क्वचित् ।
वनपालकृतास्वादैर्नालिकेरैर्विराजित. ॥
कोटिभिः शुकचंचूनां तथा शाखामृगाननैः ।
सदिग्धकुसुमैर्युक्तः पृथुभिर्दाडिमीवनैः ॥
वत्सपालीकराघृष्टमातुलिंगीफलाम्भसा ।
लिप्ताः कुंकुमपुष्पाणा प्रकरैरुपशोभिताः ॥
फलस्वादपयःपानसुखससुप्तमार्गगाः ।
वनदेवीप्रपाकाराः द्राक्षाणां यत्र मडपा ॥
विलुप्यमानैः पथिकैः पिण्डखर्जूरपादपैः ।
कपिभिश्च कृताच्छोटैर्मोचानां निचित· फलै ॥
तुगार्जुनवनाकीर्णनटदेशैर्महोदरैः ।
गोकुलाकलितोदारस्वरवत्कूलधारिभिः ॥
विस्फुरच्छफरीनालैर्विकसल्लोचनैरिव ।
हसद्भिरिव शुक्लानां पंकजानां कदम्बकैः ॥
तुगैस्तरगसंघातैर्नर्तनप्रसृतैरिव ।
गायद्भिरिव ससक्तहसानां मधुरस्वनै. ॥
सामोदजनसघातसमासितसरित्तटै· ।
सरोभिमारसाकीर्णैर्वनरन्ध्रेषु भूपित· ॥
सक्रीडनैर्वपुष्मद्भिराविकोष्ट्रकतार्णकै. ।
कृतसवाधसर्वाशो हितपालकपालितै. ॥
दिवाकररथाश्वाना लोभनार्थमिवोचितै. ।
पृष्ठै· कुकुमपकेन चलत्प्रोथपुटैर्मुखै. ॥
उदरस्थकिशोराणां जवायैव प्रभजनम् ।
स्वच्छन्दमापिबन्तीना वडवाना गणैश्चित. ॥
चरद्भिर् हससघातैर्धनैर्जनगुणैरिव ।
स्वंणाकृष्टचेतोभिरत्यन्तधवलः क्वचित् ॥
सगीतस्वनसयुक्तैर्मयूररवमिश्रितै. ।
यस्मिन्मुरजनिर्घोषैर्मुखरं गगनं सदा ॥
शरन्निशाकरश्वेतवृत्तैर्मुक्ताफलोपमैः ।
आनन्ददानचतुरैर्गुणवद्भिः प्रसाधित ॥
तर्पिताध्वगसंघातैः फलैर्वरतरूपमैः ।
महाकुटुंबिभिर्नित्यं प्राप्तोऽभिगमनीयताम् ॥

सारगमृगसद्गन्धमृगरोमभिरावृतै ।
हिमवत्पाददेशीयैः कृतस्थैर्यो महत्तरै.॥
हता कुदृष्टयो यस्मिन् जिनप्रवचनाजनै.।
पापकक्षं च निर्दग्ध महामुनितपोऽग्निभिः॥"[२३]

यह मगधवर्णन बाण के 'हर्षचरित' के'श्रीकण्ठ' जनपद-वर्णन से हूबहू मिलता है। अन्तर केवल इतना है कि बाण ने गद्य मे वर्णन किया है जब कि रविषेण ने पद्य मे कह दिया है। दूसरे, जहाँ बाण की उत्प्रेक्षाएँ ब्राह्मणसस्कृतिपोषिणी है वहाँ रविषेण ने उन्हे या तो जैनी बाना देकर प्रस्तुत किया है या फिर छोड दिया है, यथा--"यत्र त्रेताग्निधूमाश्रुजलप्रक्षालिता इव अक्षीयन्त कुदृष्टय । पच्यमानचरुनेष्टकादहनदग्धानीव नादृश्यन्त दुरितानि। भिद्यमानयूपदारुपरशुपाटित इव व्यशीर्यत इवाधर्म " आदि। शेष समस्त वर्णन बाण के वर्णन का ही पुनराख्यान है; यथा--

"अस्ति पुण्यकृतामधिवासो वासवावास इव वसुधामवतीर्णः, सततम् असंकीर्णवर्णव्यवहारस्थितिः कृतयुगव्यवस्थ', स्थलकमलवनबहुलतया पोत्रोन्मूल्यमानमृणालवलयै. उन्मीलन्मेदिनीसारगुणैरिव कृतमधुकरकुलकोलाहलैः हलैरुल्लिख्यमानक्षेत्र, क्षीरोदपयःपायिपयोदमिक्ताभिरिव पुण्ड्रेक्षुवाटसन्ततिभिनिरन्तरः, प्रतिदिशम् अपूर्वपर्वतकैरिव खलधानधामभिः विभज्यमानै सस्यकूटे संकटसीमान्त, समन्तादुद्घाटितघटीयन्त्रसिच्यमानैः जीरकजूटकै जटिलितभूमि, उर्वरावनीयांभि शालेयैरलकृतः, पाकविशरारुराजमापनिकरकर्बुरै स्फुटितमुद्गकोशीकपिशितै परिणतगोधूमधामभि स्थलीपृष्ठैरधिष्ठित, महिषपृष्ठप्रतिष्ठितगायद्गोपालपालितै कीटलम्पटवलाकानुसृतै अवटुघटितघण्टाघटीरणितरमणीयै अटद्भिरटवी हरवृषभपीनम् आमयाशकया बहुधा विभक्तम् क्षीरोदमिव क्षीरं क्षरद्भि. वाप्पच्छेद्यतृणतृप्तै गोधनै धवलितविपिन, विविधमखक्षोमधूमान्धशतमन्युयुक्तै लोचनैरिव सहस्रसख्यै कृष्णसारै शारीकृतोद्देश, धवलधूलिमुचा च केतकीवनाना रजोभि पाण्डरीकृतै प्रमथोद्धूलनभस्मधूसरै. शिवपुरस्येव प्रदेशैरुपशोभित, श्यामाककन्दलश्यामलितग्रामोपकण्ठकाश्यपीपृष्ठ', पदे-पदे करभपालकै. पीलुपल्लवप्रस्फोटितै करपुटपीडितकोमलमातुलुगीदलरसोपलिप्तै. स्वेच्छाविरचितकुकुमकेसरकृतपुष्पप्रकरै प्रत्यग्रफलरसपानसुखप्रसुप्तपथिकै वनदेवतादीयमानामृतरसप्रपागृहैरिव द्राक्षालतामण्डपै स्फुटितफलाना च बीजलग्नशुकचञ्चुरागाणमिव समारूढकपिकुलकपोलसन्दिह्यमानकुसुमाना दाडिमीना वनै विलोभनीयोपनिर्गम, उपवनपालपीयमाननालिकेररसासवैश्च पथिकलोकलुप्यमानपिण्डखर्जूरैः गोलागूललि-

२३. पद्मपुराण. २/१-३२

ह्यमानमधुरमोचापिण्डीरसैः चकोरचंचुजर्जरितैलावनैः उपवनैरभिरामः, तुगार्जुन-पाटलीपालीपरिवृतैश्च गोकुलावतारकलुषितकूलकीलालैः अध्वगशतशरण्यै अरण्य-जलधारबन्धैरवन्ध्यवनरन्ध्रः, कलहायमानकरभीपकुमारककाल्यमानैः औष्ट्रकैः और भ्रकैश्च कृतसम्बाधः दिशि-दिशि रविरथतुरगविलोभनायेव विलुठनमृदितकुकु-मस्थलीरसमालब्धानाम् उत्प्रोथपुटैः मुखैरुदरशायिकिशोरकजवजननाय प्रभंजन-मापिबन्तीनां वातहरिणीनामिव स्वच्छन्दचारिणीना बडवाना वृन्दैः विहरद्भि. आचितः अनवरतक्रतुधूमान्धकारत्रस्तैः हसयूथै. गुणैरिव धवलितभूतलः, सगीता-हतमुरजरवमत्तैः मयूरैरिव विभवमुखरितजीवलोकः, शशिकरावदातवृत्तैः मुक्ता-फलैरिव गुणिभिः प्रसाधित , पथिकशतविलुप्यमानस्फीतफलै. महातरुभिरिव सर्व-थातिथिभिर्गमनीयः, मृगमदपरिमलवाहिभिः मृगरोमावच्छादितै हिमवत्पार्श्वैरिव महत्तरैः स्थिरीकृतः, प्रोद्दण्डशतपत्रोपविष्टद्विजोत्तमै नारायणनाभिमण्डलैरिव तोयाशयैर्मण्डित., मथितपय.प्रवाहप्रक्षालितक्षितिभि मन्थनारम्भैरिव महाघोषै पूरिताशः **श्रीकण्ठो** नाम जनपद. ।"[२४]

२–इसी प्रकार 'राजगृह' नगर का वर्णन भी हर्षचरित' के 'स्थाण्वीश्वर' के वर्णन का ही पद्यात्मक रूपान्तर है, यथा–

"तत्रास्ति सर्वत. कान्त नाम्ना राजगृह पुरम् ।
कुसुमामोदसुभग भुवनस्येव यौवनम् ॥
महिषीणा महत्त्वैर्यत्कुकुमार्चितविग्रहै ।
धर्मान्ति.पुरनिर्भास धत्ते मानसकर्षणम् ॥
मरुदुद्धूतचमरैर्बालव्यजनशोभितै ।
प्रान्तैरमरराजस्य च्छायां यदवलम्बने ॥
सन्तापमपरिप्राप्तै कृतमीश्वरमार्गणै ।
मनुजैर्यत्करोतीव त्रिपुरस्य जिगीषुताम् ॥
सुधारससमासगपाण्डुरागारपक्तिभि. ।
टककम्पितशीताशुशीलाभिरिव कल्पितम् ॥
मदिरामत्तवनिताभूषणस्वनसभृतम् ।
कुबेरनगरस्येव द्वितीय सन्निवेशनम् ॥
तपोवन मुनिश्रेष्ठैर्वेश्याभिः काममन्दिरम् ।
लासकैर्नृत्तभवन शत्रुभिर्यमपत्तनम् ॥

---

२४ हर्षचरित (केरल वि० वि० अनन्तशयन-ग्रथमाला-ग्रथाक १८७ सस्करण शकाब्द १८८०) पृ० ३।१३७—१४१

शस्त्रिभिर्वीरमिलयोऽभिलापमणिरर्थिभिः ।
विद्यार्थिभिर्गुरोः सद्म वन्दिभिर्धूर्तपत्तनम् ।।
गन्धर्वनगरं गीतशास्त्रकौशलकोविदैः ।
विज्ञानग्रहणोद्युक्तैर्मन्दिर विश्वकर्मणः ।।
साधूनां सगमः सद्भिर्भूमिर्लाभस्य वाणिजैः ।
पंजर शरणप्राप्तैर्वज्रदारुविनिर्मितम् ।।
वार्तिकैरसुरच्छिद्रं विदग्धैर्विटमण्डली ।
परिणामो मनोज्ञस्य कर्मणो मार्गवर्तिभिः ।।
चारणैरुत्सवावासः कामुकैरप्सरःपुरम् ।
सिद्धलोकश्च विदित यत्सदा सुखिभिर्जनैः ।।
यत्र मातगगामिन्यः शीलवत्यश्च योषितः ।
श्यामाश्च पद्मरागिण्यो गौर्यश्च विभवाश्रयाः ।।
चन्द्रकान्तशरीराश्च शिरीषसुकुमारिकाः ।
भुजगानामगम्याश्च कचुकावृतविग्रहाः ।।
महालावण्ययुक्ताश्च मधुराभाषतत्परा ।
प्रसन्नोज्ज्वलवस्त्राश्च प्रमादरहितेहिता ।।
कलत्रस्य पृथांर्लक्ष्मी दधतेऽथ च दुर्विधा. ।
मनोज्ञा नितरा मध्ये सुवृत्ताश्चायति गताः ।।
लोकान्तपर्वताकार यत्र प्रकारमण्डलम् ।
समुद्रोदरनिर्भासपरिखाकृतवेष्टनम् ।।"[२५]

"हर्षचरित" का **"स्थाण्वीश्वर-वर्णन"** इस प्रकार है :—

"तत्र चैवविधे नानारामाभिरामकुसुमगन्धपरिमलसुभगो यौवनारम्भ इव भुवनस्य, कुकुमकुड्मलमिलनपिजरितबहुमहिशीसहस्रशोभितोऽन्त.पुरनिवेश इव धर्मस्य, मरुदुद्धूयमानचमरीबालव्यजनशतशबलितप्रान्तः एक देश इव सुरराज्यस्य, ज्वलन्मखशिखिसहस्रदीप्यमानदशदिगन्त. शिविरसन्निवेश इव कृतयुगस्य, पद्मासनावस्थित ब्रह्मर्षिध्यानाधीयमानसकलाकुशलप्रशमोऽवतार इव ब्रह्मलोकस्य कलकलमुखरमहावाहिनीगनसङ्कुलो विक्षेप इव उत्तरकुरूणाम्, ईश्वरमार्गण-सन्तापानभिज्ञमकलजनो विजगीपुरिव त्रिपुरस्य, सुधारससिक्तधवलगृहपक्ति-पाण्डरः प्रतिनिधिरिव चन्द्रलोकस्य, मधुमदमत्तकाशिनीभूषणरवभरितभुवनो नामापहार इव कुबेरनगरस्य स्थाण्वीश्वराख्यो जनसन्निवेश. ।

---

२५. पद्मपुराण २।३३-४९

यश्च यौवनमिति युवतिभिः, तपोवनमिति मुनिभिः, कामायतनमिति वेश्याभिः संगीतशालमिति लासकैः, यमनगरमिति शत्रुभिः, चिन्तामणिभूमिरित्यर्थिभिः, वीरक्षेत्रमिति शस्त्रोपजीविभिः, गुरुकुलमिति विद्यार्थिभिः, गन्धर्वनगरमिति गायनैः, विश्वकर्ममन्दिरमिति विज्ञानिभिः, लाभभूमिरिति वैदेहकैः, धूर्तस्थानमिति वन्दिभिः, साधुसमागम इति सद्भिः, वज्रपंजरमिति शरणागतैः, विटगोष्ठीति विदग्धैः, सुकृतपरिणाम इति पथिकैः असुरविवरमिति वादिकैः, शाक्याश्रम इति शमिभिः, अप्सरःपुरमिति कामिभिः, महोत्सवसमाज इति चारणैः, वसुधारेति च विप्रैरगृह्यत।

यत्र च मातंगगामिन्यः शीलवत्यश्च, गौर्यो विभवरताश्च, श्यामाः पद्मरागिण्यश्च, धवलशुचिवदना मदिरामोदश्वसनाश्च, चन्द्रकान्तवपुषः शिरीषकोमलाग्यश्च, अभुजंगगम्या कंचुकिन्यश्च, पृथुकलत्रश्रियो दरिद्रमध्यकलिताश्च, लावण्यवत्यो मधुरभाषिण्यश्च, अप्रमत्ताः प्रसन्नोज्ज्वलरागाश्च, अकौतुकाः प्रौढाश्च प्रमदाः।"[२६]

३—इस प्रकार 'हर्षचरित' के 'राजा पुष्पभूति एवं हर्ष के वर्णन' को 'पद्मपुराण' के 'राजा श्रेणिक के वर्णन' से मिलाया जा सकता है—

श्रेणिकवर्णन : "आसीत्तत्र पुरे राजा श्रेणिको नाम विश्रुतः।
देवेन्द्र इव बिभ्राणः सर्ववर्णधरं धनुः॥
कल्याणप्रकृतित्वेन यश्च पर्वतराजवत्।
समुद्र इव मर्यादालघनत्रस्तचेतसा॥
कलानां ग्रहणे चन्द्रो लोकधृत्या धरामयः।
दिवाकरः प्रतापेन कुबेरो धनसम्पदा॥
० ० ०
वृषाघातीनि नो यस्य चरितानि हरेरिव।
नैश्वर्यचेष्टितं दक्षवर्गतापि पिनाकिवत्॥
गोत्रनाशकरी चेष्टा नामराधिपतेरिव।
नातिदण्डग्रहप्रीतिर्दक्षिणाशाविभोरिव ॥
वरुणस्येव न द्रव्यं निस्त्रिंशग्राहरक्षितम्।
निःफला सन्निधिप्राप्तिर्नोत्तराशापतेरिव॥
बुद्धस्येव न निर्मुक्तमर्थवादेन दर्शनम्।
न श्रीर्बहुलदोषोपघातिनी शीतगोरिव॥

---

२६. हर्षचरित, ३।१४२–१४५

त्यागस्य नार्थिनो यस्य पर्याप्तिं समुपागताः ।
प्रज्ञायाश्च न शास्त्राणि कवित्वस्य न भारती ।।
साहसानि महिम्नो न नोत्साहस्य च चेष्टितम् ।
दिगाननानि नो कीर्तेर्न सख्या गुणसम्पदः ।।
चित्तानि नानुरागस्य जनस्याखिलभूतले ।
कला न कुशलत्वस्य न प्रतापस्य शत्रवः ।।"[२७]

पुष्पभूतिवर्णन . "तत्र च साक्षात्सहस्राक्ष इव सर्ववर्णधरं धनुर्दधानः, मेरुमय इव कल्याणप्रकृतित्वे, मन्दरमय इव लक्ष्मीसमाकर्षणे, जलनिधिमय इव मर्यादायाम्, आकाशमय इव शब्दप्रादुर्भावे, शशिमय इव कलासंग्रहे, वेदमय इवाकृत्रिमालापे, धरणिमय इव लोकधृतिकरणे, पवनमय इव सकलपार्थिवरजोविकारापहरणे, गुरुर्वचसि, पृथुरुरसि, विशालो मनसि, जनकस्तपसि, सुमित्रस्तेजसि, सुमन्त्रो रहसि, बुध मदसि, अर्जुनो यशसि, भीष्मो धनुषि, निषधो वपुषि, शत्रुघ्नः समरे, शूरः शूरसेनाक्रमणे, दक्ष. प्रजाकर्मणि, सर्वादिराजतेजःपुंजनिर्मित इव राजा पुष्पभूतिरिति नाम्ना बभूव ।"[२८]

हर्षवर्णन "नाग्य (हर्षदेवस्य) हरेरिव वृषविरोधीनि बालचरितानि, पशुपतेरिव दक्षजनोद्वेगकारीणि ऐश्वर्यविलसितानि, न शतक्रतोरिव गोत्रविनाशपिशुना प्रवादा , न यमस्येवाभिवल्लभानि दण्डग्रहणानि, च वरुणस्येव निस्त्रिंशग्रामसहस्ररक्षिता रत्नालया न धनदस्येवातिनिष्फला सन्निधिलाभा., न जिनस्येवार्थशून्यानि विज्ञानदर्शनानि, न चन्द्रमस इव बहुदोषापहृताः श्रियः ।"[२९]

"अपि च, अग्य (हर्षदेवस्य) त्यागस्यार्थिन., प्रज्ञाया. शास्त्राणि, कवित्वस्य वाच , सत्वस्य साहसस्थानानि, उत्साहस्य व्यापारा., कीर्तेर्दिङ्मुखानि, अनुरागस्य लोकहृदयानि, गुणगणस्य सख्या, गुणगणस्य कला न पर्याप्तो विषय. ।"[३०]

४—'अजना-पवनजय-सभोग' की ये पक्तियाँ भी 'बाण के हर्षचरित' की ही कृपा है —

"यथा ब्रवीति वैदग्ध्यं यथाज्ञापयति स्मर. ।
अनुरागो यथा शिक्षा प्रयच्छति महोदय ।।
तथा तयो रति प्राप्ता दम्पत्योर्वृद्धिमुन्नमाम् ।"[३१]

---

२७ पद्मपुराण ३।५०-६७

२८ हर्षचरित, तृतीय उच्छ्वास, पृ० १६६-१६७

२९. वही, द्वितीय उच्छ्वास, पृ० ११२-११३

३०. हर्षचरित, द्वितीय उच्छ्वास, पृ० ११२

३१. पद्मपुराण, १६।१९२-१९३

"आगत्य च ... हंसगद्‌गदया गिरा कृतसम्भाषणो यथा मन्मथ आज्ञापयति, यथा यौवनमुपदिशति यथा विदग्धताध्यापयति, यथा चातुराग शिक्षयति, तथाभिरामां रामामरमयत् ।"[३२]

५—इसी प्रकार दुःखी किष्किन्ध के प्रति सुकेश आदि का प्रबोधन हर्षचरित के 'राज्यश्री को आचार्योपदेश' का ही प्रतिबिम्ब है :—

"शोको हि पण्डितैर्दृष्ट पिशाचो भिन्ननामक ॥

० ० ०

शोकः प्रत्युत देहस्य शोषीकरणमुत्तमम् ।
पापानामयमुद्रेको महामोहप्रवेशनः ॥"[३३]

"आयुष्मति । शोको हि नाम पर्यायः पिशाचस्य, रूपान्तरमाक्षेपस्य, तारुण्य तमस, विशेषो विषस्य, अनन्तक प्रेतनगरनायक । ··सर्वभक्षिणी निर्मील्य सोढव्यं मर्त्यधर्मणा। पुण्यवति, पुरातन्य. प्रवृत्तयः गता केन शक्यन्तेऽन्यथाकर्त्तुम् ?"[३४]

ऐसे स्थलों को देखकर स्पष्ट अवभासित हो जाता है कि रविषेण का काव्यावेक्षण भी पर्याप्त विस्तृत था। वे जैन-साहित्य मे ब्राह्मणो द्वारा प्रणीत साहित्य की टक्कर की चीज देना चाहते थे। इसलिए उन्हे जहाँ से भी अच्छी चीज मिली उन्होंने ग्रहण की । ऐसे अवसरो पर जहाँ तक कि वे बच सके हैं ब्राह्मणो के पौराणिक प्रसगो तथा उपमा-उत्प्रेक्षाओ से बचे हैं, किन्तु कविता के रस के आवेग मे जब वे आये है तो सारा जैनित्व विस्मृत कर बैठे हैं और 'त्रिपुर' आदि की चर्चा करने लगे हैं। ऐसा लगता हैं कि वे एक भी चमत्कारी अक्षर को छोड़ना नही चाहते । उन्हे इस बात का ध्यान नही रह जाता कि आगे उन्हे कोई 'सर्वप्रबन्धहर्ता साहसकर्ता' समझकर नमस्कार भी कर सकता है ।[३५]

रचना : हो सकता है कि रविषेण का 'पद्मपुराण' अथवा 'पद्मचरित' के अतिरिक्त और कोई ग्रथ भी रहा हो किन्तु अभी तक उसका कोई प्रमाण उपलब्ध नही है। केवल 'पद्मपुराण' ही उनकी एकमात्र रचना है जो जैन रामकाव्य परम्परा

---

३२. हर्षचरित, प्रथम उच्छ्‌वास, पृ० ५५

३३. पद्मपुराण, ६।४८०-४८६

३४ हर्षचरित, सप्तम उच्छ्‌वास, पृष्ठ ४०२-४०७

३५ बाण के प्रभाव के लिए और भी देखिए—'पद्मपुराण' ६।२००, ६।३३९-३५२, ८।५२३-५२७, ९।११२-११३, १७।८२, ३०।१५२, ३३।२२-३४, ३३।२६४-२६५, ७२।११-१७, ९५।१६ आदि ।

का सर्वप्रथम संस्कृत-महाकाव्य है।[३६] इसका पूर्ण परिचय आगे दिया जा रहा है।

पद्मपुराण : एक विवेचन

जैनाचार्य रविषेण कृत 'पद्मपुराण' राम-कथा-साहित्य में पर्याप्त महत्त्वपूर्ण है। यह संस्कृत-साहित्य-सागर का उज्ज्वल रत्न है, जैन-धर्म-ग्रथमाला का सुमेरु है, हिन्दी खड़ी बोली के विकास में सहायक है। यह काव्य के समस्त लक्षणों से परिपूर्ण है और जैन धर्म-शास्त्रों का निष्यन्द है। यही कारण है कि सं० १८१८ में प० दौलतराम जी द्वारा उसका भाषानुवाद किया गया जो प्रत्येक दिगम्बर जैन का कण्ठहार बन गया और जिसकी एक न एक प्रति दिगम्बर-जैन-मन्दिरों में अवश्य पाई जाती है। जो स्थान वैष्णवों में तुलसीदास के 'रामचरित मानस' को प्राप्त है वही जैन-समाज में इस 'पद्मपुराण' को प्राप्त है। यह जैन-साहित्य में संस्कृत का सर्वप्रथम रामकथा-सम्बन्धी महाकाव्य है।

'पद्मपुराण' के दो नाम प्रसिद्ध हैं—'पद्मपुराण' और 'पद्मचरित'। अन्त:साक्ष्य के आधार पर इसका नाम 'पद्मचरित' ही सिद्ध होता है; क्योंकि कवि ने कहा है :—**'पद्मस्य चरितं वक्ष्ये पद्मालिंगितवक्षसः।'**[३७] तथा—**'चरित पद्ममुनेरिदं निबद्धम्।'**[३८]

---

३६. माणिकचन्द्र-दिगम्बर-जैन-ग्रन्थमाला, बम्बई से १९८५ वि० सं० में प्रकाशित पद्म-पुराण (पद्मचरितम्) के प्राक्कथन में श्री नाथूराम प्रेमी ने रविषेण की एक और रचना के रूप में 'वरांगचरित' को यह लिखते हुए स्वीकार किया है—"आचार्य रविषेण का यद्यपि इस समय केवल यही (पद्मपुराण) ग्रंथ उपलब्ध है, परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि इसके सिवाय उनके कुछ और भी ग्रंथ होंगे जिनमें से 'वरांगचरित' का उल्लेख 'हरिवंशपुराण' के प्रारम्भ में इस प्रकार किया गया है —

> वरांगनेव सर्वांगैर्वरांगचरितार्थवाक्।
> कस्य नोत्पादयेद्गाढमनुरागं स्वगोचरम् ॥३५

श्वेताम्बर-सम्प्रदाय के आचार्य उद्योतन सूरि ने अपने 'कुवलयमाला' नामक प्राकृत ग्रन्थ में भी, जो शकसंवत् ७०० (वि० सं० ८३५) की रचना है, रविषेण के 'पद्मचरित' और 'वरांगचरित' का उल्लेख किया है—

> 'जेहिं कए रमणिज्जे वरंग-पउमाण-चरियवित्थारे।
> कहव ण सलाहणिज्जे ते कइणो जडिय रविसेणो ॥'

अर्थात्—जिसने रमणीय वरांगचरित और पद्मचरित का विस्तार किया उस कवि रविषेण की कौन सराहना नहीं करेगा?" किन्तु उनका यह कथन उनके ही वचन-विरोध से अपास्त हो जाता है जब कि वे 'जैन-साहित्य और इतिहास' नामक अपने ग्रन्थ के पृ० २७३ पर 'वरांग-चरित' को 'जटिलमुनि' की रचना स्वीकार करते हैं।

३७. पद्मपुराण, १।१६

३८. पद्मपुराण, १२३।१८२, और भी १।१०२,१०३ (सेवध्वं चरितम्, निःशेषं चरितम्)

इसका नाम 'पद्मपुराण' ही अधिक प्रसिद्ध है।[३९] ग्रन्थ के ऊपर यही नाम प्रायः पड़ा मिलता है। इसका कारण क्या है?—इस प्रश्न के उत्तर में यह अनुमान होता है कि जैन-साहित्य की वह प्रवृत्ति ही इसकी जननी है जिसके अनुसार ब्राह्मण-साहित्य मे उपलब्ध ग्रन्थों के नाम जैन-साहित्य के ग्रन्थों पर अंकित किये जाते थे जिससे प्रचार मे अधिक सुगमता हो तथा जैनेतर जनता में जैन-भावना को पहुँचाया जा सके। प्रायः देखा गया है कि जैन-वाङ्मय के अनेक ग्रन्थो के नाम ब्राह्मण-साहित्य के ग्रन्थों के सदृश हैं। इसका लाभ यह था कि यदि कभी कोई शीर्षक देखकर ही ग्रन्थ पढ़ लेता तो वह जैन-भावना से परिचित हो सकता था। यही कारण प्रतीत होता है कि ब्राह्मण धर्म के सुप्रसिद्ध पुराण 'पद्मपुराण' के आधार पर इसका नाम 'पद्मपुराण' पड़ गया हो या डाल दिया गया हो। अनपढ़ जनता इसे ही प्राचीन 'पद्मपुराण' समझकर सुन सकती थी और उसे जैनी बनाया जा सकता था। हमने भी इस प्रसिद्धि को ध्यान मे रखते हुए 'पद्मपुराण' का ही व्यपदेश दिया है।

'पद्मपुराण' में पद्म (राम) का चरित्र जैन विचारधारानुसार वर्णित है। जैन-धर्म मे पद्म (राम), लक्ष्मण तथा रावण त्रिषष्टिशलाकापुरुषों मे परिगणित हुए है। जैन मान्यता के अनुसार प्रत्येक कल्प के त्रिषष्टि (६३) महापुरुष ये होते हैं—२४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव तथा ९ प्रतिवासुदेव। बलदेव, वासुदेव तथा प्रतिवासुदेव समकालीन होते हैं। राम, लक्ष्मण और रावण क्रमशः अष्टम, बलदेव, वासुदेव तथा प्रतिवासुदेव है। बलदेव (बलभद्र) वासुदेव (नारायण) किसी राजा की भिन्न-भिन्न रानियों के पुत्र होते है। वासुदेव अपने बड़े भाई बलदेव के साथ प्रतिवासुदेव (प्रतिनारायण) से युद्ध करते हैं और अन्त में प्रतिवासुदेव का वध करते हैं। इसके बाद वे दिग्विजय करके भारत के तीन खंडों पर अधिकार प्राप्त करते हैं और इस प्रकार अर्ध-चक्रवर्ती बन जाते है। मरने पर वासुदेव को प्रतिवासुदेव के वध के कारण नरक जाना पड़ता है। नौ वासुदेवों में लक्ष्मण और कृष्ण विशेषतः उल्लेखनीय हैं। बलदेव अपने भाई की मृत्यु के कारण शोकाकुल होकर जैन-दीक्षा लेकर मोक्ष प्राप्त करते हैं (जैसे राम और

---

३९. यद्यपि 'युक्ता सप्त पुराणेऽस्मिन्नधिकारा इमे स्मृताः (१।४४)' तथा 'पुराणममल (१२३।१६९)' मे पुराण नाम भी आया है किन्तु यह स्पष्ट नहीं है। पुष्पिका में पहले और दूसरे खंड मे प्रायः 'इति श्री रविषेणाचार्य-प्रोक्ते श्रीपद्मचरिते' लिखा है यद्यपि उसमें भी बाद मे 'पद्मपुराण' प्रयुक्त हुआ है। इससे यही सिद्ध होता है कि पहले तो रविषेण ने इसे 'पद्मचरित' ही कहा है (दे० पुष्पिका पर्व १-४४ तथा ४५-६५ कहीं-कहीं) किन्तु बाद मे इसे 'पद्मपुराण' कहा है।

बलराम)। प्रतिवासुदेव सदैव वासुदेव का विरोध करते हैं। (जैसे रावण और जरासंध) इसी मान्यता के अनुसार 'पद्मपुराण' में अष्टम बलदेव, वासुदेव तथा प्रति वासुदेव का चरित्र निबद्ध किया गया है।

'पद्मपुराण' के आधार की चर्चा करते हुए रविषेण ने बताया है कि यह राम-कथा पहले वर्द्धमान जिनेन्द्र के द्वारा कही गयी थी, जो कि 'इन्द्रभूति' नामक गणधर 'सुधर्माचार्य' तथा 'कीर्त्तिधर' को प्राप्त होती हुई उन्हें मिली है:—

"वर्द्धमानजिनेन्द्रोक्तः सोऽयमर्थो गणेश्वरम्।
इन्द्रभूतिं परिप्राप्तः सुधर्मं धारणीभवम्॥
प्रभवं क्रमतः कीर्तिं ततोऽनुत्तरवाग्मिनम्।
लिखितं तस्य सम्प्राप्य रवेर्यत्नोऽयमुद्गतः॥"[४०]

'पद्मपुराण' का प्रारम्भ विविध-वन्दनाओं सहित कवि की विनीतता के प्रदर्शन के साथ हुआ है जिसमें सत्कथा-सम्बन्धी इन्द्रियों की सार्थकता सिद्ध की गयी है। 'पद्मपुराण' के अन्त में इसका माहात्म्य-कथन हुआ है तथा इसके काव्य-सौष्ठव का संकेत किया गया है:—

"बलदेवस्य सुचरितं दिव्यं यो भावितेन मनसा नित्यम्।
विस्मयहर्षाविष्टस्वान्तः प्रतिदिनमपेतशङ्कितकरणः॥
वाचयति शृणोति जनस्तस्यायुर्वृद्धिमीयते पुण्यं च।
आकृष्टखड्गहस्तो रिपुरपि न करोति वैरमुपशममेति॥
किंचान्यद्धर्मार्थी लभते धर्मं यशः परं यशसोऽर्थी।
राज्यभ्रष्टो राज्यं प्राप्नोति न संशयोऽत्र कश्चित्कृत्यः॥
इष्टसमायोगार्थी लभते तं क्षिप्रतो धनं धनार्थी।
जायार्थी वरपत्नीं पुत्रार्थी गोत्रनन्दनं प्रवरपुत्रम्॥
अक्लिष्टकर्मविधिना लाभार्थी लाभमुत्तमं सुखजननम्।
कुशली विदेशगमने स्वदेशगमनेऽथवापि सिद्धसमीहः॥
व्याधिरुपैति प्रशमं ग्रामनगरवासिनः सुरास्तुष्यन्ति।
नक्षत्रैः सह कुटिला अपि भान्वाद्या ग्रहा भवन्ति प्रीताः॥
दुश्चिन्तितानि दुर्भवितानि दुष्कृतशतानि यान्ति प्रलयम्।
यत्किंचिदपरमशिवं तत्सर्वं क्षयमुपैति पद्मकथाभिः॥
० ० ०
व्यञ्जनान्तं स्वरान्तं वा किंचिन्नामेह कीर्तितम्।
अर्थस्य वाचकः शब्दः शब्दो वाक्यमिति स्थितम्॥

४०. पद्मपुराण १।४१-४२

लक्षणालकृती वाच्यं प्रमाण छन्द आगम· ।
सर्वं चामलत्तिेन ज्ञेयमत्र मुखागतम् ॥
इदमष्टादश प्रोक्तं सहस्राणि प्रमाणतः ।
शास्त्रमानुष्टुपश्लोकैस्त्रयोविंशतिसगतम् ॥" ४१

'पद्मपुराण' की रचना का उद्देश्य है--आर्य रामायणो की अतिमानवीय घटनाओ का बौद्धिक विश्लेषण करके राम को जिनदीक्षा दिलाकर मोक्ष प्राप्ति का साधन जिनदीक्षा को ही सिद्ध करना। इसीलिए राजा श्रेणिक ने प्रचलित रामायण की घटनाओ के विषय में अपने सन्देह को गौतम गणधर के सम्मुख पूर्वपक्ष के रूप में रखा जिसका उत्तरपक्ष गौतम के द्वारा सम्पन्न हुआ तथा राक्षसों, वानरों आदि की समस्याओं का बुद्धिसंगत समाधान सामने आया। भाव यह है कि 'पदमपुराण' में राम कथा को तर्कसम्मत बनाने का प्रयत्न किया गया है।

'पद्मपुराण' की रचना सन् ६७७-७८ ई० मे हुई थी जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है। इसका पहला प्रेस-सस्करण वि० स० १९८५ मे माणिकचन्द्र-ग्रथमाला, बम्बई मे प्रकाशित हुआ है। हिन्दी-अनुवाद सहित इसका प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ काशी ने जुलाई, १९५८ मे किया है। इससे पूर्व यह ग्रथ हस्त लिखित था।

'पद्मपुराण' की प्राचीन प्रतियाँ भारतीय ज्ञानपीठ से जुलाई १९५८ मे प्रकाशित पद्मपुराण की भूमिका मे उसकी इन पाँच प्रतियों का उल्लेख किया गया है—

(१) **दिगम्बर-जैन-सरस्वती-भंडार धर्मपुरा, देहली वाली प्रति-१** .—इसमे १२ × ६ इच के साइज के २४६ पत्र है। प्रारम्भ में प्रतिपत्र में १५-१६ पक्तियो और प्रतिपक्ति मे ४० तक अक्षर हैं पर बाद में प्रति पत्र मे २४ पक्तियाँ और प्रतिपक्ति में ५७-५८ तक अक्षर है। अधिकाश श्लोकों के अक लाल स्याही मे दिये गये है किन्तु पीछे के हिस्से में केवल काली स्याही का प्रयोग किया गया है। इस पुस्तक की तिथि पौष बदी ७, बुधवार सवत् १७७५ को भुसावर निवासी श्री मानसिंह के पुत्र सुखानन्द ने पूर्ण की है। पुस्तक के लिपिकर्ता सस्कृत के ज्ञाता नही प्रतीत होते हैं इसलिए भाषागत अनेक अशुद्धियाँ लिपि में रह गयी हैं। पुस्तक के अन्त में यह लेख पाया जाता है.—

"इति श्रीपद्मपुराणसपूर्ण भवत.। लिख्यत सुखानन्द मानसिहसुत वासी सुयान

४१. पद्मपुराण १२३।१५६-१८६

भुसावर के मोत्र वैनाड़ा लिपि लिखी सुंग्राने मधि संवत् सत्रैसै पचहत्तर मिति पौष-वदी सप्तमी बुधवार शुभं कल्याणं ददातु। जाइसी पुस्तकं दृष्ट्वा ताइसी लिखतं मया। जादि शुद्धमशुद्धं वा मम दोषो न दीयते ॥१॥ सज्जनस्य गुणं ग्राह्यं दोष-तिक्तं गुणार्णवम्। अयं शुद्धं कृतं तस्य मौक्षसौख्यप्रदायकम् ॥२॥ जो कोई पढ़े सुने त्याहनै म्हारौ श्रीजिनाय नमः। सज्जन ऐही वीनती साधर्मी सों प्यार। देव धर्म गुरु परख कें सेवो मन बच सार॥ देव धरम गुरु जो लखें ते नर उत्तम जान॥ सरधा रुचि परतीति सौं सो जिय सम्यक् वान॥ देव धरम सू परखिये सो है सम्य-क्वान। दर्शन गुण ग्रह आदि ही ज्ञान अंग रुचि मान॥ चारित्र अधिकारी कहो मोक्ष रूप त्रय मान। सज्जन सो सज्जन कहै एहू सार तव जान॥ निश्चै अरु व्यव-हार नय रत्नत्रय मन खान। अप्पा दसन नानमय चारितगुन अप्पान। अप्पा-अप्पा जोइये ज्यों पावै नियनि शुभमस्तु।"

(२) **दिगम्बर-जैन-सरस्वती-भवन पंचायती मन्दिर, मसजिद खजूर, देहली वाली प्रतिः**—इसमें ११ × ५ इंच के साइज के ५१० पत्र हैं। प्रतिपत्र में १४ पक्तियाँ और प्रति पक्ति मे ४०-४१ तक अक्षर हैं। पुस्तक के अन्त में प्रतिलिपि-सवत् तथा लिपिकर्ता का कोई उल्लेख नही है। इस प्रति के बीच-बीच में कितने ही पत्र जीर्ण हो जाने के कारण अन्य लेखक के द्वारा फिर से लिखाकर मिलाये गये है। प्राचीन लिपि प्राय. शुद्ध है किन्तु नये मिलाये गये पत्रों मे अनेक अशुद्धियाँ रह गयी हैं। इस प्रति के प्रारम्भ मे १-२ श्लोकों की सस्कृत टीका भी दी गयी है।

उपर्युक्त दोनों प्रतियों का प्रस्तुतीरकण प० परमानन्द जी शास्त्री ने किया है।

(३) **अतिशय क्षेत्र महावीर जी वाली प्रति**—इसमें १२ × ५ इच साइज के ५५४ पत्र है। प्रति के कागज से यह पता चलता है कि यह बहुत प्राचीन है किन्तु अन्त मे लिपि का सवत् और लिपिकार का कोई सकेत नही है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रति के अन्त का एक पत्र गम हो गया है अन्यथा उसके लिपि सवत् आदि का कुछ उल्लेख अवश्य मिल जाता। पुस्तक की जीर्णता के कारण प्रारम्भ मे ४४ पत्र नये लिखकर लगाये गये है। इन ४४ पत्रों में प्रति पत्र १३ पक्तियाँ तथा प्रति पक्ति ४०-४५ तक अक्षर है। प्राचीन पत्रों में १२ पक्तियाँ और प्रति पक्ति ३५-३८ तक अक्षर है। अधिकांश लिपि शुद्ध की गयी है। इस प्रति में भी सख्या २ के समान प्रारम्भ के १-२ श्लोकों की टीका है।

(४) **धन्नालाल ऋषभचन्द्र रामचन्द्र बम्बई वाली प्रति–२**—इस पुस्तक मे १३ × ६ इच साइज के २६५ पत्र हैं। प्रति पत्र मे १९ पंक्तियाँ और प्रति पक्ति मे ५५ से ६० तक अक्षर हैं। लिपि के संवत् और लिपिकार का कोई उल्लेख नहीं है। परन्तु प्रतीत होता है कि लिपिकर्ता सस्कृत का ज्ञाता था अतएव लिपिगत

अशुद्धियाँ नगण्य हैं। प्रायः सब पाठ शुद्ध अंकित किये गये हैं। बीच-बीच में कठिन स्थलों पर टिप्पणियाँ भी दे दी गयी हैं।

(५) दिगम्बर-जैन-सरस्वती-भण्डार धर्मपुरा, देहली वाली प्रति--२.—

इसकी भी उपलब्धि पं० परमानन्द शास्त्री के सौजन्य से ही हुई है। इसमें १०×५ इंच साइज के ५८ पत्र हैं। बहुत ही संक्षेप मे पद्मपुराण के कठिन स्थलों पर टिप्पणियाँ दी गई है। इसकी लिपि पौष बदी ५ रविवार संवत् १८६४ को पूर्ण हुई। यह लश्कर में लिखी गयी है। इसके लिपिकर्ता का पता नही चलता। टिप्पणी के रचयिता का निम्नलिखित उल्लेख प्रति के अन्त मे मिलता है:—

"लाट वागड़ श्री प्रवचन सेन पण्डितान् पद्मचरितं समाकर्ण्य बलात्कारगण श्री नन्द्याचार्य सत्शिष्येण श्रीचन्द्रमुनिना श्रीमद्विक्रमादित्य-सम्वत्सरे सप्ताशी-त्यधिक सहस्र (परिमितं) श्रीमद्धारायां श्रीमतो राज्ये भोजदेवस्य पद्मचरिते।" इसकी लिपि में पर्याप्त अशुद्धियाँ हैं।

६. माणिकचन्द्र-ग्रन्थमाला बम्बई की छपी हुई प्रति : साहित्यरत्न प० दरबारी लाल जी न्यायतीर्थ के द्वारा सम्पादित होकर श्रीनाथूराम प्रेमी के 'प्राक्कथन' के साथ वि० सं० १६५८ मे प्रकाशित हुई है।

इन सभी प्रतियों का मिलान करके 'भारतीय ज्ञानपीठ', काशी से जुलाई, १९५८ मे पं० पन्ना लाल जैन ने सानुवाद 'पद्मपुराण' तीन भागों मे सम्पादित किया है जिसमे कहीं-कहीं प्रूफ और कहीं अनुवाद की भी अशुद्धियाँ रह गई हैं। हमने अध्ययन के लिये इसे ही आधार बनाया है।

कथासार[४२] : कथा का प्रारम्भ राजा श्रेणिक की प्रार्थना पर गौतम गणधर द्वारा किया गया है। पहले ऋषभदेव की उत्पत्ति और नीलाजना के नृत्य के समय उसकी मत्यु की घटना से ऋषभ के वैराग्य की कथा दी गयी है। तदनन्तर भरत-बाहुबलि की कथा, राजा सगर का वृत्तान्त एवम् महारक्ष और उसके वशजों का वर्णन है। इसी वशपरम्परा के अन्तिम राजा कीर्तिधवल तथा उसके साले श्रीकण्ठ के द्वारा वानर वश की उत्पत्ति हुई। श्रीकण्ठ ६ वी पीढ़ी के राजा अमर-प्रभ ने वानर-चिह्न स्वीकार किया और इस प्रकार राक्षस-वश और वानर-वश प्रख्यात हुए जिनका पर्याप्त विस्तार हुआ तथा जिनके विषय मे अनेक कथाएँ है। विजयार्द्ध की दक्षिण श्रेणी में रथनूपुर नाम के नगर में इन्द्र नामक प्रतापी विद्याधर रहता था। उसने लंका को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया। पाताल-लंका के रत्नश्रवा का विवाह कौतुकमंगलनगरी के व्योमबिन्दु की छोटी पुत्री केकसी

४२. रविषेण ने 'सूत्रविधान' नामक प्रथम पर्व में अनुक्रमणिका के रूप मे यह सार दिया है। रामकथा का सार १०२ पर्व मे भी दिया गया है।

से हुआ था। रावण इन्हीं का पुत्र था। इसने बाल्यावस्था में बहुरूपिणी आदि अनेक विद्याएँ सिद्ध की थीं। भानुकर्ण, विभीषण तथा चन्द्रनखा इसके सहोदर थे। रावण और भानुकर्ण ने लंकाधिपति इन्द्र और वैश्रवण से अपने पूर्वजों द्वारा अध्युष्ट लकानगरी को छीन लिया तथा अपना राज्य स्थापित किया। खरदूषण ने रावण की बहिन चन्द्रनखा का हरण कर लिया। बाद में रावण ने उन दोनों का विवाह कर दिया तथा पाताललंका का राज्य खरदूषण को दे दिया।

वानरवंश के प्रभावशाली शासक बालि ने संसार से विरक्त होकर अपने छोटे भाई सुग्रीव को राज्य दे दिया और स्वयं दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली। यह कैलास पर्वत पर तपस्या करने लगा। रावण को अपने बल का बड़ा अभिमान था। फलस्वरूप वह बालि पर क्रुद्ध होकर कैलास को उठाने लगा। पर्वत पर बने हुए जिनालयों की रक्षा के लिए बालि ने कैलास पर्वत को अपने पैर के अंगूठे से बलपूर्वक दबा लिया, इससे रावण को अत्यन्त कष्ट उठाना पड़ा। बाद मे बालि ने रावण को छोड़ दिया और तस्पया कर निर्वाण प्राप्त किया।

अयोध्या में भगवान् ऋषभदेव के वंश से समयानुसार अनेक राजा हुए। प्रायः सभी ने दिगम्बर दीक्षा ली और तपस्या द्वारा मोक्ष प्राप्त किया। इसी वंश मे राजा रघु का अनरण्य नामक पुत्र हुआ। इसकी रानी पृथ्वीमती से अनन्तरथ तथा दशरथ दो पुत्र हुए जिनमें अनन्तरथ अपने अपने पिता के साथ संसार से विरक्त होकर तपस्या करने चले गये तथा अयोध्या का शासन दशरथ ने सँभाला। एक दिन दशरथ की सभा मे नारद ने आकर बताया कि 'रावण ने किसी निमित्त-ज्ञानी से यह जान लिया है कि दशरथपुत्र और जनकपुत्री उसकी मृत्यु का कारण होंगे—

> "नैमित्तेन समादिष्ट तेन सागरबुद्धिना।
> भविता दशवक्त्रस्य मृत्युर्दाशरथिः किल॥
> दुहिता जनकस्यापि हेतुत्वमुपयास्यति।"[४३]

अतः उसने विभीषण को आप दोनो को मार देने के लिये नियुक्त कर दिया है। आप सावधान रहे और हो सके तो कहीं छिप जायँ।' राजा दशरथ अपनी रक्षा के लिये देश देशान्तर मे गये तथा मार्ग मे कौतुकमंगलनगर के राजा की पुत्री कैकयी से विवाह किया। कुछ समय पश्चात् विभीषण का खटका समाप्त होने पर दशरथ के अयोध्या आने पर उनकी चार रानियों से पद्म (राम), लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न ये चार पुत्र उत्पन्न हुए। समयानुसार दशरथ ने

४३ पद्म०, २३।२५-२६

राम का राज्याभिषेक करना चाहा किन्तु कैकयी ने अपने पूर्वार्जित वर को ध्यान दिलाकर दशरथ से भरत के लिए राज्य माँग लिया। राम ने इसे स्वीकार किया तथा वनगमन का निश्चय कर लिया। दशरथ ने भी बात मान ली और दीक्षा ले ली। राम के साथ लक्ष्मण-सीता भी वन गये। वन में रावण के द्वारा सीता का हरण किये जाने पर राम ने वानरवंशी विद्याधर पवनजय और अजना के पुत्र हनूमान् एवं सुग्रीव से मित्रता की तथा सुग्रीव के शत्रु साहसगति विद्याधर का वध कर सुग्रीव को अपना वशंवद बना लिया जिसकी सहायता से रावण-वध कर सीता को प्राप्त किया। रावण जैन-धर्मानुयायी था। प्रतिदिन जिन-पूजा करता था किन्तु 'भवितव्यता बलीयसी' के अनुसार वह मोहग्रस्त होकर अनीति के मार्ग पर चला जिसके कारण उसके कुल का सहार हुआ।

अयोध्या लौट आने पर लोकापवाद के भय से राम ने सीता को निर्वासित कर दिया। जिस स्थान पर जंगल मे सीता को छोडा गया था वहाँ सौभाग्य से वज्रजंघ नामक राजा आ गया। उसने सीता की रक्षा की तथा उसके नगर मे जाने पर सीता ने दो पुत्र लवणांकुश उत्पन्न किये जिन्होंने अपने पराक्रम से अनेक राज्यों को जीतकर वज्रजंघ के राज्य की वृद्धि की। दिग्विजय के समय इनका राम-लक्ष्मण से युद्ध हुआ जिसमे पिता-पुत्र परिचित हुए। सीता को राम ने बुलाया। सीता ने आकर अग्नि-परीक्षा दी तथा उत्तीर्णता प्राप्त की। वह विरक्त होकर तपस्या करने चली गयी। अन्त मे उसने स्त्री-लिंग छेदकर स्वर्ग प्राप्त किया। लक्ष्मण की मृत्यु हो जाने पर राम अत्यन्त शोकाभिभूत हो गये। कुछ समय बोध प्राप्त कर लेने पर वे दिगम्बर मुनि हो गये। उन्होंने कठोर तप किया और वे केवली होकर निर्वाण के अधिकारी हुए।

सप्त अधिकार : 'पद्मपुराण' का प्रमाण १८०२३ श्लोक है। रविषेण के द्वारा कही हुई कथा सात अधिकारो में विभक्त है—(१) लोकस्थिति, (२) वशो की उत्पत्ति, (३) वन के लिए प्रस्थान, (४) युद्ध, (५) लवणांकुश की उत्पत्ति, (६) भवान्तर निरूपण तथा (७) रामचन्द्र जी का निर्वाण। ये सातों अधिकार अनेक प्रकार के सुन्दर पर्वो से सुशोभित हैं—

> "स्थितिर्वंश-समुत्पत्तिः प्रस्थानं सयुगं ततः।
> लवणाकुशसम्भूतिर्भवोक्तिः परनिर्वृतिः॥
> भवान्तरभवैर्भूरिप्रकारैश्चारुपर्वभिः।
> युक्ताः सप्त पुराणेऽस्मिन्नधिकारा इमे स्मृताः॥"

पर्वों की संख्या १२३ है।[४४] प्रत्येक पर्व के अन्तिम श्लोक में 'रवि' शब्द आया है। इसलिए इसे 'रव्यंक' भी कहा जाता है।[४५] (संस्कृत में ऐसी परम्परा बहुत रही है। भारवि और माघ ने भी 'श्री' या 'लक्ष्मी'—शब्द अपने ग्रन्थों के अन्तिम श्लोकों मे रखा है।)

उपर्युक्त सात अधिकारों में से 'स्थित्यधिकार' का तो चतुर्थ पर्व के अन्त स्पष्ट उल्लेख है—

स्थित्यधिकारोऽयं ते श्रेणिक गदितः समासतस्त्वेनम्।
वंशाधिकारमधुना पुरुषरवे! विद्धि सादरं वच्मि॥ (पद्म० ४।१३२)

किन्तु अन्य अधिकारों का स्पष्ट उल्लेख नहीं है। यदि इन अधिकारों के पूर्वापर प्रभाव को ध्यान में रखते हुए पर्वों का इनमें विभाजन किया जाय तो वह कथंचित् इस प्रकार है: (१) स्थिति (१-४), (२) वंशसमुत्पत्ति (५-२५), (३) प्रस्थान (२६-४४), (४) सयुग (४५-८०), (५) लवणांकुशसभूति (८१-१०५), (६) भवोक्ति (१०६-११९) तथा (७) परनिर्वृति (१२०-१२३)।

किन्तु यदि 'पद्मपुराण' के पर्वों का इन छः भागों में विभाजन किया जाय तो स्पष्टता तथा सुगमता अधिक रहती है: (१) रावण चरित (१-२०), (२) राम और सीता का जन्म तथा विवाह (२१-३२), (३) वनभ्रमण (३३-४२), (४) सीताहरण और खोज (४३-५३), (५) युद्ध (५४-८८), (६) उत्तर-चरित (८९-१२३)। इन्ही छः भागों के आधार पर हम 'पद्मपुराण' के **कथा-रोहण** पर विचार करेंगे।

(१) **रावणचरित (पर्व १-२०)**: मगलाचरण, ग्रन्थकर्तृ प्रतिज्ञा, सत्कथा-

---

४४. इन पर्वों को काण्डों मे विभक्त करने का अधूरा उपक्रम भी किया गया है। १९वे पर्व के बाद लिखा मिलता है—'इति विद्याधरकाण्ड समाप्तम्।' इसी प्रकार मस्जिद खजूर वाली तथा बम्बई वाली प्रति में २३वें पर्व के अन्त मे 'इति श्रीजनक-दशरथ कालनिवर्तनम्' लिखा मिलता है। किन्तु 'विद्याधरकाण्ड' के अतिरिक्त और किसी काण्ड का उल्लेख नही है। हो सकता है कि रविषेण के बाद किसी लेखक ने 'पद्मपुराण' को काण्डो मे विभाजित करना चाहा हो जैसा बाद मे स्वयम्भू के 'पउमचरिउ' का काण्डो म विभाजन है किन्तु बाद उसका ध्यान इस ओर न रहा हो अथवा उसने जानबूझकर छोड़ दिया हो।

४५. यथा—'सन्मार्गं प्रकटीकृतं हि रविणा कश्चारुदृष्टिः स्खलेत् ?' (१।१०३)
'रविरिव शरदभ्रादारवृन्दादभासीत्।' (२।२५६)
'भित्वा ध्वान्तं खे रवेस्तुल्यचेष्टा.।' (३।३३९)
'पुरुषरवे विद्धि सादरं वच्मि।' (४।१३२) आदि।

प्रशंसा, सज्जन-प्रशंसा तथा दुर्जननिन्दा के साथ ग्रन्थ का अवतरण होता है तथा ग्रन्थ में निरूप्यमाण विषयों का 'सूत्र-विधान' किया गया है (पर्व १)। मगध-देश में स्थित राजगृह नगर के राजा श्रेणिक का महावीर के समवसरण में गमन होता है तथा लौटकर रात्रि में उसे रामकथा-सम्बन्धी सन्देह होता है। मुख्य सन्देह वानर और राक्षसों के विषय में है (पर्व २)। अगले दिन वह समवसरण में जाकर रावण के वास्तविक स्वरूप और चरित के विषय में प्रश्न करता है जिसके उत्तर में गौतम गणधर उसे रावण का वास्तविक चरित्र सुनाने का उपक्रम करते हैं तथा इसके लिए वे एक प्रस्तावना तैयार करते हैं; क्योंकि 'न विना पीठबन्धेन विधातुं सद्म शक्यते।' इसी प्रस्तावना के रूप में क्षेत्र, काल तथा चौदह कुलकरों का वर्णन, चौदहवें कुलकर नाभिराय और उनकी स्त्री मरुदेवी का वर्णन, भगवान् ऋषभदेव के गर्भारोहण, जन्म कल्याणक तथा दीक्षा-कल्याणक का वर्णन एवं भगवान् आदिनाथ के ध्यानारूढ रहने के समय नमि-विनमि के आगमन के और धरणेन्द्र के द्वारा उन्हे उत्तर-दक्षिण श्रेणियों के राज्यदान का वर्णन है, (पर्व ३)। प्रसंगानुसार भगवान् ऋषभदेव का राजा सोमप्रभ और श्रेयांस के आहार होना, केवल ज्ञान की उत्पत्ति, समवसरण की रचना, दिव्य-ध्वनि का खिरना, भरत-बाहुबली का युद्ध तथा बाहुबली का दीक्षा लेना, भरत के द्वारा ब्राह्मण वर्ण की सृष्टि आदि वर्णित है (पर्व ४)। तदनन्तर चार महा-वंशों—(इक्ष्वाकुवंश, ऋषि अथवा चन्द्रवंश, विद्याधरवंश तथा हरिवंश) का संक्षिप्त वर्णन, विद्याधर वंश के अन्तर्गत विद्युद्दृढ़ और संजयन्त मुनि का वर्णन अजित-नाथ भगवान् का वर्णन, सगर चक्रवर्ती का वर्णन, पूर्णघन-सुलोचन-सहस्रनयन-मेघवाहन आदि का वर्णन, मेघवाहन और सहस्रनयन के पूर्व जन्म-सम्बन्धी वैर का वर्णन, राक्षसों के इन्द्र भीम और सुभीम के द्वारा मेघवाहन के लिए राक्षस-द्वीप की प्राप्ति तथा राक्षस-वंश के विस्तार का वर्णन एवं वानर वंश का विस्तृत वर्णन है (पर्व ५-६)। इसके बाद रथनूपुर नगर में राजा सहस्रार के यहाँ इन्द्र विद्याधर का जन्म तथा उसके प्रभाव-प्रताप आदि का वर्णन, लंका के राजा माली का इन्द्र के विरुद्ध अभियान तथा युद्ध और युद्ध में माली की मृत्यु का वर्णन, लोकपालों की उत्पत्ति तथा वैश्रवण के लंका निवास का वर्णन, इन्द्र से हार कर सुमाली के अलंकारपुर में निवास, रत्नश्रवा-नामक पुत्र के लाभ, रत्नश्रवा की केकसी रानी से दशानन, भानुकर्ण, चन्द्रनखा तथा विभीषण की उत्पत्ति का वर्णन, वैश्रवण की गगनयात्रा देखकर दशानन आदि की अनावृत यक्ष के उपद्रव के बावजूद भी विद्यासिद्धि का वर्णन और राक्षसवंश में दशानन के प्रभाव का वर्णन किया गया है (पर्व ७)। तत्पश्चात् असुर संगीतनगर के राजा मय की

पुत्री मन्दोदरी का दशानन के साथ विवाह, दशानन की मेघरव पर्वत पर बनी वापिका में छह हजार कन्याओं के साथ जलक्रीड़ा तथा उनके साथ विवाह, भानुकर्ण और विभीषण के विवाह, दशानन द्वारा वैश्रवण की पराजय, पुष्पक पर आरूढ़ होकर उसकी दक्षिण-यात्रा, सुमाली द्वारा हरिषेण चक्रवर्ती का माहात्म्य-कथन, दशानन द्वारा त्रिलोक-मण्डन हाथी का वश करना तथा यमलोकपाल-विजय एवं लंका नगरी प्रवेश निबद्ध है (पर्व ८)। आगे बालि-सुग्रीव-नल-नीलादि की उत्पत्ति, खरदूषण के द्वारा रावण की बहिन चन्द्रनखा का हरण, विराधित का जन्म, बालि का दशानन के साथ संघर्ष, बालि का दीक्षा-ग्रहण, सुग्रीव द्वारा अपनी बहिन का दशानन के साथ विवाह, बालि के प्रभाव से दशानन का विमान रुकना, रावण द्वारा कैलास को उठाना, बालि द्वारा उसकी रक्षा, रावण द्वारा जिनेन्द्र स्तुति एवं नागराज के द्वारा 'अमोघविजया' शक्ति का दान वर्णित है (९)। फिर सुग्रीव का सुतारा के साथ विवाह, उससे अंग और अंगद नामक पुत्रों का जन्म, सुतारा को प्राप्त करने की इच्छा से साहसगति विद्याधर का हिमवत् पर्वत की दुर्गम गुहा मे विद्या सिद्ध करना, रावण का दिग्विजय के लिए निकलना, सहस्ररश्मि आदि राजाओं को वश मे करना, नारद का मरुत्वान के यज्ञ मे ब्राह्मणो मे शास्त्रार्थ तथा ब्राह्मणो द्वारा पीटे जाने पर रावण द्वारा उसकी रक्षा, नलकूबर की स्त्री का रावण के प्रति अनुराग और रावण का उसे समझाना, नलकूबर-विजय, सहस्रार के पुत्र इन्द्र की रावण द्वारा पराजय एव सहस्रार के कथन पर उसकी मुक्ति इन्द्र की दीक्षा तथा रावण का अनन्तवल केवली के समक्ष यह व्रतग्रहण—'जो स्त्री मुझे नही चाहेगी मैं उसे नही चाहूँगा'—वर्णित है (पर्व १०-१४)। तदनन्तर पवनजय-अंजना वृत्तात, पवनजय का रावण की ओर से वरुण से युद्ध करने के लिए जाना, चक्रवाक-रहित-चक्रवाकी के दर्शन से प्रेरित पवनजय का छिपकर अजना से सम्भोग करना, गर्भचिह्न प्रकट हो जाने पर अज्ञानवश केतुमती द्वारा निर्वासित अजना का हनूमान्-पुत्र को वन मे उत्पन्न करना, अजना-पवनजय-मिलाप, रावण का वरुण-दमनार्थ सभी राजाओ का आह्वान, हनूमान् का वरुण को परास्त करना, रावण द्वारा उसकी प्रशसा, कुम्भकर्ण को वरुण के नगर की स्त्रियो के पकडने पर रावण की फटकार, रावण का हनूमान् के लिए चन्द्रनखा की पुत्री देना, रावण के साम्राज्य एवं चौबीस तीर्थकरो आदि शलाका पुरुषों का वर्णन निबद्ध है (पर्व १५-२०)।

२. **राम और सीता का जन्म तथा विवाह (पर्व २१-३१)** : रामादि के जन्म के लिए पहले उनके वशों का परिचय दिया गया है। फिर मुनि सुव्रतनाथ तथा उनके वंश का वर्णन, इक्ष्वाकुवंश में सौदास आदि के बाद अनरण्य के यहाँ

दशरथ का जन्म, नारद द्वारा रावण के दुर्विचार सुनकर उनका एवं जनक का राज्य छोड़कर जाना, कलानिपुणा केकया का दशरथ से विवाह एवं वर की प्राप्ति तथा दशरथ की रानियों से राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्न की उत्पत्ति, जनक की विदेहा रानी से सीता और भामण्डल की उत्पत्ति, भामण्डल का अपहरण, म्लेच्छों के विरुद्ध राजा दशरथ से सहायता पाकर जनक का राम के लिए अपनी पुत्री (सीता) देने का निश्चय, नारद की करतूत से भामण्डल का सीता के प्रति अनुराग, राम एवं अन्य भाइयों का सीता आदि से विवाह, वृद्ध कंचुकी को देख दशरथ का वैराग्य, भामण्डल को अपने पूर्व भव का ज्ञान तथा जनक का भामण्डल से मिलना, सर्वभूतहित मुनिराज के द्वारा दशरथ के पूर्वभवों का वर्णन एवं उनकी दीक्षा लेने की विचारधारा वर्णित है (पर्व २१-३१)। तदनन्तर राम को दशरथ का राज्य देने का विचार, केकया द्वारा वर के बदले भरत के लिए राज्य माँगना, दशरथ का असमजस, राम की सान्त्वना, लक्ष्मण का रोष, भरत का दीक्षा लेने का आग्रह, किन्तु सबके समझाने पर राम के पुनरावर्तन तक राज्य स्वीकार कर लेना, राम-लक्ष्मण-सीता का सबसे विदा लेना एवं दशरथ की दीक्षा वर्णित है (पर्व ३१)।

३ **वनभ्रमण (पर्व ३२-४२)** : इस खड में राम-लक्ष्मण-सीता जैसे-तैसे नगरवासियों से विदा होकर वन के लिए चले ही गये भरत ने द्युतिभट्टारक से धर्म का यथार्थ उपदेश लिया (पर्व ३२)। आगे राम का चित्रकूट पारकर अवन्ति देश में गमन, वज्रकर्ण-सिंहोदर वृत्तान्त, कल्याणमाला-वृत्तान्त, कपिल-ब्राह्मण का वृत्तान्त एवं लक्ष्मण पर आसक्त वनमाला का वृत्तान्त आता है। (पर्व ३३-३६)। तत्पश्चात् नर्तकी वेशधारी राम-लक्ष्मण का भरत-विरोधी राजा अतिवीर्य को धर्षित करना, अतिवीर्य की दीक्षा, लक्ष्मण का 'जितपद्मा' से विवाह, राम-लक्ष्मण द्वारा देशभूषण, कुलभूषण, मुनियों का उपसर्ग—दूरीकरण, वंश-स्थलपुर के राजा सुरप्रभ द्वारा चरमशरीरी राम का अभिवादन, राम का दण्डक-वन-प्रस्थान, रामगिरि-वर्णन (पर्व ३७-४०) राम-लक्ष्मण तथा सीता का कर्णरवा नदी को प्राप्त कर उसमें अवगाहन, सुगुप्ति और गुप्ति नामक दो मुनियों को आहार दान देने से उन्हें पंचाश्चर्य की प्राप्ति, मुनिराज के दर्शन से गृध्र पक्षी का पूर्वभव-ज्ञान उत्पन्न होना तथा मुनिवन्दना के कारण दिव्य शरीर की प्राप्ति, मुनि द्वारा गृध्र के पूर्वभव का कथन करना, राम द्वारा उसका 'जटायु' नामकरण तथा राम-लक्ष्मण-सीता का दण्डक-वन में भ्रमण, उपनिबद्ध है (पर्व ४०-४२)।

४. **सीताहरण और खोज (पर्व ४३-५३)** : इस खण्ड मे सूर्यहास-साधक चन्द्रनखासुत शम्बूक का लक्ष्मण द्वारा अचानक वध, चन्द्रनखा का विलाप, राम-

लक्ष्मण को देखकर उसका मुग्ध होना किन्तु राम-लक्ष्मण का अविचलित रहना (बाद में लक्ष्मण का चचल होना) (पर्व ४३) कामेच्छा पूर्ण न होने पर चन्द्रनखा का पुत्र-शोकाभिभूत होना, खरदूषण को पुत्रवध से परिचित कराना, खरदूषण का लक्ष्मण के साथ युद्ध होना, रावण का सहायतार्थ आना, सीता को देखकर उसका मोहित होना, सिंहनाद द्वारा राम को लक्ष्मण के पास भेज देना और सीता को हर लेना, जटायु का सीता को बचाने का व्यर्थ प्रयत्न करना। सीता के बिना राम का करुण-विलाप करना, विराधित का राम-लक्ष्मण की सहायता करना, राम का विराधित से अनुरोध, उनका पाताललका मे जाना तथा सीता-विरह में झुलसना, सीता का देवारण्य उद्यान मे ठहराया जाना, रावण की प्रेम-याचना का सीता का ठुकराया जाना, रावण की विप्रलम्भजन्य दुर्दशा पर दयालु होकर मन्दोदरी का सीता को समझाना किन्तु सीता द्वारा कड़ी लताड़ मारना (पर्व ४४-४६), कृत्रिम सुग्रीव साहसगति को मारकर राम का सुग्रीव की सहायता करना, सुग्रीव द्वारा १३ कन्याओं का राम को समर्पण, लक्ष्मण का विलम्ब करते सुग्रीव पर कोप, रत्नजटी द्वारा सीता की रावण के यहाँ स्थिति बताना, सभी के होश ठण्डे पडना, लक्ष्मण का कोटि शिला उठाकर सभी को विश्वस्त करना, हनूमान् का राम के पास आगमन लकागमन, मार्ग मे महेन्द्रनगर मे अपनी माता और महेन्द्र से मिलना, दधिमुख द्वीप में स्थित मुनियो के उपसर्ग का हनूमान् द्वारा दूरीकरण, राम को गन्धर्व कन्याओं की प्राप्ति, हनूमान् का लकासुन्दरी-लाभ, विभीषण-हनूमान्-मिलन, सीता को हनूमान् द्वारा राम का सन्देश देना, उद्यान को क्षतिग्रस्त करना और बन्धन तोड़कर लौट आना वर्णित है (पर्व ४७-५३)।

५. **युद्ध (पर्व ५४-८०)** इसमे हनूमान् द्वारा सीता का समाचार देने पर विद्याधरों सहित राम का लका की ओर प्रस्थान (५४), लका मे इन्द्रजित विभीषण का वाक्‌सघर्ष, रावण से तिरस्कृत विभीषण का लका त्यागकर राम से आ मिलना (पर्व ५५) रावण की अक्षौहिणी आदि का वर्णन (पर्व ५६), लकानिवासिनी सेना की तैयारी तथा लंका से बाहर आने का वर्णन (पर्व ५७), नल और नील के द्वारा हस्त और प्रहस्त का मारा जाना (पर्व ५८), हस्त-प्रहस्त और नल-नील के पूर्व-भवों का वर्णन (पर्व ५९), अनेक राक्षसो का मारा जाना तथा राम और लक्ष्मण को दिव्यास्त्र एव सिंहवाहिनी और गरुडवाहिनी विद्याओं की प्राप्ति (पर्व ६०), सुग्रीव और भामण्डल का नागपाश से बाँधा जाना तथा राम-लक्ष्मण के प्रभाव से उनका बन्धनमुक्त होना (पर्व ६१), वानर और राक्षस-वंशी राजाओ का युद्ध, विभीषण-रावण-संवाद, योद्धाओ की रणोन्मादिनी चेष्टाएँ रावण द्वारा शक्ति चलाये जाने पर लक्ष्मण का मूच्छित होना एवं राम का विलाप

(पर्व ६२-६३), इन्द्रजित, मेघवाहन तथा भानुकर्ण के मरने की आशंका से रावण का दु:खी होना, लक्ष्मण-शक्ति के समाचार से सीता का दु:खी होना, हनूमान्-भामण्डल-अंगद का अयोध्यागमन, अयोध्या का क्षोभ, विशल्या का लक्ष्मण के पास आना एवं लक्ष्मण-विशल्या-विवाह (पर्व ६५), रावण द्वारा राम के पास दूत-प्रेषण, भामण्डल का क्रोध, रावण का बहुरूपिणी सिद्ध करने के लिए जिनालयों की सज्जा का आदेश तथा जिन पूजा (पर्व ६६-६९), राम-सेना में इस समाचार से खलबली मचना, अंगदादि द्वारा लंका में उपद्रव, रावण का विद्या सिद्ध कर लेना, सीता के ऊपर रावण की दया एवं मन मे पश्चात्ताप किन्तु फिर युद्ध का दृढ़ निश्चय (पर्व ७०-७२), भयंकर-युद्ध और रावण का लक्ष्मण द्वारा चक्ररत्न से वध (पर्व ७३-७६), रावण के परिजनों का विलाप, राम के द्वारा रावण का संस्कार, इन्द्रजितादि की मुक्ति तथा उनके द्वारा दीक्षा-ग्रहण (पर्व ७७-७८), राम-सीता-मिलन, विभीषण द्वारा रामादि का सत्कार एव छ: वर्ष तक राम का लका-निवास और मय मुनिराज का माहात्म्य (पर्व ८०) वर्णित हैं।

६—उत्तरचरित (पर्व ८१-१२३) : इसमें नारद द्वारा माताओं की अवस्था सुनकर राम का अयोध्यापुरी आगमन, विभीषण द्वारा कारीगरों से अयोध्या का नवीनीकरण, रामादि का भरतादि के द्वारा अपार स्वागत (पर्व ८१-८२), रामलक्ष्मण की विभूति का वर्णन, भरत का वैराग्य, त्रिलोकमण्डन हाथी का बिगडना, देशभूषण-कुलभूषण का आगमन एवं धर्मोपदेश (पर्व ८३-८५), मुनिराज से भवान्तर सुनकर भरत का दीक्षा-ग्रहण, कैकया का ३०० स्त्रियो के साथ आर्यिका होना (पर्व ८६), त्रिलोकमण्डन का समाधि धारण कर ब्रह्मोत्तर स्वर्ग मे देव होना एव भरत मुनि का अष्ट कर्मों का क्षय कर निर्वाण प्राप्त करना (पर्व ८७), राम और लक्ष्मण का राज्याभिषेक तथा उनके द्वारा अन्य राजाओं को राज्य देना (पर्व ८८), मधु-शत्रुघ्न युद्ध, चमरेन्द्र का कुपित होकर मथुरा मे महामारी फैलाना, शत्रुघ्न का अयोध्या जाना (पर्व ८९-९०), शत्रुघ्न के पूर्व-भवों का वर्णन (पर्व ९१), अर्हद्दत्त का वृत्तान्त (पर्व ९२), राम के लिए श्रीदामा और लक्ष्मण के लिए मनोरमा कन्या की प्राप्ति (पर्व ९३), राम और लक्ष्मण का अनेक विद्याधर राजाओं को वश करना (पर्व ९४), सीता के भले और बुरे स्वप्न का राम के द्वारा फल-कथन, सीता के लोकापवाद को सुनकर राम का खेद (पर्व ९५-९६), लक्ष्मण-कृतान्तवक्त्र सेनापति द्वारा सीता का दोहद-पूर्ति के बहाने से बन में छुड़वाना, सीता का विलाप (पर्व ९७), वज्रजङ्घ का सीता को लाना तथा पुण्डरीकपुर में सीता के अनगलवण और मदनांकुश—दो पुत्रों का जन्म (पर्व ९८-१००), लवणांकुश के विवाह, उनकी दिग्विजय तथा

राम लक्ष्मण से युद्ध, हनूमान् का लवणांकुश की ओर से लांगूलास्त्र से लड़ना, पिता-पुत्र-परिचय (पर्व १०१-१०३), सीता की अग्नि-परीक्षा और दीक्षा (पर्व १०४-१०५), राम-लक्ष्मण-सीता के भवान्तरों का वर्णन (पर्व १०६), कृतान्त-वक्त्र का दीक्षाग्रहण (पर्व १०७), लवणाकुश-चरित (पर्व १०८), सीता का प्रतीन्द्र होना (पर्व १०९), लक्ष्मण के पुत्रों का दीक्षा-ग्रहण (पर्व ११०) वज्रपात से भामण्डल की मृत्यु (पर्व १११), राम-लक्ष्मण का विलास, हनूमान का दीक्षा-ग्रहण (पर्व ११२-११३), लक्ष्मणमरण, राम का मोह, विभीषणादि के समझाने पर भी राम का लक्ष्मण के शव को न छोड़ना, छः मास बाद दाह-संस्कार करना (पर्व ११४-११८) राम का दीक्षा ग्रहण करके अविचल तपस्या मे केवली होना तथा निर्वाण-लाभ, ग्रन्थ-माहात्म्य (पर्व ११९-१२३) निबद्ध हैं।

इस विधि मे रविषेण ने राम-कथा को क्रमबद्ध करके प्रस्तुत किया है। कथा कही विच्छिन्न नही है। हाँ, शास्त्रार्थ-वर्णन, धर्मोपदेश तथा नामावली-वर्णन में कही-कही जी नही रम पाता।

पौराणिक-चरित-महाकाव्य. 'पद्मपुराण' एक स्वस्थ्य 'पौराणिक-चरित-महाकाव्य' है। द्वितीय अध्यायोक्त पौराणिक काव्य एवं चरितकाव्य के लक्षण इसमे पूर्णतया घटते हैं।

वस्तुतः ये 'पौराणिक चरितकाव्य' आदि भेद तो बहुत बाद मे कल्पित किये गये हैं। रविषेण का समय सप्तम शताब्दी ई० का उत्तरार्द्ध है, तब तक ये भेद प्रचलित नही हुए थे। तब तक सस्कृत के पद्यात्मक श्रव्य काव्य के प्रधानतः दो ही भेद थे--प्रबन्ध और मुक्तक। प्रबन्ध के महाकाव्य और खण्डकाव्य-दो भेद थे। भामह (५वी श० ई०) और दण्डी (६ठी श० ई०) ने महाकाव्य की कसौटी रविषेण के समय तक निर्धारित कर दी थी किन्तु उन्होने पौराणिक या रोमांसिक आदि भेद नही किया था। अतः उस काल में रविषेण का यह काव्य शुद्ध महाकाव्य का अधिकारी था और उस दृष्टिकोण से आज भी है। जहाँ तक आज के आलोचको द्वारा निर्णीत १–महदुद्देश्य, महत्प्रेरणा और महती काव्य-प्रतिभा, २–गुरुत्व, गाम्भीर्य और महत्त्व, ३–महत्कार्य और युग-जीवन का समग्र-चित्रण, ४–सुसघटित जीवन्त कथानक, ५–महत्त्वपूर्ण नायक तथा अन्य पात्र, ६–गारिमामयी उदात्त शैली, ७–तीव्र प्रभावान्विति और गम्भीर रसव्यजना एव, ८–अनवरुद्ध जीवनी-शक्ति और सशक्त प्राणवत्ता–महाकाव्य के इन तत्वो के आधार पर 'पद्मपुराण' की परीक्षा की जाती है,तो ये भी उसमें स्पष्ट परिलक्षित होते हैं[४६] जिनका उल्लेख हम पूरी तरह से अग्रिम अध्यायो में

४६ हिन्दी-साहित्य-कोश, भाग १, पृ० ६२७

करेंगे। यहाँ संक्षिप्त संकेतमात्र करते हैं।

'महाकाव्य' के लक्षण में यद्यपि दण्डी और विश्वनाथ प्रायः समान मत ही प्रस्तुत करते हैं तथापि हम यहाँ कालक्रम को दृष्टि में रखते हुए दण्डी का ही 'महाकाव्य-लक्षण' उद्धृत करके उस पर 'पद्मपुराण' को कसेंगे। 'दण्डी' ने महाकाव्य का स्वरूप इस प्रकार बताया है :—

"सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम्।
आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्॥
इतिहासकथोद्भूतमितरद् वा सदाश्रयम्।
चतुर्वर्गफलायत्तं चतुरोदात्तनायकम्॥
नगरार्णवशैलर्तु चन्द्रार्कोदयवर्णनैः ।
उद्यानसलिलक्रीडामधुपानरतोत्सवैः ॥
विप्रलम्भैर्विवाहैश्च कुमारोदयवर्णनैः।
मन्त्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयैरपि ॥
अलङ्कृतमसंक्षिप्तं रसभावनिरन्तरम्।
सर्गैरनतिविस्तीर्णैः श्रव्यवृत्तैः सुसन्धिभिः॥
सर्वत्र भिन्नवृत्तान्तैरुपेतं लोकरंजकम्।
काव्यं कल्पान्तरस्थायि जायते सदलङ्कृति॥"[४७]

'पद्मपुराण' मे इन सभी लक्षणों का पालन हुआ है। वह सर्गों और अवान्तर-प्रकरणों (पर्वनामक) मे विभक्त है। उसके प्रारम्भ मे मगलाचरण है। इतिहास-प्रसिद्ध रामकथा का उसमे नवीन दृष्टिकोण से प्रतिपादन है। चतुर्वर्ग की प्राप्ति का वह साधन है जैसा कि उसके माहात्म्य से सिद्ध होता है। इसके नायक उदात्त (त्रिषष्टिशलाकापुरुषो मे अन्यतम) हैं। नगरादि के प्रचुर हृदयंगम वर्णन हैं (जिनका हम कलापक्ष के अन्तर्गत विस्तृत उल्लेख करेंगे)। अलकारों का उसमें मजुल समाहार है, कथानक उसका लम्बा है, रसव्यजना उसमें वैभवशालिनी है। कुछ सर्गों (पर्वों) को छोड़कर उनका विस्तार समुचित है। सर्गान्त में छन्द बदले हुए हैं। कोई सर्ग नानावृत्तमय भी है। इन सभी के उदाहरण प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के 'भावपक्ष-कलापक्ष'-शीर्षकों में द्रष्टव्य है।

जहाँ तक आधुनिक आलोचकों द्वारा मान्य पूर्वोक्त आठ तत्वों का प्रश्न है— वे सभी इसमें हैं। इसका उद्देश्य जनता की मिथ्या मान्यताओं का खण्डन एव उसमें अपने दृष्टिकोण से सद्धर्म का प्रचार करना है जिसके लिए व्यजनान्त-स्व-

४७. काव्यादर्श, १।१४-१९

रान्त-वाचिक-लक्षक व्यंजक-शब्द-अलंकार आदि समस्त काव्य तत्वों का प्रयोग हुआ है। धार्मिक दृष्टि से इसका अपना महत्व है। अनीति का लोप एवं शान्ति-लाभ इसका महत्कार्य है, समाज की प्रवृत्तियों का इसमें चित्रण है जिसको विविध उपाख्यानों में देखा जा सकता है। सुव्यवस्थित कथानक है जिसका पीछे उल्लेख किया जा चुका है। इसके नायक तथा अन्य प्रधान पात्र महत्वपूर्ण हैं, राम-लक्ष्मण-रावण त्रिषष्टिशलाका-पुरुषों में परिगणित हैं। पात्रों के चरित्रों पर आगे चरित्र-चित्रण वाले अध्याय में पूरा विचार किया जायेगा। इसकी शैली गरिमामयी है जिसमें भाषा छन्द अलंकार आदि सभी उत्कृष्ट रूप मे अवस्थित है जिनका वर्णन आगे किया जायेगा। तीव्रप्रभान्विति और रसव्यंजना का तो यह हाल है कि शान्त-शृंगार वीर-रसो मे तो पाठक पद-पद पर मस्ती भरी डुबकियाँ लेता ही है, अन्य रसो के उदाहरणों में भी वह पर्याप्त रमता है। इनके उदाहरण हम भाव-पक्ष के अन्तर्गत देंगे। इसी प्रकार उसकी अनवरुद्ध प्राणवत्ता मे भी सन्देह नही है।

भाव यह है कि 'पद्मपुराण' को यदि 'पौराणिक-चरितकाव्य' की दृष्टि से देखा जाय तो यह पौराणिक चरितकाव्य है, यदि महाकाव्य के प्राचीन एवं अर्वाचीन दृष्टिकोणो से देखा जाय तो यह सफल महाकाव्य है और यदि 'पुरातन पुराण स्यात्तन्महन्महदाश्रयात्' वाली जैन मान्यता के अनुसार देखा जाय तो यह 'पुराण' है।

धार्मिक आवरण : 'पद्मपुराण' का जैन-धर्म के तत्त्वो के निरूपण एवं जैनधर्म के प्रचार के दृष्टिकोण से भी महत्त्व है। दिगम्बर-जैन-धर्म का यह 'धर्मग्रन्थ' है।

भगवत्कुन्दकुन्द—उमास्वाति आदि के जितने भी ग्रंथ हैं उन सभी का निचोड़ 'पद्मपुराण' में है जो विविध मुनियो के उपदेशों के रूप मे प्रकट हुआ है। नारद शास्त्रार्थ मे जैन धर्म का पोषण एवं परधर्म का घर्षण किया गया है। साराश यह है कि तत्कालीन धार्मिक दशा का यह पूर्ण प्रतिनिधित्व सा करता दिखाई देता है।

बौद्धिकता:—'पद्मपुराण' मे 'रामायण' आदि की तर्क के दृष्टिकोण के अति मानवीय या असम्भव लगने वाली घटनाओ को तर्क सम्मत बनाया गया है। इस-लिए इसमे इन्द्र, यम आदि देवता न होकर मनुष्य हैं। लागूल नामक हनूमान् का शस्त्र-विशेष है, पूँछ नही। इसी प्रकार राक्षस और वानर भी वंश विशेष है, राक्षस और बन्दर नही। इसी प्रकार अनेक स्थलो पर बौद्धिक व्याख्याएँ हैं जिनका उल्लेख हम 'पद्मपुराण' के कथानक का विवेचन करते समय करेंगे।

'पद्मपुराण' और 'पउमचरिय':

जैन-रामकथा-साहित्य मे प्राकृत मे विमलसूरि का 'पउमचरिय', संस्कृत में रविषेण का 'पद्मचरित' या 'पद्मपुराण' और अपभ्रंश मे स्वयभू का 'पउमचरिउ' सबसे प्राचीन रचना है। ग्रंथ में निर्दिष्ट समय के अनुसार विमलसूरि का 'पउमचरिय' सर्वप्राचीन सिद्ध होता है। विमलसूरि के अनुसार यह वि० सं० ६० की रचना है।

उपर्युक्त तीनों ग्रंथो की कथावस्तु और अनेक स्थलो पर शैली भी एक सी है।[४८] इनमे स्वयंभू का 'पउमचरिउ' सबसे बाद की रचना सिद्ध हो चुका है। अन्तः-साक्ष्य और बहिःसाक्ष्य— दोनो ही इसके पोषक है। स्वयम्भू ने रविषेण का नाम स्मरण किया है और रविषेणोक्त रामकथा-परम्परा का ही कथन किया है।

वद्धमाण-मुह-कुहर-विणिग्गय। रामकहाणइ एह कमागय ॥

० ० ०

एह राम कह-सरि सोहंती। गणहर देवहिं दिट्ठ वहती ॥
पच्छइ इंदभूइ आयरिए। पुणु धम्मेण गुणालंकरिएं ॥
पुणु एवहिं संसाराराए। कित्तिहरेण अणुत्तर वाएं ॥
पुणु रविसेणायरिय-पसाए। बुद्धिए अवगाहिय कइराएं ॥[४९]

रविषेण ने भी यही आधार अपने ग्रथ का बताया है.—

वर्द्धमानजिनेन्द्रोक्तः सोऽयमर्थो गणेश्वरम्।
इन्द्रभूति परिप्राप्त. सुधर्मं धारणीभवम् ॥
प्रभव क्रमत कीर्त्ति ततोऽनुत्तरवाग्मिनम्।
लिखित तस्य सम्प्राप्य रवेर्यत्नोऽयमुद्गतः ॥

तथा

निर्दिष्टं सकलैर्नतेन भुवनैः श्रीवर्द्धमानेन यत्,
तत्त्व वासवभूतिना निगदितं जम्बोः प्रशिष्यस्य च।
शिष्येणोत्तरवाग्मिना प्रकटित पद्मस्य वृत्तं मुने.
श्रेय. साधु समाधिवृद्धिकरणं सर्वोत्तम मगलम् ॥[५०]

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वयभू का आदर्श रविषेण कृत 'पद्मचरित' या 'पद्मपुराण' था।

---

४८ देखिए-हरिवल्लभ चुनीलाल भायाणी द्वारा सम्पादित 'पउमचरिउ,' सिंघी-जैन-ग्रथमाला, ग्रथाक ३४, सिन्धी-जैन-शास्त्र-शिक्षापीठ, भारतीय-विद्या-भवन, बम्बई, वि०स २००९ परिशिष्ट भाग।

४९. पउमचरिउ १।२।१

५०. पद्मपुराण १।४१-४२ तथा वही १२३।१६७

किन्तु रविषेण का आधार क्या था? पं० नाथूराम प्रेमी ने सिद्ध किया है कि रविषेण ने विमलसूरि के ग्रंथ का संस्कृत-छायानुवाद किया है।[५१] उनके अनुसार— "...यह स्पष्ट है कि 'पउमचरिय' 'पद्मपुराण' से पुराना है और दोनों ग्रथों का अच्छी तरह मिलान करने से मालूम होता है कि 'पद्मपुराण' के कर्ता के सामने 'पउमचरिय' अवश्य मौजूद था। 'पद्मपुराण' एक तरह से प्राकृत 'पउमचरिय' का ही पल्लवित किया हुआ संस्कृत छायानुवाद है। 'पउमचरिय' अनुष्टुप् श्लोकों के प्रमाण से दस हजार है और 'पद्मचरित' अठारह हजार। अर्थात् प्राकृत से लगभग पौने दो गुना है। प्राकृत ग्रन्थ की रचना आर्या छन्द मे की गयी है और संस्कृत की अनुष्टुप् छन्द मे। इसलिए 'पद्मपुराण' मे पद्य तो शायद दुगने से भी अधिक होंगे। छायानुवाद कहने के कुछ कारण—

१— दोनो का कथानक बिलकुल एक है और नाम भी एक है।

२— पर्वों या उद्देश्यो तक के नाम दोनों के प्राय एक से हैं।

३— हर एक पर्व या उद्देश्य के अन्त मे दोनों ने छन्द बदल दिये है।

४— 'पउमचरिय' के उद्देश्य के अन्तिम पद्य में 'विमल' और 'पद्मचरित' के अन्तिम पद्य मे 'रवि' शब्द अवश्य आता है। अर्थात् एक विमलांक है और दूसरा रव्यक।

५— 'पद्मचरित' में जगह-जगह प्राकृत आर्याओं का शब्दश. अनुवाद दिखाई देता है।

पल्लवित कहने का कारण यह है कि मूल मे जहाँ स्त्री-रूप-वर्णन, नगर-उद्यान-वर्णन आदि प्रसग दो चार पद्यो मे ही कह दिये गये है वहाँ अनुवाद मे ड्योढ़े-दूने पद्य लिखे गये हैं।

'पउमचरिय' के कर्त्ता ने चौथे उद्देश्य मे ब्राह्मणों की उत्पत्ति बतलाते हुए कहा है कि जब भरत चक्रवर्ती को मालूम हुआ कि वीर भगवान् के अवसान के बाद ये लोग कुतीर्थी पाखण्डी हो जाएगे और झूठे शास्त्र बनाकर यज्ञो मे पशुओं की हिंसा करेंगे, तब उन्होंने उन्हें शीघ्र ही नगर से निकाल देने की आज्ञा दे दी, और इस कारण जब लोग उन्हें मारने लगे, तब ऋषभदेव भगवान् ने भरत को यह कहकर रोका कि हे पुत्र, इन्हे 'मा हणमा हण-मत मारो, मत मारो', तब से उन्हे 'माहण' कहा जाने लगा।

संस्कृत 'ब्राह्मण' शब्द प्राकृत में माहण (ब्राह्मण) हो जाता है। इसलिए प्राकृत मे तो उसकी ठीक उपपत्ति उक्त रूप से बतलाई जा सकती है। परन्तु

---

५१. 'जैन-साहित्य और इतिहास,' पृ० २७४-२७६

संस्कृत में ठीक नहीं बैठती। क्योंकि संस्कृत 'ब्राह्मण' शब्द में से 'मत मारो' जैसी कोई बात खींच-तान कर भी नहीं निकाली जा सकती। संस्कृत 'पद्मपुराण' के कर्त्ता के सामने यह कठिनाई अवश्य आई होगी, परन्तु वे लाचार थे। क्योंकि मूल कथा तो बदली नहीं जा सकती और संस्कृत के अनुसार उपपत्ति बिठाने की स्वतन्त्रता कैसे ली जाय? इसलिए अनुवाद करके ही उनको सन्तुष्ट होना पड़ा—

यस्मान्मा हनन पुत्र कार्षीरिति निवारितः।
ऋषभेण ततो याता 'माहणा' इति ते श्रुतिम्॥[५२]

(पद्म० ४।१२२)

इस प्रसंग से यही जान पड़ता है कि प्राकृत ग्रन्थ से ही संस्कृत के ग्रन्थ की रचना हुई है।

परन्तु इसके विरुद्ध कुछ लोगों ने तो यह कहने तक का साहस किया है कि संस्कृत से प्राकृत में अनुवाद किया गया है। परन्तु मेरी समझ में वह कोरा साहस ही है। प्राकृत से संस्कृत में बीसों ग्रन्थों के अनुवाद हुए हैं।[५३] बल्कि सारा का सारा प्राचीन जैन साहित्य ही प्राकृत में लिखा गया था। भगवान् महावीर की दिव्य ध्वनि भी अर्धमागधी प्राकृत में ही हुई थी। संस्कृत में ग्रन्थ रचने की ओर तो जैनाचार्यों का ध्यान बहुत पीछे गया है और संस्कृत से प्राकृत में अनुवाद किये जाने का तो शायद एक भी उदाहरण नहीं है।

इसके सिवाय प्राकृत पउमचरिय की रचना जितनी सुन्दर, स्वाभाविक और आडम्बररहित है उतनी पद्मचरित की नहीं है। जहाँ-जहाँ वह शुद्ध अनुवाद है वहाँ तो खैर ठीक है, परन्तु जहाँ पल्लवित किया गया है वहाँ अनावश्यक रूप से बोझिल हो गया है। उदाहरण के लिए अजना और पवनजय के समागम को ले लीजिये। प्राकृत में केवल चार-पाँच आर्या छन्दों में ही इस प्रसंग को सुन्दर ढंग से कह दिया गया है, परन्तु संस्कृत में बाईस पद्य लिखे गये हैं और बड़े विस्तार से आलिंगन-पीडन-चुम्बन, दशनच्छद, नीवी-विमोचन, सीत्कार आदि काम कलाएँ चित्रित की गयी हैं जो अश्लीलता की सीमा तक पहुँच गयी है।

प्रेमी जी इसे विक्रम संवत् ६० की रचना ही स्वीकार करते हैं।

---

५२. मा हण सु पुत्त एए ज उसभजिणेण वारिओ भरहो।
तेण इमे सयल च्चिय वुच्चन्ति य 'माहणा' लोए॥ (पउमचरिय ४।८४)

५३. उदाहरणार्थ—भगवती-आराधना और पंच-संग्रह के अमितगतिसूरिकृत संस्कृत अनुवाद, देवसेन के भावसंग्रह का वामदेवकृत संस्कृत अनुवाद, अमरकीर्ति के 'छक्कम्मोवएस' का संस्कृत 'षट्कर्मोपदेश-माला'—नामक अनुवाद, सर्वनन्दि के लोकविभाग का सिंहसूरिकृत संस्कृत अनुवाद आदि।

प्रेमी जी के समान ही डा० कामिल बुल्के भी लिखते हैं—"रविषेण ने मौलिकता का किंचित् भी प्रदर्शन नहीं किया है। उनकी समस्त रचना 'पउमचरिय' का पल्लवित छायानुवाद मात्र प्रतीत होती है।[५४]

किन्तु यहाँ यह प्रश्न उठता है कि यदि रविषेण ने विमलसूरि के 'पउमचरिय' का अनुवाद किया है तो उनका नाम क्यों नहीं दिया ? एक जैनाचार्य को अपने उपजीव्य ग्रन्थ के प्रणेता जैनाचार्य का कृतज्ञतावश उल्लेख अवश्य करना चाहिए था। किन्तु न तो रविषेण ने और न स्वयंभू ने ही 'विमलसूरि' को स्मरण किया है। उन्होंने वर्द्धमान-गणधर-इन्द्रभूति-सुधर्म-कीर्तिधर का उल्लेख किया है। ऐसी दशा में यह विचारणीय हो जाता है कि क्या वस्तुत: विमलसूरि रविषेण से पूर्व हुए थे और क्या उनका ग्रन्थ ही 'पद्मपुराण' का उपजीव्य है ? क्या रविषेण ने अपने ग्रन्थ में कुछ भी मौलिकता नहीं दिखाई ? क्या एक अनुवाद मात्र होने से उनकी रचना का कोई विशिष्ट महत्व नहीं ? इन सभी प्रश्नों का समाधान ढूँढने का प्रयत्न हम करेंगे।

विमलसूरि का रविषेण ने नाम नहीं लिया—यह कोई अधिक आश्चर्य की बात नहीं है। दोनों के आधार भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। दूसरे, रविषेण के सामने यदि कोई प्राकृत 'पउमचरिय' रहा हो तो वह उस समय विमलसूरि के नाम से प्रसिद्ध न रहा हो। हो सकता है कि 'कीर्तिधर' नामक जिन पूर्ववर्ती ग्रन्थकार का उन्होंने उल्लेख किया है वह विमलसूरि का ही अपर नाम हो अथवा कीर्तिधर के ग्रन्थ को विमलसूरि नामक किसी विद्वान् ने कुछ नवीन रूप देकर अपने नाम से कालान्तर में प्रसिद्ध कर दिया हो। उपजीव्य राम-कथाकारों का निरूपण करते हुए रविषेण और स्वयंभू ने 'कीर्ति'[५५] या 'कित्तिहर'[५६] का भी उल्लेख किया है किन्तु विमलसूरि ने 'आखडलभूइ'[५७] (आखण्डल = इन्द्र-भूति)' का ही किया है। विमलसूरि की प्रशस्ति में 'कीर्तिधर' नाम न आकर 'विमल' आया है। शेष आधार समान है। अतः यह सम्भावना असम्भव जान नहीं पड़ती कि 'कीर्तिधर' विमलसूरि' का ही नाम हो।

अस्तु यह मान लेने पर भी कि रविषेण का ग्रन्थ विमलसूरि के आधार पर लिखा गया है तो भी रविषेण के 'पद्मपुराण' का अपना महत्त्व अक्षुण्ण रहता है। प्रायः कथानक की एकता तो अनेक काव्यों में होती है किन्तु इसी आधार पर कवि

५४ रामकथा, पृ० ६८

५५ पद्म० १।४१-४२

५६. पउमचरिउ १।२।१

५७. पउमचरिय १२३।१६७

की रचना को 'अमौलिक' कहना अधिक युक्तिसगत नही है। 'पद्मपुराण' (पद्मचरित), 'पउमचरिय' और 'पउमचरिउ' का कथानक तो समान ही है किन्तु यह नही कहा जा सकता कि ये तीनो मौलिक नही है। कथानक मात्र के आधार पर मौलिकता का निर्धारण नही होता, वह उसकी प्रतिपादन-शैली से भी होता है। माना कि इन तीनों का कथानक समान है; किन्तु रविषेण की रचना की कलापक्ष-गत मौलिकता अक्षुण्ण है। साथ ही उसके वर्णनो, जिन पर प्रेमी जो ने अनावश्यक रूप से बोझिलता का आरोप लगाया है, से एक सास्कृतिक अध्ययन का द्वार खुलता है जिसका परिचय हम उसका 'सास्कृतिक अध्ययन' करते हुए देगे। 'पद्मपुराण' के सम्वाद, लोक-शास्त्र काव्याद्यवेक्षण का प्रतिफलन, भाषा-अधिकार एव यथास्थान कथानक मे छोटे-छोटे मनोरम परिवर्तन उसको अपने ढग का अनुपम ग्रन्थ सिद्ध करते है।

'पद्मपुराण' का महत्त्व कई दृष्टियों से है। वह जैन-धर्म का सवप्रसिद्ध ग्रथ है। वह जैन-धर्म का सर्वप्रथम रामकथा-विषयक सस्कृत-महाकाव्य है। उसमे पाण्डित्य का चमत्कार है, वह काव्यात्मकता के उत्कर्षण का मजुल निदर्शन है, वह वर्णनो का भण्डार है, वह उपाख्यानों का आकर है, वह तत्कालीन भारतीय सस्कृति का अध्ययन करने का प्रमुख साधन है। हिन्दी खड़ी बोली के इतिहास में इस 'पद्मचरित' का महत्वपूर्ण स्थान है क्योकि सं० १८१८ में दौलतराम ने इसका भाषा मे अनुवाद किया था।[५८]

जैन रामकथा के स्रोत

क्योंकि 'पद्मपुराण' जैन-रामकथा का महनीय ग्रथ है इसलिए जैन रामकथा के स्रोत और जैन राम-काव्य-परम्परा की सक्षिप्त चर्चा प्रसक्तानुप्रसक्तया की जा रही है।

रामकथा भारतवर्ष की सबसे अधिक लोकप्रिय कथा है और इस पर विपुल साहित्य-निर्माण किया गया है। हिन्दू, बौद्ध और जैन—इन तीनो ही प्राचीन सम्प्रदायो में यह कथा अपने अपने ढग से लिखी गयी है और तीनो ही सम्प्रदाय वाले राम को अपना-अपना महापुरुष मानते हैं।

अभी तक अधिकांश विद्वानो का मत यह है कि इस कथा को सबसे पहले वाल्मीकि मुनि ने लिखा और सस्कृत का सबसे पहला महाकाव्य (आदिकाव्य) 'वाल्मीकिरामायण' है।[५९] इस प्रकार जैन-रामकथा का भी मूल स्रोत तो

५८. रामकथा पृ० ६८

५९. जैन-साहित्य और इतिहास पृ० २७७

वाल्मीकि-रामायण ही ठहरता है किन्तु जैन रामकथा का दृष्टिकोण उससे पृथक् है। हमें यहाँ यह देखना है कि आर्य-रामकथा से पृथक् दृष्टिकोण वाली जैन राम कथा का कहाँ से और कैसे यथावस्थित रूप में प्रचलन हुआ ?

जैन-रामकथा-साहित्य पर दृक्पात करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि 'जैन-रामकथा के दो भिन्न रूप प्रचलित हैं। श्वेताम्बर सम्प्रदाय में तो केवल विमलसूरि की रामकथा का प्रचार है लेकिन दिगम्बर सम्प्रदाय में इसके दो रूप मिलते हैं अर्थात् विमलसूरि और गुणभद्र दोनों की रामकथा प्रचलित है यद्यपि विमलसूरि की परम्परा को अधिक महत्त्व मिला है'[६०] इन्हीं दो परम्पराओं की भूमिका पर जैन रामकथा सम्बन्धी विशाल वाङ्मय-भवन खड़ा हुआ है।

विमलसूरि की परम्परा . विमलसूरि ने 'पउमचरिय' (प्राकृत जैन महा-राष्ट्री) के प्रणयन से सर्वप्रथम लोकप्रिय रामकथा को जैनधर्म के सांचे मे ढालने का प्रयत्न किया है। कवि ने इसके मूल स्रोत का उल्लेख करते हुए कहा है कि यह 'पद्मचरित' आचार्यों की परम्परा से चला आ रहा था और नामावली निबद्ध था :—

"नामावलिय निबद्ध आयरियपरम्परागयं सव्वं।
वोच्छामि पउमचरियं अहाणुपुव्वि समासेण।।"[६१]

इसका अर्थ यह हो सकता है कि रामचन्द्र का चरित्र उस समय तक केवल नामावली के रूप मे था अर्थात् उसमें कथा के प्रधान पात्रों के, उनके माता-पिताओं, स्थानों और भवान्तरो आदि के नाम ही होंगे। वह पल्लवित कथा के रूप मे न होगा और उसी को विमलसूरि ने विस्तृत चरित के रूप में रचना की होगी।[६२] 'नामावली' शब्द से सम्भवत. ६३ महापुरुषों की किसी प्राचीन नामा-वली की ओर सकेत है।[६३]

विमलसूरि का काल विवादास्पद है। विभिन्न विद्वानों ने प्रथम श० ई० से ६ ठी श० ई० तक उनका काल माना है।[६४]

---

६० 'रामकथा' (कामिलबुल्के) पृ० ६७

६१ 'पउमचरिय' (प्राकृत टैक्स्ट सोसाइटी, वाराणसी, सन् ई० १९६२) १।८

६२ नाथूराम प्रेमी—'जैन साहित्य और इतिहास,' पृष्ठ ९८०

६३ जैन मान्यता के अनुसार प्रत्येक कल्प मे त्रिषष्टि (६३) महापुरुष होते हैं—२४ तीर्थंकर (जैन धर्मोपदेशक), १२ चक्रवर्ती (भारत के सम्राट), ९ बलदेव, ९ वासुदेव तथा ९ प्रतिवासुदेव। बलदेव, वासुदेव तथा प्रतिवासुदेव सदैव समकालीन होते है। राम, लक्ष्मण और रावण क्रमश अष्टम बलदेव, वासुदेव तथा प्रतिवासुदेव है।

६४ डा० विण्टरनित्ज़, प० नाथूराम प्रेमी आदि कुछ विद्वान् तो 'पउमचरिय' मे निर्दिष्ट समय को ठीक मानते हुए विमलसूरि को प्रथम श० ई० का ही स्वीकार करते हैं किन्तु डा० हर्मन

विमलसूरि की परम्परा का दूसरा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है—रविषेण का 'पद्मपुराण' जो ६७७-७८ ई० मे रचा गया है एव जिसका सक्षिप्त परिचय हम इसी अध्याय मे पहले दे चुके हैं। वही इसका सक्षिप्त कथानक तथा रविषेण की मौलिकताओ का उल्लेख किया जा चुका है। विस्तृत कथानक का विवेचन हम आगे करेंगे।

"आगे चलकर जैन कवियो ने रविषेण का अनुकरण किया है, उनकी रचनाओं में प्राय: कथानक का कोई भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं है।[६५]"

विमलसूरि तथा रविषेण की रामकथा-परम्परा आगे चलकर प्राकृत-संस्कृत अपभ्रंश आदि में फलती-फूलती रही जिसकी सूची इस प्रकार दी जा सकती है:—

(१) **प्राकृत** :

१— विमलसूरि कृत 'पउमचरिय' (पहली श० ई० से पाँचवी श० ई०)

२— शीलाचार्यकृत 'चउपन्नमहापुरिसचरिय' के अन्तर्गत 'रामलक्खणचरिय' (नवी श० ई०) (यह रामकथा विमलसूरि की परम्परा के अनुसार होने पर भी वाल्मीकीय कथा से प्रभावित है।)

३— भद्रेश्वर कृत कहावली (११ वी श० ई०) के अन्तर्गत 'रामायणम्'

४— भुवनतुग सूरिकृत 'सीयाचरिय' तथा 'रामलक्खणचरिय'

(२) **संस्कृत** .

१— आचार्य रविषेण कृत 'पद्मपुराण' या 'पद्मचरित' (६७७-७८ ई०)

२— हेमचन्द्रकृत 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित' (१२ वी श० ई०) के अन्तर्गत 'जैन रामायण' (कलकत्ता स० १९३०)

३— हेमचन्द्रकृत योगशास्त्र की टीका के अन्तर्गत 'सीतारावणकथानकम्'

४— जिनदासकृत 'रामायण' अथवा 'रामदेवपुराण' (१५ वी श० ई०) (देखिये—एम०विण्टरनिट्ज—हिस्ट्री आफ इण्डियन लिट्रेचर, भाग २, पृ० ४९६)

५— पद्मदेवविजयगणिकृत 'रामचरित' (१६ वी श० ई०), (देखिये—राजेन्द्रलाल मित्र, नोटिसस सस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स, भाग १०, पृ० १३४ और भण्डारकर-रिपोर्ट १८८२-८३, पृ० ८२)

याकोबी; 'पउमचरिय' की रचना शैली, भाषा आदि मे इसे तीसरी-चौथी श० ई० की रचना मानते हैं। कुछ विद्वान् डा० कीथ आदि इसमे 'दीनार' और ज्योतिष शास्त्र सम्बन्धी कुछ ग्रीक भाषा के शब्दों के पाये जाने के कारण इसे ३०० ई० या उसके भी बाद की रचना बताते हैं। श्री दीवान बहादुर केशवलाल ध्रुव तो इसे बहुत बाद की रचना बताते हैं।

६५. 'रामकथा', कामिलबुल्के—पृ० ६८

६—सोमसेनकृत 'रामचरित' (१६वीं श० ई०), (इसकी हस्तलिपि जैन-सिद्धांत-भवन, आरा में सुरक्षित है।)

७—आचार्य सोमप्रभकृत 'लघुत्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित'

८—मेघविजयगणिवरकृत 'लघुत्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित' (१७वीं श० ई०)

इन रचनाओं के अतिरिक्त 'जिनरत्नकोष' में धर्मकीर्ति, चन्द्रकीर्ति, चन्द्रसागर, श्रीचन्द्र, पद्मनाभ आदि द्वारा रचित विभिन्न 'पद्मपुराण' अथवा 'रामचरित्र' नामक ग्रन्थों का उल्लेख है। 'सीताचरित्र' के तीन रचयिताओं के नामों का उल्लेख है—ब्रह्मनेमिदत्त, शान्तिसूरि तथा अमरदास। उपर्युक्त सामग्री में अधिकांश सामग्री अप्रकाशित है।

दसवीं शताब्दी के हरिषेणकृत 'कथाकोष' में 'रामायण कथानकम्' (नं० ८४) तथा 'सीताकथानकम्' (न० ८६) पाया जाता है। इस अन्तिम रचना में विमलसूरि के अनुसार सीता की अग्नि-परीक्षा वर्णित है किन्तु 'रामायण कथानकम्' (५७ श्लोक) प्रायः वाल्मीकीय कथा पर निर्भर है। रामचन्द्र मुमुक्षुकृत 'पुण्याश्रवकथाकोष' (१३३१ ई०), हिन्दी अनुवाद, निर्णय सागर प्रेस, मुबई, १९०७ ई० में जो लव-कुश की कथा मिलती है, वह भी विमलसूरि की परम्परा पर निर्भर है। हरिभद्रकृत 'धूर्ताख्यानम्' (८वीं श० ई०) तथा अमितगतिकृत 'धर्मपरीक्षा' (११ वीं श० ई०) में वाल्मीकिरामायण में वर्णित हनूमान् के समुद्रलंघनादि को असम्भव तथा उपहास्यास्पद बताया गया है। 'शत्रुंजयमाहात्म्य' के नवें सर्ग में रामकथा विमलसूरि और रविषेण के अनुसार है किन्तु कैकेयी राम और लक्ष्मण दोनों के वनवास का वर माँग लेती है (१२ वीं० श० ई०)।

(३) अपभ्रंश :

१—स्वयभू देवकृत 'पउमचरिउ' अथवा 'रामायणपुराण' (८ वीं श० ई०)
(भारतीय विद्याभवन, बम्बई सं० २००६)

२—रइधूकृत 'पद्मपुराण' अथवा 'बलभद्रपुराण' (१५ वीं० श० ई०)।
(दे० हरिवंश कोछड़, 'अपभ्रंश-साहित्य')

(४) कन्नड :

१—नागचन्द्र (अभिनव पम्प)-कृत 'पम्परामायण' अथवा 'रामचन्द्रचरितपुराण' (११ वीं० श० ई०)। यह रचना कन्नड़ भाषा के कई रामचरित सम्बन्धी ग्रन्थों का आधार है।
(दे० इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली, भाग २५, पृ० ५७४-९४)

२—कुमुदेन्दुकृत 'रामायण' (१६ वीं श० ई०)
३—देवप्पकृत 'रामविजयचरित' (१६ वी श० ई०)
४—देवचन्द्रकृत 'रामकथावतार' (१८ वीं० श० ई०)
५—चन्द्रसागरवर्णीकृत 'जिनरामायण' (१६ वीं श० ई०)

विमलसूरि तथा रविषेण की रामकथा और वाल्मीकि की रामकथा की तुलना करने पर यह सहज ही प्रतिभासित हो जाता है कि 'वाल्मीकि-रामायण' ही इस परम्परा का मूल स्रोत है। उसी के विभिन्न तत्त्वों में जैनधर्म के अनुसार नये मोड़ देकर इस जैन-रामकथा का विकास किया गया है।

गुणभद्र की परम्परा :

जैन राम-कथा का दूसरा रूप हमे पहले-पहल गुणभद्रकृत 'उत्तरपुराण' में मिलता है। गुणभद्र जिनसेन के शिष्य तथा कर्नाटक प्रान्त के निवासी थे। इन्होंने अपने गुरु के 'आदिपुराण' के अन्तिम १६२० श्लोक रचकर उसे समाप्त कर दिया और उस के बाद 'उत्तरपुराण' अर्थात् 'त्रिषष्टिलक्षणमहापुरुष' का द्वितीय भाग भी लिखा है। इस 'उत्तरपुराण' के अन्तर्गत आठवें बलदेव, नारायण तथा प्रतिनारायण (अर्थात् राम-लक्ष्मण-रावण) का चरित्र ६७ वे तथा ६८ वें पर्व में १११७ श्लोकों में वर्णित है (दे० स्याद्वादग्रथमाला, न० ८, इन्दौर सं० १६७५)। यह रामकथा विमलसूरि तथा वाल्मीकि के कथानक से बहुत भिन्न है। इसकी मुख्य विशेषता यह है कि इसमे सीता को रावण तथा मन्दोदरी की औरस पुत्री माना गया है। सीता-जन्म का यह रूप पहले पहल सघदास के 'वसुदेवहिंडी' मे प्रस्तुत किया गया है।

गुणभद्र का आधार बहुत कुछ अज्ञात है। किन्तु वे विमलसूरि तथा सघदास की रचनाओं अथवा उनकी परम्परा से अवश्य परिचित थे। जिनसेन अपने 'आदिपुराण' मे कवि परमेश्वर की 'गद्य-कथा' का उल्लेख करते हैं और उसे अपनी रचना का आधार मानते हे। गुणभद्र जिनसेन की रचना पूरी करते है। अतः बहुत सम्भव है कि ये भी कवि परमेश्वर की कथा पर निर्भर रहे हों। कवि परमेश्वर की रचना अप्राप्य है लेकिन तिब्बती रामायण तथा अन्य ग्रन्थों मे भी सीता मन्दोदरी की पुत्री मानी जाती है। अतः रामकथा का यह रूप सम्भवतः जनसाधारण मे प्रचलित हुआ होगा और कवि परमेश्वर या गुणभद्र ने उसे जैनधर्म के अनुरूप करके अपनी रचना में स्थान दिया होगा। श्री नाथूराम प्रेमी[६६]

६६. दे० जैन-साहित्य और इतिहास, पृ० २८२

गुणभद्र की रामकथा के आधार के विषय में इस प्रकार लिखते हैं—'हमारा अनुमान है कि गुणभद्र से बहुत पहले विमलसूरि ही के समान किसी अन्य आचार्य ने भी जैन धर्म के अनुकूल सोपपत्तिक और विश्वसनीय स्वतंत्र रूप से रामकथा लिखी होगी और वह गुणभद्राचार्य को गुरु-परम्परा द्वारा मिली होगी। गुणभद्र की गुरु-परम्परा के दो और नाम कन्नड भाषा के कवि चामुण्डराय की रचना में मिलते हैं। चामुण्डराय 'त्रिषष्टिलक्षणमहापुराण' के लेखकों की निम्नलिखित सूची देते है—कूचि, भट्टारक, नन्दिमुनीश्वर, कविपरमेश्वर, जिनसेन तथा गुणभद्र। गुणभद्र की रामकथा अन्य जैन रचनाओं में भी ज्यों की त्यों मिलती है।

संस्कृत—१—गुणभद्रकृत 'उत्तरपुराण' (नवीं श० ई०)

२—कृष्णदासकविकृत 'पुण्यचन्द्रोदयपुराण' (१६वीं० श० ई०)

प्राकृत—पुष्पदन्तकृत 'तिसट्ठी-महापुरिस-गुणालंकार' (१०वीं० श० ई०)

कन्नड़—१—चामुण्डरायकृत 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषपुराण' (११वी श० ई०)

२—बन्धुवर्माकृत 'जीवनसम्बोधन' (१२०० ई०)

३—नागराजकृत 'पुण्याश्रवकथासार' (१३३१ ई०)

पुण्यचन्द्रोदय पुराण' को छोड़कर उपर्युक्त रचनाओं मे रामकथा के अतिरिक्त अन्य ६३ महापुरुषों के चरित भी मिलते है।'

इस प्रकार 'पउमचरिय' तथा 'उत्तरपुराण' की रामकथा की दो धाराएँ अलग-अलग स्वरूप से निर्मित होकर आगे बढ़ी है।

यहाँ एक प्रश्न हो सकता है कि विमलसूरि और रविषेण से भी बाद मे उत्पन्न होने वाले गुणभद्र ने उनके कथानक का अनुसरण क्यो नही किया? इसका उत्तर देते हुए प० नाथूराम प्रेमी लिखते है:—'इन दो धाराओं मे गुरुपरम्परा भेद भी हो सकता है। एक परम्परा ने एक धारा को अपनाया और दूसरी ने दूसरी को। ऐसी दशा मे गुणभद्र स्वामी ने 'पउमचरिय' की धारा से परिचित होने पर भी इस खयाल से उसका अनुसरण न किया होगा कि यह हमारी गुरुपरम्परा की नही है। यह भी संभव हो सकता है कि उन्हें 'पउमचरिय' के कथानक की अपेक्षा यह कथानक ज्यादा अच्छा मालूम हुआ हो।[६७]

'उत्तरपुराण' का सक्षिप्त कथानक इस प्रकार है:—'दशरथ (वाराणसी के

६७. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० २८२

राजा) के चार पुत्र उत्पन्न होते हैं—राम सुबाला के गर्भ से, लक्ष्मण कैकेयी के गर्भ से और बाद में जब दशरथ अपनी राजधानी को साकेतपुर स्थापित कर चुके हैं तब भरत और शत्रुघ्न किसी अन्य रानी के गर्भ से, जिसका नाम नही दिया जाता है। दशानन विनमि विद्याधर वंश के पुलस्त्य का पुत्र है। किसी दिन वह अमितवेग की पुत्री मणिमती को तपस्या करते देखता है और उसपर आसक्त होकर उसकी साधना में विघ्न डालने का प्रयत्न करता है। मणिमती निदान करती है — 'मैं उसकी पुत्री होकर उसे मारूँगी।' मृत्यु के बाद वह रावण की रानी मन्दोदरी के गर्भ मे आती है। उसके जन्म के बाद ज्योतिषी रावण से कहते है कि वह आपका नाश करेगी। अत. रावण ने भयभीत होकर मारीचि को आज्ञा दी कि वह उसे कही छोड़ दे। कन्या को एक मंजूषा मे रखकर मारीचि उसे मिथिला देश में गाड़ आता है। हल की नोक से उलझ जाने के कारण वह मंजूषा दिखलाई पड़ती है और लोगों के द्वारा जनक के पास ले जाई जाती है। जनक मंजूषा को खोलकर एक कन्या को देखते हैं और उसका नाम सीता रखकर उसे पुत्री की तरह पालते हैं। बहुत समय के बाद जनक अपने यज्ञ की रक्षा के लिए राम और लक्ष्मण को बुलाते हैं। इस यज्ञ के समाप्त होने पर राम और सीता का विवाह होता है। इसके बाद राम सात अन्य कुमारियो से विवाह करते है और लक्ष्मण पृथ्वीदेवी आदि १६ राज-कन्याओ से। दोनों दशरथ से आज्ञा लेकर वाराणसी मे रहने लगते हैं।

नारद से सीता के सौंदर्य का वर्णन सुनकर रावण उसे हर लाने का संकल्प करता है। सीता का मन जांचने के लिए शूर्पनखा भेजी जाती है लेकिन सीता का सतीत्व देखकर वह रावण से यह कहकर लौटती है कि सीता का मन चलायमान करना असभव है। जव राम और सीता वाराणसी के निकट चित्रकूट वाटिका मे विहार करते है तब मारीचि स्वर्णमृग का रूप धारण करके राम को दूर ले जाता है। इतने में रावण राम का रूप धारण कर सीता से कहता है कि मैने मृग को महल भेजा है और उनको पालकी पर चढ़ने की आज्ञा देता है। यह पालकी वास्तव में पुष्पक विमान है जो सीता को लका ले जाता है। रावण सीता का स्पर्श नही करता है क्यों पतिव्रता के स्पर्श से उसकी आकाश-गामिनी विद्या नष्ट हो जाएगी।

दशरथ को स्वप्न द्वारा मालूम हुआ कि रावण ने सीता का हरण किया है और वे राम के पास यह समाचार भेजते है। इतने मे सुग्रीव और हनुमान् बालि के विरुद्ध सहायता माँगने के लिए पहुँचते है। हनुमान् लंका जाते हैं और सीता को सान्त्वना देकर लौटते है। इसके बाद लक्ष्मण द्वारा बालि का वध होता है और सुग्रीव अपने राज्य पर अधिकार प्राप्त करता है। सेतुबन्ध का प्रसग छोड़ दिया गया है, वानरों और राम की सेना विमान से लका पहुँचाई जाती है। युद्ध के अपे-

व्याकुल विस्तृत वर्णन के अन्त में लक्ष्मण चक्र से रावण का सिर काटते हैं। राम परीक्षा लिये बिना सीता को स्वीकार करते हैं। इसके बाद लक्ष्मण राम के साथ बयालीस वर्ष तक दिग्विजय यात्रा करते है और अर्धचक्रवर्ती बनकर अयोध्या लौटते हैं। अनन्तर दोनों का सम्मिलित अभिषेक सम्पन्न हो जाता है। लक्ष्मण की १६ हजार और राम की आठ हजार रानियाँ बताई जाती हैं। कुछ वर्ष बाद राम तथा लक्ष्मण भरत तथा शत्रुघ्न को राज्य देकर वाराणसी चले आये। सीता के विजयराम आदि आठ पुत्र उत्पन्न होते हैं (सीता-त्याग का उल्लेख नहीं मिलता)। लक्ष्मण एक असाध्य रोग से मरकर रावण-वध के कारण नरक जाते हैं। राम लक्ष्मण के पुत्र पृथ्वीचन्द्र को राज्यपद और सीता के कनिष्ठ पुत्र अजितंजय को युवराज-पद पर अभिषिक्त करके सुग्रीव, अणुमान् तथा विभीषण आदि पाँच सौ राजाओं और १८० पुत्रों के साथ साधना करने जाते है। ३९५ वर्ष बीत जाने पर राम को केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ। सीता भी अनेक रानियों के साथ दीक्षा लेती है। अन्त में राम तथा अणुमान् की मोक्षप्राप्ति का उल्लेख किया गया है, सीता स्वर्ग में पहुँचती है तथा लक्ष्मण के सम्बन्ध में कहा जाता है कि नरक से निकलकर वे भी संयम धारण करेंगे तथा मोक्ष प्राप्त कर सकेंगे।'

'पद्मपुराण' पर 'वाल्मीकि-रामायण' का प्रभाव

वस्तुत. 'वाल्मीकिकृतरामायण' ही समस्त प्रचलित राम-कथा-साहित्य का मूलस्रोत प्रमाणित होता है। अत्यन्त विस्तृत रामकथा-साहित्य मे जो वैभिन्य आ गया है वह वाल्मीकिकृत रामायण के विकास तथा उसके कथानक पर विभिन्न प्रभावों का परिणाम माना जा सकता है।"[६८]

रविषेण ने 'पद्मपुराण' की रचना 'रामायण' की दोषपूर्णता सिद्ध करते हुए की है। उन्होंने श्रेणिक और गौतम के मुख से प्रचलित 'रामायण' ग्रंथ की उपपत्ति-विरुद्धता उद्घोषित की है तथा वास्तविक 'पद्म (राम) चरित' का प्रकाशन कराया है। राजा श्रेणिक के मन में प्रचलित रामायण के विषय में सन्देह उत्पन्न होता है:—

> "अथास्य चरिते पद्मसम्बन्धिनि गतं मन.।
> सन्देह इव चेत्यासीद्रक्षःसु प्लवगेषु च।।
> कथं जिनेन्द्रधर्मेण जाताः सन्तो नरोत्तमाः।
> महाकुलीना विद्वांसो विद्याद्योतितमानसाः।।

६८. 'रामकथा' पृ० ७२७-७३०

श्रूयन्ते लौकिके ग्रंथे राक्षसा रावणादयः।
वसाशोणितमांसादिपानभक्षणकारिणः ॥
रावणस्य किल भ्राता कुम्भकर्णो महाबलः।
घोरनिद्रापरीतः षण्मासान् शेते निरन्तरम् ॥
मत्तैरपि गजैस्तस्य क्रियते मर्दनं यदि।
तप्ततैलकटाहैश्च पूर्येते श्रवणौ यदि ॥
भेरी-शंख-निनादोऽपि सुमहानपि जन्यते।
तथापि किल नायाति कालेऽपूर्णे विबुद्धताम् ॥
क्षुत्तृष्णाव्याकुलश्चासौ विबुद्धः सन्महोदरः।
भक्षयत्यग्रतो दृष्ट्वा हस्त्यादीनपि दुर्द्धरः ॥
तिर्यग्भिर्मानुषैर्देवैः कृत्वा तृप्तिं तत. पुनः।
स्वपित्येव विमुक्तान्यनि शेषपुरुषस्थितिः ॥
अहो कुकविभिर्मूर्खैर्विद्याधरकुमारकः।
अभ्याख्यानमिदं नीतो दुष्कृतग्रंथकत्थकैः ॥
एवंविध किल ग्रंथं **रामायणमुदाहृतम्**।
शृण्वता सकल पाप क्षयमायाति तत्क्षणात् ॥
ताप-त्यजनचित्तस्य सोऽयमग्निसमागम.।
शीतापनोदकामस्य तुषारानिलसंगम. ॥
हैयंगवीनकाक्षस्य तदिदं जलमन्थनम्।
सिकतापीडन तैलमवाप्तुमभिवाञ्छनः ॥
महापुरुषचारित्रकूटदोषविभाविषु।
पापैरधर्मशास्त्रेषु धर्मशास्त्रमतिः कृता ॥
अमराणा किलाधीशो रावणेन पराजितः।
आकर्णाकृष्टनिर्मुक्तैर्बाणैर्मर्मविदारिभिः ॥
देवानामधिपः क्वासौ वराकः क्वैष मानुष ?
तस्य चिन्तितमात्रेण यायाद् यो भस्मराशिताम् ॥
ऐरावतो गजो यस्य, यस्य वज्र महायुधम्।
समेरुवारिधिं क्षोणीं योऽनायासात् समुद्धरेत् ॥
सोऽयं मानुषमात्रेण विद्याभाजाऽल्पशक्तिना।
आनीयते कथं भंगं प्रभुः स्वर्गनिवासिनाम् ॥
बन्दीगृहगृहीतोऽसौ प्रभुणा रक्षसां किल।
लंकायां निवसन् कारागृहे नित्यं सुसंयतः ॥

मृगैः सिंहवधः सोऽयं शिलानां पेषणं तिलैः।
वधो गण्डूपदेनाहेर्गजेन्द्रशसनं शुना॥
व्रतप्राप्तेन रामेण सौवर्णो रुरुराहतः।
सुग्रीवस्याग्रजः स्त्र्यर्थं जनकेन समस्तथा॥
अश्रद्धेयमिदं सर्वं वियुक्तमुपपत्तिभिः।
भगवन्तं गणाधीशं ब्वोऽहं पृष्टास्मि गौतमम्॥"[६९]

इस सन्देह की निवृत्ति के लिए वह गौतम गणधर से तात्त्विक रामचरित सुनने की इच्छा करता हुआ कहता है:—

"भगवन्! पद्मचरितं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः।
उत्पादितान्यर्थवास्मिन् प्रसिद्धिः कुमतानुगैः॥
राक्षसो हि स लङ्केशो विद्यावान् मानवोऽपि वा।
तिर्यग्भिः परिभूतोऽसौ कथं क्षुद्रकवानरैः॥
अत्ति चात्यन्तदुर्गन्धं कथं मानुषविग्रहम्।
कथं वा रामदेवेन बालिश्छद्मेण नाशितः॥
गत्वा वा देवनिलयं भङ्क्त्वोपवनमुत्तमम्।
बन्दीगृहं कथं नीतो रावणेनामराधिपः॥
सर्वशास्त्रार्थकुशलो रोगवर्जितविग्रह।
शेते च स कथं मासान् षडेतस्य वरोऽनुजः॥
कथं चात्यन्तगुरुभिः पर्वतैरलमुन्नत।
सेतुः शाखामृगैर्बद्धो यः सुरैरपि दुर्घटः॥
प्रसीद भगवन्नेतत्सर्वं कथयितुं मम।
उत्तारयन् बहून् भव्यान् संशयोदारकर्दमात्॥"[७०]

और फिर गौतम गणधर 'तत्त्वशसनतत्पर' 'जिनेन्द्रोक्त' वाक्य से उसे समझाते हुए कहते हैं:—

"रावणो राक्षसो नैव न चापि मनुजाशन।
अलीकमेव तत्सर्वं यद्वदन्ति कुवादिन॥"[७१]

उपर्युक्त समस्त प्रकरण से यही सिद्ध होता है कि रविषेण के सम्मुख ऐसी रामायण अवश्य रही होगी जिसमें रावणादि को राक्षस और मांसभक्षी बताया गया हो। कुम्भकर्ण को छः महीने सोने वाला भयंकर राक्षस कहा गया हो, राम के

६९. पद्मपुराण, २।२२९-२४१
७० पद्मपुराण, ३।१७-२४
७१ वही ३।२७

द्वारा छिपकर बालिवध आदि का व्याख्यान हो। इसकी अलीक, उपपत्तिविरुद्ध एवं अविश्वसनीय बातों को सत्य, सोपपत्तिक और विश्वसनीय बनाने का प्रयत्न रविषेण ने किया है। भाव यह है कि रविषेण के दृष्टिकोण से रामायण की त्रुटियों का परिमार्जन 'पद्मपुराण' में किया गया है।

यह 'रामायण-ग्रन्थ' किसका बनाया हुआ था—इसका रविषेण ने कोई स्पष्ट संकेत नहीं किया तथापि यह अनुमान सहजतया लगाया जा सकता है कि 'वाल्मीकिकृत रामायण' पर ही उनका कटाक्षाक्षेप है क्योंकि उसमें सभी बातें पाई जाती हैं, यथा—

१—"श्रूयन्ते लौकिके ग्रन्थे राक्षसा रावणादयः।" (पद्म० २।२३५)

तुल०—"शृणु रामायणं विप्र वाल्मीकिमुनिना कृतम्।
येन रामावतारेण राक्षसा रावणादयः।
हतास्तु देवकार्यं हि चरितं तस्य तच्छृणु॥"
(रामा० १।२।४०-४१)

२—एवंविधं किल ग्रन्थं रामायणमुदाहृतम्।
शृण्वतां सकलं पापं क्षयमायाति तत्क्षणात्॥' (पद्म०, २।२३८)

तुल०—'यन्नामस्मरणादेव महापातककोटिभिः।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो नरो याति परां गतिम्॥
रामायणेति यन्नाम सकृदप्युच्यते यदा।
तदैव पापनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति॥' (रामा० ३।७१-७३)
'इदमाख्यानमायुष्यं सौभाग्यं पापनाशनम्। (उत्त०, १११।४)
'सर्वपापैः प्रमुच्येत पादमप्यस्य यः पठेत्।' (उत्त० १११।५)
'पापान्यपि हि यः कुर्यादहन्यहनि मानवः।
पठत्येकमपि श्लोकं पापात्स परिमुच्यते॥' (उत्त० १११।६)
'सम्यक्श्रद्धासमायुक्तः शृणुते राघवीं कथाम्।
सर्वपापात् प्रमुच्येत विष्णुलोकं स गच्छति॥ (उत्त० १११।१५)
'यः पठेच्छृणुयान्नित्यं चरितं राघवस्य ह।
भक्त्या निष्कल्मषो भूत्वा दीर्घमायुरवाप्नुयात्॥' (उत्त० १११।१६)
आदि।

इस प्रकार यह सिद्ध हो जाने पर कि रविषेण ने वाल्मीकिकृत रामायण को पढ़कर उसके दोषों का अपने 'पद्मपुराण' में परिमार्जन किया यह कथन बहुत सुगम हो जाता है कि 'पद्मपुराण' पर 'वाल्मीकि रामायण' का प्रचुर प्रभाव पड़ा है। किसी ग्रन्थ को आद्यन्त पढ़कर उसके कुछ अंशों में परिवर्तन प्रस्तुत करके

उसी की कथा प्रकारान्तर से यदि कोई कवि अपने ग्रन्थ में कहता है तो उस पर पूर्ववर्ती कवि की रचना का प्रभाव पड़ना अवश्यंभावी है। यह प्रभाव अनुकूल भी पड़ सकता है और प्रतिकूल भी। यहाँ 'वाल्मीकीय-रामायण' के 'पद्मपुराण' पर इस अनुकूल तथा प्रतिकूल प्रभाव का विवेचन करना ही अपना लक्ष्य है।

यहीं एक बात और कह देनी महत्वपूर्ण है कि वाल्मीकिकृत रामायण के गौड़ीय, दाक्षिणात्य, उदीच्य तथा पश्चिमोत्तरीय आदि अनेक पाठों का पर्यालोचन करने पर मूल वाल्मीकीय रामायण में अनेकों अंश प्रक्षिप्त सिद्ध होते हैं जिनका पूर्ण विवेचन श्री कामिलबुल्के ने 'रामकथा' में किया है। ये प्रक्षेप कब हुए—यह पूर्ण रूप से कहना कठिन है किन्तु यह निश्चित है कि ये रविषेण से पहले रामायण में मिल चुके थे। अतः 'पद्मपुराण' पर 'वाल्मीकीय-रामायण' का प्रभाव दिखाते समय इन प्रक्षेपों को भी ध्यान में रखा जायेगा। रामायण के कथानक और शैली-दोनों ने ही 'पद्मपुराण' को पर्याप्त प्रभावित किया है।

कथानक पर प्रभाव :

'पद्मचरित' की कथा का अधिकाश 'वाल्मीकि-रामायण' के ढंग का है।[७२]" कहीं तो वाल्मीकि-रामायण का कथानक ज्यों का त्यों साधारण से हेर-फेर के साथ ग्रहण कर लिया गया है और कहीं उपपत्ति-विरोध को देखकर उसे अन्यथा कल्पित कर लिया गया है। इस 'अन्यथा प्रकल्पन' का पूर्णतया उल्लेख हम चतुर्थ अध्याय में विषयवस्तु के विवेचन के समय करेंगे। यहाँ कथानक के अनुकूल प्रभाव का अध्ययन हमें करना है।

वाल्मीकि-रामायण का कथानक (प्रक्षेपों सहित) सात काण्डो में विभक्त जिसका क्रमश: प्रभाव 'पद्मपुराण' पर हमें देखना है।

बालकाण्ड की कथावस्तु—को पाँच मुख्य विभागों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) **भूमिका (सर्ग १-४)** :—नारद का वाल्मीकि से अयोध्या काण्ड से लेकर युद्धकाण्ड तक की राम कथा का कथन (सर्ग १), श्लोकोत्पत्ति, नारद से मुनी हुई रामकथा को श्लोकबद्ध करने की वाल्मीकि को ब्रह्मा की आज्ञा (सर्ग २), अनुक्रमणिका (सर्ग ३), वाल्मीकि का कुश-लव को अपना काव्य सिखाना और उनका राम के सम्मुख उसे सुनाना (सर्ग ४)।

(२) **दशरथ-यज्ञ (सर्ग ५-१७)** :—अयोध्या का वर्णन, राजा-नागरिक-

७२. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० २८८

मन्त्री-पुरोहितों का वर्णन (सर्ग ५-७), अश्वमेधयज्ञ का संकल्प सर्ग (८), ऋष्यशृंग की कथा (सर्ग ९-११), ऋष्यशृंग द्वारा अश्वमेध (सर्ग १२-१४), ऋष्यशृंग द्वारा पुत्रेष्टियज्ञ, देवताओं की विष्णु से अवतार लेने की प्रार्थना, पायस प्राप्तकर दशरथ का उसे अपनी पत्नियों में बाँटना (सर्ग १५-१६), देवताओं का अप्सराओं और गन्धर्वियों से वानरों की उत्पत्ति करना (सर्ग १७)।

(३) राम का जन्म तथा प्राकृतिक कृत्य (सर्ग १८-३१) :—राम-भरत-लक्ष्मण-शत्रुघ्न-जन्म, विश्वामित्र का आगमन (सर्ग १८) और अपने यज्ञ की रक्षा के लिए दशरथ से राम लक्ष्मण को माँगना (सर्ग १९-२१), राम-लक्ष्मण का विश्वामित्र के साथ गमन, सरयू-तट पर विश्वामित्र से कला और अतिकला की प्राप्ति (सर्ग २२), गंगा-सरयू के संगम पर विश्वामित्र द्वारा काम-दहन की कथा (सर्ग २३), मलद और करूष की कथा (सर्ग २४), ताटका की कथा (सर्ग २५), राम द्वारा उसका वध (सर्ग २६), राम को दिये गये आयुधों की सूची (सर्ग २७-२८), सिद्धाश्रम पर वामनावतार की कथा (सर्ग २९), मारीच का समुद्र में निक्षेप और सुबाहु का वध (सर्ग ३०), मिथिला के लिए प्रस्थान (सर्ग ३१)।

(४) पौराणिक कथाएँ (सर्ग ३२-६५) :—विश्वामित्र के वंश की कथा (सर्ग ३२-३४), हिमवान् की पुत्रियाँ, गंगा का स्वर्गारोहण, उमा का शिव से विवाह, कार्तिकेयजन्म (सर्ग ३५-३७), सगर-पुत्रों का पाताल में भस्म होना, भगीरथ द्वारा गंगावतरण, जह्नु द्वारा गंगा का पिया जाना और भगीरथ द्वारा अनुसरण करते हुए पाताल में सगरपुत्रों का उद्धार करना (सर्ग ३८-४४)। समुद्र-मन्थन की कथा (सर्ग ४५-४७), गौतम द्वारा इन्द्र और अहल्या को दिये गये शापों की कथा, अहल्योद्धार (सर्ग ४८-४९), जनक द्वारा विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण का स्वागत (सर्ग ५०), विश्वामित्र की कथा : शतानन्द द्वारा विश्वामित्र के ब्राह्मण बनने की कथा, राजा विश्वामित्र का वसिष्ठ को परास्त न कर सकने के कारण ब्राह्मण बननेका निश्चय (सर्ग ५१-५६), उनका राजर्षि बनना, त्रिशंकु की कथा (सर्ग ५७-६०), अम्बरीष के यज्ञ में शुनःशेप का बलिदान, विश्वामित्र का ऋषि बनना, मेनका की सफलता एवं रम्भा की असफलता और अन्त में विश्वामित्र का ब्रह्मर्षि बनना (सर्ग ६१-६५)।

(५) राम-विवाह (सर्ग ६६-७७)—धनुर्भंग : जनक द्वारा धनुष तथा सीता के अलौकिक जन्म की कथा, उनकी सीता-विवाह-विषयक प्रतिज्ञा, राजाओं की असफलता और उनका आक्रमण (सर्ग ६६), राम द्वारा धनुर्भंग, दशरथ का बुलावा और मिथिला में उनका आगमन (सर्ग ६७-६९), विवाह : वसिष्ठ द्वारा

* दशरथ के वंश का परिचय, जनक का अपना वंश-वर्णन, चारों भाइयों का विवाह (सर्ग ७०-७३), परशुराम : उत्तरीय पर्वतों पर विश्वामित्र का गमन, दशरथ के मार्ग में अपशकुन और परशुराम का आगमन, वैष्णव धनुष चढ़ाकर राम द्वारा परशुराम की पराजय (सर्ग ७४-७६), अयोध्यागमन, भरत और शत्रुघ्न का प्रस्थान, राम की लोकप्रियता (सर्ग ७७)।

बालकाण्ड की कथावस्तु के भूमिका भाग का 'पद्मपुराण' पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ा है। केवल 'अनुक्रमणिका' के सदृश उसमें सूत्र-विधान किया गया है (पर्व १), शेष चारों भागों का समष्टिगत प्रभाव 'पद्मपुराण' पर है, केवल यज्ञ-संस्कृति-मूलक प्रभाव नहीं पड़ा है। दशरथ अपनी पत्नियों को गन्धोदक बँटवाते हैं जो यज्ञोत्थ-पायस-वितरण का ही जैनी रूप है। दशरथ की विभिन्न रानियों से राम आदि चार पुत्रों का जन्म, बचपन में ही राम-लक्ष्मण का दशरथ से अलग चले जाना, सगरपुत्रों का भस्म होना, धनुष चढ़ाना, आदि 'पद्मपुराण' में भी थोड़े हेर-फेर से वर्णित है। ऐसे वर्णनों में रविषेण का दृष्टिकोण यही रहा है कि इन घटनाओं की बौद्धिक और तर्कसम्मत व्याख्या की जाय एवं उनको जैनी आवरण प्रदान किया जाय। यही कारण है कि वाल्मीकि-रामायण से प्रभावित होते हुए भी पद्मपुराण' में कुछ नवीनता आ गयी है, उदाहरणार्थ—दशरथ की वंशावली मे नघुष, सौदास, मान्धाता, ककुत्स्थ, रघु, अनरण्य तथा दशरथ नाम तो वाल्मीकि रामायण के अनुसार हैं किन्तु इस वंशावली का विस्तार काफी है यथा—विजय, सुरेन्द्रमन्यु, पुरन्दर, कीर्तिधर, सुकोसल, हिरण्यगर्भ, नघुष, सौदास, सिंहरथ, ब्रह्मरथ, चतुर्मुख, हेमरथ, शतरथ, मान्धाता, वीरसेन, पीतमन्यु, कमल-बन्धु, रविमन्यु, वसन्ततिलक, कुबेरदत्त, कीर्तिमान्, कुन्थुभक्ति, शरभरथ, द्विरदरथ, सिंहदमन, हिरण्यकशिपु पुजस्थल, ककुत्थ, रघु, अनरण्य, दशरथ। अनरण्य के दो पुत्र हुए थे—अनन्तरथ और दशरथ। अनन्तरथ ने दीक्षा ले ली (पर्व २१-२२)। इसी प्रकार यद्यपि दशरथ की अनेक रानियाँ तथा चार संतान वाल्मीकि-रामायण के समान ही हैं तथापि कुछ अन्तर है। 'वाल्मीकि-रामायण' मे दशरथ की कौशल्या रानी से राम, सुमित्रा से लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न एव कैकेयी से भरत हुए है जबकि 'पद्मपुराण' में अपराजिता से राम, सुमित्रा (कैकेयी) से लक्ष्मण, केकया से भरत तथा सुप्रभा से शत्रुघ्न हुए। ये अनेक राजाओं की पुत्रियाँ थीं (पर्व २२-२५)। इनके अतिरिक्त जिस प्रकार 'वाल्मीकि रामायण' मे दशरथ की ३५० स्त्रियों का उल्लेख है—'त्रयः शत- शतार्धा हि ददर्शावेक्ष्य मातरः' (२।३९।३६) इसी प्रकार 'पद्मपुराण' में भी उनकी ५०० उत्तम स्त्रियो का उल्लेख है।

वाल्मीकि-रामायण के इन्द्र-अहल्या-वृत्तान्त का भी 'पद्मपुराण' पर प्रभाव पड़ा है किन्तु है वह हेर-फेर के साथ ही। वाल्मीकि-रामायण के उत्तरकांड में गौतम-अहल्या के विवाह का वृत्तान्त इस प्रकार मिलता है—ब्रह्मा ने दूसरे प्राणियों के सर्वश्रेष्ठ अंग लेकर एक हल (कुरूपता)-रहित स्त्री का निर्माण किया और उसका नाम अहल्या रखा। इन्द्र अहल्या की अभिलाषा करता था किन्तु ब्रह्मा ने उसे धरोहर के रूप में गौतम ऋषि के यहां रखा। अनेक वर्षों के बाद गौतम ने जब उसे ब्रह्मा को लौटाया तो उन्होंने ऋषि की सिद्धि देखकर अहल्या को उनकी पत्नी बना दिया। 'पद्मपुराण' (पर्व १३) में भी अहल्या पर इन्द्र की आसक्ति का संकेत है। वह अरिंजयपुर नगर में वह्निवेग विद्याधर की वेगवती रानी से उत्पन्न पुत्री थी जिसने इन्द्र विद्याधर को न ग्रहण करके स्वयंवर में आनन्दमाल राजा को वरा था।

परशुराम के क्षत्रियद्वेष का संकेत वाल्मीकि ने (बाल० ७४।१७, २२, ७५।६) किया है उसी का विकसित अथवा विकृतरूप 'पद्मपुराण' में (पर्व २०) उपलब्ध होता है जहां कहा गया है कि परशुराम (जामदग्न्य) ने पृथ्वी को सात बार निःक्षत्रिय किया था किन्तु सुभूम चक्रवर्ती ने २१ बार पृथ्वी को ब्राह्मण-रहित कर दिया।

'रामायण' में राम-लक्ष्मण की अभिन्न प्रीति का उल्लेख किया गया है—'न च तेन विना निद्रा लभते पुरुषोत्तमः (बाल० १८।३०)। 'पद्मपुराण' में भी 'अनेक-जन्मसंवृद्धस्नेहान्योन्यवशानुगौ' (पर्व २५।३०) कहकर इसकी स्वीकृति दी गयी है।

'रामायण' में राम-लक्ष्मण बचपन में ही अपनी वीरता से ताटकादि दुष्टों का वध करते है 'पद्मपुराण' में वे म्लेच्छों को पराजित करते हैं। यह उनकी प्रारम्भिक वीरता का प्रकारान्तर से स्वीकरण है।

'वाल्मीकि-रामायण' में शिव-धनुभंग करके राम सीता की प्राप्ति करते हैं (बाल० ३१। ६६, ७३), 'पद्मपुराण' में राम 'वज्रावर्त' धनुष चढ़ाकर उसकी प्राप्ति करते हैं। यहाँ भी धनुष-सम्बन्धी प्रभाव है।

'रामायण' में राम के अतिरिक्त अन्य तीन भाइयों का भी सीता की बहिनों से विवाह वर्णित है (बाल० ७३), 'पद्मपुराण' में राम के अतिरिक्त उनके भाई भरत का और लक्ष्मण का विवाह वर्णित है। अन्तर इतना है कि भरत की उदासी का मनोवैज्ञानिक-सा हेतु दिया गया है।

'रामायण' में राम का एक-पत्नीत्व प्रधानतः वर्णित है किन्तु यत्र-क्वचित् उनके बहुपत्नीत्व के संकेत भी हैं यथा—'हृष्टाः खलु भविष्यन्ति रामस्य परमाः स्त्रियः' (२।८।१२) तथा 'भुजैः परमनारीणामभिमृष्टमनेकधा' (६।२१।३)।

'पद्मपुराण' में भी राम की अनेक (८०००) पत्नियों में सीता के अनन्य प्रेम की चर्चा की गयी है—'न भोगेषु मनश्चक्रे वैदेहीं प्रति संहृतम् (पद्म० ४८।३)। किन्तु यहाँ अधिक पत्नियों का वर्णन भी है जबकि रामायण में संकेत ही।

'रामायण' में सीता जनकात्मजा तथा भूमिजा मानी गयी है। 'पद्मपुराण' में भी वह जनक की पुत्री है जो अपने भाई भामण्डल के साथ उत्पन्न हुई है तथा उसे भूमिसाम्य से बौद्धिक व्याख्यानुसार 'सीता' भी कहा गया है—

'प्रभवति गुणसस्यं येन तस्यां समृद्धं
भजदखिलजनानां सौख्यसंभारदानम्।
तदतिशयमनोज्ञा चारुलक्ष्मान्वितांगा
जगति निगदितासौ भूमिसाम्येन सीता ॥'[७३]

वाल्मीकि 'रामायण' के बालकाण्ड (३६, ४०) में सगर के भूमिखनक साठ हजार पुत्रों के भस्म होने की कथा आयी है। 'पद्मपुराण' में भी सगर के साठ हजार पुत्रों के नाश की कथा (पर्व ५) आयी है। अन्तर यह है कि रामायण में वे कपिल के रोष से भस्म हुए हैं यहाँ नागेन्द्र के क्रोध से। साथ ही यहाँ जैनी विचारधारा लगी हुई है। 'षष्टिः पुत्रसहस्राणि' का उभयत्र उल्लेख है—

१—"षष्टिः पुत्रसहस्राणि वाक्यमेतदुवाच ह।" (बाल० ३६।१२)
"षष्टिः पुत्रसहस्राणि रसातलमभिद्रवन्।" (बाल० ४०।१२)
"षष्टिः पुत्रसहस्राणि बिभिदुर्वसुधातलम्।" (बाल० ४०।२३)
"सगरस्य च पत्नीनां सहस्राणां षडुत्तराः।
नवतिः शक्रपत्नीनामभवन् तुल्यतेजसाम्॥
सपुत्राणांच पुत्राणा बिभ्रता शक्तिमुत्तमाम्।
जाता षष्टिः सहस्राणां रत्नस्तम्भसमत्विषाम्॥" (पद्म० ५।२४७-४८)
२—"बिभिदुर्धरणीं राम रसातलमनुत्तमम्।" (बाल० ३६।२१)
आरसातलमूलां तां दृष्ट्वा खातां वसुन्धराम्।" (पद्म० ५।२५१)
३—"भस्मराशीकृताः सर्वे काकुत्स्थ! सगरात्मजाः।" (बाल० ४०।३०)
"भस्मसाद्भावमायाताः सुतास्ते चक्रवर्तिनः।" (पद्म० ५।२५२)

'रामायण' के 'अयोध्या काण्ड' की कथावस्तु को भी पाँच भागों में विभक्त किया जा सकता है:—

(१) राम का निर्वासन (सर्ग-१-४४):—भरत और शत्रुघ्न का अश्वपति के यहाँ रहना, राम की लोकप्रियता और गुणकथन (सर्ग १।१-३४)। राम के

७३. पद्म० २६।१६६

यौवराज्याभिषेक की तैयारी (सर्ग १।३५–सर्ग ६)। मन्थरा-कैकेयी संवाद—दो वर माँगने के विषय में मन्थरा की सफलता (सर्ग ७-६), दशरथ-कैकेयी-संवाद,—दशरथ द्वारा दो वरों की स्वीकृति (सर्ग १०-१४), दशरथ के पास राम का आगमन, दशरथ के सम्मुख कैकेयी का समाचार-कथन (सर्ग १५-१६), राम-कौशल्या-संवाद, लक्ष्मण और कौशल्या द्वारा निर्वासन का विरोध, राम का उनको समझाना, कौशल्या द्वारा विदा और मंगलाकांक्षा (सर्ग २०-२५)। राम-सीता-संवाद, वन की भयंकरता से राम का सीता को भयभीत करना, अन्त में साथ चलने की स्वीकृति देना (सर्ग २६-३०), लक्ष्मण का आग्रह और राम द्वारा साथ ले चलने की स्वीकृति (सर्ग ३१), प्रस्थान-दान-वितरण, राम का राजा के पास जाना। (सर्ग ३२-३४), सुमन्त्र के द्वारा कैकेयी की भर्त्सना (सर्ग ३५), दशरथ का राम के साथ सेना भेजने का प्रस्ताव, कैकेयी की आपत्ति (सर्ग ३६), कैकेयी द्वारा दिये गये वल्कल का धारण करना, (सर्ग ३७), दशरथ द्वारा कैकेयी की भर्त्सना (सर्ग ३८), सुमन्त्र का रथ लाना, कौशल्या द्वारा सीता को शिक्षा एवं विदा (सर्ग ३६-४०), विलाप-कलाप, दशरथ मूर्च्छा, कौशल्या का विलाप तथा सुमित्रा का सान्त्वना देना (सर्ग ४१-४४)।

(२) **चित्रकूट की यात्रा** (सर्ग-४५-५६) :—अयोध्या-निवासी : उनका रथ के साथ जाना, तमसा के पास रात्रि-निवास, उनके सोते समय तीनों का सुमन्त्र के साथ प्रस्थान (सर्ग ४५-४६), लोगों का विलाप और अयोध्या लौटना (सर्ग ४७-४८)। गुह : वेदश्रुति और गोमती पार गुह का मिलन (सर्ग ४६-५०) लक्ष्मण और गुह का राम का गुण-कथन करते हुए रात्रि व्यतीत करना (सर्ग ५१), सुमन्त्र को विदा करके गुह की नौका पर गंगा पार करना (सर्ग ५२)। भरद्वाज: राम का विलाप और लक्ष्मण की सान्त्वना, यमुना और गंगा के संगम पर भरद्वाज-आश्रम में आना, भरद्वाज की चित्रकूट-निवास की मन्त्रणा (सर्ग ५३-५४), यमुना को पार करना, चित्रकूट पहुँचना, वाल्मीकि से मिलन और लक्ष्मण द्वारा एक पर्णशाला का निर्माण (सर्ग ५५-५६)।

(३) **दशरथ-मरण** (सर्ग-५७-६८) :— सुमन्त्र का लौटना: सुमन्त्र से राम का सन्देश सुनकर दशरथ की मूर्च्छा और विलाप सुमन्त्र द्वारा कौशल्या को सान्त्वना (सर्ग ५७-६०), दशरथ-मरण : कौशल्या की भर्त्सना से दशरथ का मूर्च्छित होना (सर्ग ६१-६२), दशरथ द्वारा अन्धमुनि-पुत्र-वध की कथा, दशरथ-मरण, विलाप (सर्ग ६२-६६), भरत का राज्य अस्वीकृत करना : भरत का बुलाया जाना और अयोध्या-आगमन, कैकेयी द्वारा राज्य-ग्रहण का अनुरोध, भरत की भर्त्सना और मन्त्रियों के सम्मुख राज्य को अस्वीकृत करना तथा उनका कौशल्या

से अपने निरपराधी होने का आश्वासन पाना (सर्ग६७-७५)। दशरथ की अन्त्येष्टि : भरत द्वारा अन्त्येष्टि-क्रिया और दान-वितरण, भरत और शत्रुघ्न का विलाप, शत्रुघ्न द्वारा मन्थरा की ताड़ना (सर्ग ७६-७८)।

(४) **भरत की चित्रकूट-यात्रा (७९-११५)** :—प्रस्थान : भरत का पुनः राज्य को अस्वीकार करना और यात्रा की आज्ञा देना, सभा में वसिष्ठ का भरत को समझाना परन्तु उनका न मानना, प्रस्थान और शृंगवेरपुर-आगमन (सर्ग ७९-८३)। गुह और भरद्वाज: भरत द्वारा गुह का सन्देह निवारण, गुह का लक्ष्मण की वार्ता का उल्लेख करना तथा राम का शयनस्थल दिखलाना (सर्ग ८४-८८), गंगा पार करना, भरद्वाज का तप.शक्ति से आतिथ्य-सत्कार (सर्ग ८९-९२)। चित्रकूट-आगमन: चित्रकूट को देखकर भरत का सेना रोकना (सर्ग ९३), राम द्वारा चित्रकूट और मन्दाकिनी की शोभा का वर्णन, सेना को निकट आते देख लक्ष्मण का आक्रोश और राम का उनको शान्त करना (सर्ग ९४-९७), भरत और शत्रुघ्न का राम के निकट जाना, राम का कुशल-प्रश्न (सर्ग ९८-१००)। राम द्वारा प्रत्यागमन की अस्वीकृति : भरत का दशरथ-मरण का समाचार देना और राम से राज्यग्रहण का अनुरोध, राम का अस्वीकार करना (सर्ग १०१-१०२), राम का विलाप और दशरथ के लिए जलक्रिया करना (सर्ग १०३), माताओं का आना (सर्ग १०४), सभा में भरत का अनुरोध और राम की अस्वीकृति (सर्ग १०५-१०७), जाबालि-वृतान्त (सर्ग १०८-१०९), वसिष्ठ का आग्रह भरत द्वारा प्रायोपवेशन की धमकी, लौटने पर राज्यग्रहण का राम द्वारा आश्वासन (सर्ग ११०-१११), ऋषियों की आकाशवाणी सुनकर भरत का पादुकाएँ लेकर वापस जाना (सर्ग ११२)। भरत का प्रत्यागमन : भरद्वाज से मिलकर भरत का जन-शून्य अयोध्या में लौटना, राज्य-सिंहासन पर पादुकाएँ स्थापित कर भरत का नन्दिग्राम में निवास (सर्ग ११३-११५)।

(५) **राम का चित्रकूट से प्रस्थान (सर्ग-११६-११९)**—राक्षसों के उपद्रव से तपस्वियों का चित्रकूट-त्याग और राम से भी आग्रह, राम का अस्वीकार करना (सर्ग ११६), बाद में चित्रकूट त्याग कर राम का अत्रि के आश्रम मे जाना। सीता-अनसूया-सवाद, अनसूया का माला-वस्त्राभूषण-अंगराग प्रदान करना, सीता का अपना जीवनवृत्तान्त कहना (सर्ग ११७ ११८) प्रस्थान (सर्ग ११९)।

'अयोध्याकाण्ड के कथानक का 'पद्मपुराण' पर पर्याप्त प्रभाव है। इसकी प्रधान कथावस्तु राम का निर्वासन है जो 'पद्मपुराण' में भी मिलता है। केकया की वर-याचना, दशरथ द्वारा स्वीकृति, लक्ष्मण का रोष, राम का दशरथ को

समझाना, माताओं से विदा (पर्व ३१), सीता-लक्ष्मण सहित राम का वनगमन (पर्व ३२), अयोध्यानिवासियों को सोते हुए छोड़कर जाना, अयोध्यावासियों का दुःख, चित्रकूट-गमन (पर्व ३२-३३), नदी पार करना, दशरथ क निर्वेद, भरत का राज्य अस्वीकृत करना (पर्व ३२), भरत और केकया का राम को लौटाने का प्रयत्न, राम द्वारा अस्वीकृति, कथंचित् भरत का राज्य-संचालन स्वीकार करना (पर्व ३२) आदि थोड़े-बहुत हेर-फेर के साथ 'पद्मपुराण' में भी वर्णित हैं इसीलिए कवि के दृष्टिकोण के अनुसार उपर्युक्त तथा अन्य प्रसंगों में कुछ नवीनता आ गयी है। उदाहरणार्थ—

'पद्मपुराण' में वन-भ्रमण का अधिक विस्तृत वर्णन मिलता है (पर्व ३३-४२), केकया के एक वर का उल्लेख है जिसे उसने अपने स्वयंवर के उपरान्त दशरथ का रथ हाँक कर प्राप्त किया था और जिसे उसने धरोहर के रूप में उनके पास रख छोड़ा था—

> "नाथ न्यासोऽयमास्तां मे त्वयि वांछितयाचनम्।
> प्रार्थयिष्ये यदा तस्मिन् काले दास्यसि निर्वचः॥"[७४]

इसलिए राम का निर्वासन पिता की आज्ञा से नहीं अपितु स्वेच्छा से है। राम असमंजस-ग्रस्त पिता को समझाते हैं—

> "तात रक्षात्मनः सत्यं त्यजास्मत्परिचिन्तनम्।
> शक्रस्यापि श्रिया किं मे त्वय्यकीर्तिमुपागते॥"[७५]

वे भरत को स्वतः ही अपने वनमार्ग-ग्रहण का विचार बताते हैं (पद्म० ३१। १६०) और सबसे विदा लेकर चल पड़ते हैं (३१।१५४-२१८)। राम को लौटाने का प्रयत्न भी कुछ अन्तर रखता है। केकया ने भरत का वैराग्य दूर करने के उद्देश्य से उनके लिए राज्य माँगा था, उसने राम के वनवास के विषय में कुछ नहीं कहा था। सीता और लक्ष्मण के साथ जब राम स्वेच्छा से चले जाते हैं तब केकया अपनी सपत्नियों को शोकातुर देखकर नगर के पास टिके हुए राम-लक्ष्मण-सीता के पास भरत को उन्हें लौटा लाने के लिए भेजती है

> "तस्मादानय तौ क्षिप्रं समं ताभ्यां महासुखः।
> सुचिरं पालय क्षोणीमेवं सर्वं विराजते॥"[७६]

---

७४. पद्म०, २४।१३०
७५. वही, ३१।१२५
७६. वही, ३२।१०९

भरत के प्रस्थान के बाद वह स्वयं भी जाती है—

ब्रवीत्येवमसौ यावत्केकया तावदागता।
वेगिनं रथमारुह्य सामन्तशतमध्यगा ॥[७७]

और राम के पास आकर क्षमा माँगती है—

"पुत्रोत्तिष्ठ पुरीं यामः कुरु राज्यं सहानुजः।
ननु त्वया विहीनं मे सकलं विपिनायते ॥
भरतः शिक्षणीयोऽयं तवात्यन्तमनीषिणः।
स्त्रैणेन नष्टबुद्धेर्मे क्षमस्व दुरनुष्ठितम् ॥[७८]

वाल्मीकि-रामायण में केकया चित्रकूट में मौन ही रहती है। ऐसे ही छोटे-मोटे अन्तर और भी हो सकते हैं। इस प्रकार रामायण का अयोध्याकाण्ड भी अपनी मुख्यघटनाओ से 'पद्मपुराण' को प्रभावित करता है।

'रामायण' के **अरण्य-काण्ड की कथा-वस्तु** को चार मुख्य-भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) **दण्डकारण्य-प्रवेश** (सर्ग १-१६)—विराध : दण्डकारण्य-निवासी ऋषियों का स्वागत (सर्ग १), विराध द्वारा सीता-अपहरण तथा राम लक्ष्मण का उसे परास्त करना (सर्ग २-४)। शरभंग : राम को देख इन्द्र का आश्रम से प्रस्थान, शरभंग का राम को सुतीक्ष्ण के आश्रम में भेजना, राम द्वारा राक्षसों के विरुद्ध सहायता देने की प्रतिज्ञा (सर्ग ५-६)। सुतीक्ष्ण : सुतीक्ष्ण के आश्रम में रात्रि व्यतीत कर प्रस्थान (सर्ग ७-८), सीता द्वारा अहिंसा का आग्रह, राम द्वारा राक्षसो के विरुद्ध सहायता करने की प्रतिज्ञा का उल्लेख (सर्ग ९-१०)। अगस्त्य : पंचाप्सर-तडाग पर आगमन। राम का तड़ाग के चारों ओर के आश्रमों में दस वर्ष तक निवास, सुतीक्ष्ण से अगस्त्य-आश्रम का मार्ग पूछना। अगस्त्य द्वारा इल्वल और वातापि के वध की कथा का राम द्वारा उल्लेख, अगस्त्य का स्वागत और विष्णु-धनुष देना, फिर गोदावरी-तट पर स्थित पंचवटी का पथ-प्रदर्शन (सर्ग ११-१३)। जटायु : दशरथ के मित्र और सम्पाति के भाई जटायु से मिलना (सर्ग १४), पंचवटी मे लक्ष्मण द्वारा पर्णकुटी-निर्माण, लक्ष्मण का कैकेयी को दोष देना, राम का उन्हें रोककर भरत गुण-कथन के लिए आग्रह (सर्ग १५-१६)।

(२) **शूर्पणखा** (सर्ग१७-३४)—शूर्पणखा का विरूपीकरण : राम और लक्ष्मण से प्रवंचित होकर शूर्पणखा का सीता की ओर झपटना। लक्ष्मण का उसके नाक-कान काटना (सर्ग १७-१८), खर के भेजे हुए १४ राक्षसों का

७७. वही, ३३।१२५

७८. वही, ३३।१२८-१२९

राम द्वारा वध (सर्ग १९-२०) खर-वध : खर के १४००० सेना लेकर पहुँचने पर सीता और लक्ष्मण का गुफा में जाना (सर्ग २१-२४), राम द्वारा राक्षसों तथा दूषण, त्रिशिरा और खर का वध (सर्ग २५-३०), अकम्पन का रावण को समाचार देना और सीताहरण के लिए प्रोत्साहित करना, मारीच से मन्त्रणा (सर्ग ३१), शूर्पणखा-रावण-संवाद: शूर्पणखा का लंका जाकर रावण की भर्त्सना करना और सीता के सौन्दर्य का वर्णन करना, रावण का सीताहरण का निश्चय (सर्ग ३२-३४)।

(३) **सीताहरण** (सर्ग ३५-५६)—रावण का मारीच के सम्मुख सीताहरण का प्रस्ताव रखना, मारीच का समझाना, बाद में चेतावनी देकर स्वीकार करना (सर्ग ३५-४१)। कनकमृग : मारीच के कनक-मृग-रूप को देखकर सीता का उसके लिए प्रार्थना करना। सीता को लक्ष्मण की रक्षा में छोड़कर राम का मृग के लिए जाना। दूर जाने पर राम का मारीच को मारना। मरते समय उसका राक्षस-रूप में 'सीता-लक्ष्मण' शब्द करना, सीता की लांछना से लक्ष्मण का प्रस्थान (सर्ग ४२-४५)। सीताहरण : परिव्राजक के रूप में रावण का सीता से जीवन वृत्तान्त सुनना। प्रकट होकर रावण का बल पूर्वक सीता को अपने रथ पर ले चलना। सीता द्वारा पुकारे जाने पर जटायु का युद्ध करना और आहत होना (सर्ग ४९-५१), सीता के आभूषण फेंकना, लंका में सीता का अशोकवन में राक्षसियों के नियंत्रण में रहना (सर्ग ५२-५६), (एक प्रक्षिप्त सर्ग : इन्द्र का सीता के लिए हवि ले आना)।

(४) **सीता की खोज** (सर्ग ५७-७५)—शून्य पर्णशाला : लौटते समय राम का लक्ष्मण से मिलना और शकाकुल होकर लक्ष्मण को दोष देना (सर्ग ५७-५९), शून्य कुटी देखकर राम का विलाप और लक्ष्मण की सान्त्वना, गोदावरी-तट पर खोज, पुष्प तथा आभूषणों का मिलना, जटायु-युद्ध के चिह्न दिखाई देना (सर्ग ६०-६४), लक्ष्मण की सान्त्वना (सर्ग ६५-६६)। जटायु : मरण के पूर्व जटायु का रावण द्वारा सीताहरण तथा दक्षिण की ओर प्रस्थान का उल्लेख (सर्ग ६७-६८)। कबन्ध : लक्ष्मण का अयोमुखी विरूपको करना। कबध का बाहुविच्छेद, उसके विषय में स्थूलशिर तथा इन्द्र के शाप का उल्लेख, चिता के प्रज्वलित होने पर कबन्ध का दिव्य रूप में सुग्रीव के पास जाने की मन्त्रणा देना (सर्ग ६९-७२)। शबरी : पम्पासर-स्थित आश्रम में शबरी का स्वागत और उसका स्वर्गारोहण, पम्पावर्णन और राम का विलाप (सर्ग ७४-७५)।

'पद्मपुराण' पर 'अरण्यकाण्ड' की कथा का भी पर्याप्त प्रभाव है। अरण्यकाण्ड-की मुख्य कथावस्तु सीताहरण है—जो पद्मपुराण में भी निबद्ध है। दण्डकारण्य

प्रवेश (पर्व ४२), चन्द्रनखा (शूर्पणखा) के कारण खर का लक्ष्मण से १४००० सैनिकों के साथ युद्ध (चतुर्दश सहस्राणि सुहृदां निर्ययुः पुरात् ।। ४४।३७), धोखे से राम-लक्ष्मण का पृथक्करण एवं सीता का रावण के द्वारा हरण, जटायु द्वारा सीता को बचाने का भरसक प्रयत्न तथा आहत होना, पुष्पक पर चढ़ाकर रावण का सीता को ले जाना, जटायु की सद्‌गति, सीताहरण पर राम-विलाप तथा सीता पर लंका मे नियंत्रण—ये सभी विषय 'पद्मपुराण' में यत्किंचित् हेर-फेर के साथ उपनिबद्ध हैं। जो प्रधान अन्तर है वह यह है—

विराधित (विराध) राम-लक्ष्मण का विरोधी नहीं है। वह एक विद्याधर है जो खरदूषण की सेना को हराने में लक्ष्मण की सहायता करता है तथा उसके सेवक सीता की खोज करते हैं और लंका के युद्ध में उसकी सेना राम का साथ देती है। वह चन्द्रोदर तथा अनुराधा का पुत्र है।

लक्ष्मण वन में संयमी होकर नही रहते, वे अनेक कुमारियों से विवाह करते हैं।

चन्द्रनखा-विषयक अन्तर भी है। सूर्यहास-साधक अपने पुत्र शम्बूक का वध देखकर चन्द्रनखा दुःखी हुई किन्तु राम-लक्ष्मण के रूप को देखकर मुग्ध हो गयी। उनके द्वारा प्रोत्साहित न होकर खरदूषण के पास शिकायत करने गया। यहाँ चन्द्रनखा का विरूपीकरण नाक-कान काटकर नहीं किया गया है। उसने स्वयं ही अपना रूप विरूपित किया है—

"तां विनष्टधृतिं दृष्ट्वा धरणीधूलिधूसराम् ।
प्रकीर्णकेश-सम्भारां शिथिलीभूतमेखलाम् ।।
नखविक्षतकक्षोरुकुचश्रोणी सशोणिताम् ।
कर्णाभरणनिर्मुक्तां हारलावण्यवर्जिताम् ।।
विच्छिन्नकंचुकां भ्रष्टस्वभावतनुतेजसम् ।
आलोडितां गजेनेव नलिनीं मदवाहिना ।।"[७९]

साथ ही लक्ष्मण की आसक्ति भी चन्द्रनखा के प्रति वर्णित है—

"पुनरालोकनाकांक्षो विरहादाकुलो ऽ भवत् ।

० ० ०

अटवीं पादपश्राम्यां बभ्रामान्वेषणातुरः ।।" (४३।११४-११५)

'पद्मपुराण' में जटायु एक पक्षी ही है जो पूर्व जन्म में दण्डक था। वह अपने

७९. वही, ४४।४-६

अपवित्र शरीर का परित्याग करके पुण्योदय के कारण देवता बन जाता है (पद्म० ४४।१११) इसके पूर्वभव का वृत्तान्त यह है : 'दण्डक राजा एक श्रमण का धैर्य देखकर अपनी राजधानी में श्रमणों को बुलाकर उन्हें विशेष आदर देने लगा था। उसकी पत्नी बड़ी दुष्टा तथा परिव्राजकों की भक्त थी। एक पापी परिव्राजक ने निर्ग्रन्थ मुनि का वेष धारण कर दण्डक के अन्तःपुर में प्रवेश किया (निर्ग्रन्थरूप-भृद्देव्याः सम्पर्कमभजत्पुनः) जिससे राजा ने क्रोध मे आकर सब श्रमणों को यन्त्रों में पेलने का आदेश दिया। एक ही मुनि उस राजधानी में नहीं थे, लौटकर उन्होंने अपनी क्रोधाग्नि से समस्त नगर को जला दिया—वही स्थान अब 'दण्डकारण्य' है। दण्डक चिरकाल तक पृथ्वी पर भटकता रहा, फिर एक गीध के रूप में प्रकट हुआ। एक मुनि ने उसे सदुपदेश दिया जिससे वह श्रावक धर्म में सम्मिलित हुआ तथा मुनि ने सीता से निवेदन किया कि वह उसकी रक्षा करे। राम ने उसके सिर की जटाएँ देखकर उसका नाम जटायु ही रखा (पर्व ४१)।

'पद्मपुराण' में सीताहरण का कारण शम्बूक-वध है, शूर्पणखा का नाक-कान काटना नहीं। इसी प्रकार लक्ष्मण से खरदूषण का युद्ध होता है, राम से नहीं, रावण सिंहनाद करता है, कनक-मृग मारीच नहीं।

'रामायण' के 'किष्किन्धा-काण्ड' की कथावस्तु को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) **सुग्रीव से मैत्री** (सर्ग १-१२)—हनूमान् : पम्पासर देखकर राम की विरह-व्यथा, सुग्रीव का हनूमान् को भेजना, हनूमान् का उनको सुग्रीव के पास ले जाना (सर्ग १-४)। सुग्रीव : सुग्रीव का स्वागत तथा अपनी कथा बताना, राम द्वारा बालिवध की प्रतिज्ञा, सुग्रीव का राम को सहायता का वचन देना तथा सीता के आभूषण दिखाना (सर्ग ५-६), सुग्रीव का पुनः सहायता के लिए वचन देना तथा अपनी कथा सुनाना (सर्ग ७-१०)। राम की परीक्षा : सुग्रीव द्वारा बालि की शक्ति का वर्णन, राम द्वारा दुंदुभि के अस्थि ककाल का फेंका जाना, अनन्तर राम से सात ताल-वृक्षों के एक बाण द्वारा भेदे जाने पर सुग्रीव का विश्वस्त होना, किष्किन्धा जाकर सुग्रीव का बालि से प्रथम द्वन्द्वयुद्ध, राम का सुग्रीव को न पहचानना, ऋष्यमूक में लौटना (सर्ग ११-१२)।

(२) **बालिवध** (सर्ग १३-२८)—बालि का आहत होना। द्वितीय बार सुग्रीव का बालि को द्वन्द्वयुद्ध के लिए ललकारना (सर्ग १३-१४), तारा द्वारा रोके जाने पर भी बालि का युद्ध के लिए जाना तथा राम के बाण से आहत होना (सर्ग १५-१६), बालि की भर्त्सना : इन्द्रमाला के कारण बालि का जीवित रहना तथा राम को भर्त्सना देना, राम का प्रत्युत्तर (सर्ग १७-१८)।

तारा-विलाप : समाचार पाकर तारा का आना और विलाप करना (सर्ग १९-२०), हनुमान् का तारा को सान्त्वना देना (सर्ग २१)। बालि-मरण : बालि का सुग्रीव के हाथ में अंगद को सौंपना, सुग्रीव के इन्द्रमाला उतार लेने पर उसका मरण, वानरों और तारा का विलाप (सर्ग २२-२३), सुग्रीव का पश्चाताप और राम का सान्त्वना देना (सर्ग २४-२५)। वर्षा-ऋतु : राम का प्रस्रवण पर्वत की एक गुफा में वर्षा-निवास, सुग्रीव का अभिषेक तथा अंगद का युवराज होना, राम द्वारा वर्षा-वर्णन तथा उनका विलाप (सर्ग २६-२८)।

(३) **वानरों का प्रेषण (सर्ग २९-४४)**—शरद्-ऋतु : सुग्रीव का वानर-सेना बुलाना, राम का शरद्-ऋतु-वर्णन तथा सुग्रीव की कृतघ्नता का उल्लेख करना, क्रुद्ध होकर लक्ष्मण का सुग्रीव के पास जाना (सर्ग २९-३२)। लक्ष्मण-सुग्रीव-भेंट : तारा का लक्ष्मण को शान्त करना, लक्ष्मण का सुग्रीव को भर्त्सना करना, तारा तथा सुग्रीव की क्षमा-प्रार्थना, सुग्रीव की आज्ञा से सेना का आगमन (सर्ग ३३-३७)। दिग्वर्णन : सुग्रीव का सेना के साथ राम के पास पहुँचना (सर्ग ३८-३९), दिशाओं का वर्णन करते हुए सुग्रीव का वानरसेना को चतुर्दिक् भेजना (सर्ग ४०-४३), विश्वासपात्र हनुमान् का दक्षिण दिशा मे भेजा जाना तथा राम का उन्हें अभिज्ञान रूप में अगूठी देना (सर्ग ४४)।

(४) **वानरों की खोज (सर्ग ४५-६७)**—असफलता : वानरो का प्रस्थान तथा पूर्व, पश्चिम और उत्तर से वानरों का निराश लौटना (सर्ग ४५-४७), हनुमान् और उनके साथियों की विन्ध्य पर्वत में व्यर्थ खोज (सर्ग ४८-४९)। स्वयम्प्रभा : उनका कन्दरा में प्रवेश, स्वयम्प्रभा द्वारा सत्कार तथा आँखें बन्द करवाकर उन्हें गुफा से बाहर ले जाना (सर्ग ५०-५२)। अंगद की निराशा : कन्दरा से निकलकर विन्ध्य-तल के सागर तट पर उनका पहुँचना, अगद का प्रायोपवेशन के लिए प्रस्ताव, अंगद का सुग्रीव से भयभीत होना, सभी का दु:खी और निराश होना (सर्ग ५३-५५)। सपाति : सपाति के सम्मुख अगद द्वारा जटायु-मृत्यु का उल्लेख, सपाति का वृत्तान्त पूछना और लंका की स्थिति बताना (सर्ग ५६-५८), उसका अपने पुत्र सुपार्श्व द्वारा रावण को सीता ले जाते देखने का उल्लेख करना, ऋषि निशाकर के कथनानुसार संपाति के पखो का फिर से उग आना (सर्ग ५९-६३)। सागर का तट : सागर के तट पर पहुँचकर अगद की निराशा, जाम्बवान् द्वारा हनुमान् की कथा तथा सामर्थ्य-वर्णन, हनुमान् का महेन्द्र पर्वत पर चढ़कर कूदने के लिए तत्पर होना (सर्ग ६४-६७)।

'किष्किन्धाकाण्ड' की आधिकारिक कथावस्तु—सुग्रीव मैत्री तथा सीता-खोज—पद्मपुराण' में भी है। सुग्रीव की राम द्वारा सहायता, उसके प्रतिद्वन्द्वी से

उसकी मुक्ति, वर्षा-वर्णन, शरद्वर्णन, सुग्रीव पर लक्ष्मण का कोप, सुग्रीव का वानर सेना को चतुर्दिक् भेजना, विश्वासपात्र हनूमान के हाथ राम का अँगूठी भिजवाना, सीता-खोज में असफलता, फिर किसी से सीता का लंका-निवास-ज्ञान होना, हनुमान् का लंकागमन तथा मार्ग में महेन्द्र पर्वत का मिलना थोड़े से परिवर्तन के साथ 'पद्मपुराण' में भी निबद्ध हैं। हेर-फेर के कारण जो नवीनता आ गयी है वह संक्षेपतः इस प्रकार है:—

बालि-सुग्रीव की उत्पत्ति सूर्यरजाः और इन्दुमालिनी से हुई है (पर्व ६)। यहाँ बालि-सुग्रीव का युद्ध न होकर साहसगति विद्याधर का युद्ध होता है तथा बालि के पूर्वजन्मों का भी उल्लेख है।

'रामायण' के 'सुन्दरकाण्ड की कथावस्तु को पाँच मुख्य भागों में विभक्त किया जा सकता है —

(१) **लंका में हनूमान् का प्रवेश** (सर्ग १-१७).—समुद्रलघन · लघन करते हुए हनूमान् से मैनाक का आग्रह, सुरसा से भेंट, सिंहिका-वध (सर्ग १)। लंका वर्णन : विडाल जितने आकार में हनूमान् का लंका मे प्रवेश, लंकादेवी को परास्त करना, नगर-महल-पुष्पक-शयनागारादि-वर्णन, सीता का पता न मिलना (सर्ग २-१२) अशोक-वन : हताश होकर हनूमान् का अशोक वन में प्रवेश और वहाँ राक्षसो से घिरी हुई सीता को देखना (सर्ग १३-१७)।

(२) **रावण-सीता-संवाद** (सर्ग १८-२८) :—रावण की प्रताड़नाः कामातुर रावण का सीता से अनुरोध तथा सीता की अस्वीकृति (सर्ग १८-२१), रावण का भय दिखलाना और दो महीने की अवधि देना, सीता की भर्त्सना, सीता को समझाने के लिए रावण द्वारा राक्षसियो का प्रयास और सीता की अस्वीकृति तथा विलाप (सर्ग २३-२६)। त्रिजटा का स्वप्न : त्रिजटा का राक्षस-पराजय-सूचक-स्वप्न-वर्णन (सर्ग २७), सीता-विलाप (सर्ग २८)।

(३) **हनूमान्-सीता-संवाद** (सर्ग २९-४०):—सीता को शकुन होना (सर्ग २९) हनूमान् का राम-कथा-वर्णन (सर्ग ३०-३१), सीताका भयभीत होना (सर्ग ३२), हनूमान् का प्रकट होना, सीता का सन्देह, हनूमान् द्वारा राम का वर्णन, सीता का विश्वास करना (सर्ग ३३-३५), हनूमान् का राम मुद्रिका देना और शीघ्र छुटकारे का आश्वासन, हनूमान् की पीठ पर जाने की सीता द्वारा अस्वीकृति, अभिज्ञान-स्वरूप सीता का काकवृत्तान्त सुनाना तथा चूडामणि देना, विदा (सर्ग ३६-४०)।

(४) **लंका-दहन** (सर्ग ४१-५५) :—अशोक वन-ध्वंस : हनूमान् द्वारा अशोक वन और चैत्य का विध्वस तथा प्रहस्तपुत्र जम्बुमाली और रावणकुमार अक्ष का

वध (सर्ग ४१-४७)। हनूमान् बन्धन : ब्रह्मास्त्र से इन्द्रजीत् द्वारा बन्धन, राम दूत के रूप में हनूमान् का रावण से सीता मुक्ति का आग्रह, विभीषण द्वारा हनूमान् की रक्षा (सर्ग ४८-५२)। लंका-दहन : दण्डरूप हनूमान की पूंछ जलाई जाने की रावण द्वारा आज्ञा, हनूमान् द्वारा लंका-दहन, चारणों की बातचीत से हनूमान् को सीता की रक्षा का आश्वासन (सर्ग ५३-५५)।

(५) हनूमान् का प्रत्यावर्तन (सर्ग ५६-६८):—समुद्र-लंघन : हनूमान् का आकाश-मार्ग से अपने साथियों के पास प्रत्यागमन और अपनी सफलता का वर्णन, (सर्ग ५६-५९), अंगद द्वारा सीता मुक्ति का प्रस्ताव, जाम्बवान् का विरोध (सर्ग ६०), मधुवन में पहुँचकर हनूमान् आदि का उत्पात, दधिमुख का सुग्रीव को समाचार देना (सर्ग ६१-६४), हनूमान् का रावण से सीता के जीवित होने का समाचार कहना और अभिज्ञान देना (सर्ग ६५), राम का विलाप (सर्ग ६६), हनूमान् का काक-वृत्तान्त कहना और सीता संवाद का उल्लेख करना (सर्ग ६७-६८)।

'सुन्दरकाण्ड' की कथावस्तु का भी 'पद्मपुराण' की कथावस्तु पर प्रचुर प्रभाव है। मार्ग में हनूमान् की गति का कुछ अवरोध तथा उसका निराकरण, लंका-दर्शन, उद्यान-प्रवेश, कामातुर रावण का सीता से अनुरोध एवं सीता की अस्वीकृति, रावण का भयदर्शन, सीता को राक्षसियों द्वारा फुसलाने का प्रयत्न, सीता-विलाप, हनूमान् द्वारा अंगूठी देना, हनूमान् का रामकथा कहना, सीता का सन्देह, सीता का चूडामणि-दान, उपान-उपद्रव, बन्धनग्रस्त हनूमान् का रावण के सम्मुख आना, विभीषण-हनूमान्-मिलन, लका-ध्वश, हनूमान् का प्रत्यावर्तन तथा अपनी सफलता का वर्णन, राम को सीता का साभिज्ञान सन्देश दान-आदि सभी प्रमुख विषय यत्किंचित् परिवर्तन के साथ 'पद्मपुराण' में निबद्ध है। जो थोड़ी नवीनता है वह 'रामायण' की कथा का विकास ही है यथा—

हनूमान् का वज्रायुध को मारना, उसकी पुत्री लका सुन्दरी से युद्ध एवं उससे विवाह (पर्व ५२), विभीषण द्वारा हनूमान् का स्वागत (पर्व ५३), मन्दोदरी का सीता को फुसलाना, हनूमान् का मन्दोदरी की उपस्थिति मे सीता से मिलना (पर्व ५३), लका-दहन के स्थान पर लकाध्वंस (पर्व ५३)। लकाध्वंस का वृतान्त इस प्रकार है :—इन्द्रजित्, हनूमान् को बाँधकर रावण के सम्मुख प्रस्तुत करता है। रावण उसे नगर के चारों ओर घुमाकर प्रजा को दिखाने का आदेश देता है।[८०] किन्तु हनूमान् अपने बन्धनों को उसी प्रकार तोड़ लेता है—'मोहपाश यथा यतिः' (५३।२६२) और लंका ध्वंस करता है—

८०. देखिये-पद्मपुराण, ५३।२५७-२६१

"पादविन्यासमात्रेण भङ्क्त्वा गोपुरमुन्नतम्।
द्वाराणि च तथाऽन्यानि समुत्पत्य ययौ मुदा ॥
शक्रप्रासादसंकाशं भवनं रक्षसां विभो:।
हनूमत्पादघातेन विस्तीर्णं स्तम्भसंकुलम् ॥
पतता वेश्मना तेन यन्त्रिताऽपि महानगैः।
धरणी कम्पमानीता पादवेगानुघाततः ॥"[81]

'रामायण' के युद्ध-काण्ड की कथावस्तु को तीन मुख्य भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) लंका का अभियान (सर्ग १-४१)—समुद्र की ओर प्रस्थान : समुद्र की बाधा के विचार से राम की निराशा तथा सुग्रीव द्वारा सेतुबन्ध का प्रस्ताव (सर्ग १-२), हनूमान् द्वारा लंका का वर्णन (सर्ग ३), समुद्र तक पहुँचना तथा राम का विरह-वर्णन (सर्ग ४-५)। रावणसभा : सभासदों द्वारा रावण को विजय का अश्वासन तथा सीता लौटा को देने की विभीषण की मन्त्रणा (सर्ग ६-९), दूसरे दिन विभीषण द्वारा चेतावनी, कुम्भकर्ण का जगकर रावण को दोष देना किन्तु सहायता की प्रतिज्ञा करना (सर्ग १०-१२), पुजिकस्थला के कारण पितामह के शाप का रावण द्वारा उल्लेख (सर्ग १३), इन्द्रजित् तथा रावण द्वारा निन्दित होकर विभीषण का रावण को छोड़कर जाना (सर्ग १४-१६)। विभीषण की शरणागति : सुग्रीवादि के विरोध करने पर भी हनूमान् के आग्रह के कारण विभीषण को शरण मिलना, राम द्वारा विभीषण का अभिषेक, प्रायोपवेशन द्वारा समुद्र को विवश करने की विभीषण की मन्त्रणा (सर्ग १७-१९) शार्दूल द्वारा रावण को राम-सेना की सूचना मिलना सुग्रीव को अपनी ओर मिलाने के लिए रावण द्वारा शुक का भेजा जाना, शुक का बंधन और राम द्वारा मुक्ति (सर्ग २०)। सेतुबन्ध : तीन दिन के प्रायोपवेशन के बाद राम का समुद्र पर ब्रह्मास्त्र प्रयोग के लिए तत्पर होना। समुद्र की विनय तथा द्रुमकुल्य का ब्रह्मास्त्र द्वारा विध्वंस, सागर के कथन से नल द्वारा सेतु-बन्ध और सेना का सन्तरण (सर्ग २१-२२), लंका में अपशकुन तथा शुक का रावण को समाचार देना (सर्ग २३-२४)। शुक-सारण-शार्दूल : रावण-गुप्तचर शुक और सारण का विभीषण द्वारा बन्धन और राम द्वारा मुक्ति, उनका रावण को समाचार देना, शार्दूल का रावण द्वारा भेजा जाना, उसका बन्धन, मुक्ति और समाचार देना (सर्ग २५-३०)। राम का मायामय शीर्ष: विद्युज्जिह्व द्वारा निर्मित राम के मायामय शीर्ष का सीता को दिखलाया जाना, सीता का विलाप तथा सरमा द्वारा

81. पद्म० ५३।२६३-२६५

रहस्योद्घाटन (सर्ग ३१-३३), सरमा द्वारा सीता को रावण-सभा का समाचार मिलना (सर्ग ३४), माल्यवान् का रावण को समझाना, अपशकुन होने पर भी रावण का दृढ़निश्चय होकर नगर के प्रवेशद्वारों की रक्षा की आज्ञा देना (सर्ग ३५-३६)। लंका का अवरोध : सुवेल पर्वत से राम का लंका-दर्शन (सर्ग ३७-३९), सुग्रीव-रावण-द्वन्द्व (सर्ग ४०), लंका विरोध तथा अंगद का दूतकार्य (सर्ग ४१)।

(२) **युद्ध प्रकरण** (सर्ग ४२-११२): शरपाश : रात्रि तक दोनों सेनाओं का युद्ध, अंगद द्वारा इन्द्रजित् की पराजय, अदृश्य इन्द्रजित् द्वारा राम लक्ष्मण का शरपाश में बन्धन (सर्ग ४२-४५), रावण का सीता को पुष्पक से भेजकर आहत राम-लक्ष्मण को दिखलाना। सीता-विलाप, त्रिजटा की सान्त्वना (सर्ग ४६-४८), जगकर राम का लक्ष्मण के लिए विलाप, हनूमान् द्वारा विशल्या औषधि को लाने के लिए सुषेण का प्रस्ताव, गरुड़ का राम-लक्ष्मण को स्वस्थ करना (सर्ग ४९-५०) द्वन्द्व युद्ध : धूमाक्ष, वज्रदंष्ट्र, अकंपन तथा प्रहस्त का वध। रावण-लक्ष्मण, द्वन्द्व-युद्ध, लक्ष्मण का आहत होना, मुष्टिप्रहार से हनूमान् का रावण को मूर्छित करना, राम-रावण-युद्ध, रावण की पराजय और लज्जित होकर लौटना (सर्ग ५१-५९)। कुम्भकर्ण-वध : कुम्भकर्ण का जागरण (सर्ग ६०), विभीषण द्वारा राम से कुम्भकर्ण की निद्रा की कथा का उल्लेख (सर्ग ६१), कुम्भकर्ण द्वारा रावण की भर्त्सना, कुम्भकर्ण-सुग्रीव-द्वन्द्व, राम द्वारा कुम्भकर्ण-वध, रावण-विलाप (सर्ग ६२-६८)। द्वन्द्व-युद्ध : रावण के चार पुत्रों (नरान्तक-देवान्तक-त्रिशिर-अतिकाय) का तथा दो भाइयों (महोदर-महापार्श्व) का वध, रावण-विलाप, इन्द्रजित् का अदृश्य होकर युद्ध करना तथा राम और लक्ष्मण को व्यथित करना (सर्ग ६९-७३)। लंकादहन : हनूमान् का औषधि-पर्वत लाकर आहतों तथा राम-लक्ष्मण को स्वस्थ करना (सर्ग ७४), रात्रि में वानरों द्वारा लंकादहन (सर्ग ७५), कम्पन, कुम्भ, निकुम्भ तथा मकराक्ष का वध (सर्ग ७६-७९)। इन्द्रजित्-वध : यज्ञ करके इन्द्रजित् का युद्धारम्भ (सर्ग ८०) मायामय सीता का वानर-सेना के सम्मुख वध, राम-विलाप तथा लक्ष्मण द्वारा सान्त्वना (सर्ग ८१-८३), विभीषण द्वारा मायामय सीता का रहस्योद्घाटन तथा निकुम्भिला में इन्द्रजित्-यज्ञ-ध्वंस का परामर्श, सेना सहित लक्ष्मण द्वारा यज्ञ-ध्वंस तथा इन्द्रजित्-वध (सर्ग ८४-९०), सुषेण द्वारा लक्ष्मण की चिकित्सा (सर्ग ९१), रावण-विलाप, सुपार्श्व का रावण को सीता वध से रोकना (सर्ग ९२)। विभिन्न युद्ध : विरूपाक्ष, महोदर तथा महापार्श्व का वध (सर्ग ९३-९८), राक्षसियों का विलाप सर्ग (९४)। रावण-वध : रावण द्वारा लक्ष्मण को शक्ति लगना तथा हनूमान् द्वारा महोदय पर्वत से औषधि लाना (सर्ग ९९-१०१), इन्द्ररथ का मातलि सहित भेजा जाना, राम-रावण युद्ध का आरम्भ

(सर्ग १०२-१०४), अगस्त्य का राम को आदित्य-हृदय नामक स्तोत्र सिखाना (सर्ग १०५), सात दिन के युद्ध के बाद ब्रह्मास्त्र से रावण-वध (सर्ग १०६-१०८) विभीषणादि का विलाप, रावण की अन्त्येष्टि (सर्ग १०९-१११) विभीषण का अभिषेक और राम का सीता को बुला भेजना (सर्ग ११२)।

(३) प्रत्यावर्तन (सर्ग ११३-१२८)—अग्नि-परीक्षा : राम का सीता को अस्वीकार करना (सर्ग ११३-११५), लक्ष्मण द्वारा निर्मित चिता में सीता का प्रवेश (सर्ग ११६), देवताओं द्वारा राम की विष्णु रूप में पूजा (सर्ग ११७), अग्नि द्वारा राम को सीता का समर्पण (सर्ग ११८), शिव द्वारा प्रशंसा, दशरथ की शिक्षा, मृत वानरों का इन्द्र द्वारा जीवित किया जाना, विभीषण का यात्रा के लिए पुष्पक तैयार करना, वानरों को दान दिया जाना (सर्ग ११९-१२२)। वापसी-यात्रा : आकाश मार्ग से विभिन्न स्थानों का वर्णन करना, किष्किन्धा में वानर-पत्नियों का साथ लेना, भरद्वाज से भेंट (सर्ग १२३-१२४), हनूमान् का गुह और भरत को आगमन का समाचार देना (सर्ग १२५-१२६)। अयोध्या प्रवेश : अयोध्यावासियों सहित भरत और शत्रुघ्न का राम से मिलन, नन्दिग्राम में भरत का राम को शासन सौंपना, पुष्पक का कुबेर के पास लौटाया जाना (सर्ग १२७), रामाभिषेक, राम-राज्य-वर्णन तथा फलश्रुति (सर्ग १२८)।

'लंकाकाण्ड' की आधिकारिक कथावस्तु-राम-रावण-युद्ध, रावण-वध एवं सीतासहित राम-लक्ष्मण का प्रत्यावर्तन-'पद्मपुराण' में भी निबद्ध है। समुद्र की समस्या का हल, लंका-वर्णन, रावण-सभा, विभीषण का उद्बोधन, विभीषण का राम-सेना में जाना, राम का उसे लकेश स्वीकार करना, रावण की कूटनीति, शुक-सारण का उल्लेख, अपशकुन, अंगद का लंकागमन, दोनों सेनाओं का युद्ध, इन्द्रजित्-लक्ष्मण-युद्ध, लक्ष्मण शक्ति पर राम का विलाप, विशल्या के द्वारा लक्ष्मण का आरोग्य, भानुकर्ण का युद्ध, भ्रातृ-निग्रह के कारण रावण की चिन्ता, रावण की सिद्धि, रावण का युद्ध एव चिरकाल बाद वीरता-पूर्वक मरण, राम-सीता-मिलन, सीता की अग्नि-परीक्षा, विभीषण द्वारा रामादि का सत्कार, विविध स्थानों का वर्णन करते हुए पुष्पक से राम-सीता-लक्ष्मण का प्रत्यावर्त्तन, अयोध्या में भरतादि के द्वारा स्वागत एवं राम का राज्याभिषेक आदि विषय रूपान्तर से 'पद्मपुराण' में भी वर्णित है। अन्तर इस प्रकार है—

'पद्मपुराण' में सीता का भाई भामण्डल अपनी सेना के साथ आकर राम की सहायता करता है। (पर्व ५५), विभीषण ३० अक्षौहिणी सेना के साथ राम से आ मिलता है (साग्राभिस्वारुदास्त्राभिः त्रिंशद्भिः परिवारितः। अक्षौहिणी-भिरुयुक्तो गन्तुं पद्मस्य संश्रयम् ॥ ५५।३९)। समुद्र नामक राजा की नल द्वारा

पराजय है, समुद्रबन्धन नहीं (५४।६५-६६) विशल्या ओषधि नहीं अपितु द्रोण-मेघ की कन्या है जो लक्ष्मण को स्वस्थ करती है (पर्व ६५) भानुकर्ण (कुम्भकर्ण) और इन्द्रजित् का वध नहीं हुआ है, वे बन्दी बनाये गये हैं और बाद में मुक्त होने पर वे दीक्षा ले लेते हैं। रावण का वध राम नहीं लक्ष्मण चक्ररत्न से करते हैं क्योंकि 'नारायण' ही 'प्रतिनारायण' को मारते हैं। इन्द्रजित् यज्ञ नहीं करता अपितु रावण बहुरूपिणी विद्या सिद्ध करता है। रावण शक्तिनिहत लक्ष्मण को देखने की राम को अनुमति देता है। अग्नि-परीक्षा लंका में नहीं हुई है अपितु लवणां-कुशोत्पत्ति के बाद हुई है (पर्व १०५)। रावण-वध के बाद राम-लक्ष्मण-सीता ने छः वर्ष लंका में बिताये हैं (पर्व ८०)। युद्ध के पूर्व राक्षस-राक्षसियों तथा रावण-मन्दोदरी की शृगार चेष्टाओं का वर्णन किया गया है (पर्व ७१-७३)।

'रामायण' के **उत्तरकाण्ड की कथावस्तु** को तीन मुख्य भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) **रावण-चरित** (सर्ग १-३६)—(यह भाग अगस्त्य द्वारा कहा गया है) वैश्रवण : विश्रवा-देववर्णिनी के पुत्र वैश्रवण का चतुर्थ लोकपाल द्वारा धनेश बनना और पुष्पक प्राप्त कर उनका लंका-निवास (सर्ग १-३)। राक्षस-वंश : प्रहेति तथा हेति के वंश में उत्पन्न राक्षसों का लंका-निवास तथा विष्णु द्वारा पराजित होने पर उनका पाताल-प्रवेश (सर्ग ४-८)। रावण का जन्म : विश्रवा-कैकसी से दशग्रीव, कुम्भकर्ण, शूर्पणखा तथा विभीषण का जन्म, वैश्रवण से ईर्ष्या होने के कारण तीनों भाइयों की तपस्या तथा ब्रह्मा से वर प्राप्ति (सर्ग ९-१०), रावण की आशंका से वैश्रवण का लंका त्याग तथा कैलास पर निवास, राक्षसों का लंका मे प्रवेश, मयसुता मन्दोदरी से रावण का विवाह (सर्ग ११-१२)। रावण की प्रथम विजययात्रा : वैश्रवण को पराजित कर रावण का पुष्पक को प्राप्त करना (सर्ग १३-१५), रावण को नन्दि-शाप, रावण का कैलास को उठाना तथा शिव से 'रावण' नाम तथा 'चन्द्रहास' खड्ग को प्राप्त करना (सर्ग १६), वेदवती का रावण को शाप देना (सर्ग १७), रावण द्वारा अनेक राजाओं की पराजय तथा राजा अनरण्य का उसे शाप देना (सर्ग १८-१९), नारद की प्रेरणा से रावण का यम पर आक्रमण तथा ब्रह्मा द्वारा यम से रावण की रक्षा (सर्ग २०-२२), शूर्पणखा के पति विद्युज्जिह्व का रावण द्वारा वध और वरुण पुत्रों की पराजय (सर्ग २३) (पाँच प्रक्षिप्त सर्ग : बलि से रावण की भेंट, सूर्य तथा चन्द्रलोक की यात्रा, कपिल से भेंट)। रावण के अन्य युद्ध : रावण द्वारा अनेक कन्याओं और पत्नियों का हरण और शूर्पणखा को खर तथा दूषण के साथ दण्डकारण्य भेज देना। कुंभ-नसी के द्वारा मधु की रक्षा, नलकूबर का शाप (सर्ग २४-२६), मेघनाद द्वारा

इन्द्रबन्धन तथा देवताओं की प्रार्थना से मुक्ति, देवताओं से मेघनाद की वरप्राप्ति कि किसी भी युद्ध के पूर्व यज्ञ कर लेने पर वह अजेय होगा (सर्ग २७-३०) अर्जुन, कार्तवीर्य तथा बालि द्वारा रावण की पराजय (सर्ग ३१-३४) अर्जुन-हनूमत्कथा : हनूमान् की जन्म-कथा और चरित्र (सर्ग ३५-३६)।

(२) **सीतात्याग** (सर्ग ३७-८२)—अतिथियों का प्रस्थान : अभिषेक के दूसरे दिन राम का ऋषियों, राजाओं, वानरों तथा राक्षसों द्वारा अभिवादन (सर्ग ३७), (पाँच प्रक्षिप्त सर्ग—बालि और सुग्रीव की जन्मकथा, रावण का मुक्ति-प्राप्त करने के उद्देश्य से सीताहरण का निश्चय, श्वेतद्वीप में स्त्रियों द्वारा रावण की पराजय) जनक, युधाजित् तथा प्रतार्दन का प्रस्थान, दो मास पश्चात् सुग्रीव, अंगद, हनूमान्, विभीषण तथा वानरों राक्षसों और ऋषियों के प्रस्थान (सर्ग ३८-४०), पुष्पक का प्रत्यागमन और राम द्वारा विदा (सर्ग ४१)। सीता-त्याग : आश्रमों को देखने जाने का सीता का दोहद, लोकापवाद के कारण वाल्मीकि आश्रम में सीता को छोड़ने की राम की आज्ञा (सर्ग ४२-४५), गंगा के उस पार लक्ष्मण का सीता को त्याग का समाचार देना, सीता का विलाप (सर्ग ४६-४८), वाल्मीकि का सीता को आश्रय देना (सर्ग ४९) सुमन्त्र का लक्ष्मण को सीता-त्याग का कारण बतलाना (सर्ग ५०-५२)। नृग, निमि और ययाति की कथाएँ : राम द्वारा लक्ष्मण को नृग, निमि और ययाति की कथाओं का सुनाया जाना (सर्ग ५३-५९)। (तीन प्रक्षिप्त सर्ग: राम से न्याय माँगने की श्वान की कथा, गृध्र तथा उलूक की कथा)। शत्रुघ्न-चरित: भार्गव च्यवन के आग्रह से राम का लवण का वध करने के लिए शत्रुघ्न को भेजना (सर्ग ६०-६४), शत्रुघ्न का वाल्मीकि-आश्रम में रात्रि व्यतीत करना तथा उसी रात्रि में कुश-लव का जन्म (सर्ग ६५-६६), शत्रुघ्न द्वारा लवण-वध और मधुपुरी का बसाया जाना, १२ वर्ष बाद राम के पास लौटते समय वाल्मीकि के आश्रम में शत्रुघ्न का रामायण-गान सुनना। राम से मिलकर उनका अपने राज्य में वापिस जाना (सर्ग ६७-७२)। शम्बूक-वध . ब्राह्मण पुत्र की मृत्यु पर नारद का शूद्र की तपस्या को उसका कारण बताना, राम का दक्षिण जाकर शम्बूक-वध करना, अनन्तर अगस्त्य से दण्डकारण्य की कथा सुनना (सर्ग ७३-८२)।

(३) **अश्वमेध** (सर्ग ८३-१११) अश्वमेध-माहात्म्य:—राजसूय यज्ञ का भरत द्वारा विरोध, लक्ष्मण का अश्वमेध का प्रस्ताव तथा उसके माहात्म्य में इन्द्र की ब्रह्महत्या से अश्वमेध द्वारा शुद्धि की कथा सुनाना (सर्ग ८३-८६), राम द्वारा इला के अश्वमेध से पुरुषत्व प्राप्त करने की कथा (सर्ग ८७-९०)। अश्वमेध में सीता का पृथ्वी-प्रवेश : नैमिषवन में अश्वमेध के अवसर पर कुश-लव का

सभा के सामने रामायण-गान करना (सर्ग ९१-९४), कुश-लव को सीता पुत्र जानकर राम का वाल्मीकि के पास सन्देश भेजना और सभा के सम्मुख अपनी शुद्धि का साक्ष्य देने के लिए सीता से अनुरोध करना (सर्ग ९५), सीता की शपथ, पृथ्वी का सीता को अपने साथ ले जाना, राम द्वारा सीता को लौटा देने का व्यर्थ अनुरोध (सर्ग ९६-९८), कुश-लव द्वारा उत्तरकाण्ड का गान, सभा-विसर्जन, माताओं की मृत्यु (सर्ग ९९)। विजय-यात्राएँ : भरत के पुत्रों (तक्ष-पुष्कल) का तक्षशिला तथा पुष्कलवती में राज्य-स्थापन (सर्ग १००-१०१)। लक्ष्मण के पुत्रों (अंगद-चन्द्रकेतु) का अंगदीप और चन्द्रकान्त में राज्य-स्थापन। लक्ष्मण मृत्यु : काल का राम को अपना विष्णु-रूप प्राप्त करने का स्मरण दिलाना, दुर्वासा के आग्रह से लक्ष्मण का राम तथा काल के पास जाना और इसके कारण लक्ष्मण का सरयू-प्रवेश (सर्ग १०२-१०६)। स्वर्गगमन : राम का कुश को कुशावती में और लव को श्रावस्ती में राज्य देना, अपने पुत्रों (सुबाहु और शत्रुघातिन्) को राज्य देकर शत्रुघ्न का अयोध्या आना, सुग्रीव और वानरों का आना, विभीषण और हनूमान् को अमरत्व का वरदान (सर्ग १०७-१०८), राम का अपने भाइयों के साथ विष्णु-रूप में तथा वानरों का अंशानुसार देवताओं में प्रवेश, नागरिकों की स्वर्ग प्राप्ति तथा फलश्रुति (सर्ग १०९-१११)।

'उत्तरकाण्ड' के कथानक का 'पद्मपुराण' के 'रावण-चरित' (पर्व १-२०) और 'उत्तरचरित' (पर्व ८१-१२३) शीर्षकों में पर्याप्त प्रभाव देखा जा सकता है। वैश्रवण का लोकपाल बनना, पुष्पक प्राप्ति, राक्षसों का लंका निवास, केकसी से रावणादि का जन्म, तीनों भाइयों की तपस्या तथा सिद्धि, रावण की लंका-प्राप्ति, मयसुता मन्दोदरी से रावण का विवाह, रावण का कैलास को उठाना, 'रावण' नाम प्राप्त करना, रावण के अनेक विवाह, यम-इन्द्र-वरुण आदि पर उसकी विजय, माहिष्मती-नरेश और बालि से रावण का संघर्ष, सीता की दोहदोत्पत्ति, राम का लोकापवाद के कारण उसे वन में छुड़वाना, सीता का विलाप, सीता का दो पुत्रों को उत्पन्न करना, उनका प्रताप, राम-लक्ष्मण की सेना से उनका युद्ध, युद्ध में पिता-पुत्र का परिचय, सीता का राम-दरबार में जाकर अपने सतीत्व का परिचय देना, राम-लक्ष्मण-शत्रुघ्न-भरत की सन्तानों का राज्य करना तथा राम का स्वर्ग गमन—'पद्मपुराण' में भी हेर-फेर के साथ स्वीकृत हैं। मुख्य अन्तर संक्षेपतः इस प्रकार है:—

शम्बूक शूद्र नहीं, चन्द्रनखा का पुत्र है जो सूर्यहास खड्ग की सिद्धि करता है, वह लक्ष्मण के द्वारा अनजाने में मारा जाता है, राम द्वारा जान-बूझकर नहीं। रावण की वंशावली रामायण से भिन्न है, सुकेश के तीन पुत्र हैं—माली, सुमाली

और माल्यवान्। सुमाली का पुत्र रत्नश्रवा अपनी पत्नी केकसी (व्योमबिन्दु की पुत्री) से क्रमशः दशानन, भानुकर्ण, चन्द्रनखा तथा विभीषण को उत्पन्न करता है। रावणादि विद्यासिद्धि करते हैं, तपस्या करके वर प्राप्ति नहीं। रावण का सुग्रीव की बहन श्रीप्रभा के साथ विवाह उल्लिखित है, साथ ही ६००० विद्याधर पत्नियों का उल्लेख है। रावण द्वारा सहस्ररश्मि, नलकूबर, इन्द्र, वरुण आदि की पराजय वर्णित है किन्तु ये इन्द्रादि देवता न होकर साधारण राजा माने गये हैं। रावण कैलास का क्षोभ करता है तथा बालि उसे दबा देता है। यहाँ शिवजी का उल्लेख नहीं है क्योंकि जैनियों के अनुसार वे देवता नहीं हैं। बालि से ही रावण 'अमोघविजया' शक्ति की प्राप्ति करता है। नल कूबर की पत्नी उपरम्भा के प्रेम प्रस्ताव को ठुकराकर रावण उदात्तता का परिचय देता है तथा विरक्त परनारी के साथ रमण न करने की प्रतिज्ञा करता है। रावण द्वारा सहस्ररश्मि की पराजय जिनपूजा भंग करने के कारण होती है तथा वह दीक्षा ले लेता है। बालि का वृत्तान्त विभिन्न है—दशानन ने किसी दिन दूत भेजकर बालि को आदेश दिया कि वह आकर उसे प्रणाम करे। बालि ने उत्तर दिया कि मेरा मस्तक जिनेन्द्रों को छोड़कर और किसी के सामने नहीं झुकता। इस पर दशानन आक्रमण की तैयारी करने लगा। बालि ने सोचा कि न तो मैं राक्षस राजा के सामने झुक सकता हूँ और न जीवों का नाश करने वाला युद्ध ही कर सकता हूँ, अतः उसने सुग्रीव को राजा बना कर दीक्षा ले ली। बाद में दशानन का विमान किसी अवसर पर तपोधन बालि के प्रभाव से अष्टापद पर्वत (कैलास) के ऊपर रुक गया। रावण उतरा तथा पर्वत को उठा कर उसे ले जाने लगा। बालि ने यह देखकर कि जीवों को कष्ट हो रहा है—पैर के अंगूठे से शिखर को दबाया जिससे दशानन पर्वत के नीचे दबकर भयकर 'राव' करने लगा, तभी से इसका नाम 'रावण' पड़ा। अन्त में बालि ने अपना अगूठा खींचकर रावण को छुड़ाया तथा रावण ने बालि की स्तुति की। हनूमान् रावण और सुग्रीव दोनों के रिश्तेदार हैं—उनके तीन पूर्वजन्मों का उल्लेख है—वे पहले दमयन्त, सिंहचन्द्र तथा राजकुमार सिंहवाहन थे। उनकी अनेक पत्नियों का उल्लेख है। वे अजना-पवनंजय के पुत्र हैं। वे रावण की ओर से वरुण से युद्ध करते हैं, वे वानर नहीं वानरवंशी हैं। सीतात्याग का परोक्ष कारण यह बताया गया है कि उसने पूर्वभव में मुनि की निन्दा की थी। वज्रजंघ सीता की रक्षा करता है वाल्मीकि नहीं, सीता को सेनापति कृतान्तवक्त्र छोड़कर आता है लक्ष्मण नहीं। सीता के पुत्रों का नाम मदनांकुश और अनंगलवण है—लव और कुश नहीं। हनूमान् लवणांकुश का पक्ष लेते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि 'रामकथा' तो वाल्मीकि की ही

है किन्तु उसका संयोजन अपने दृष्टिकोण के अनुसार रविषेण ने कर लिया है। 'साज' वही है, 'लय' बदली हुई है। कपड़ा वही है, कटिंग दूसरी तरह का है।

कथानक के अतिरिक्त 'पद्मपुराण' में मुख्य तथा गौण पात्रों के नाम भी वाल्मीकि-रामायण से बहुत कुछ लिये गये हैं।

शैलीगत प्रभाव

'पद्मपुराण' की शैली भी 'वाल्मीकि-रामायण' से पर्याप्त प्रभावित है। अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग 'वाल्मीकि-रामायण' का ही प्रभाव है।

'वाल्मीकि-रामायण' में सर्वाधिक रूप में प्रयुक्त अलंकार हैं—उपमा, उत्प्रेक्षा तथा रूपक। ये तीनों ही 'पद्मपुराण' मे सर्वाधिकरूप में प्रयुक्त हैं। इनके विशेष उदाहरणो का सकेत हम अन्यत्र करेंगे।

'वाल्मीकि-रामायण' के नगरी-वर्णन, युद्ध-वर्णन, विलाप-वर्णन, तथा वैभवादि के वर्णनों से 'पद्मपुराण' के वर्णन पर्याप्त प्रभावित हैं, जिनके उदाहरण यहाँ देना पुष्कल स्थान-सापेक्ष है।

'वाल्मीकि-रामायण' में रामकथा की कई बार पुनरुक्ति है यथा—हनूमान् द्वारा सीता के सम्मुख रामकथा-कथन, बालकाण्ड के प्रथम सर्ग में नारद द्वारा रामकथा-कथन, लवकुश के द्वारा रामकथा-गायन। इसी प्रकार पद्मपुराण' मे भी अनेक बार रामकथा कही गयी है, यथा—हनूमान् द्वारा सीता के सम्मुख (पर्व ५३) तथा नारद के द्वारा लवणाकुश के समक्ष (पर्व १०२) रामकथा का प्रकाशन।

'वाल्मीकि-रामायण' के शिल्प-विधान का 'पद्मपुराण' पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। जैसे वहाँ बालकाण्ड के तीसरे सर्ग में पहले समस्त ग्रन्थ की संज्ञा शब्दों से अनुक्रमणी दी गयी है उसी प्रकार 'पद्मपुराण' के प्रथम पर्व में सूत्र विधान किया गया है।[८२]

'वाल्मीकि-रामायण' में नामो की व्युत्पत्ति स्थान-स्थान पर दी गयी है। इसी प्रकार 'पद्मपुराण' मे भी बहुत से ऐसे स्थल हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

वाल्मीकि-रामायण

हनुमान्—'तदा शैलाग्रशिखरे वामो हनुरभज्यत।
ततोऽभिनामधेय ते हनुमानिति कीर्तितम्॥ (४।६६।२४)
रावण—'प्रीतोऽस्मि तव वीरस्य शौटीर्याच्च दशानन।
शैलाक्रान्तेन यो मुक्तस्त्वया रावः सुदारुणः॥

८२, दे० रामायण, बाल० ३।१०-३९ तथा पद्म०, १।४६-११०।

यस्माल्लोकत्रयं चैतद् राविर्तं भयमागतम् ।
तस्मात्वं रावणो नाम नाम्ना राजन् भविष्यसि ॥
(७।१६।३६-३७)

राक्षस और यक्ष—रक्षाम इति यैरुक्तं राक्षसास्ते भवन्तु वः ।
यक्षाम इति यैरुक्तं यक्षा एव भवन्तु ते ॥'
(७।४।१३)

इसी प्रकार 'मेघनाद और इन्द्रजित्' 'कुश-लव', 'बालि-सुग्रीव', 'कल्माष-पाद', 'दण्ड', 'सरमा', 'अहल्या', 'क्षुप', 'निमि', 'मिथि', 'विश्रवा', 'वेदवती', 'सगर', 'मुर', और 'असुर' आदि नामों का कारण निर्देश किया गया है।[८३]

पद्मपुराण

१. **हिरण्यगर्भ**—"तस्मिन् गर्भस्थिते यस्माज्जाता वृष्टिर्हिरण्मयी ।
हिरण्यगर्भनाम्नासौ स्तुतस्तस्मात्सुरेश्वरैः ॥"
(३।१५६)

१. **क्षत्रिय**—"क्षतत्राणे नियुक्ता ये तेन नाथेन मानवाः ।
क्षत्रिया इति ते लोके प्रसिद्धि गुणतो गताः ॥"
(३।२५६)

३. **प्रजाग या प्रयाग**—"प्रजाग इति देशोऽसौ प्रजाभ्योऽस्मिन् गतो यतः ।
प्रकृष्टो वा कृतस्त्याग. प्रयागस्तेन कीर्तितः ॥"
(३।२८१)

इसी प्रकार 'तीर्थङ्करों', 'कुलकरों', 'वैश्य', 'शूद्र,' 'भरत क्षेत्र', 'माहण', 'त्राता' 'रावण,' 'इन्द्रजित्' 'चन्द्रनखा', 'भानुकर्ण', 'विभीषण', 'दशानन' आदि अन्य अनेक नामों की व्युत्पत्ति दी गयी है।[८४]

'वाल्मीकि-रामायण' में जिस प्रकार माहात्म्य-कथन किया गया है उसी प्रकार फलश्रुति और माहात्म्यकथन पद्मपुराण में भी किया गया है (पर्व १२३)।

उपर्युक्त तथ्यों का साक्षात्कार करने पर सिद्ध हो जाता है कि 'वाल्मीकि रामायण' से 'पद्मपुराण' पर्याप्त प्रभावित है, कथानक मे भी और शैली में भी। ●

---

८३. दे० रामायण-७।३०।२२, ७।७६।४२, ७।५७।१४, ६।५७।१९, ७।२।३१ ७।१७।९, ११७०।३७, १।४५।३६-३७ आदि।

विशेष देखें-पद्म० १।३-१७; ३।२५६-२५९; ३।३८१; ४।५९, १२२, १२३; ५।४, १३, ६४, २१२-२१६, ३७८, ३८६; ६।३, ८४, २०८-२१४, ३८५, ३९०, ३९८, ४०१, ४०२, ४०६, ४०७, ७।२, १८, २२१-२२५, ३०१, ३०२; ८।१०३-१०५, १४४-४५, १५२, ४३२, ३९४; ९।४४, १५३; ११।३०९, ३१०; १२।५४, ९७; १५।१३-१४, ८०, २०६; १६। १५५, १५६; १८।२, २८, १२२, १२४; २०।१५, १८, २०, २७, १७२, २१०; २१।७, २४, ५३, ७७, ८२, १४०; २२।१०२, ११३, १३१, १४७, १५५, १६०, १६९, १७५, २४।३, ११३; २५।२२, २६ आदि।

तृतीय अध्याय

आचार्य रविषेण के समय की परिस्थितियाँ

साहित्य समाज का दर्पण है। देशकाल का साहित्य पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। कवि समाज का द्रष्टा होने के नाते जहाँ एक ओर परिस्थिति विशेष में उत्पन्न होता, बढ़ता, संस्कार ग्रहण करता, प्रेरणा प्राप्त करता, बनता और उस परिस्थिति को अपनी रचनाओं में प्रतिबिम्बित करता है वहाँ दूसरी ओर स्रष्टा होने के नाते वह अपनी सामसामयिक परिस्थितियो की प्रतिक्रिया के स्वरूप उन्हें बहुत कुछ परिष्कृत करने और बनाने का भी कार्य करता है। अतएव किसी कवि की रचना का युक्तियुक्त मूल्याकन करने के लिए तत्कालीन परिस्थितियो का परिचय प्राप्त करना भी आवश्यक हो जाता है। इस अध्याय मे हम बहिःसाक्ष्य के आधार पर अपने आलोच्य ग्रन्थ के रचयिता के समय की परिस्थितियों का अध्ययन करके यह देखने का प्रयास करेंगे कि वह उनसे कहाँ तक प्रभावित हुआ है। अपने अध्ययन के सौकर्य की दृष्टि से इन परिस्थितियों को हम चार भागो मे विभक्त कर सकते हैं—(१) राजनीतिक परिस्थितियाँ, (२) सामाजिक परिस्थितियाँ, (३) धार्मिक परिस्थितियाँ एव (४) साहित्यिक परिस्थितियाँ। रविषेण के 'पद्मपुराण' की रचना ६७८ ई० में हुई है। इस प्रकार हर्षकालीन एवं हर्षोत्तरकालीन परिस्थितियाँ रविषेण-कालीन परिस्थितियाँ है। इन परिस्थितियों का अध्ययन करने के लिए हमने भारतीय एव वैदेशिक विद्वानो के द्वारा प्रणीत ऐतिहासिक ग्रन्थों तथा साहित्य-ग्रन्थों को चुना है। इन्ही के आधार पर जो कुछ सामग्री हमें तत्कालीन परिस्थितियों का परिचय देती है उसे ही हम बहिःसाक्ष्य कहते हैं। बहिःसाक्ष्य के आधार पर किये गये परिस्थितियों के अध्ययन के द्वारा हम कवि पर इनके प्रभाव को देखने का प्रयत्न करेंगे।

रविषेणकालीन राजनीतिक परिस्थितियाँ

छठी शताब्दी भारतीय इतिहास का सबसे अधिक अन्धकारमय काल है। उस समय एक केन्द्रीय शक्ति का अभाव था। छोटे-छोटे अनेक राज्य थे। फलतः विदेशी हूणों को आक्रमण करने का सुअवसर मिला। उन्होंने बड़ी निर्ममता एवं पाशविकता के साथ देश को रौंद डाला एवं गुप्त सभ्यता के चिह्नों को नष्ट कर डाला।[८५] ऐसे ही समय भारतीय इतिहास के रंगमंच पर सम्राट् हर्षवर्द्धन का आविर्भाव होता है।

जिस समय हर्ष ने सत्ता सभाली, उस समय बड़ी विकट स्थिति थी। एक ओर पिता की मृत्यु हो चुकी थी, दूसरी ओर कुछ ही समय के उपरान्त उसके बहनोई कन्नौज के ग्रहवर्मन् का मालवा के राजा देवगुप्त ने वध कर दिया था। उसकी बहिन राज्यश्री को कन्नौज के कारागार में डाल दिया था। हर्ष का अग्रज राज्यवर्धन कन्नौज को इन आपत्तियों से मुक्त कराने में तो सफल हुआ, किन्तु गौड़ के राजा शशांक ने धोखे से उसे मार डाला। ऐसी अवस्था में हर्ष को न केवल थानेश्वर वरन् कन्नौज की शासन-व्यवस्था अपने हाथ में लेनी पड़ी। थानेश्वर का वह उत्तराधिकार स्वरूप राजा बना, किन्तु कन्नौज में वह काफी समय तक अभिभावक बना रहा। कालान्तर में कन्नौज में ही उसकी शक्ति प्रतिष्ठित हो गई और उसी को उसने अपनी राजधानी बना ली। दो राज्यों के संयुक्त हो जाने से तत्कालीन अस्थिर स्थिति में हर्ष को अपनी शक्ति प्रतिष्ठित करने मे पर्याप्त सहायता मिली।[८६]

हर्ष ने एक दृढ़ एव विस्तृत साम्राज्य की स्थापना की, किन्तु उसके सैनिक-अभियानो के सम्बन्ध मे निश्चित, प्रामाणिक एवं विस्तृत सामग्री का अभाव है। बाण अपने 'हर्षचरित' मे शशांक के प्रति सैनिक अभियान की प्रारम्भिक चर्चा के बाद ही चुप हो जाता है। युवान्-च्वांग के वृत्तान्त में आने वाले प्रसंग मात्र प्रशसात्मक एवं अस्पष्ट और सामान्य है। अतः हर्ष की विजयों का विस्तृत या तिथि-क्रमानुसार विवरण दे सकना संभव नही है। हम केवल इतना कर सकते हैं कि उन शक्तियों का नामोल्लेख कर दें जिनके साथ उसने युद्ध किया तथा उपलब्ध अत्यल्प सामग्री के आधार पर परिणामों का यथा सम्भव निर्देश कर दें।[८७]

---

८५. घोष एम० एन०, भारत का प्राचीन इतिहास, (इण्डियन प्रेस लि० प्रयाग, सस्क० १९५१ ई०) पृ० ३८७।

८६. त्रिपाठी रमाशंकर, प्रा० भा० इतिहास, (मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, सस्क० १९६२ ई०) पृ० २२१-२२।
दि क्लैसिकल एज, पृ० ९९-१०२।

८७. दी क्लैसिकल एज, पृ० १०३।

मुख्य रूप से हर्ष के सैनिक-अभियानों के चार दौर रहे हैं जिनमें उसे (१) वलभी और गुर्जर के शासकों, (२) चालुक्य राजा पुलिकेशिन् द्वितीय, (३) सिन्धु और (४) पूर्व के मगध, गौड़, ओड्र तथा कोंगोदा (जिला गंजाम) के शासकों के साथ युद्ध करना पड़ा।[८८]

वलभी के पाँच शासक शीलादित्य प्रथम धर्मादित्य, खरगृह, धरसेन तृतीय, ध्रुवसेन द्वितीय बालादित्य तथा धरसेन चतुर्थ हर्ष के समकालीन थे। त्रिपाठी के अनुसार "यह निर्विवाद सिद्ध है कि वलभी के ध्रुव भट्ट अथवा ध्रुवसेन द्वितीय को उस (हर्ष) के आक्रमण का शिकार होना पड़ा था। हर्ष प्रारम्भ में विजयी भी हुआ और ध्रुव भट्ट को भड़ोच के दद्दा द्वितीय की शरण लेनी पड़ी। दद्दा की सहायता से इस राजा ने अपना पैतृक राज्य पुनः प्राप्त कर लिया।[८९] किन्तु आर० सी० मजूमदार ने इस सम्बन्ध में शंका उठाई है। उनकी शंका का आधार अत्यन्त पुष्ट है। प्रामाणिक स्रोतों के आधार पर इतना ही कहा जा सकता है कि वलभी के साथ हर्ष का संघर्ष हुआ था जिसमे उसे सफलता नही मिली।[९०]

सम्भवतः उपर्युक्त संघर्ष ही "सम्पूर्ण दक्षिणापथ के स्वामी" पुलकेशिन् द्वितीय के साथ हर्ष के युद्ध का कारण बना। ऐहोल-मेगुटी-अभिलेख मे इसका पुलकेशिन् के पक्ष की ओर से दृप्त वर्णन है। इसमें स्पष्ट है कि हर्ष को पुलकेशिन् के विरुद्ध सफलता नही मिली और वह दक्षिण मे अपने राज्य का विस्तार न कर सका।[९१]

हर्षचरित मे आये उल्लेख—"सिन्धुराज को मथकर उसकी सम्पत्ति स्वायत्त कर ली"[९२] के आधार पर अनुमान लगाया जाता है कि उसने सिन्धु पर विजय प्राप्त की किन्तु युवान्-च्वांग के कथन से स्पष्ट है कि सिन्धु एक सशक्त एवं स्वतन्त्र राज्य था और यदि हर्ष ने आक्रमण किया भी होगा तो असफल रहा होगा।[९३]

वस्तुत हर्ष को पूर्व मे शानदार विजय प्राप्त हुई। 'युवान्-च्वांग के जीवन' से स्पष्ट है कि ६४३ ई० तक हर्ष ने कोंगोदा, उड़ीसा और मगध इत्यादि पर अपना अधिकार कर लिया था। कामरूप के शासक भास्करवर्मन् के साथ प्रारम्भ से मैत्री सम्बन्ध स्थापित हो चुका था। बाद मे भास्करवर्मन् प्राय. अधीनस्थ राजा हो गया

८८ वही, पृ० १०३।

८९ त्रिपाठी, प्रा० भा० इति० पृ० २२३।

९० दी क्लॅसिकल एज, पृ० १०३-१०५।

९१ दी क्लॅसिक्ल एज, पृ०१०५-६, त्रिपाठी, प्रा० भा० इति पृ० २३३

९२ अत्र पुरुषांत्तमेन सिन्धुराज प्रमथ्य लक्ष्मी आत्मीकृता। हर्षचरित।

९३ दी क्लॅसिक्ल एज, पृ० १०६।

था।[९४] शशांक को पराजित करके बंगाल पर भी हर्ष ने अधिकार कर लिया था।[९५]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि हर्ष ने अपने साम्राज्य के लिए अनेक युद्ध किये, नये राज्यों को जीतकर अपने साम्राज्य की सीमा का विस्तार किया। उसने उत्तरापथ में एक विस्तृत एवं दृढ़ साम्राज्य की स्थापना की। उसने अधिकांश युद्ध प्रारम्भ में ही किये, किन्तु "६४३ ई० के कोंगोदा (गंजाम जिला) युद्ध से प्रमाणित है कि अपने घटना-बहुल शासन के अन्त तक उसे युद्ध करते रहना पड़ा।"[९६] इस प्रकार यह निश्चित है कि कुछ समय के लिए हर्ष ने उत्तरी भारत की अस्थिर राजनीतिक दशा को स्थायित्व प्रदान किया और विदेशी आक्रमणों का दौर एक केन्द्रीय शक्ति स्थापित हो जाने के कारण कुछ समय के लिए रुक गया।

हर्ष ने चीन के साथ कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित किये थे। इस सम्बन्ध के परिणाम-स्वरूप कई बार दूतों का पारस्परिक आदान-प्रदान हुआ।[९७]

प्राय: ४० वर्षों के घटनापूर्ण शासन के पश्चात् ६४७ अथवा ६४८ ई० में हर्ष की मृत्यु हो गयी। हर्ष के पश्चात् उसका अपना कोई उत्तराधिकारी न था जिससे साम्राज्य में अराजकता फैल गयी। उसके मन्त्री अरुणाश्व या अर्जुन ने उसकी गद्दी पर अपना अधिकार कर लिया। इस नये शासक ने एक चीनी-मिशन का विरोध किया। हर्ष के जीवन के अन्तिम दिनों में भेजे गये इस चीनी मिशन के थोड़े-से रक्षकों का वध करा दिया गया तथा उसका माल लूट लिया गया। मिशन का नेता-काग-हुयेन-तो सौभाग्य से भाग निकला। उसने नैपाल के तिब्बती नरेश से सैनिक सहायता ली। यह तिब्बती नरेश चीन की एक राजकुमारी ब्याह लाया था। वाग ने तिरहुत पर अधिकार कर लिया तथा अनेक युद्धों के बाद अर्जुन को पराजित कर एवं बन्दी बनाकर चीन ले गया। अर्जुन साम्राज्य को जोड़े रखने वाली अन्तिम कड़ी था। इसके टूटते ही साम्राज्य बिखरने लगा।[९८]

"पश्चात् साम्राज्य के पंजर के लिए राजाओं में होड़ लग गयी। आसाम के भास्करवर्मन् ने हर्ष के प्रान्त कर्ण-सुवर्ण तथा समीपस्थ भूमि पर अधिकार कर लिया और वहाँ से एक ब्राह्मण को भूमिदान कर लेख-पत्र निकाला। मगध में हर्ष के सामन्त माधव गुप्त के पुत्र आदित्यसेन ने अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी और सम्राटों के विरुद धारण कर अश्वमेध का अनुष्ठान किया। पश्चिम और उत्तर-

---

९४. वही, पृ० १०६-१०८।

९५. घोष, भा० प्रा०इति०, पृ० ३९४।

९६. त्रिपाठी, प्रा० भा० इति० पृ० २२५।

९७. घोष, भा० प्रा० इति० पृ० ३८९।

९८. त्रिपाठी, प्रा० भा० इति०, पृ० २३५, घोष, भा० प्रा० इति०, पृ० ४०२।

पश्चिम में जिन शक्तियों पर हर्ष का आतंक छाया रहता था वे अब स्वतन्त्र हो गयीं।"[९९]

हर्ष ने उत्तरी भारत की राजनीति में जो स्थिरता लायी, वह उसकी मृत्यु के पश्चात् ही छिन्न-भिन्न हो गयी। विदेशी आक्रमण पुनः प्रारम्भ हो गये। उत्तर में चीन और तिब्बत की ओर से आक्रमण हुए। उधर अरबों ने सिन्धु पर आक्रमण किया। इन आक्रमणों का, विशेष रूप से मुस्लिम आक्रमणों का, क्रम बराबर जारी रहा। इन आक्रमणों के अतिरिक्त हर्ष के पश्चात् घटने वाली सबसे महत्त्वपूर्ण घटना युद्धप्रिय राजपूत जाति का उदय एवं उत्तर भारत में कई राजपूत राज्यों की स्थापना है। कन्नौज में गुर्जर-प्रतिहार तथा गहड़वारी, बुन्देलखण्ड में चन्देल, मालवा में परमार, अजमेर और दिल्ली में चौहान, बिहार और बंगाल में पाल इत्यादि राजपूतवंश उल्लेखनीय हैं। इन्होंने झूठे आत्मगौरव, पारस्परिक द्वेष तथा आपसी युद्धों के कारण भारत को शक्ति-सम्पन्न करने के बजाय कमजोर ही अधिक बनाया।

इन परिस्थितियों का रविषेण के हृदय और मस्तिष्क पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। साम्राज्य की सुव्यवस्था और अराजकता दोनों के ही चित्र 'पद्मपुराण' में मिलते हैं। यह कहना असम्भव नहीं प्रतीत होता कि हूणों की सेनाओं के वर्णन तथा उनका घर्षण आदि तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का ही परिणाम है।

रविषेणकालीन सामाजिक परिस्थिति

रविषेणकालीन सामाजिक परिस्थिति का ज्ञान हमें ह्यूआन-चुआंग एवं इत्सिंग के यात्रा वृत्तान्तों से पर्याप्त मात्रा में हो जाता है।

ह्यूआन-चुआंग हमें बताता है कि जाति-प्रथा ने हिन्दू-समाज को जकड़ रखा था। ब्राह्मण धर्म-कर्म करते थे। क्षत्रिय शासक-वर्ग थे। राजा प्रायः क्षत्रिय होते थे। वैश्य व्यापारी तथा वणिक् थे। शूद्र खेती तथा परिचर्या का कार्य करते थे। ह्यूआन-चुआंग के शब्दों में—'क्षत्रिय और ब्राह्मण अपनी पोशाक आदि की दृष्टि से साफ है और वे घरेलू और ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। धनी व्यापारी हैं जो सोने की वस्तुओं का व्यापार करते हैं। वे प्रायः नंगे पाँव जाते हैं, बहुत कम लोग पादुकाएँ पहिनते है। वे अपने दाँतों पर लाल या काले निशान लगाते हैं, वे अपने बाल ऊपर बाँधते है और कानों में छिद्र करते हैं। शरीरिक सफाई का वे बहुत ध्यान रखते हैं। खाने से बची हुई चीज को वे कभी भी नहीं खाते। प्रयोग करने के

---

९९. त्रिपाठी प्रा० भा० इति०, पृ० २३६।

बाद लकड़ी तथा मिट्टी के बर्तन नष्ट कर दिये जाते हैं, धातु के बर्तनों को रगड़ कर माँजा जाता है। खाने के बाद वे अपने मुँह को बेंत की शाखा से साफ करते हैं और हाथ तथा मुँह धो लेते हैं।[१००]

इत्सिग (जिसने ६७२ और ६८८ के बीच भारत-यात्रा की थी) बताता है कि भारत में पुरोहित लोग खाना खाने से पहले हाथ पैर धो लिया करते थे। वे अलग-अलग छोटी-छोटी कुर्सियों पर बैठते थे जो बेंतों की बनी होती थीं। सच्चे तथा झूठे भोजन में भेद रखना भारत का रिवाज था। यदि एक कौर भी खा लिया जाए तो वह झूठा हो जाता था और उन बर्तनों का प्रयोग नहीं किया जाता था जिसमें वह भोजन परोसा जाता था। यह प्रथा धनी लोगों में ही नहीं, निर्धनों में भी थी। खाना खाने के बाद प्रत्येक भारतीय को मुँह साफ करना पड़ता था। इत्सिग बताता है कि जब एक बार उत्तर के मंगोलिया के लोगों ने एक दूत मण्डल भारत भेजा तो उसके सदस्यों का उपवास और अपमान किया गया क्योंकि वे अपने शरीर तथा मुँह साफ नहीं करते थे।[१०१]

ह्युआन-चुआंग् और इत्सिग दोनों के अनुसार ही भारत की भोजन-व्यवस्था बड़ी शुद्धिपरक थी।[१०२] प्याज और लहसन बहुत कम प्रयुक्त होते थे। उन्हें खाने वालों को समाज से निष्कासित कर दिया जाता था।

'भारत की समृद्धि से ह्युआन-चुआंग अत्यधिक प्रभावित हुआ। वह हमें बताता है कि लोगों का जीवन-स्तर बहुत ऊँचा था। सोने और चाँदी दोनों के सिक्के प्रचलित थे। कौड़ियों और मोती भी मुद्रा के रूप में प्रचलित थे। भूमि उर्वर थी और उत्पादन बहुत ज्यादा था। विभिन्न प्रकार की सब्जियों तथा फलों की उपज की जाती थी। लोगों का मुख्य आहार था—गेहूं की चपातियाँ, भुने हुए दाने, चीनी, घी और दूध के पदार्थ। कुछ अवसरों पर मछली, मृग और भेड़ का मांस भी खाया जाता था। गाय तथा कुछ जंगली जानवरों का मास पूर्णतः वर्जित था। जो व्यक्ति नियमों का उल्लंघन करता था उसे निष्कासित किया जा सकता था।[१०३]

ह्युआन-चुआंग् ने लिखा है कि अन्तर्जातीय विवाह नहीं होते थे। एक ही जाति के विभिन्न वर्गों में भी विवाह सीमित थे। भोजन तथा विवाह की दृष्टि से विभिन्न जातियों में कुछ नियन्त्रण थे किन्तु उनमें सामाजिक आचार-व्यवहार के

१००. बी० डी० महाजन . प्रा० भारत का इति०, (एस० चन्द एण्ड कं० दिल्ली, १९६२ ई०) पृ० ४८०-४८१।

१०१. वही, पृ० ५०२-५०३।

१०२. वही, पृ० ४८१, ५०४।

१०३. वही, पृ० ४७९-४८०।

मार्ग में ये नियन्त्रण बाधक नहीं थे। विधवा-पुनर्विवाह की प्रथा नहीं थी। उच्च वर्गों में तो पर्दे की प्रथा रही प्रतीत नहीं होती। हमें बताया गया है कि ह्यु आन-चुआंग् के उपदेश सुनते समय राज्यश्री पर्दा नहीं करती थी। सती-प्रथा प्रचलित थी। रानी यशोमती अपने पति प्रभाकरवर्धन के साथ ही जल गयी। राज्यश्री भी जलने वाली ही थी और उसकी जीवनरक्षा बड़ी कठिनाई से की गयी।[१०४] 'हर्ष-चरित' में बाण ने शूद्रा माता और ब्राह्मण पिता से उत्पन्न अपने भाई का उल्लेख किया है जिससे ब्राह्मणों का नीच वर्णों की कन्या लेने का अधिकार घोषित होता है।

ह्यु आन-चुआग हमें बताता है कि रेशम, ऊन और सूत के कपड़े बनाने की कला अत्यन्त परिष्कृत थी।[१०५]

ह्यु आन-चुआंग् लिखता है—"राजा तथा उच्च व्यक्तियों के आभूषण असाधारण थे। कीमती पत्थरों का 'तारा' और हार उनके सिर के आभूषण हैं और उनके शरीर अंगूठियों, कंगनों तथा मालाओं से सुसज्जित है। धनवान् व्यापारी लोग केवल कगन पहनते हैं। यद्यपि लोग सादे कपड़े पहिनते थे परन्तु वे आभूषणों के शौकीन रहे प्रतीत होते हैं"।[१०६] इत्सिंग बताता है कि सारे भारत में लोग दो कपड़े पहिनते थे। वे चौड़ी लिनन के थे और आठ फुट लम्बे थे। उनकी कटाई या सिलाई नही की जाती थी। उन्हें केवल कमर के चारों ओर बाँध लिया जाता था जिससे शरीर का निचला भाग ढक जाए। उत्तर-पश्चिम के लोग कपड़े प्रयुक्त ही नहीं करते थे। वे ऊन और चमड़े के वस्त्र पहिनते थे। वे कमीजें और पायजामे पहिनते थे। इत्सिंग एक अन्य प्रकार के वस्त्र का भी उल्लेख करता है जो बाएँ कन्धे के ऊपर पहिना जाता था। घाघरा शरीर के निचले भाग के चारों ओर बाँध लिया जाता था। इसके लिए मुलायम सफेद कपड़ा प्रयोग किया जाता था।[१०७]

हर्ष के बाद चालुक्यों के काल मे ब्राह्मणों की दशा अत्यन्त पुष्ट हो गयी थी। वे सभी जातियों में सर्वाधिक सम्मानित थे। उन्हें ऐसे अधिकार और सुविधाएँ प्राप्त थी जो अन्य लोगो को प्राप्त नही थी, उदाहरणतया प्राणदण्ड ब्राह्मणों को नही दिया जाता था।[१०८] इस समय स्त्रियों का सम्मान होता था।[१०९]

---

१०४ वही, पृ० ४८१।
१०५ वही, पृ० ४८०।
१०६ वही, पृ० ४८०।
१०७ वही, पृ० ५०३।
१०८ वही, पृ० ५१३।
१०९ वही, पृ० ५१४।

भाव यह है कि रविषेण ने दो युग देखे थे एक हर्षकालीन और दूसरा हर्षोत्तर-कालीन। इन दोनों ही युगों में समाज चार वर्णों में विभक्त था। हर्ष के बाद ब्राह्मणों का अधिक बोलबाला हो गया था। वह इतिहास के स्वर्णकाल का अव्यवहितोत्तर समय था जिसमें समाज-व्यवस्था के विद्रूप होने का प्रश्न ही नहीं उठता। अपने काल की सामाजिक परिस्थिति से वे पर्याप्त प्रभावित हुए हैं जिस का संकेत उनके ग्रंथ में अनेक स्थलों पर है।

रविषेणकालीन धार्मिक परिस्थिति

आचार्य रविषेण के समय की धार्मिक परिस्थिति पर विचार करने के लिए हमे हर्षकालीन और हर्षोत्तरकालीन धार्मिक परिस्थिति को ही लेना होगा। हर्षकालीन धार्मिक परिस्थिति का पर्याप्त ज्ञान हमे ह्यु आन-चुआंग् के यात्रा-विवरण से हो जाता है। यद्यपि ह्यु आन-चुआंग् ने भारत की हर चीज को 'बौद्धधर्म के चश्मे' से देखकर[११०] बौद्धधर्म की ही अधिक प्रशस्यता प्रतिपादित की है तथापि अन्य धर्मों की स्थिति भी व्यजित हो जाती है।

हर्ष ने अपनी सारी निष्ठा तीन देवताओं-बुद्ध, सूर्य और शिव में बाँट दी थी और उन तीनों की सेवा के निमित्त अमूल्य देवस्थान स्थापित किये थे। उसके समय में बौद्धधर्म, जैन धर्म तथा ब्राह्मण हिन्दूधर्म साथ-साथ फलते फूलते रहे और विविध धर्मों के अनुयायी परस्पर शान्ति-व्यवहार स्थापित रखकर जीवन-यापन करते थे।[१११] कन्नौज की सभा और प्रयाग के पंचवर्षीय वितरण से हर्ष की धार्मिक उदारता प्रकट होती है तथापि जीवन के उत्तरकाल में प्राय. वह कट्टर बौद्ध हो गया था। इस प्रकार हर्ष की सरक्षकता में बौद्धधर्म कन्नौज मे फूल-फल चला था यद्यपि अन्य प्रदेशों में उसका काफी ह्रास हो गया था।[११२]

'ह्यु आन्-चुआग् के वृत्तान्त और हर्षचरित से स्पष्ट है कि हर्ष के साम्राज्य मे बौद्ध, ब्राह्मण तथा जैन धर्मों का विशेष प्रचार था। इनमें से अन्तिम का वैशाली पौण्ड्रवर्धन और समतट को छोड़ देश के अन्य भागों में प्रायः अभाव हो चला था। इन स्थानों में अवश्य दिगम्बरों की बहुलता थी। इस धर्म की दूसरी शाखा श्वेताम्बरों की थी। ह्यु आन्-च्वाग् को बौद्ध धर्म का प्रसार अत्यन्त विस्तृत जान पड़ा, पर वस्तुतः कौशाम्बी, श्रावस्ती और वैशाली आदि स्थानों में उसका अत्यन्त ह्रास हो चला था। बौद्धधर्म और उसकी सक्रियता के केन्द्र मठ और विहार थे

११० दी क्लासिकल एज, पृ० ११७।

१११ घोष, भा० का प्रा० इति० पृ० ३९९।

११२ त्रिपाठी, प्रा० भा० का इति० पृ० २३३।

जिनका अस्तित्व गृही लोगों के दान पर अवलम्बित था। बौद्धधर्म के मुख्य सम्प्रदाय महायान और हीनयान थे जिनमें से प्रथम का विशेष प्रचार हुआ था।[११३] यात्री ने उसकी १८ शाखाओं का भी वर्णन किया है जो अपने क्रियानुष्ठानों में एक दूसरे से भिन्न थे और जिनमें से प्रत्येक अपनी बौद्धिक महत्ता की घोषणा करता था।[११४] इस प्रकार के संघर्ष बौद्ध धर्म के ह्रास के कारण हुए और उनके विरुद्ध प्रतिक्रिया से ब्राह्मण धर्म को बल मिला जो गुप्तकाल से ही पुनरुज्जीवित हो चला था। ब्राह्मण धर्म के मुख्य केन्द्र हर्ष के साम्राज्य में प्रयाग और वाराणसी थे। जैन और बौद्ध धर्मों की भाँति ही ब्राह्मण धर्म भी स्पष्टतः मूर्तिपूजक था। महायान में तो बुद्ध और बोधिसत्वों की पूजा सर्वमान्य थी ही। लोकप्रिय ब्राह्मण देवता आदित्य, शिव तथा विष्णु थे और उनकी मूर्तियाँ मन्दिरों में प्रतिष्ठापित की जाती थीं जहाँ उनकी सविस्तर पूजा होती थी।[११५] ब्राह्मण यज्ञाग्नि को प्रज्वलित करते, गाय का आदर करते तथा सौभाग्य और समृद्धि के अर्थ अनेक क्रियाओं के अनुष्ठान करते थे।[११६] ब्राह्मण धर्म की विशेषता उसकी दार्शनिक शाखाओं तथा साधुवर्गों की अनेकता में थी। बाण ने कपिल और कणाद के अनुयायियों, वेदान्तियों, आस्तिकों (ऐश्वरकरणिकों), लोकायतिकों (निरीश्वरवादियों) का उल्लेख किया है।[११७] इसी प्रकार साधुओं के अनेक वर्गों का भी उसने उल्लेख किया है। इनमें से मुख्य निम्नलिखित थे—केशलुंचक (सिर के बाल उखाड़ने वाले), पाशुपत, पंचरात्रिक,,भागवत आदि।[११८] 'जीवन वृत्तान्त' में भी भूतो, कापालिकों, जुतिकों, सांख्यों, वैशेषिकों आदि का वर्णन है।[११९] इन विविध वर्गों के परिधान, विश्वास तथा क्रियानुष्ठान भिन्न-भिन्न थे। ये भिक्षाटन करते थे और व्यक्तिगत आवश्यकताओं की परवाह किये बिना अपने दृष्टिकोण से सत्य की खोज में लगे रहते थे।[१२०]

हर्ष के उपरान्त बौद्धधर्म का प्रचार क्षीण होने लगा। अराजकता के कारण विभिन्न राजकुल विभिन्न धर्मों को आश्रय देने लगे। चालुक्य-शासक कट्टर

---

११३ त्रिपाठी, प्रा० मा० का इति, पृ० २३३।

११४. वाटर्स १, पृ० १६२।

११५ हर्षचरित, कावेल टामस अनूदित, पृ० ८४।

११६. वही, पृ० ८४-८५ और देखिये पृ० ७१, ९० १३०।

११७ वही, पृ० २३६।

११८ वही, पृ० ३३, ४९, २३६।

११९. लाइफ, पृ० १६१-६२।

१२०. वाटर्स १, पृ० १६०-१६१।

हिन्दू थे। पुलकेशिन् द्वितीय के पुत्र विक्रमादित्य प्रथम के शासन काल (३५४-६८० ई०) में ब्राह्मण धर्म को प्रश्रय मिला। वातापि के चालुक्य-शासक कट्टर हिन्दू थे परन्तु जैनों और बौद्धों के प्रति भी वे सहिष्णु थे। उनके समय में कई लोग पूर्ण स्वतन्त्रता से जैन-सिद्धान्तों को मानते थे। एहोल का प्रशस्तिकार कविकीर्ति जैन था और स्वयं पुलेकिशन् द्वितीय की संरक्षता में था। बौद्धधर्म गिरती हालत में था परन्तु ह्यु आन-च्वांग् के यात्राकाल में चालुक्य राज्य में कई मठ और स्तूप विद्यमान थे जिससे चालुक्यों की धार्मिक सहिष्णुता का पता चलता है। जैन और हिन्दूधर्म बौद्धधर्म को क्रमशः दबाते चले जा रहे थे। याज्ञिक क्रियाओं की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित हो रहा था और इस विषय पर कई ग्रंथ भी इस काल में लिखे गये। अकेले पुलकेशिन् प्रथम ने कई बड़े यज्ञ किये यथा—अश्वमेध, वाजपेय इत्यादि। हिन्दूधर्म के पौराणिक रूप की भी लोकप्रियता बढ़ती गयी।[१२१]

भाव यह है कि रविषेण के काल में बौद्ध धर्म धीरे-धीरे भारत से अपसृत होता जा रहा था और ब्राह्मण तथा जैन-धर्म बल पकड़ रहे थे। यह स्वाभाविक ही था कि ऐसे समय मे ये दोनों धर्म परस्पर अपनी उदात्तता प्रकट करने के लिए एक दूसरे का खण्डन करते। इसी कारण ब्राह्मण निर्ग्रन्थ लोगों का तिरस्कार और जैनधर्म का खण्डन करते होंगे तथा जैनी ब्राह्मणों और यज्ञ क्रियाओं का। इसका रविषेण पर भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा और उन्होंने जैनधर्म-ग्रन्थ की रचना करके ब्राह्मणों के प्रति अपने दृष्टिकोण को प्रस्तुत कर दिया है।

रविषेणकालीन साहित्यिक परिस्थिति :

सप्तम शताब्दी ई० तक संस्कृत साहित्य पर्याप्त प्रौढ़ि धारण कर चुका था। कविकुल गुरु कालिदास, कवि अश्वघोष, प० विष्णु शर्मा एवं चाणक्य आदि की रचनाओं से देववाणी का आँचल भरा जा चुका था। रससिद्ध कवियों के साथ ही चमत्कारी कवियों की भी रचनाएँ पूर्ण प्रकर्ष के साथ आने लगी थीं। रविषेण के सामने एक प्रशस्त साहित्यिक परम्परा प्रेरणा स्रोत के रूप में विद्यमान थी।

सप्तम शती ई० के प्रारम्भ में भारवि ने 'किरातार्जुनीय' नामक प्रसिद्ध संस्कृत महाकाव्य की रचना की। चालुक्यवंशी राजा पुलकेशी के एहोल के ६३४ ई० के शिला लेख में भारवि का नाम लिया गया है।[१२२] यद्यपि इसमें कलापक्ष

---

१२१ घोष, भारत का प्रा० इति०, पृ० ४३०

१२२ 'येनायोजि नवेऽश्म स्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म।
स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रितकालिदासभारविकीर्तिः ॥ —ऐहोल शिलालेख।

की प्रधानता है फिर भी भारवि का यह महाकाव्य अपना अलग स्थान रखता है। इस महाग्रन्थ में काव्यशास्त्रोक्त नियमों का पूर्णतया निर्वाह हुआ है। व्याकरण-नियमों के साथ-साथ काव्य-नियमों का ऐसा सुन्दर निर्वाह कम काव्यों में दिखाई देता है। कालिदास और अश्वघोष की अपेक्षा भारवि का व्यक्तित्व दर्शन सर्वथा स्वतन्त्र प्रतीत होता है। इसका बड़ा भारी कारण यह है कि भारवि ने वीर रस का बड़ा ही हृदयग्राही चित्रण और अलंकृत काव्य शैली का सफल वर्णन किया है। 'अर्थ-गौरव' भारवि की सबसे बड़ी विशेषता है।[१२३]

'भट्टिकाव्य' या 'रावणवध' महाकाव्य भी इसी काल की देन है। महाकवि भट्टि ने इसकी रचना सौराष्ट्र की वैभवशाली नगरी वलभी के नरेश श्री धरसेन के राज्यकाल मे की थी।[१२४] 'उपलब्ध शिलालेखों में श्रीधरसेन के नाम से वलभी में चार राजाओं का होना पाया जाता है जिनमें एक शिलालेख ३२६ वि० सं० का लिखा हुआ मिलता है।[१२५] इससे अवगत होता है कि वलभी-राज्यकाल का आरम्भ इसी समय हुआ। द्वितीय श्रीधरसेन के नाम से उपलब्ध एक शिलालेख में भट्टिनामक किसी विद्वान् को भूमिदान करने का वर्णन है। निश्चय ही यही श्रीधरसेन भट्टि के आश्रयदाता एवं प्रशंसक थे जिनका समय छठी शताब्दी का उत्तरार्द्ध या सातवीं शताब्दी का आरम्भ था और जिसको कि भट्टिकवि का स्थितिकाल भी माना जाना चाहिए।[१२६] कुछ इतिहासकारों का अभिमत है कि भट्टिकवि वलभीनरेश श्रीधरसेन द्वितीय के राजकुमारों के गुरु थे और इन्हीं राजपुत्रों की शिक्षा के लिए भट्टि कवि ने काव्यमयी भाषा में अपने इस व्याकरण-परक महाकाव्य की रचना की थी।[१२७] कवि ने इसके विषय में कहा है—

"दीपतुल्यः प्रबन्धोऽयं शब्दलक्षणचक्षुषाम्।
हस्तादर्श इवान्धाना भवेद् व्याकरणादृते॥"

भट्टि के अनुवर्ती महाकवि कुमारदास ने अपने २५ सर्गों वाले 'जानकीहरण' नामक महाकाव्य की रचना भी इसी काल में की थी जिसके अब १५ सर्ग ही उपलब्ध होते हैं। इसमे राम कथा का बड़ा ही हृदयग्राही वर्णन है। इनका सम्भावित स्थितिकाल सातवीं-आठवीं शताब्दी माना जा सकता है।[१२८]

१२३ वाचस्पति गैरोला, सस्कृत साहित्य का इतिहास पृ० ८५३।
१२४ काव्यमिदं विहितं मया वलभ्या श्रीधरसेननरेन्द्रपालितायाम्।
कीर्तिरतो भवतान्नृपस्य तस्य क्षेमकर. क्षितपो यतः प्रजानाम्॥ रावणवध २२।३५
१२५. दो कलेक्टेड वर्क्स आफ् भण्डारकर, वाल्यूम ३, पृ० २२८।
१२६. सेठ कन्हैयालाल पोद्दार, सस्कृत साहित्य का इतिहास, भाग १, पृ० १०६
१२७. डा० भोलाशंकर व्यास, संस्कृत-कवि-दर्शन, पृ० १४२।
१२८. वाचस्पति गैरोला संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ८५५।

कुमारदास के अनन्तर महाकाव्यों की परम्परा को समृद्धिशाली रूप देने वालों में महाकवि माघ का नाम आता है।[१२९] महाकवि माघ का स्थितिकाल ६५०-७०० ई० के बीच का था।[१३०] महाकवि माघ की कवित्वकीर्ति का अमर स्मारक उनका—'शिशुपालवध' या' माघकाव्य' है। माघ शब्दार्थवादी कवि थे।[१३१] उनकी इस महाकाव्य कृति के अध्ययन से पूर्णतया विदित होता है कि माघ व्याकरण, राजनीति, सांख्य, योग, बौद्धन्याय, वेद, पुराण अलंकारशास्त्र, कामशास्त्र और संगीत आदि अनेक विषयों में पारंगत थे।[१३२] माघ के कवित्व में कालिदास के भाव, भारवि का अर्थगौरव, दण्डी की कला और भट्टि की व्याकरणपरक पाण्डित्य शैली सभी का एक साथ सामंजस्य है।

महाकाव्यों के अतिरिक्त स्फुटकाव्यों या खण्डकाव्यों के लिखने की प्रवृत्ति भी इस काल में थी। इस प्रकार के स्फुट काव्यों की परम्परा मे चक्र कवि ने ७ वीं श०ई० में आठ सर्गों की 'जानकीपरिणय' नामक एक काव्य कृति लिखी। यह कवि मदुरा के तिरुमल नायक के आश्रित था।[१३३] जैन महाकवि धनंजय (७वीं श०) का 'विषापहारस्तोत्र' ३९ इन्द्रवज्रा वृत्तों का एक लघुकाव्य है जिस पर अनेक टीकाएँ लिखी गयी।[१३४]

शृंगार-काव्यो एव, नीतिकाव्यों की रचना भी इस काल मे हो रही थी। 'अमरुकशतक', भर्तृहरिकृत 'शृंगारशतक' 'नीतिशतक,' 'वैराग्यशतक' इसके प्रमाण है।

स्तोत्रकाव्यो की परम्परा भी इस काल मे पर्याप्त बृंहित रूप प्राप्त कर रही थी। राजा हर्ष (७०० ई०) ने बौद्धधर्म से सम्बद्ध 'सुप्रभातस्तोत्र और 'अष्टमहाश्रीचैत्यस्तोत्र' लिख। इसी परम्परा मे बाण ने शिवपत्नी भगवती चण्डी की स्तुति मे 'चण्डीशतक', मानतुग ने 'भक्तामरस्तोत्र' और हर्ष के आश्रित कवि बाण के श्वसुर मयूर कवि ने 'सूर्यशतक' लिखा। सातवीं शताब्दी मे वर्तमान केरल के राजा कुलशेखर ने एक बहुत ही रुचिकर शैली मे 'छन्दमाला' गीतिकाव्य लिखा।[१३५]

पद्यकाव्य के साथ ही गद्यकाव्य का प्रणयन भी इस काल में जोरों से चल रहा

---

१२९ वही, पृ० ८५६।
१३० पाण्डेय, सस्कृत साहित्य की रूपरेखा।
१३१. दे० 'शिशुपालवध' २।८६।
१३२. डा० व्यास, संस्कृत-कवि-दर्शन, पृ० १७५।
१३३. गैरोला, सस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ८१४।
१३४. नाथूराम प्रेमी जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ११०।
१३५. गैरोला, स०साहित्य का इतिहास, पृ० ९०८।

था। संस्कृत-साहित्य के मूर्धन्य गद्यकार इसी काल की देन हैं। महाकवि दण्डी, गद्यसम्राट् बाण और प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रपंचविन्यासवैदग्ध्यनिधि प्रबन्ध के रचयिता सुबन्धु ने इसी काल में 'दशकुमारचरित', 'अवन्तिसुन्दरी' 'हर्षचरित' 'कादम्बरी' और 'वासवदत्ता' का प्रणयन करके गद्य को कवियों का निकष सिद्ध किया। इनके बाद ऐसे गद्य-लेखक संस्कृत साहित्य में नहीं हुए।

काव्यशास्त्र पर भी लेखनी चल ही रही थी। भामह का 'काव्यालंकार' एवं दण्डी का 'काव्यादर्श' इसके प्रमाण हैं।

संस्कृत-नाटक-साहित्य की दृष्टि से भी यह काल अत्यन्त महत्वपूर्ण है। करुण-रस-मन्दाकिनी के प्रालेयाचल भवभूति ने सातवीं शताब्दी में 'उत्तररामचरित' जैसी अनुपम कृति संस्कृत-साहित्य को दी। उनके 'मालतीमाधव' एवं 'महावीर-चरित' का स्थान भी कम महत्वपूर्ण नहीं है।' ये तीनों नाटक उज्जैन के कालप्रिया-नाथ के महोत्सव पर अभिनीत हुए थे। इनमें 'उत्तररामचरित' उनकी सर्वोत्कृष्ट एवं संस्कृत के शीर्षस्थानीय नाटकों की कोटि में गिनी जाने वाली रचना है। राम कथा के जिस नाजुक पक्ष को लेकर भवभूति ने अपनी इस कृति को सफलता पूर्वक सम्पादित किया है, वैसा इस परम्परा में लिखे गये दूसरे ग्रन्थों में आज तक नहीं मिलता है। दूसरे रामकथा-विषयक भारतीय नाटककारों की अपेक्षा भव-भूति ने अपने इस नाटक में राम और सीता के पवित्र एवं कोमल प्रेम का अधिक वास्तविकता से चित्रण किया है।[१३६]

इसके अतिरिक्त व्याकरण शास्त्र का 'काशिका' नामक ग्रंथ एवं अन्य शास्त्रों के ग्रंथ भी इस काल में संस्कृत-साहित्य में रचे जा रहे थे।

वस्तुतः यह काल साहित्यिक उन्नति के दृष्टिकोण से बड़ा महत्वपूर्ण रहा। राजकुलों के आश्रय में साहित्य रचा गया। गद्य-साहित्य में वर्णन-कौशल का प्रदर्शन एवं चमत्कारोत्पादन इस काल की महत्वपूर्ण विशेषता रही। बृहत्त्रयी के दो महान् ग्रन्थों 'किरातार्जुनीय' और 'शिशुपालवध' की रचना से कवियों का कलापक्ष के प्रति झुकाव सिद्ध होता है।

रविषेण ने अपनी सम्मुखस्थ साहित्यिक परिस्थिति का पर्याप्त प्रभाव ग्रहण किया। बाण के 'हर्षचरित' का तो उन पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा है।[१३७] 'लक्षणा-लंकृती वाच्यं प्रमाणं छन्द आगमः' आदि को उपन्यस्त करके उन्होंने तत्कालीन चमत्कारी प्रवृत्ति का प्रमाण दिया है। संक्षेप में रविषेण तत्कालीन साहित्यिक परिस्थिति से अत्यधिक प्रभावित थे।

१३६ ए० ए० मैकडानल, हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० ३६५।

१३७. दे० प्रस्तुत शोधप्रबन्ध, का द्वितीय अध्याय : रविषेण का लोकशास्त्र काव्यावेक्षण।

चतुर्थ अध्याय

पद्मपुराण की विषयवस्तु

विषय, कथा, कथानक, वृत्त, इतिवृत्त, कथावृत्त, प्रतिपाद्य, वस्तु, कथावस्तु एवं विषय-वस्तु—ये सभी प्रायः समानार्थक हैं। साहित्य-शास्त्र के अनुसार काव्य की विषय-वस्तु त्रिविध मानी गयी है। १—ऐतिहासिक या पौराणिक, २—काल्पनिक एवं ३—मिश्रित। व्यापकता के आधार पर विषयवस्तु अथवा इतिवृत्त के दो भेद हो जाते हैं—आधिकारिक एवं प्रासंगिक। प्रासंगिक के भी दो भेद होते हैं—पताका एवं प्रकरी।

'पद्मपुराण' की विषयवस्तु ऐतिहासिक या पौराणिक है। इसमें राम सम्बन्धी कथा आधिकारिक है, सुग्रीव की अन्त तक चलने के कारण 'पताका' एवं बालि-वज्रजंघ आदि की कथा बीच में ही समाप्त हो जाने के कारण 'प्रकरी' है।

राम काव्यों की आधिकारिक कथावस्तु विश्वविश्रुत, स्पष्ट एवं सरल है जिसे सामासिक रीति से इस प्रकार कहा जा सकता है—

"राजा दशरथ की कई पत्नियाँ थीं, परन्तु उनके कोई सन्तान नहीं थी। वृद्धावस्था मे जाकर उनकी भिन्न-भिन्न पत्नियों से राम, लक्ष्मण, भरत, और शत्रुघ्न चार पुत्र उत्पन्न हुए। इनमें राम सब से बड़े थे। राम अपने सद्गुणों के कारण अन्य पुत्रों में श्रेष्ठ थे। राजा दशरथ उन्हें ही अपना राज्य सौंपना चाहते थे परन्तु षड्यन्त्र के कारण ऐसा न हो सका। राज्य के बदले राम को वनवास लेना पड़ा। उनके साथ उनकी पत्नी सीता और भाई लक्ष्मण भी वन को गये थे। दुर्भाग्य से वहाँ राक्षसों का शक्तिशाली राजा रावण सीता को अकेली पाकर हर ले गया। राम सीता को जंगल-जंगल ढूँढने लगे। इसी बीच सुग्रीव से उनकी मित्रता हो गयी। तदनन्तर राम ने सुग्रीव आदि की सहायता से लंका-नरेश रावण पर

चढ़ाई कर दी; उसे युद्ध में हराया और मार गिराया। राम सीता को वापिस ले आये और लक्ष्मण-सीता सहित अयोध्या लौटकर राज्य करने लगे।"

इसी विषयवस्तु को 'व्यास समास स्वमति अनुरूपा' के अनुसार प्रायः सभी राम-सम्बन्धी काव्यों में निबद्ध किया गया है किन्तु प्रत्येक रामकाव्य की विषय-वस्तु में पर्याप्त वैषम्य भी दृष्टिगत होता है—भले ही उनकी आत्मा समष्टि रूप में एक हो। यह स्वरूप-भेद आर्यरामायण, बौद्धरामायण और जैनरामायण सम्बन्धी विविध ग्रन्थों में देखा जा सकता है।

पद्मपुराण मे प्रथम पर्व मे महावीर-वन्दना की गयी है[१३८]। तदनन्तर कुलकरों तथा तीर्थंकरों की वन्दना है। इस चमत्कारप्रधान मंगलाचरण में प्रत्येक वन्दनीय के नाम को नामानुरूप विशेषण से 'विशिष्ट' किया गया है, यथा—

वासुपूज्यं सतामीशं वसूपूज्यं जितद्विषम्।
विमलं जन्ममूलानां मलानामतिदूरगम्॥
अनन्तं दधतं ज्ञानमनन्तं कान्तदर्शनम्।
धर्मं धर्मधुराधारं शान्तिं शान्तिजिताहितम्॥[१३९]

'पद्मपुराण' में विद्याधरवंश मे रावण का परिचय देने के लिए एक व्यायत भूमिका बनाई गयी है। साथ ही वानर-वंश का परिचय भी दिया गया है। राम-कथा का प्रारम्भ तो २५ वें पर्व से होता है। इससे पूर्व तो मगध देश के राजगृह नगर के राजा श्रेणिक का विपुलाचल पर्वत पर महावीर के समवशरण में जाकर धर्मोपदेश सुनना, राजा श्रेणिक के मन मे शयन-पर पड़े-पड़े वानर-राक्षसों के विषय में सन्देह होना (पर्व २), गौतम गणधर से रामकथा-विषय प्रश्न करना, गणधर के द्वारा क्षेत्र-काल-कुलकरो का वर्णन, ऋषभजन्मोत्सव तथा अभिषेक वर्णन, ऋषभ के भरत आदि सौ पुत्रों का वर्णन, नीलांजना नर्तकी की मृत्यु से ऋषभ का दीक्षा-ग्रहण, भरत-बाहुबलि की कथा, नमि-विनमि को धरणेन्द्र द्वारा विजयार्द्ध की उत्तर-दक्षिण श्रेणियों के राज्यदान की कथा, विजयार्द्ध-गिरि-वर्णन (पर्व ३), बाहुबलि का वैराग्य एवं ब्राह्मणों की सृष्टि आदि का वर्णन (पर्व ४) करके 'स्थित्यधिकार' समाप्त करना ही भूमिका रूप मे निबद्ध है।

'पद्मपुराण' मे राक्षसवंश का विस्तृत परिचय मिलता है। अयोध्या के राजा

---

१३८. "सिद्धं सम्पूर्णभव्यार्थसिद्धेः कारणमुत्तमम्।
प्रशस्तदर्शनज्ञानचारित्र — प्रतिपादनम्॥
सुरेन्द्रमुकुटाश्लिष्टपादपद्मांशुकेशरम्।
प्रणमामि महावीरं लोकत्रितयमंगलम्॥" (पद्म० १।१-२)

१३९. पद्म १।२-१०

अरणीधर का उल्लेख करते हुए मेघवाहन राजा की वंश-परम्परा में महारक्ष आदि अनेक राजाओं के अन्त में कीर्तिधवल का वर्णन किया गया है (पर्व ५) 'एवं तेष्वप्यतीतेसु घनप्रभसुतोऽभवत् । लंकायामधिपः कीर्तिधवलो नाम विश्रुतः ।।'[१४०] कीर्तिधवल का साला श्रीकण्ठ था। उसने कीर्तिधवल से वानर-द्वीप माँग लिया था। श्रीकण्ठ के वंश में अमरप्रभ उत्पन्न हुआ। उसका विवाह लंका के धनी की पुत्री 'गुणवती' से होने जा रहा था। गुणवती वेदी पर बने बन्दरों के चित्रों से भयभीत हो गयी जिसके कारण अमरप्रभ वानरों के और उनके चित्र बनाने वालों के प्रति क्रुद्ध हो उठता है किन्तु बाद मे मंत्रियों के अनेक प्रकार से समझाने पर उनके चिह्न ध्वजाओं एवं मुकुटों पर अंकित कराता है। इसी से 'वानरवंश' प्रसिद्ध होता है।[१४१] इन्हीं वानरों की वंश-परम्परा में आगे चलकर

१४०. पद्मपुराण ५।४०३।

१४१ "इत्युक्ते मन्त्रिभिः सान्त्वं प्रत्युवाचामरप्रभ ।
त्यजन् क्षणेन कोपोत्थविकारं वदनार्पितम् ।।
मंगलं सेविता· पूर्वैर्यदस्माकममी तत ।
किमित्यालिखिता भूमौ यस्या पादाविमगम. ।।
नमस्कृत्य वहाम्येतान् शिरसा गुरुगौरवात् ।
रत्नादिघटितान् कृत्वा लक्षणान्मौलिकोटिषु ।।
ध्वजेषु गृहश्रृंगेषु तोरणानां च मूर्द्धसु ।
शिरस्सु चातपत्राणामेतानाशु प्रयच्छत ।।
ततस्तैस्तत्प्रतिज्ञाय तथा सर्वमनुष्ठितम् ।
यथा दिगीक्ष्यते या या तत्र तत्र प्लवंगमा. ।।" (पद्म०, ६।१८७-१९१)

'पद्मपुराण' में वानरवंश की बौद्धिक व्याख्या की गयी है। यहाँ 'वानर' 'बन्दर' नहीं है, अपितु 'वानरचिह्नधारी' राजा हैं—

"एव वानरकेतूना वंशे संख्याविवर्जिता ।
आत्मीयै. कर्मभि प्राप्ता· स्वर्गं मोक्ष च मानवा. ।।
वंशानुसरणच्छायामात्रमेतत्प्रकीर्त्यते ।
नामान्येषा समस्ताना शक्त क. परिकीर्तितुम् ।।
लक्षण यस्य यल्लोके स तेन परिकीर्त्यते ।
सेवकः सेवया युक्तः कर्षक. कर्षणात्तथा ।।
धानुष्को धनुषो योगात् धार्मिको धर्मसेवनात् ।
क्षत्रियः क्षततस्त्राणात् · ब्राह्मणो ब्रह्मचर्यतः ।।
इक्ष्वाकवो यथा चैते नमेश्च विनमेस्ततः ।
कुले विद्याधरा जातः विद्याधरणयोगतः ।।
परित्यज्य नृपो राज्यं श्रमणो जायते महान् ।
तपसा प्राप्य सम्बन्धं तपो हि श्रम उच्यते ।।

अनेक राजाओं का वर्णन है। उधर सुकेशपुत्र माली लंका को जीत लेता है (पर्व ६) इन्द्र के साथ युद्ध करने पर माली के मारे जाने पर उसके भाई सुमाली और माल्यवान् अलंकारपुर (पाताललंका) में भाग जाते हैं। वहाँ सुमाली का पुत्र रत्नश्रवा हुआ। इसी का पुत्र रावण था। भानुकर्ण, विभीषण और चन्द्रनखा भी रत्नश्रवा की सन्तान थे (पर्व ७)।

'पद्मपुराण' में रावण के मुख का हार में प्रतिबिम्ब पड़ने के कारण उसका नाम 'दशानन' है।[१४२] रावण के १० मुख नहीं हैं। दशाननादि भाइयों की विद्या-सिद्धि,[१४३] अनावृत यक्ष के उपसर्ग एवं दशानन की सहस्रों (सहस्रं तस्य विद्या-

---

अथ तु व्यक्त एवास्ति शब्दोऽयत्र प्रयोगवान्।
यष्टिहस्तो यथा यष्टिः कुन्त. कुन्तकरस्तथा ॥
मञ्चस्था पुरुषा मञ्चा यथा च परिकीर्तिता.।
साहचर्यादिभिर्धर्मैरेवमाद्या उदाहृता ॥
तथा वानरचिह्नेन छत्रादिविनिवेशिना।
विद्याधरा गता ख्याति वानरा इति विष्टपे ॥"

(पद्म०, ६।२०६-२१५)

१४२ "स्थूलस्वच्छेषु रत्नेषु नवान्यानि मुखानि यत्।
हारे दृष्टानि यातोऽसौ तद्दशाननसंज्ञिताम् ॥" (पद्म० ७।२२२)

१४३. रविषेण ने विद्याधरकुमार दशानन एवम् उसके भाइयो की विद्याओ का नामोल्लेख इस प्रकार किया है:—

"नभःसंचारिणी कामदायिनी कामगामिनी।
दुर्निवारा जगत्कम्पा प्रज्ञप्तिर्भानुमालिनी ॥
अणिमा लघिमा क्षोभ्या मन स्तम्भनकारिणी।
सवाहिनी सुरध्वंसी कौमारी वधकारिणी ॥
सुविधाना तपोरूपा दहनी विपुलोदरी।
शुभप्रदा रजोरूपा दिनरात्रिविधायिनी ॥
वज्रोदरी समाकृष्टिरदर्शन्यजरामरा।
अनलस्तम्भनी तोयस्तम्भनी गिरिदारिणी ॥
अवलोकन्यरिध्वंसी घोरा धीरा भुजंगिनी।
वारुणी भुवनावध्या दारुणा मदनाशिनी ॥
भास्करी भयसम्भूतिरैशानी विजया जया।
बन्धनी मोचनी चान्या वराही कुटिलाकृति ॥
चित्तोद्भवकरी शान्तिः कौबेरी वशकारिणी।
योगेश्वरी बलोत्सादी चण्डा भीतिः प्रवर्षिणी ॥ (पद्म ७।३२५-३३२)

उपर्युक्त रावण की विद्याओं के अतिरिक्त सर्वाहा-रतिसंवृद्धि-जृम्भिणी-व्योमगामिनी भानुकर्ण को तथा 'सिद्धार्थी शत्रुदमनी निर्व्याघाता खगामिनी' विभीषण को प्राप्त हुई।

(पद्म० ७।३३३-३४)

नामनेकं वशतामितम् (७।३१४) विद्याओं, भानुकर्ण की पाँच विद्याओं और विभीषण की चार विद्याओं का उल्लेख है, (पर्व ७)। रावण की मन्दोदरी के अतिरिक्त पद्मावती, अशोकलता, विद्युत्प्रभा आदि अनेक स्त्रियों का नामोल्लेख है, साथ ही भानुकर्ण की 'तडिन्माला' (८।१४२) और विभीषण की 'राजीवसरसी' (८।१५१) पत्नी के नामोल्लेख के साथ सहस्रों रानियों का संकेत है (पर्व ८)। रावण 'मेघरव' पर्वत पर छः हजार कुमारियों से क्रीड़ा करता है, वह दिग्विजय करता है, त्रिलोकमण्डन हाथी को वश में करता है, लंका को वैश्रवण से छीनता है, यम को परास्त करता है, अपनी बहन चन्द्रनखा का खरदूषण से विवाह करता है, बालि को वशंगत करना चाहता है किन्तु असफल रहता है। बालि-अधिष्ठित कैलास को उठाता है किन्तु बालि के अँगूठे से पर्वत के दब जाने पर कष्ट पाकर जिनेन्द्रस्तुति करता है तथा नागराज के द्वारा 'अमोघविजया' शक्ति को प्राप्त करता है (पर्व ८-९), सहस्ररश्मि को जीतता है, मरुत्वान् का यज्ञध्वंस करता है, नारद को बचाता है, कनकप्रभा से विवाह कर अनेक देशों में भ्रमण करता है (पर्व १०-११), अपनी कृतचित्रा कन्या का मथुरा के राजा हरिवाहन के पुत्र मधु के साथ विवाह करता है, नलकूबर को परास्त करता है, उसकी पत्नी उपरम्भा को अपने ऊपर आसक्त होने से रोकता है, इन्द्र को पराजित करता है तथा इन्द्र के पिता सहस्रार के प्रति नम्रता प्रदर्शन करके इन्द्र को छोड़ देता है (पर्व १२-१३), सुवर्णगिरि पर्वत पर अनन्तबल मुनिराज के समीप धर्म का विस्तार से वर्णन सुनकर भानुकर्ण के साथ शुभ प्रतिज्ञा करता है[१४४] (पर्व १४) वरुण को परास्त करता है और विशाल साम्राज्य स्थापित करता है (पर्व १९)। 'पद्मपुराण' के अनुसार 'खरदूषण' दो पात्र न होकर एक ही पात्र है तथा रावण का बहनोई है, रावण सुग्रीव का बहनोई है (पर्व ९) सुतारा का विवाह सुग्रीव से होता है एव अंग और अंगद-सुग्रीव के दो पुत्र है।

---

१४४. अवधार्येति भावेन प्रणम्यानन्तविक्रमम् ।
देवासुरसमक्ष स प्रकाशमिदमभ्यधात् ॥
भगवन्न मया नारी परस्येच्छाविवर्जिता ।
गृहीतव्येति नियमो ममाय कृतनिश्चयः ॥
भानुकर्ण ने अनुसरण का आश्रय लेकर यह नियम लिया'—
करोमि प्रातरुत्थाय साम्प्रतं प्रतिवासरम् ।
स्तुत्वा पूजां जिनेन्द्राणामभिषेकसमन्विताम् ॥
वरिवस्यामवस्त्राणामकृत्वा विधिनान्वितम् ।
अद्यप्रभृति नाहारं करोमीति ससमव. ॥" (पद्म० १४।३७०-३७४)

'पद्मपुराण' में हनुमान् की उत्पत्ति एवं कार्यों का विस्तृत और विलक्षण वर्णन है (पर्व १५-१९)। महेन्द्र और हृदयवेगा से अञ्जना उत्पन्न होती है एवं प्रह्लाद राजा और केतुमती से पवनञ्जय उत्पन्न होता है। दोनों का विवाह होता है। गलतफहमी के कारण पवनञ्जय अञ्जना से रुष्ट हो जाता है तथा रावण के बुलाये जाने पर, वरुण के विरुद्ध लड़ने, चला जाता है। वियोग में अञ्जना दुःखी होती है। पवनञ्जय विरहिणी चक्रवाकी के दर्शन से प्रेरणा पाकर छिपकर अञ्जना के साथ विस्तृत सम्भोग करता है। अञ्जना गर्भवती हो जाती है और शंकित केतुमती द्वारा सन्दिग्ध होकर घर से निकाल दी जाती है। वह पिता के घर जाती है किन्तु कञ्चुकी द्वारा उसके गर्भ का समाचार पाकर वह उसे आश्रय नहीं देता। निदान, अञ्जना अपनी सखी वसन्तमालिनी के साथ वन में जाकर एक पर्वत के समीप पहुँचती है, गुफा में मुनिराज के दर्शन करती है। मुनिराज उसके पूर्वभवों का वर्णन करके उसे सान्त्वना देकर अन्यत्र चले आते हैं। अञ्जना सखी के साथ वहीं रहती है तथा हनूमान् को उत्पन्न करती है। वरुण के युद्ध से लौटकर पवनञ्जय घर आता है किन्तु वहाँ अञ्जना को न देख उसकी खोज में घर से निकल जाता है। वह भूतरव वन मे मरने का निश्चय कर लेता है किन्तु बाद मे विद्याधरों के प्रयत्न से उसका अञ्जना से मिलाप हो जाता है। हनूमान् बहुत पराक्रमी है। वह वरुण के विरुद्ध रावण की सहायता करता है और वरुण को परास्त करता है। हनूमान् को रावण चन्द्रनखा की पुत्री 'अनंगपुष्पा' देता है, किष्कुपुराधीश नल भी उसे 'हरिमालिनी' कन्या देता है, इसी प्रकार वह सहस्राधिक रमणियों का स्वामी हो जाता है —'इति क्रमेणास्य बभूव योषितां पर सहस्रादगणनम् महात्मनः।' (पद्म० १९।१०५)

'पद्मपुराण' का 'दशरथ-जनक-काल-निवर्तन' का वृत्तान्त भी जैन रामकाव्य परम्परा की एक नई सूझ है। यह वृत्तान्त इस प्रकार है :—सागरबुद्धि नामक निमित्तज्ञानी से विभीषण को पता चलता है कि रावण की मृत्यु का कारण दाशरथि और जनक-दुहिता होंगे। विभीषण जनक और दशरथ को मारने जाता है। नारद द्वारा इसकी सूचना पाकर दशरथ और जनक मंत्रियों पर राज्य छोड़कर चले जाते हैं। मन्त्री उनके पुतलों को राज्य-सिंहासन पर आरूढ़ कर देते है तथा विभीषण उन्हें वास्तविक दशरथ और जनक समझकर काट डालता है। बाद में वह पश्चात्ताप भी करता है। इधर दशरथ और जनक कौतुकमंगल नगर पहुँचते हैं। वहाँ शुभमति राजा की सकलकलाधारिणी पुत्री केकया स्वयम्वर में राजा दशरथ को वरती है तथा स्वयम्वरोत्तर राजाओं के साथ युद्ध में दशरथ का रथ हाँककर उससे एक वर प्राप्त करके उसे धरोहर के रूप में उसके ही पास छोड़ देती

है। इसके अतिरिक्त पद्मपुराण में दशरथ की अपराजिता, सुमित्रा (कैकयी),[१४५] केकया एवं सुप्रभा इन चार रानियों का उल्लेख है जिनसे क्रमशः राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न उत्पन्न होते हैं। (पर्व २५)

जनक की दो जुड़वाँ सन्तान हैं—'भामण्डल' और 'सीता'। भामण्डल के जन्म लेते ही उसे, महाकाल असुर अवधि-ज्ञान से पूर्व जन्म के वैर के कारण, उड़ा कर ले गया किन्तु बाद में दया से द्रवीभूत होकर उसने उसे दिव्यकुण्डलों से अलंकृत करके आकाश से नीचे गिरा दिया। रथनूपुरनगराधिपति चन्द्रगति विद्याधर ने उसे सँभाल लिया और अपनी अपुत्रवती रानी पुष्पवती को सौंप दिया। पुत्र का जन्मोत्सव मनाया गया और उसका नाम 'भामण्डल' रखा गया। सीता, अपने महल में, दर्पण में नारद की आकृति को देखकर भयभीत हो उठती है। सेवक नारद को तिरस्कृत करते हैं। नारद अपमान का बदला लेने के लिए सीता का चित्र दिखाकर भामण्डल को उसके प्रति उत्सुक कर देता है। उधर जनक के राज्य में म्लेच्छों द्वारा उपद्रव होता है। उसे रोकने के लिए वे दशरथ को बुलाते हैं। दशरथ तत्काल वहाँ जाने को उद्यत होते हैं किन्तु राम-लक्ष्मण दशरथ को रोक कर स्वयं जाकर म्लेच्छोच्छेद करते है। इस अभूतपूर्व सहयोग से प्रसन्न होकर जनक दशरथ के पुत्र राम के लिए अपनी पुत्री देने का निश्चय कर लेते है। इधर भामण्डल सीता के विरह में दुःखी है। राजा चन्द्रगति की सम्मति से चपलवेग नामक विद्याधर अश्व का रूप धारण कर मिथिला से जनक को हर कर रथनूपुरनगर ले आता है। वहाँ चन्द्रगति उनसे अपने पुत्र भामण्डल के लिए सीता को माँगता है किन्तु जनक निषेध करते हैं तथा अपने पूर्व निश्चय को दुहराते हैं। अन्त में—"वज्रावर्त समारोप्य पद्मो गृह्णातु कन्यकाम्। अस्माभिः प्रसभं पश्य तामानीतामिहान्यथा ॥ (पद्म० २८।१७१)"—विद्याधरों की इस शर्त को मान कर जनक लौट आते हैं। स्वयंवर होता है। राम 'वज्रावर्त' धनुप को चढ़ा

---

१४५. 'पद्मपुराण' में 'कैकयी' सुमित्रा है जो लक्ष्मण की माता है। केकया भरत की माता है। 'कैकयी' का नाम ही 'सुमित्रा' है।

> "पुरमस्ति महारम्यं नाम्ना कमलसंकुलम्।
> सुबन्धुतिलकस्तस्य राजा **मित्रास्य** भामिनी ॥
> दुहिता **कैकयी** नाम तयोः कन्या गुणान्विता।
> ० ० ०
> मित्राया जनिता यस्मात् सुचेष्टा रूपशालिनी।
> सुमित्रेति ततः ख्याति भुवने समुपागता ॥"
>
> (पद्मपुराण, २२।१७३-७५)

देते हैं तथा सीता को प्राप्त करते हैं। भामण्डल निराश होता है।

'पद्मपुराण' में सीता-राम के विवाह के साथ केवल लक्ष्मण और भरत का विवाह दिखलाया गया है (पर्व २८)। लक्ष्मण 'सागरावर्त' धनुष को चढ़ाते हैं— "क्षुब्धाकूपारनिस्वानं सागरावर्तकार्मुकम्। तावच्च लक्ष्मणोऽधिज्यं कृत्वास्फालय-दुन्नतम् ॥" (२८।२४७) इस पर चन्द्रवर्द्धन विद्याधर ने उन्हें १८ (अठारह) कन्याएँ समर्पित की—'विक्रान्ताय तथा तस्मै विद्याभृच्चन्द्रवर्द्धनः। अष्टादश ददौ कन्या धियैवाप्रौढिका इति ॥' (पद्म० २८।२५०) राम-लक्ष्मण का विवाह देखकर भरत को शोक होता है कि 'देखो, मेरा भाग्य कैसा मन्द है!' इस पर केकया ने भरत के अभिप्राय को जानकर दशरथ से जनक के अनुज कनक की सुप्रभा रानी से उत्पन्न 'लोकसुन्दरी' नामक पुत्री भरत के लिए माँगने का विचार दिया। दशरथ ने इसे स्वीकार कर कनक को सूचित किया और कनक ने अगले दिन राजाओं को बुलाकर लोकसुन्दरी का विवाह भरत से कर दिया।[१४६]

---

१४६. वृत्तान्तमिममालोक्य भरतः पुरुविस्मयः।
अशोचदेवमात्मानं मनसा सम्प्रबुद्धवान् ॥
कुलमेकं पिताप्येक एतयोर्मम चेदृशम्।
प्राप्तमद्भुतमेनाभ्यां (रामलक्ष्मणाभ्यां) न मया मन्दकर्मणा ॥
अथवा किं मनो व्यर्थं परलक्ष्म्याभितप्यसे।
पुरा चारूणि कर्माणि न कृतानि ध्रुवं त्वया ॥
पद्मगर्भदलच्छाया साक्षाल्लक्ष्मीरिवोज्ज्वला।
ईदृशी पुरुपुण्यस्य पुंसो भवति भामिनी ॥
कलाकलापनिष्णाता विज्ञाता केकया ततः।
विज्ञाय तनयाकूतं कर्णे प्रियमभाषत।
भरतस्य मया नाथ! शोकवल्लक्षितं मनः।
तथा कुरु यथा नाथ निर्वेदं परमृच्छति ॥
अस्त्यत्र कनको नाम जनकस्यानुजो नृपः।
सुप्रभायां ततो जाता सुकन्या लोकसुन्दरी ॥
स्वयम्वराभिधं भूयः समुद्घोष्य नियोज्यताम्।
तथाय यावदायाति नान्यं तं भावनान्तरम् ॥
ततः परमामित्युक्त्वा वार्ता दशरथेन सा।
कर्णगोचरमानीता कनकस्य सुचेतसः ॥
यदाज्ञापयतीत्युक्त्वा कनकेनान्यवासरे।
समाहूता नृपाः क्षिप्रं गता ये निलयं निजम् ॥
ततो यथोचितस्थानस्थितभूनाथमध्यगम्।
नक्षत्रगणमध्यस्थशर्वरीवरविभ्रमम् ॥
उपासमुमनोदामा कानकी कनकप्रभा।
सुप्रभा भरतं वव्रे सुभद्रा भरतं यथा ॥ (पद्मपुराण, २८।२५२-२६३)

रामायणादि में वर्णित सीता-राम-विवाह से पूर्व की घटनाएँ यथा विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण का जाना, ताड़का-सुबाहु को मारना, अहल्या का उद्धार करना, मिथिला-स्वयम्वर में तमाशा देखने जाना, वाटिका में पुष्प-चयन करते हुए सीता-साक्षात्कार करना, लक्ष्मण-परशुराम-संवाद, बारात-आगमन, राम-विवाहोत्सव आदि 'पद्मपुराण' में वर्णित नहीं हैं।

वृद्ध कंचुकी का प्रसंग दशरथ के वैराग्य के कारण रूप में उपस्थित हुआ है। यह प्रसंग इस प्रकार है :—आषाढ़ी आष्टाह्निका को, राजा दशरथ रानियों के पास जिन-प्रतिमा का गन्धोदक भिजवाते हैं सुप्रभा रानी के पास एक वृद्ध कञ्चुकी गन्धोदक ले जाता है तथा अन्य रानियों के पास तरुण दासियाँ ले जाती है। सभी रानियों के पास गन्धोदक जल्दी पहुँच जाता है किन्तु सुप्रभा के पास वह उतनी जल्दी नहीं पहुँचता जिसे सुप्रभा अपना अपमान समझ कर आत्मघात करना चाहती है। राजा दशरथ उसके पास पहुँचते हैं तथा अन्य रानियों के साथ उने समझाते हैं। इसी बीच वृद्ध कञ्चुकी गन्धोदक ले आता है तथा रानी सुप्रभा उसे शिर पर धारण करती है। राजा वृद्ध कञ्चुकी से विलम्ब का कारण पूछते हैं तो वह अपनी वृद्धावस्था को ही इसमें हेतु बताता है। उसकी जर्जर अवस्था देखकर राजा दशरथ विरक्त हो जाते हैं। (पर्व २९) 'पद्मपुराण' में, भामण्डल सीता के वियोग मे जलकर सेना के साथ सीता को लेने के लिए अयोध्या की ओर प्रस्थान करता है किन्तु मार्ग में अपने पूर्वभव का स्मरण करके मूर्च्छित हो जाता है एवं जागने पर अत्यन्त लज्जित होता है। उसे ज्ञात होता है कि सीता उसकी सगी बहिन है। वह अपने पिता चन्द्रगति-सहित अयोध्या आता है और अपने अपराध के लिए क्षमा माँगता है।

'पद्मपुराण' में, केकया-वर-याचना-प्रसग इस प्रकार है—वृद्ध कंचुकी की दशा देखकर निर्विण्ण दशरथ प्रव्रज्या का विचार करने लगे और भरत भी प्रव्रज्या की सोचने लगा। उसके इस अभिप्राय को जानकर केकया अत्यन्त चिंतित हुई। अत: राम को राज्य सौपने को उद्यत राजा दशरथ से उसने भरत को दीक्षा से विरक्त कराने के निमित्त पूर्वोपार्जित एक वर माँग लिया ('वरं सम्प्रति त यच्छ मह्य'' पद्म० ३१।१०५।)। इसमें उसने भरत के लिए राज्य माँगा। राम के वन-वास का वर केकया नहीं माँगती। राम वन तो स्वेच्छा से जाते हैं (पर्व ३१)। दशरथ केकया को बिना किसी विचिकित्सा के भरत के राज्य का वर दे देते हैं।

'पद्मपुराण' में दशरथ भरत को राम-वन-गमन से पूर्व ही राज्य देते हैं, राम वन जाने से पूर्व भरत से राज्य करने का अनुरोध करते हैं और उसे अपनी

ओर से निश्चिन्त करते हैं।[१४७] राम के साथ उनकी माता भी चलने का अनुरोध करती है। लक्ष्मण, दशरथ पर पहले क्रोध करता है फिर शान्त होकर राम के साथ चल देता है। सीता से राम कहते हैं कि मैं दूसरे नगर को (वन को नहीं) जा रहा हूँ, तुम यही रहो 'प्रिये त्वं तिष्ठ चात्रैव गच्छाम्यहं पुरान्तरम्'। राम-वन-गमन के समय दशरथ खम्भे से टिके हुए मूर्च्छित हो जाते हैं जिससे उन्हें कोई मूर्च्छित नहीं जान पाता।

'पद्मपुराण' में वन-प्रस्थान का वृत्तान्त इस प्रकार है :—राम-लक्ष्मण-सीता के साथ प्रजा के अनेक लोग चले जाते हैं। राम-लक्ष्मण-सीता अनुसारियों को धोखा देने के लिए सायं समय जिन-मन्दिर मे टिक जाते हैं—

"अनुप्रयातुकामस्य कर्तुं लोकस्य वञ्चनम्।
ससीतौ तावरेशस्य स्थानं प्राप्तौ क्षपामुखे॥' (पद्म० ३१।२२३)

दशरथ की रानियाँ दशरथ से प्रार्थना करती हैं कि वे शोकसागरमग्न कुल के रक्षार्थ राम-लक्ष्मण को लौटा लें किन्तु दशरथ अब इस प्रपञ्च मे नही पड़ते। सीता के साथ राम-लक्ष्मण मध्यरात्रि में सबको सोता छोड़ मन्दिर के पश्चिम द्वार से दक्षिण दिशा की ओर चल पड़ते हैं। प्रात. जागने पर कितने ही लोग उनके पीछे दौड़ते है तथा कुछ दूर तक साथ जाते हैं। अन्त में परियात्रा नामक वन के बीच मे पड़ने वाली शर्वरी नामक नदी को सीता को पकड़कर राम-लक्ष्मण तो पार कर जाते है किन्तु सामन्त एवं अन्य प्रजाजन उसे पार नहीं कर पाते।

---

१४७ "तत पद्मोऽपि तत्पाणी गृहीत्वैवमभाषत।
प्रेमनिर्भरया पश्यन् दृष्ट्या मधुरनिस्वन॥
तातेन भ्रातरुक्त यत्कोऽन्यस्तद्गदितुं क्षम.।
नहि सागररत्नानामुत्पत्ति सरसो भवेत्॥
वयस्तपोऽधिकारे ते आयतंऽद्यापि नोचितम्।
कुरु राज्य पितु कीर्तिरुद्यातु शशिनिर्मला॥
इय च शोकसन्तापा माता यद्याति पञ्चताम्।
न तद्युक्त महाभागे नन्दने त्वादृशे सति॥
पितु पालयितु सत्य त्यजामोऽपि वय तनुम्।
कथ त्व तु कृत प्राज्ञ श्रिय न प्रतिपद्यसे॥
नद्या गिरावरण्ये वा तत्र वास करोम्यहम्।
यत्र कश्चिन्न जानाति कुरु राज्य यथेप्सितम्॥
भाग सर्वं परित्यज्य पत्यानमपि सश्रित.।
न करोमि पृथिव्या ते कांचित्पीडा गुणालय॥
मा श्वसांहोमिमुत्सृण च मुञ्च तावद्भ्रमाद्भयम्।
कुरु वाक्यं पितु. क्षोणी रक्ष न्यायपरायण.॥ (पद्मपुराण, ३१।१५४-१६१)

फलस्वरूप कितने ही लौट जाते हैं और कितने ही दीक्षित हो जाते हैं। दशरथ भी सर्वभूतहित मुनि के पास दीक्षा ले लेते हैं (पर्व ३२)।

'पद्मपुराण' में राम-लक्ष्मण चित्रकूट वन को पार कर अवन्तिदेश में पहुँचते हैं। वहाँ एक ऊजड़ देश को देखकर तत्रागत दीन-हीन मनुष्य से उसका कारण पूछते हैं। वह इसी प्रकरण मे दशांगपुर के राजा वज्रकर्ण का वृत्तान्त सुनाता है। तदनन्तर सिंहोदर की उद्दण्डता से वह राम को परिचित कराता है और सिंहोदर तथा वज्रकर्ण के पारस्परिक संघर्ष का निरूपण करके कुपित सिंहोदर के द्वारा इस देश के विध्वंसीकरण का उल्लेख करता है। राम-लक्ष्मण आहार प्राप्त करने की इच्छा से आगे बढ़ते हैं। लक्ष्मण के सौन्दर्य से आकृष्ट होकर राजा वज्रकर्ण उसे उत्तमोत्तम भोज्य पदार्थ देता है। लक्ष्मण उन सबको लेकर राम के पास आते हैं। वज्रकर्ण के इस आतिथ्य-सत्कार से राम के हृदय पर भारी प्रभाव पड़ता है और वे लक्ष्मण को वज्रकर्ण की रक्षा के लिए भेजते हैं। लक्ष्मण भरत के सेवक बनकर सिंहोदर की अक्ल ठिकाने लगाते हैं और उसे परास्त कर वज्रकर्ण की रक्षा करते हैं। अन्त मे वज्रकर्ण और सिंहोदर की मित्रता कराते हैं। लक्ष्मण को वज्रकर्ण की आठ एवं सिंहोदर आदि राजाओं की तीन सौ कन्याएँ प्राप्त होती हैं।[१४८] (पर्व ३३) वनयात्रा-प्रकरण में ही कुमारवेशधारिणी 'कल्याणमाला' से लक्ष्मण के विवाह का वृत्तान्त है, 'कपिल ब्राह्मण' की कथा है, वनमाला-लक्ष्मण-प्रसंग है। राम-लक्ष्मण पृथ्वीधर की सभा में दूत के मुख से भरत पर राजा अतिवीर्य के भावी आक्रमण का समाचार प्राप्त कर नर्तकीवेश में उसकी सभा मे जाकर अपने अनुपम संगीत और कलापूर्ण नृत्य से वशीभूत करके उसे पकड़ लेते हैं तथा भरत के प्रति आक्रमण के विचार को उससे तिलाञ्जलि दिला देते हैं। राजा अतिवीर्य दयालु सीता के द्वारा मुक्त किया जाता है एवं दीक्षा ले लेता है। आगे चलकर क्षेमाञ्जलिपुर के राजा शत्रुदमन की शक्ति को झेलकर लक्ष्मण उसकी पुत्री जितपद्मा को अपने ऊपर आसक्त करते हैं तथा राजा उसका विवाह उनके साथ कर देता है (पर्व ३४-३८)। इसके बाद राम-लक्ष्मण देशभूषण-

---

१४८ "वज्रकर्णस्ततः कृत्वा रामलक्ष्मणयो पराम्।
पूजामानाययत्क्षिप्रमष्टौ दुहितरो वरा ॥
सजायो दृश्यते ज्यायानिति तास्तेन ढौकिताः।
लक्ष्मीधरं कृतोदारविभूषाविनयान्विताः ॥
नृपाः सिंहोदराद्याश्च ददुः परमकन्यका.।
एवं सन्निहितं तस्य कुमारीणां शतत्रयम् ॥"

(पद्मपुराण, ३३।३११-३१३)

कुलभूषण मुनि का उपसर्ग दूर करते हैं (पर्व ३९), वंशस्थलपुर के राजा सुरप्रभ द्वारा चरमशरीरी राम का अभिवादन होता है, राम-लक्ष्मण दण्डकवन-प्रस्थान करते हैं, सीता-सहित कर्णरवा नदी में स्नान करते हैं, जटायु का वृत्तान्त आता है एवं उसके पूर्व जन्म की कथा का उल्लेख किया जाता है (पर्व ४०-४२)।

सीताहरण का हेतु 'पद्मपुराण' में शम्बूकवध है, न कि शूर्पणखा का नाक-कान-कर्तन। शम्बूकवध का वृत्तान्त इस प्रकार है—एक दिन लक्ष्मण वन भ्रमण करते हुए दूर निकल गये। उन्हें एक ओर से अद्भुत गन्ध आयी जिससे आकृष्ट होकर वे उसी ओर बढ़ते गये। एक बाँस के भिड़े में छिपकर चन्द्रनखा-खरदूषण का पुत्र शम्बूक सूर्यहास खड्ग सिद्ध कर रहा था। देवोपनीत खड्ग आकाश में लटक रहा था। उसी की सुगन्ध सर्वत्र फैल रही थी। लक्ष्मण ने लपक कर सूर्यहास खड्ग हाथ में लेकर उसकी तीक्ष्णता की परख के लिए उसे बाँसों से भिड़े पर चला दिया जिससे वह बाँसों का भिड़ा एक दम कट गया और उसके भीतर स्थित शंम्बूक भी दो टुकड़े हो गया। इधर जब चन्द्रनखा पुत्र को भोजन देने आयी तो उसको मरा हुआ देखकर परम शोकाभिभूत हुई तथा विलाप करने लगी। कुछ समय बाद राम-लक्ष्मण के सौंदर्य से उसका मन हर लिया गया और वह उनमें से एक को वरण करने की इच्छा से कन्या बन गयी—'इति सचिन्त्य संसाधुकन्या-कल्पं समाश्रिता' (४३।६३) उसने राम लक्ष्मण के प्रति अपना अनुराग प्रकट किया किन्तु अपनी लक्ष्यप्राप्ति में असफल रही। यही यह भी वर्णन है कि चन्द्रनखा के चले जाने के बाद उसके सौन्दर्य से अभिभूतचित्त लक्ष्मण राम की नजर बचाकर उसे ढूँढने गये और मन में पश्चा-ताप करने लगे, कि मैंने उस घनस्तनी, रूपलावण्यगुणपूर्णा, मदनाविष्टनगेन्द्र-वनितासमगामिनी को आते ही स्तनोपपीडनाश्लेष को प्राप्त क्यों न करा दिया? अब न जाने वह सुलोचना कहाँ होगी? 'जाता सा विषये कस्मिन् कस्य वा दुहिता भवेत्। यूथभ्रष्टा मृगीवेय कुतः प्राप्ता सुलोचना (४३।१२०)' अस्तु (पर्व ४३)। कामेच्छा पूर्ण न होने पर पुत्र-शोकाभिभूत चन्द्रनखा विलाप करती हुई अपने पति खरदूषण के पास गयी। खरदूषण ने स्वयं आकर पुत्र को देखा। उसका क्रोध उबल पड़ा। वह राम-लक्ष्मण के साथ युद्ध करने को उठ खड़ा हुआ तथा रावण को भी उसने इस घटना की सूचना दी। खरदूषण का इधर लक्ष्मण के साथ घमासान युद्ध होता है उधर रावण उसकी सहायता के लिये आता है। वह बीच में सीता को देखकर मोहित हो उठता है तथा छल से सिंहनाद करके राम को लक्ष्मण के पास भेजकर एकाकिनी सीता को हर ले जाता है (पर्व ४४)।

सीता को हर कर ले जाते हुए रावण के पीछे अर्कजटी का पुत्र रत्नजटी दौड़ता है किन्तु रावण उसकी आकाशगामिनी विद्या छीनकर उसे आकाश से गिरा देता है। वह समुद्र के मध्य कम्बुद्वीप में जाकर पड़ता है। इधर राम-लक्ष्मण का विराधित से परिचय होता है और वह विद्याधरों से सीता का पता लगाने को कहता है (पर्व ४५)।

उधर रावण सीता को लेकर लङ्का में पहुँचता है। वहाँ पश्चिमोत्तर दिशा में स्थित देवारण्य उद्यान में सीता को ठहराकर उससे प्रेम याचना करने लगता है किन्तु शीलवती सीता उसके प्रस्ताव को ठुकरा देती है। रावण माया द्वारा सीता को भयभीत करने का भी प्रयत्न करता है किन्तु वह अपने पथ से विचलित नहीं होती। रावण सीता के प्रेम को प्राप्त करने के लिए बहुत दु:खी है। रावण की विप्रलम्भजन्य दुर्दशा को देखकर मन्दोदरी लाचार होकर उसका दौत्य-सम्पादन करती है तथा सीता को समझाती है।[१४९]

---

१४९. रावण की विप्रलभजन्य दुर्दशा से सन्तप्त मन्दोदरी के प्रश्न एवं रावण द्वारा उत्तर और मन्दोदरी के सीता को समझाने का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

"ततो महोदर स्वैरं निश्वस्योवाच रावण: ।
तस्य किंचित्परित्यज्य धारितोदीरिताक्षरम् ॥
'श्रृणु सुन्दरि सद्भावमेक ते कथयाम्यहम ।
स्वामिन्यसि ममासूना सर्वदा कृतवाञ्छिता ॥
यदि वाञ्छसि जीवन्त मा ततो देवि नार्हसि ।
कोप कर्तुं ननु प्राणा मूलं सर्वस्य वस्तुन: ॥'
ततस्तथैवमित्युक्ते शपथैर्विनियम्य ताम् ।
विलक्ष इव किंचित्स रावण: समभाषत ॥
'यदि सा वेधस सृष्टिरपूर्वा दु खवर्णना ।
सीता पति न मां वष्टि ततो मे नास्ति जीवतम् ॥'
ततो मन्दोदरी कष्टा ज्ञात्वा तस्य दशामिमाम् ।
विहसन्ती जगादैव विस्फुरद्दन्तचन्द्रिका—
'इद नाथ महाश्चर्यं वरो यत्कुरुलेऽर्थनम् ।
अपुण्या साबला नून या त्वा नार्थयते स्वयम् ॥
अथवा निखिले लोके सैवैका परमोदया ।
या त्वया मानकूटेन याच्यते परमापदा ॥
केयूररत्नजटितैरिमै करिकरोपमै: ।
आलिङ्ग्य बाहुभि. कस्माद् बलात्कामयसे न ताम् ?
सोऽवोचद्देवि विज्ञाप्यमस्त्यत्र श्रृणु कारणम्—

० ० ०

विटसुग्रीव साहसगति विद्याधर के द्वारा उपद्रुत होकर इधर-उधर घूमता-फिरता हुआ विराधित की पाताललंका में आता है। विराधित उसका सम्मान करता है। वहीं उसका राम से परिचय होता है। (राम विराधित के कहने से सीताहरण के बाद पातालल‌ङ्का (अलङ्कारपुर) चले आये थे।) मन्त्री राम से सुग्रीव की दु:खद दशा का वर्णन करते हैं तथा राम उसकी सहायता करने का वचन देकर साहसगति विद्याधर का वध कर सुग्रीव को निश्चिन्त करते हैं। यहाँ

यावन्नेच्छति मा नारी परकीया मनस्विनी।
प्रसभ सा मया तावन्नाभिगम्यापि दु:खिना॥
एतच्चाप्यभिमानेन गृहीत दयिते व्रतम्।
का मा किल समालोक्य साध्वी मानं करिष्यति॥

० ० ०

यावन्मुञ्चामि नो प्राणान् तावत्सीता प्रसाद्यताम्।
भस्मभावङ्गते गेहे कूपखानश्रमो वृथा॥
ततस्तं तादृश ज्ञात्वा सञ्जातकरुणोदया।
बभाण रमणी नाथं स्वल्पमेतत्समीहितम्॥

० ० ०

मन्दोदरी क्रमात्प्राप्य सीतामेवमभाषत।
समस्तनयविज्ञानकृतमण्डमानसा॥
'अयि सुन्दरि हर्षस्य स्थाने कस्माद्विषीदसि?
त्रैलोक्येऽपि हि सा धन्या पतिर्यस्या दशानन.॥
सर्वविद्याधराधीश पराजितसुराधिपम्।
त्रैलोक्यसुन्दरं कस्मात्पतिं नेच्छसि रावणम्?
नि स्व. क्ष्मागोचर: कोऽपि तस्यार्थे दु:खितासि किम्?
सर्वलोकवरिष्ठस्य स्वस्य सौख्य विधीयताम्॥
आत्मार्थं कुर्वत कर्म सुमहासुखसाधनम्।
दोषो न विद्यते कश्चित्सर्वं हि सुखकारणम्॥
मयेति गदित वाक्यं यदि न प्रतिपद्यसे।
ततो यद्भविता तत्ते शत्रुभि: प्रतिपद्यताम्॥
बलीयान् रावण. स्वामी प्रतिपक्षविवर्जित।
कामेन पीडित कोप गच्छेत्प्रार्थनभञ्जनात्॥
यौ राम-लक्ष्मणौ नाम तव कावपि सम्मतौ।
तयोरपि हि सन्देह: क्रुद्धे सति दशानने॥
प्रतिपद्यस्व तत्क्षिप्रं विद्याधरमहेश्वरम्।
ऐश्वर्यं परमं प्राप्ता सौरीं लीलां समाश्रय॥

(पद्मपुराण, ४६।४४-८१)

बालि का स्थान साहसगति ने प्रकारान्तर से ले लिया है (पर्व ४७)।

पद्मपुराण में रत्नजटी पता देता है कि सीता को रावण हर कर ले गया है। रावण का नाम सुनकर विद्याधरों के होश ठण्डे पड़ जाते हैं। राम के प्रबल आग्रह-वश वानर यह कहकर सहयोग देने को तत्पर होते हैं कि रावण की मृत्यु कोटि-शिला उठाने वाले के द्वारा होगी—ऐसा अनन्तवीर्य मुनीन्द्र ने कहा था। (यो निर्वाणशिलां पुण्यामतुलामर्चितां सुरैः। समुद्यतां स ते मृत्योः कारणत्वं गमि-ष्यति ॥ ४८।१८६) तो यदि आप लोग कोटिशिला उठा सकें तो हम रावण के साथ युद्ध करने के लिए उद्यत हो सकते हैं। लक्ष्मण कोटिशिला उठा देते हैं (शिलामचालयत् क्षिप्रं लक्ष्मणो विमलद्युतिः ॥ ४०।२१३)। वानर उनकी शक्ति का विश्वास कर युद्ध के लिए उद्यत हो जाते हैं। सुग्रीव हनूमान् को बुलाने के लिए कर्मभूतिनामक दूत को भेजता है। वहाँ हनूमान् अपने नगर (श्रीपुर) में अपनी अनेक रानियों के साथ रँगरेलियाँ मनाता हुआ होता है। दूर से राम-लक्ष्मण का पराक्रम सुनकर और अपने सम्बन्धी खरदूषण का वध सुनकर क्रोध-सरुद्धसर्वांग (४६।२२) हनूमान् क्षुब्ध हो जाता है तथा उसकी पत्नी 'अनंग-कुसुमा' (चन्द्रनखा की सुता) बहुत दुखी होती है। पिता के शोक नाश का समा-चार सुनकर हनूमान् की दूसरी पत्नी (सुग्रीवसुता) पद्मरागा प्रसन्न होती हैं जिससे हनूमान् राम के प्रति सहानुभूतिपूर्ण होकर उनके पास आकर लंका जाता है (पर्व ४६)।

'पद्मपुराण' में हनूमान् अपने विमान में बैठकर लंका जाता है। मार्ग में वह अपने नाना महेन्द्र के नगर में पहुँचता है जहाँ उसके द्वारा किये गये माता के अपमान का स्मरण होने से वह क्रुद्ध होकर उसे बलपूर्वक परास्त करता है। हनूमान् का आदेश पाकर राजा महेन्द्र अपनी पुत्री अञ्जना के साथ मिलता है (पर्व ५०)। दधिमुखद्वीप में स्थित मुनियों के ऊपर दावानल के उपसर्ग को हनूमान् दूर करता है। समीपस्थित गन्धर्वकन्याएँ विद्या सिद्ध हो जाने के कारण हनूमान् के प्रति कृतज्ञता प्रकट करती हैं। राम को गन्धर्वकन्या की प्राप्ति होती है (पर्व ५१)। आगे चलकर अचानक अपनी सेना की गति रुक जाने से हनूमान् आश्चर्य में पड़ जाता है। मामले का पता लग जाने पर वह आगे बढ़कर मायामय कोट को ध्वस्त करता है और शीघ्र ही वज्रायुध को निष्प्राण कर देता है। इस वज्रायुध की पुत्री लंका सुन्दरी हनूमान् से विकट युद्ध करती है किन्तु युद्ध करते हुए ही दोनों परस्पर अनुरक्त हो जाते हैं। लंका सुन्दरी का हनूमान् से विवाह होता है (पर्व ५२)।

लंका में पहुँचकर हनूमान् सर्वप्रथम बिभीषण से मिलता है और रावण के

दुष्कर्म का उसे उपालम्भ देता है। तदनन्तर विभीषण की विवशता को जानकर वह प्रमदोद्यान में आता है। वहाँ सीता की गोद में राम द्वारा दी गयी अँगूठी छोड़ता है। सीता को राम का सन्देश सुनता है। राम का सन्देश पाकर सीता ग्यारहवें दिन आहार ग्रहण करती हैं। सीता को हनुमान् जब अँगूठी देता है तब मन्दोदरी भी उपस्थित है। वह मन्दोदरी को भी फटकार लगाता है। वह उद्यान तथा लंका को क्षतिग्रस्त करता है। लौटकर सीताप्रदत्त चूड़ामणि-राम को देता है तथा सीता की दयनीय दशा का वर्णन करता है। चन्द्रमरीचि विद्याधर की प्रेरणा से उत्तेजित होकर सभी विद्याधर राम को साथ लेकर लंका की ओर प्रयाण करते हैं (पर्व ५३)। राम के लंका के निकट पहुँचने पर राक्षसों में क्षोभ उत्पन्न हो जाता है। विभीषण रावण को समझाता है। जब विभीषण रावण को समझाता है तब बीच में ही इन्द्रजित् उसका विरोध करता है और कहता है—

"साधो ! केनासि पृष्टस्त्वं कोऽधिकारोऽपि वा तव।
येनैवं भाषसे वाक्यमुन्मत्तगदितोपमम् ॥ (५५।१५)

इस पर विभीषण इन्द्रजित् को फटकारता है। रावण उसे खड्ग से मारने को तत्पर हो जाता है और विभीषण भी एक खम्भा उखाड़कर युद्धसन्नद्ध हो जाता है।[१५०] जैसे-तैसे मन्त्रियों के द्वारा बीच-बचाव किया जाता है। विभीषण तीस अक्षौहिणी सेना लेकर राम के पास जा मिलता है (पर्व ५५)।

रावण की सेना युद्ध करने के लिए लंका से बाहर निकलती है। नल और नील के द्वारा हस्त और प्रहस्त मारे जाते हैं, अनेक राक्षस मारे जाते हैं। पद्मपुराण में 'समुद्र-बन्धन' का प्रसंग और रूप में आया है। लंका जाते समय नल वेलन्धरपुर के स्वामी 'समुद्र' को परास्त करता है।[१५१]

---

१५०. एवं प्रवदमानं तं क्रोधप्रेरितमानसः।
उत्थाय रावणः खड्गमुद्गतो हन्तुमुद्यतः॥
तेनापि कोपवश्येन दुष्टान्तेनोपदेशने।
उन्मूलितः प्रचण्डेन स्तम्भो वज्रमयो महान्॥
युद्धार्थमुद्गतावेतौ भ्रातरावुग्रतेजसौ।
सचिवैर्वारितौ कृच्छ्राद्गतौ स्वं-स्वं निवेशनम्॥"
(पद्मपुराण, ५५।३१-३३)

१५१. वेलन्धरपुरस्वामी समुद्रो नाम तत्र च।
नलस्य परमं युद्धमातिथ्यं समुपानयत्॥
ततो नलेन सम्पर्द्धं जित्वा निहतसैनिकः।
बद्धो बाहुबलाढ्येन समुद्रः खेचरः परः॥
(पद्मपुराण, ५४।६५-६६)

'पद्मपुराण' में, युद्ध के समय, अंगद भानुकर्ण का अधोवस्त्र खोल देता है, जिससे वह अपना वस्त्र सँभालने में लग जाता है। (पर्व ६०)।

राम-लक्ष्मण को सिंहवाहिनी-गरुड़वाहिनी विद्याओं की प्राप्ति होती है तथा अनेक युद्ध होते हैं। रावण द्वारा लक्ष्मण को शक्ति लगती है। शक्तिनिहित लक्ष्मण को देखने के लिये रावण राम को अनुमति दे देता है।[१५२] भानुकर्ण, मेघवाहन और इन्द्रजित् राम-सेना द्वारा बन्दी बना लिये जाते हैं, जिनके छुड़ाने की चिन्ता रावण करता है। (पर्व ६२)

शक्तिनिहत लक्ष्मण जहाँ पड़े थे वहाँ किंकर एक शिविर बना देते हैं[१५३] और वहाँ सात गोपुरों में क्रमशः नील-नल-विभीषण-कुमुद-सुषेण-सुग्रीव-भामण्डल और पूर्व-पश्चिम-उत्तर दिशाओं के द्वारों पर शरभ-जाम्बवकुमार-चन्द्ररश्मि पहरा देते हैं (पर्व ६३)। सीता लक्ष्मण-विषयक समाचार सुनकर विलाप करती है। इधर चन्द्रप्रतिम विद्याधर राम से लक्ष्मण के उपचार के लिये विशल्या के गन्धोदक का प्रस्ताव रखता है। विशल्या द्रोणमेघ की कन्या है (रामायण के अनुसार विशल्या द्रोणगिरि पर एक औषधि है)। राम हनूमान्, भामण्डल तथा अंगद को अविलम्ब अयोध्या भेजते है।[१५४] उनसे लक्ष्मण-सम्बन्धी समाचार पाकर भरत राक्षसों के साथ युद्ध करने के लिये तैयार हो जाते है और अयोध्या में हलचल मच जाती है।[१५५] भामण्डलादि से विशल्या का समाचार सुनकर भरत द्रोणमेघ के

---

१५२ राम की रावण से प्रार्थना और उसकी अनुमति इस प्रकार है—

'सग्रामेऽभिमुखो भ्राता यो मे शक्त्या त्वयाहत'।
प्रेतस्याभिमुख तस्य वीक्ष्ये यद्यनुमन्यसे ॥'
—एवमस्तित्वति सम्भाष्य प्रार्थनाभगवर्जितः।
ययौ दशाननो लंकामृद्ध्याऽखण्डलसंनिभः ॥ (पद्म० ६२।९४-९५)

१५३. अथोत्सार्य कबंधादीन्निर्मिषार्द्धेन सा मही।
किंकरैर्विहितोत्तुगदूष्यप्राकारमण्डपा ॥'
सप्तकक्ष्याट्टसम्पन्ना कृतदिक्त्रयनिर्गमा।
बहिः कवचितैर्योधैर्गुप्ता कार्मुकधारिभिः ॥ (पद्म० ६३।२८-२९)

१५४. अञ्जनाजविदेहाजसुताराजास्ततः कृताः।
अयोध्या गमिन कृत्वा सम्मन्त्रं निश्चितं द्रुतम् ॥ (पद्म० ६५।२)

१५५. 'साकेत: एक अध्ययन' नामक ग्रंथ मे डा० नगेन्द्र ने हनुमान् के मुख से लक्ष्मण-शक्ति का समाचार सुन अयोध्या की रण-सज्जा को गुप्तजी की मौलिक उद्भावना बताया है किन्तु यह उद्भावना तो ७ वीं श० ई० से पूर्व ही हो चुकी थी। 'पद्मपुराण' की कुछ पंक्तियाँ तुलनार्थ प्रस्तुत हैं—

अथ शोकरसादुग्रात् क्षणमात्रभुवः परम्।
राजा क्रोधरसं भेजे परम भरतश्रुतिः।

पास आदमी भेजता है कि वह विशल्या को लंका भेज दे। इस पर द्रोणमेघ और उसके पुत्र क्रुद्ध हो जाते हैं तथा भरत के मन्त्रियों के साथ युद्ध करने को तैयार हो जाते हैं। अन्त में केकया के समझाने पर द्रोणमेघ विशल्या को लंका भेज देता है—सहस्रमधिकं चान्यत्कन्यानां सुमनोहरम्। राजगोत्रप्रसूतानां कृतं गामि समं तया॥ (६५।३३) भामण्डल उसे अपने विमान में बैठाकर सूर्योदय से पूर्व ही लंका से जाता है जहाँ वह गन्धोदक के प्रभाव से 'अमोघविजया' नामक शक्ति को निकाल देती है और लक्ष्मण से विवाह कर लेती है (पर्व ६४-६५)।

महाभेरीध्वनिं चाशु रणप्रीतिमकारयत्।
सकला येन साकेता सम्प्राप्ताऽकुलतां परम्॥
लोको जगाद किं न्वेतद्वर्तते राजसद्मनि।
महान् कलकलः शब्दः श्रूयतेऽत्यन्तभीषणः॥
किन्तु रात्रौ निशीथेऽस्मिन् काले दुष्टमतिः परः।
अतिवीर्यसुतः प्राप्तो भवेदापातपण्डितः॥
कश्चिदङ्कगतां कान्तां त्यक्त्वा सन्नद्धुमुद्यतः।
सन्नाहनिरपेक्षोऽन्यः सायके करमर्पयत्॥
मुग्धबालकमादाय काचिदङ्के मृगेक्षणा।
हस्तं स्तनतटे न्यस्य चक्रे दिगवलोकनम्॥
काचिदीर्ष्याकृतं त्यक्त्वा निद्रारहितलोचना।
सुप्तमाश्रयते कान्तं शयनीयैकपार्श्वगम्॥
पार्थिवप्रतिमः कश्चिद्धनी कान्तामुदाहरत्।
कान्ते! बुद्धयस्व किं शेषे किमपीदमशोभनम्॥
राजान्तये समुद्योतो लक्ष्यते जात्वनक्षितः।
सन्नद्धा रथिनो मत्ता करिणोऽमी च सहिना॥
नीनिज्ञैः सतत भाव्यमप्रमत्तैः सुपण्डितैः।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोपाय स्वापतेयं प्रयत्नतः॥
शातकौम्भानिमान् कुम्भान् कलधौतमयांस्तथा।
मणिरत्नकरण्डांश्च कुरु भूमिगृहान्तरे॥
पट्टवस्त्रादिसम्पूर्णानिमान् गर्भालयान् द्रुतम्।
तालयान्यदपि द्रव्यं दुःस्थितं सुस्थितं कुरु॥
शत्रुघ्नोऽपि सुसंभ्रान्तो निद्रारुणितलोचनः।
आरुह्य द्विरदं शीघ्रं घण्टाटङ्कारनादितम्॥
सचिवैः परमैर्युक्तः शस्त्राधिष्ठितपाणिभिः।
विमुञ्चन् बकुलामोदं चलदम्बरपल्लवः॥
भरतस्यालयं प्राप्तस्तथाऽन्ये नरपुंगवाः।
शस्त्रहस्ताः सुसन्नद्धा नरेन्द्रहिततत्पराः॥

(पद्मपुराण ६५।७-२१)

मृगाङ्क आदि मन्त्री रावण को समझाते हैं कि सीता राम को देकर उनके साथ सन्धि कर लेना ही उचित है। रावण मन्त्रियों के समक्ष तो यह कह देता है कि जैसा आप कहते हैं वैसा ही करूँगा किन्तु दूत-प्रेषण के समय इशारे से दूत को कुछ और ही बात समझा देता है। दूत राम के दरबार में पहुँच कर रावण की प्रशंसा करता हुआ उसके भाई और पुत्रों को छोड़ देने की प्रेरणा देता है। राम उत्तर देते हैं कि मुझे राज्य की आवश्यकता नहीं है।[१५६] दूत पुनः रावण का पक्ष का समर्थन करता है जिस पर भामण्डल क्रुद्ध होकर उसे मारने को उद्यत हो जाता है किन्तु लक्ष्मण उसे शान्त कर देते हैं (पर्व ६६)। दूत से इस समाचार को सुनकर रावण पहले तो किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाता है किन्तु बाद मे बहुरूपिणी विद्या सिद्ध करने का निश्चय करता है। उसकी आज्ञा से शान्ति-जिनालय सजते हैं तथा स्थान-स्थान पर जिनेन्द्र-पूजा होती है। फाल्गुन शुक्ला अष्टमी से पूर्णिमा तक 'नन्दीश्वर पर्व' में दोनों सेनाओं से शान्ति रहती है और रावण शान्ति-जिनालय में बैठकर विद्या सिद्ध करता है। मन्दोदरी भी यम-दण्ड मन्त्री को आज्ञा देती है कि जब तक पतिदेव विद्या-साधना में निमग्न हैं तब तक सभी लोग शान्ति से रहें और उनकी हितसाधना के लिए नाना नियम ग्रहण करें[१५७] (पर्व ६७-६९)। बहुरूपिणी-साधक रावण का समाचार पाकर राम-पक्ष के योद्धा घबराते हैं तथा उसकी विद्या-सिद्धि में उपद्रव करके विघ्न उपस्थित करते हैं यद्यपि राम ने कह दिया था कि नियमस्थित प्राणी से युद्ध नहीं करना चाहिए। किन्तु बात की उपेक्षा करके विद्याधरकुमार लका में भेजे जाते हैं और वे वहाँ उपद्रव करते हैं। अंगद अनेक प्रकार के उपद्रव करता है। वह रावण की माला तोड़ देता है, उसकी स्त्रियों की दुर्दशा करता है[१५८] एवं

---

१५६ एष प्रेष्यामि ते पुत्री भ्रातरं च दशानन।
सम्प्राप्य परमां पूजां सीता प्रेष्यसि मे यदि॥
एनया सहितोऽरण्ये मृगसामान्यगोचरे।
यथासुखं भ्रमिष्यामि मही त्वं भुङ्क्ष्व पुष्कलाम्॥" (पद्म० ६६।३४-३५)

१५७. "दाप्यतां घोषणा स्थाने यथा लोकः समन्ततः।
नियमेषु नियुक्तात्मा जायतां सुदयापरः॥
० ० ०
यावत्समाप्यते योगो नायं भुवनभोगिनः।
तावत् श्रद्धापरो भूत्वा जनस्तिष्ठतु संयमी॥" (पद्म० ६९।१२-१४)

१५८. कृतग्रन्थिकमादाय कण्ठे कस्याश्चिदंशुकम्।
गुर्वारोपयति द्रव्यं किंचित्स्मितपरायणः॥
उत्तरीयेण कण्ठेऽन्यां संयम्यालम्बयत्सुरः।
स्तम्भेऽमुं चत्पुनः शीघ्रं कृतदुःखविचेष्टिताम्॥

मन्दोदरी को हर ले जाने को तैयार हो जाता है। रावण विद्यासिद्धि में मग्न होने के कारण सब कुछ सहन कर लेता है। अन्त में उसकी 'बहुरूपिणी' विद्या सिद्ध होने पर अंगदादि भाग जाते हैं (पर्व ७०-७१)।

'पद्मपुराण' का रावण अपने किये को बुरा समझता है तथा पश्चात्ताप करता है।[१५९] वह अपने हृदय को धिक्कारता भी है। वह राम-लक्ष्मण को जीवित पकड़ कर अपने सम्मान को बनाये हुए सीता को लौटा देने की भी सोचता है।[१६०] किन्तु भाग्य का किसको पता है! लक्ष्मण से युद्ध करता हुआ वह उन पर 'चक्ररत्न' चला देता है और उनके द्वारा समझाया जाने पर भी मानवश ऐंठता रहता है और अन्ततोगत्वा उन्हीं के हाथ से मारा जाता है (पर्व ७२-७६)।

दीनारै. पञ्चभि: काचित् काञ्चीगुणसमन्विताम्।
हस्ते निजमनुष्यस्य व्यक्रीणात्क्रीडनोद्यत.॥

१५९. मन्दोदरी से कहा गया कथन इसका प्रमाण है—

तत किञ्चिदधोवक्त्रो रावणोऽर्द्धाक्षवीक्षण·।
सव्रीड: स्वैरमूचेऽहं परस्त्रीहस्त्वयोदित·॥
किं मयोपचित पश्य परमाकीर्तिगामिना।
आत्मा लघूकृतो मूढ. परस्त्रीसक्तचेतसा॥
विषयामिषसक्तात्मन् पापभाजन चञ्चल।
धिगस्तु हृदयत्व ते हृदय क्षुद्रचेष्टिता॥

(पद्मपुराण, ७३।८२-८४)

१६०. सीता की दयनीय दशा देखकर रावण का अन्तर्द्वन्द्व बड़ा ही मार्मिक है—

तदवस्थामिमां दृष्ट्वा रावणो मृदुमानस:।
बभूव परम दु:खी चिन्ता चैतामुपागत॥
अहो निकाचितस्नेह: कर्मबन्धोदयादयम्।
अवसानविनिर्मुक्त: कोऽपि संसारगह्वरे॥
धिक् धिक् किमिदमश्लाघ्य कृत सुविकृतं मया।
यदन्योन्यरतं भीरुमिथुनं सद्वियोजितम्॥
पापातुरो विना कामं पृथग्जनसमो महत्।
अयशोमलमाप्तोऽस्मि सद्भिरत्यन्तनिन्दितम्॥
शुद्धाम्भोजसमं गोत्रं विपुलं मलिनीकृतम्।
दुरात्मना मया कष्ट कथमेतदनुष्ठितम्॥

० ० ०

आसीदयानुकूलो मे विद्वान् भ्राता विभीषण.।
उपदेष्टा तदा नैव मम दग्ध मनो गतम्॥
प्रमादाद्विकृतिं प्राप्तं मन: समुपदेशत:।
प्राय· पुण्यवतां पुंसां वशीभावेऽवतिष्ठते॥

'पद्मपुराण' में इन्द्रजित्, मेघवाहन और कुम्भकर्ण छोड़ दिये जाते हैं और वे दीक्षा ले लेते हैं, साथ ही मन्दोदरी-चन्द्रनखा आदि भी आर्यिका बन जाती हैं (पर्व ७८)। राम और लक्ष्मण महावैभव के साथ लंका में प्रवेश करते हैं। राम के मनोमुग्धकारी रूप को देखकर स्त्रियाँ उनकी परस्पर प्रशंसा करती हैं और सीता के सौभाग्य को सराहती हैं। राम सीता के पास जाकर उसका आलिंगन करते हैं (पर्व ७९)। सीता को साथ लेकर वे हाथी पर आरूढ़ होकर रावण के महल जाते हैं। वहाँ शान्तिनाथ-जिनालय में शान्तिनाथ भगवान् की भक्तिभाव से स्तुति करते हैं तथा विभीषण एवं रावण-परिवार को सान्त्वना देते हैं। विभीषण अपने घर जाकर अपनी विदग्धा रानी के द्वारा श्रीराम को निमन्त्रित करता है। श्रीराम सपरिवार उसके घर जाते हैं। विभीषण उनका स्वागत कर भोजन कराता है और उनका अभिषेक करना चाहता है किन्तु वे कहते हैं—'पिता के द्वारा जिसे राज्य प्राप्त हुआ हो ऐसा भरत अभी अयोध्या में विद्यमान है, उसका अभिषेक होना चाहिए।' राम-लक्ष्मण वनवास के समय विवाहित स्त्रियों को बुला लेते हैं तथा आनन्द से रहते हुए ६ वर्ष बिता देते हैं। एक दिन नारद के मुख से अपनी माता की दयनीय दशा को सुनकर वे अयोध्या की ओर चलने के लिए उद्यत होते हैं किन्तु विभीषण के विनम्र निवेदन करने पर १६ दिन और रुक जाते हैं। इस बीच में विभीषण विद्याधर कारीगरों को भेजकर अयोध्यापुरी का नव-निर्माण कराता है, भरपूर रत्नों की वर्षा करता है और विद्याधर दूत भेजकर राम-लक्ष्मण की

च. सङ्ग्रामकृतौ सार्द्धं सचिवैर्मन्त्रणं कृतम्।
अधुना कीदृशी मैत्री वीरशोकविगर्हिता॥
योद्धव्यं करुणा चेति द्वयमेतद्विरुध्यते।
अहो सकटमापन्न. प्रकृतोऽहमिद महत्॥
यद्यर्पयामि पद्माय जानकी कृपयाधुना।
लोको दुर्ग्रहचित्तोऽयं ततो मा वेत्त्यशक्तकम्॥
यत्किञ्चित्करणोन्मुक्तः सुखं जीवति निर्धन·।
जीवत्यस्मद्विधो दु खं करुणामृदुमानसः॥
हरितार्क्ष्यसमुन्नद्धौ तौ कृत्वाऽऽजौ निरस्त्रकौ।
जीवग्राह गृहीतौ च पद्मलक्ष्मणसंज्ञकौ॥
पश्चाद्विभवसयुक्तौ पद्मनाभाय मैथिलीम्।
अर्पयामि न मे पाप तथा सत्युपजायते॥
महाल्लोकापवादश्च भयान्यायसमुद्भवः।
न जायते करोम्येवं ततो निश्चिन्तमानस.॥

(पद्म० ७२।४९-६९)

कुशल-वार्ता भरत के पास भेजता है। १६ दिन बाद राम-लक्ष्मण-सीता अयोध्या आते हैं (पर्व ८०-८२)।

अयोध्या प्रत्यावर्तन के बाद का कथानक इस प्रकार है :—राम-लक्ष्मण अपार वैभव का उपभोग करते हैं। इधर भरत यद्यपि १५० स्त्रियों के स्वामी हैं और भोगोपभोग से परिपूर्ण हैं तथापि वे संसार से विरक्त रहते हैं। वे राम वनवास से पूर्व ही दीक्षा-जिघृक्षु थे किन्तु दीक्षा न ले सके, अब वे संसार की प्रत्येक वस्तु के प्रति निर्वेद धारण कर लेते है और सब के निषेध करने पर भी दीक्षा के लिये सन्नद्ध है। केकया के रुदन और राम-लक्ष्मण-भरत की स्त्रियों के विविध आकर्षण-मय कृत्य उन्हें नहीं रोक पाते। इसी बीच त्रिलोकमण्डन हाथी बिगड़कर नगर में उपद्रव करता है, प्रयत्न करने पर भी वह शान्त नहीं होता किन्तु भरत के दर्शन कर वह शान्त हो जाता है (पर्व ८३)। त्रिलोकमण्डन हाथी को राम वश में कर लेते हैं। सीता और विशल्या के साथ उस हाथी पर आरूढ़ हो भरत राजमहल में प्रवेश करते हैं उसके क्षुब्ध होने से नगर में जो क्षोभ फैल गया था वह दूर हो जाता है। चार दिन बाद महावत आकर राम-लक्ष्मण के सामने त्रिलोक-मण्डन की दु:खमय दशा का वर्णन करते हैं और कहते हैं कि हाथी चार दिन से कुछ खा-पी नहीं रहा है (पर्व ८४)।

अयोध्या में देशभूषण-कुलभूषण केवली का आगमन होता है। सर्वत्र आनन्द छा जाता है। सब लोग वन्दना के लिये जाते हैं। केवली धर्मोपदेश देते है। लक्ष्मण प्रसंग पाकर त्रिलोक-मण्डन हाथी के क्षुब्ध होने, शान्त होने तथा आहार-पानी छोडने के विषय में प्रश्न करते हैं जिसके उत्तर में केवली विस्तार से हाथी और भरत के पूर्व भवों का वर्णन करते हैं, जिन्हें सुनकर भरत का वैराग्य और उमड़ पडता है और वे उन्ही केवली के पास दीक्षा ले लेते है। भरत के अनुराग से प्रेरित होकर एक हजार से अधिक राजा दिगम्बर दीक्षा धारण कर लेते है। भरत के निष्क्रान्त होने पर माता केकया भी तीन सौ स्त्रियों के साथ आर्यिका की दीक्षा ले लेती है। त्रिलोकमण्डन हाथी समाधि धारण कर ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में देव होता है और भरत मुनि अष्ट कर्मों का क्षय करके निर्वाण प्राप्त करते हैं (पर्व ८५-८७)। सब लोग भरत की स्तुति करतेहै। समस्त राजा लोग राम-लक्ष्मण का राज्याभिषेक करते हैं। राज्याभिषेक के अनन्तर राम-लक्ष्मण अन्य राजाओं के लिए देशों का विभाग करते हैं (पर्व ८८)।

राम और लक्ष्मण शत्रुघ्न से अभीष्ट देश के ग्रहण के विषय में कहते हैं। शत्रुघ्न मथुरा लेने की इच्छा प्रकट करता है। इस पर राम-लक्ष्मण वहाँ के राजा मधुसुन्दर की बलवत्ता का वर्णन कर उसे और कोई देश लेने की प्रेरणा देते हैं

परन्तु वह नहीं मानता। राम-लक्ष्मण बड़ी सेना के साथ उसे मथुरा की ओर रवाना करते हैं। वहाँ जाने पर उसका मधु से भीषण युद्ध होता हैं। अन्त में हाथी पर बैठा-बठा मधु घायल अवस्था में ही विरक्त होकर केश उखाड़ कर दीक्षा ले लेता है। शत्रुघ्न यह दृश्य देखकर उसके चरणों में गिर कर क्षमा माँगता है। बाद में शत्रुघ्न राजा बनता है (पर्व ८९)। शूलरत्न से मधु के वध के समाचार से कुपित होकर चमरेन्द्र मथुरा नगरी में महामारी फैलाता है। कुलदेवता की प्रेरणा पाकर शत्रुघ्न अयोध्या चला जाता है (पर्व ९०)। उसके मथुरानुराग के सम्बन्ध में पूर्वभव की कथा कही जाती है (पर्व ९१)।

इसके बाद सेठ अर्हद्दत्त की कथा एवं सप्तर्षि मुनियों के सीता के घर आहार होने का वृत्तान्त (पर्व ९२), राम-लक्ष्मण के लिए क्रमशः श्रीदामा-मनोरमा कन्याओं की प्राप्ति का वृत्तान्त (पर्व ९३), राम-लक्ष्मण का अनेक राजाओं को वश में करने का वर्णन तथा लक्ष्मण की अनेक स्त्रियों और पुरुषों का वर्णन होता है (पर्व ९४)।

एक दिन सीता स्वप्न में देखती है कि दो अष्टापद उसके मुख में प्रविष्ट हुए हैं और वह पुष्पक विमान से नीचे गिर रही है। राम स्वप्नों का फल सुनाकर उसे सन्तुष्ट करते हैं तथा द्वितीय स्वप्न को कुछ अनिष्ट जान उसकी शान्ति के लिये मन्दिरों मे जिनेन्द्र भगवान् का पूजन कराते हैं। सीता को जिन-मन्दिरों की वन्दना का दोहद उत्पन्न होता है और राम उसकी पूर्ति के लिए सजे हुए मन्दिरों में जिन-वन्दन करते हैं। बसन्तोत्सव मनाये जाते हैं (पर्व ९५)।

श्री राम महेन्द्रोदय उद्यान मे स्थित हैं। प्रजा के कुछ चुने हुए लोग उनसे कुछ प्रार्थना करने के लिये आते है किन्तु उन्हें कुछ कहने का साहस नहीं होता। दाहिनी आँख फड़कने से सीता मन ही मन दुःखी होती है। सखियों के कहने से वह किसी तरह शान्त हो मन्दिर में शान्तिकर्म करती है। इधर साहस इकट्ठा करके प्रजा के प्रमुख लोग श्री राम से सीता-विषयक-लोक-निन्दा का वर्णन करते है।[१६१] खिन्न राम लक्ष्मण को बुलाकर सीता के अपवाद का समाचार सुनाते हैं।

---

१६१ विज्ञाप्यं श्रूयतां नाथ ! पद्मनाभ नरोत्तम।
प्रजाऽधुनाऽखिला जाता मर्यादारहिताधिका॥
स्वभावादेव लोकोऽयं महाकुटिलमानसः।
प्रकटं प्राप्य दृष्टान्तं न किञ्चिदस्य दुष्करम्॥
परमं चापलं धत्ते निसर्गेण प्लवंगमः।
किमङ्ग पुनरारुह्य चापलं यन्त्रपञ्जरम्॥
तरुण्यो रूपसम्पन्ना पुंसामल्पबलात्मनाम्।
ह्रियन्ते बलिभिश्छिद्रैः पापचित्तैः प्रसह्य च॥

लक्ष्मण सुनते ही आग-बबूला हो जाते हैं और दुष्टों को नष्ट करने के लिए कटिबद्ध हो जाते हैं। वे सीता के शील की प्रशंसा कर राम के चित्त को प्रसन्न करना चाहते हैं परन्तु राम लोकापवाद के भय से सीता को कृतान्तवक्त्र सेनापति के द्वारा जिन-मन्दिरों के दर्शन के बहाने से वन में भेज देते हैं। गंगा के उस पार जाकर दु:खी कृतान्तवक्त्र सीता को राम का आदेश सुनाता है। सीता वज्रताडित-सी मूच्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ती है और सचेत होने पर राम को सन्देश भिजवाती है कि जैसे आपने मुझे छोड़ दिया है वैसे जैन धर्म को मत छोड़ देना।[१६२] वह मूच्छित हो जाती है। सेनापति लौट जाता है। उसी समय पुण्डरीकपुर का स्वामी राजा वज्रजंघ सेना सहित उधर से सीता का विलाप सुनकर उसे धर्म-बहिन मान कर पुण्डरीकपुर ले जाता है और बड़ी विनय और श्रद्धा के साथ सीता को अपने यहाँ रखता है। इधर कृतान्तवक्त्र लौटकर श्री राम को सीता का सन्देश सुनाता है। वन की भीषणता और सीता की गर्भदशा का विचार कर राम बहुत दु:खी होते हैं। लक्ष्मण उन्हें समझाते हैं (पर्व ९६-९९)।

वज्रजंघ के राजमहल में सीता अनंगलवण और मदनांकुश नामक दो पुत्रों को उत्पन्न करती है। इन पुण्यशाली पुत्रों की पुण्यमहिमा से राजा वज्रजंघ का वैभव निरन्तर बढ़ता रहता है। सिद्धार्थ नामक क्षुल्लक दोनों को विद्या ग्रहण कराता है (पर्व १००)। विवाह के योग्य अवस्था होने पर राजा वज्रजंघ अपनी

प्राप्तदु:खा प्रिया साध्वी विरहात्यन्तदु:खिता ।
कश्चित्सहायमासाद्य पुनरानयते गृहम् ।।
प्रलीनधर्ममर्यादा यावन्नश्यति नावनि: ।
उपायश्चिन्त्यता तावत्प्रजाना हितकाम्यया ।।
राजा मनुष्यलोकेऽस्मिन्नधुना त्व यदा प्रजा ।
न पासि विधिना नाशमिमा यान्ति तदा ध्रुवम् ।।
नद्युद्यानसभाग्रामप्रपाध्वपुरवेश्मसु ।
अवर्णवादमेक ते मुक्त्वा नान्यास्ति सकथा ।।
स तु दाशरथी राम: सर्वशास्त्रविशारद: ।
हृता विद्याधरेशेन जानकी पुनरानयत् ।।
तत्र नूनं न दोषोऽस्ति कश्चिदप्येवमाश्रिते ।
व्यवहारेऽपि विद्वास: प्रमाण जगत: परम् ।।
[illegible] च यादृशमुर्वीश: कर्मयोग निषेवते ।
स एव सहतेऽस्माकमपि नाथानुवर्तिनाम् ।।
एव प्रदुष्टचित्तस्य वदमानस्य भूतले ।
निरकुशस्य लोकस्य काकुत्स्थ! कुरु निग्रहम् ।।" (पद्म० ९६।४०-५१)

१६२. सीता के इस मार्मिक सन्देश के लिए देखिए—(पद्मपुराण ९७।११६-१३३)

लक्ष्मी रानी से उत्पन्न शशिचूला आदि ३२ पुत्रियाँ लवण को देने का निश्चय करता है और अंकुश के लिए योग्य पत्नी की खोज में लग जाता है। बहुत विचार करने के पश्चात् वह पृथ्वीपुर के राजा पृथु की अमृतवती रानी के गर्भ से उत्पन्न कनकमाला नाम की पुत्री के लिए अपना दूत भेजता है परन्तु पृथु इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर उसका अपमान करता है जिससे क्रुद्ध होकर वज्रजंघ उसका देश उजाड़ने लगता है। जब तक पृथु अपनी सहायता के लिए पोदन देश के राजा को बुलाता है तब तक वज्रजंघ अपने पुत्रों को बुला लेता है। दोनों ओर से घनघोर युद्ध होता है जिसमें वज्रजंघ विजयी होता है। राजा पृथु अपनी पुत्री कनकमाला अंकुश के लिए देता है। विवाह के बाद दोनों वीर कुमार दिग्विजय कर अनेक राजाओं को अपने अधीन करते है (पर्व १०१)।

एक दिन प्रसंगवश नारद लवण-अंकुश को राम-लक्ष्मण का परिचय देता है तथा उनके पत्नी-त्याग तक की कथा सुनाता है। गर्भिणी स्त्री का त्याग कुमारों को ठीक नहीं जँचता और वे राम से युद्ध करने का सकल्प कर लेते हैं। इसी बीच सीता अपनी सब कथा पुत्रों को सुनाती है तथा उनसे कहती है कि तुम लोग अपने पिता-चाचा से नम्रतापूर्वक मिलो परन्तु कुमारों को यह दीनता रुचिकर नहीं होती और वे सेनासहित जाकर अयोध्या को घेर लेते हैं। राम लक्ष्मण से उनका घनघोर युद्ध होता है।[१६१] राम-लक्ष्मण अमोघ शस्त्रों का प्रयोग करके भी जब दोनो कुमारों को नहीं जीत पाते तब नारद की सम्मति से सिद्धार्थ क्षुल्लक उनके सम्मुख कुमारों का रहस्य प्रकट करता हुआ कहता है कि ये आपके ही युगल पुत्र हैं जो सीता के गर्भ से उत्पन्न हुए हैं जिसे सुनते ही राम-लक्ष्मण शस्त्र फेंक देते हैं तथा पिता-पुत्रों का मिलन होता है (पर्व १०२-१०३)।

हनूमान्, सुग्रीव तथा विभीषण की प्रार्थना पर राम सीता को इस शर्त पर बुलाना स्वीकृत कर लेते हैं कि वह देश-विदेश के समस्त लोगों के समक्ष अपनी निर्दोषता शपथ द्वारा सिद्ध करे। सीता की अग्नि-परीक्षा होती है, उसमें वह सफल होती है, अग्निकुण्ड जलपूर्ण वापिका हो जाता है। महेन्द्रोदय उद्यान में सर्वभूषण मुनिराज के ध्यान और उपसर्ग का वृत्तान्त आता है। सीता की अग्नि-परीक्षा की सफलता पर राम अपने अपराध की क्षमा माँगकर घर चलने के लिए कहते हैं किन्तु सीता संसार से विरक्त हो चुकी है, इसलिए वह घर न जाकर पृथिवीमती आर्यिका के पास दीक्षा ले लेती है। राम सर्वभूषण केवली के पास जाकर धर्मश्रवण करके पूछते हैं कि क्या मैं भव्य हूँ? इसके उत्तर में केवली ने

---

१६१. इस युद्ध में हनूमान् 'लांगूल' नामक अस्त्र लेकर लवणांकुश के पक्ष से लड़ते हैं।

कहा कि तुम भव्य हो और इसी भव से मोक्ष प्राप्त करोगे (पर्व १०४-१०५)। विभीषण के द्वारा पूछने पर केवली द्वारा राम-लक्ष्मण और सीता के भवान्तरों का वर्णन होता है (पर्व १०६)।

संसार-भ्रमण से विरक्त होकर कृतान्तवक्त्र सेनापति राम से दीक्षा लेने की आज्ञा माँगता है। राम उसे दीक्षा की कठिनता बताते हैं तथा कहते हैं कि यदि तुम निर्वाण प्राप्त कर सको और देव होओ तो मोह में पड़े हुए मुझको सम्बोधना न भूलना। सेनापति राम का आदेश पाकर दीक्षा ले लेता है। सर्वभूषण केवली का जब विहार हो गया तब राम सीता के पास जाकर कठिन तपश्चर्या पर आश्चर्य प्रकट करते हैं (पर्व १०७)। श्रेणिक के प्रश्न करने पर इन्द्रभूति गणधर सीता के दोनों पुत्रों लवण और अंकुश के चरित्र का कथन करते हैं। (पर्व १०८)। सीता बासठ वर्ष तपकर अन्त में तैंतीस दिन की सल्लेखना धारण कर अच्युत स्वर्ग में प्रतीन्द्र हो जाती है। अच्युत स्वर्ग के तत्कालीन इन्द्र राजा मधु का वर्णन होता है (पर्व १०९)।

काञ्चनस्थान नगर के राजा काञ्चनरथ की दो पुत्रियों—मन्दाकिनी और चन्द्रभाग्या ने जब स्वयंवर में क्रमशः अनंगलवण और मदनांकुश को वर लिया तब लक्ष्मण के पुत्र उत्तेजित होते हैं परन्तु लक्ष्मण की आठ पट्टरानियों के आठ प्रमुख पुत्र उन्हें समझाकर शान्त कर देते हैं और स्वयं संसार से विरक्त होकर दीक्षा धारण कर लेते हैं (पर्व ११०)। वज्रपात से भामण्डल की मृत्यु हो जाती है (पर्व १११)। हनूमान् आकाश में विलीन होती हुई उल्का को देखकर विरक्त हो जाता है और धर्मरत्न मुनिराज के पास दीक्षा धारण कर लेता है। अन्त में वह निर्वाणगिरि पर्वत पर मोक्ष प्राप्त करता है (पर्व ११२-११३)। लक्ष्मण के आठ कुमारों और हनूमान् की दीक्षा का समाचार सुनकर यह कहते हुए श्रीराम हँसते है कि अरे इन लोगों ने क्या भोग भोगा? सौधर्मेन्द्र अपनी सभा मे स्थित देवों को धर्म का उपदेश देता हुआ कहता है कि सब बन्धनों मे स्नेह का बन्धन है, इसका टूटना सरल नही (पर्व ११४)। राम और लक्ष्मण के स्नेह बन्धन की परख करने के लिए स्वर्ग से दो देव अयोध्या आते है और विक्रिया से झूठा रुदन दिखाकर लक्ष्मण से कहते है कि 'राम की मृत्यु हो गयी है' यह सुनते ही लक्ष्मण का शरीर निष्प्राण हो जाता है। अन्तपुर में हाहाकार छा जाता है। राम दौड़े हुए आते हैं किन्तु लक्ष्मण के निर्गत प्राण नही लौटते। देव अपनी करतूत पर पछताते हैं और वापिस चले जाते है। इस घटना से लवणांकुश भी विरक्त होकर दीक्षा ले लेते हैं (पर्व ११५)। लक्ष्मण के निष्प्राण शरीर को राम गोदी में लिये फिरते हैं और पागल की भाँति करुण विलाप करते हैं (पर्व ११६)। लक्ष्मण के मरण का समा-

चार सुनकर सुग्रीव तथा विभीषणादि अयोध्या आते हैं और संसार की स्थिति का वर्णन करते हुए राम को समझाते हैं (पर्व ११७)। वे लक्ष्मण का दाहसंस्कार करने की प्रेरणा देते हैं परन्तु राम उनसे कुपित हो लक्ष्मण के शव को लेकर अन्यत्र चले जाते हैं तथा उसे नहलाते हैं, भोजन कराने का प्रयत्न करते हैं और चन्दनादि के लेप से अलंकृत करते हैं। इसी दशा में दक्षिण के कुछ विरोधी राजा अयोध्या पर आक्रमण की सलाह कर भारी सेना लेकर आ पहुँचते हैं परन्तु राम के पूर्वभव के स्नेही कृतान्तवक्त्र सेनापति और जटायु के जीव, जो स्वर्ग में देव हुए थे आकर इस उपद्रव को नष्ट कर देते हैं. वे शत्रुजन्य उपद्रव को दूर कर नाना उपायों से राम को सम्बोधते हैं जिससे राम छः मास बाद लक्ष्मण का दाह-संस्कार करते हैं (पर्व ११८)। राम संसार से विरक्त होकर शत्रुघ्न को राज्य देना चाहते हैं किन्तु वह लेने से निषेध कर देता है। तब सीता के पुत्र अनंगलवण को राज्यभार सौंपकर वे निर्ग्रन्थ-दीक्षा धारण कर लेते हैं। इसी समय विभीषण आदि भी अपने पुत्रों को राज्य देकर दीक्षा धारण कर लेते हैं (पर्व ११९)।

महामुनि राम चर्या के लिये नगरी में आते हैं किन्तु वहाँ अद्भुत प्रकार का क्षोभ हो जाने से वे बिना आहार किये ही वन को लौट जाते हैं (पर्व १२०)। वे पाँच दिन का उपवास लेकर यह नियम लेते हैं कि यदि वन में आहार मिलेगा तो लेंगे अन्यथा नहीं। राजा प्रतिनन्दी और रानी प्रभवा वन में ही उन्हें आहार देकर अपना गृहस्थ जीवन सफल करते हैं (पर्व १२१)।

राम तपश्चर्या में लीन हैं। सीता का जीव अच्युत स्वर्ग का प्रतीन्द्र जब अवधिज्ञान से यह जानता है कि ये इसी भव से मोक्ष को जाने वाले हैं तो उन्हें विचलित करने का प्रयत्न करता है परन्तु उसका सब प्रयत्न व्यर्थ हो जाता है। महामुनि राम क्षपक श्रेणी प्राप्त कर केवली हो जाते हैं (पर्व १२२)।

सीता का जीव नरक में जाकर लक्ष्मण के जीवको सम्बोधता है, धर्मोपदेश देता है, उसके दुःख से दुःखी होता है तथा उसे नरक से निकालने का प्रयत्न करता है परन्तु सब प्रयत्न व्यर्थ हो जाता है। नरक से निकलकर सीतेन्द्र राम केवली की शरण में जाता है और उनसे दशरथ का जीव कहाँ उत्पन्न हुआ है? भामण्डल का क्या हाल है? लक्ष्मण तथा रावणादि का आगे क्या हाल होगा?—इत्यादि प्रश्न पूछता है। राम केवली अपनी दिव्य ध्वनि के द्वारा उसका समाधान करते हैं।[१६४] अन्त में राम केवली निर्वाण प्राप्त करते हैं (पर्व १२३)।

---

१६४. रावणादि के भावी जन्मों का कथन इस प्रकार है—

भविष्यतः स्वकर्माभ्युदयौ रावणलक्ष्मणौ।
तृतीयनरकादेत्य अनुपूर्वाञ्च मन्दरात्॥

इस प्रकार पद्मपुराण की विषयवस्तु का उपसंहार करते हुए अन्त में रविषेण ग्रन्थमाहात्म्य और अपनी प्रशस्ति देते हैं।

शृणु सीतेन्द्र निर्जित्य दुःखं नरकसम्भवम्।
नगर्यां विजयावत्यां मनुष्यत्वेन चाप्स्यते॥
गृहिण्यां रोहिणीनाम्न्यां सुनन्दस्य कुटुम्बिनः।
सम्यग्दृष्टेः प्रियौ पुत्रौ क्रमेणैतौ भविष्यतः॥
अर्हद्दासर्षिदासाख्यौ वेदितव्यौ च सद्गुणैः।
अत्यन्तमहचेतस्कौ श्लाघनीयक्रियापरौ॥
गृहस्थविधिनाभ्यर्च्य देवदेवं जिनेश्वरम्।
अणुव्रतधरौ काले सुधीवाणौ भविष्यतः॥
पञ्चेन्द्रियसुखं तत्र चिरं प्राप्य मनोहरम्।
च्युत्वा भूयश्च तत्रैव जनिष्येते महाकुले॥
सद्दानेन हरिक्षेत्रं प्राप्य च त्रिदिवं गतौ।
प्रच्युतौ पुरि तत्रैव नृपपुत्रौ भविष्यतः॥
तात कुमारकीर्त्याख्यो लक्ष्मीस्तु जननी तयोः।
वीरौ कुमारकावेतौ जयकान्तजयप्रभौ॥
ततः परं तपः कृत्वा लान्तवं कल्पमाश्रितौ।
विबुधोत्तमतां गत्वा भोक्ष्येते तद्भवं सुखम्॥
त्वमत्र भरतक्षेत्रे च्युतः सन्नारणाच्युतात्।
सर्वरत्नपतिः श्रीमान् चक्रवर्ती भविष्यसि॥
तौ च स्वर्गच्युतौ देवौ पुण्यनिस्यन्दतेजसा।
इन्द्राम्भोदरथाभिख्यौ तव पुत्रौ भविष्यतः॥
आसीत्प्रीतिरिपुर्योऽसौ दशवक्त्रो महाबल।
येनेमे भारते वास्ये त्रय खण्डा वशीकृता॥
न कामयेत्परस्य स्त्रीमकामामिति निश्चय.।
अपि जीवितमत्याक्षीत्तत्सत्यमनुपालयन्॥
सोऽयमिन्द्ररथाभिख्यो भूत्वा धर्मपरायण।
प्राप्य श्रेष्ठान् भवान् कांश्चित्तिर्यङ्नरकवर्जितान्॥
स मानुष्यमासाद्य दुर्जनं सर्वदेहिनाम्।
तीर्थंकृत्कर्मसङ्घातमर्जयिष्यति पुण्यवान्॥
ततोऽनुक्रमत पूजामवाप्य भुवनत्रयात्।
मोहादिमल्लमथान् निहत्याहंतमाप्स्यति॥
रत्नस्थलपुरे कृत्वा राज्यं चक्ररथस्त्वसौ।
वैजयन्तेऽहमिन्द्रत्वमवाप्स्यति तपोबलात्॥
स त्वं तस्य जिनेन्द्रस्य प्रच्युत. स्वर्गलोकतः।
आद्यो गणधरः श्रीमानृद्धिप्राप्तो भविष्यति॥

आलोचना :

उपर्युक्त विवेचन से 'पद्मपुराण' की विषयवस्तु का स्वरूप स्पष्ट हो चुका है। अष्टम बलभद्र-राम के चरित्र को वर्णित करके रविषेण जैनधर्म की भावनाओं को पाठकों तक पहुँचाने का प्रयत्न करते हैं। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये कवि ने विषयवस्तु की अपनी प्रतिभानुसार योजना की है।

अब हम पद्मपुराण की प्रबन्धात्मकता पर किञ्चत् विचार करेंगे। प्रबन्धात्मकता परखने के लिए (१) कथानक के प्रारम्भ, (२) कथानक-गति के हेतु मार्मिक स्थल, चलते वर्णन, अरोचक वर्णनों के त्याग, अप्रिय प्रसंगों की स्थिति, निरर्थक आवृत्ति से बचाव, प्रासंगिक कथाओं की संगति एवं उपाख्यानों तथा (३) उपसंहार पर विचार करना होता है। हम इसी निकषग्रावा पर 'पद्मपुराण' की परीक्षा करने का प्रयत्न करेंगे।

'पद्मपुराण' की विषयवस्तु का प्रारम्भ पौराणिक ढंग के आख्यानों को लेकर हुआ है। आधिकारिक कथा-राम की कथा—तो बहुत बाद मे आती है। १ से २० पर्व तक तो ऐसा प्रतीत होता है कि 'पद्मपुराण' न पढ़कर हम 'रावण-पुराण' ही पढ़ रहे हों। वानर-राक्षस वश के परिचय के समय चौंसठ-चौंसठ राजाओं की नामावलियाँ मुख्य कथा तक पहुँचने मे एक अड़चन सी डालती हैं।

कथानक की गति का जहाँ तक प्रश्न है, 'पद्मपुराण' का कथानक अधिक गतिशील नही है। मार्मिक प्रसंगों की पहिचान कवि को है। उसने अपनी कथा के अनुसार धनुपोत्सव, अनेक स्थलों पर तरुणों को देख कर नारियों के भावालाप, वनगमन करते राम-लक्ष्मण को देखकर तरुणियों की विह्वलता, सीता-हरण पर राम विलाप, अञ्जना-पवनञ्जय-वियोग, राम-लक्ष्मण-प्रेम, लवणांकुश-युद्ध, सीता का राम को संदेश एव सीता की तपस्या आदि अनेक मार्मिक प्रसंगों को ध्यान में रखा

तत पर्मनिर्वाणं यास्यसीत्यमरेश्वर ।
श्रुत्वा ययौ परा तुष्टि भावितेनान्तरात्मना ॥
अथ तु लाक्ष्मणो भाव' सर्वज्ञेन निवेदितः ।
अम्भोदरथनामासौ भूत्वा चक्रधरात्मज ॥
चारून् कांश्चिद्भवान् भ्रान्त्वा धर्ममगलवेष्टित ।
विदेहे पुष्करद्वीपे शतपत्राह्वये पुरे ॥
लक्ष्मणः स्वोचिते काले प्राप्य जन्माभिषेचनम् ।
चक्रपाणित्वमर्हत्त्व लब्ध्वा निर्वाणमेष्यति ॥
सम्पूर्णैः सप्तभिश्चाब्दैरहमप्यपुनर्भव. ।
गमिष्यामि गता यत्र साधवो भरतादय' ॥"

(पद्मपुराण, १२३।११४-१३४)

है। यहाँ उनके उदाहरण देना स्थान स्थगन मात्र होगा।

चलते वर्णनों की दृष्टि से भी पद्मपुराण की समीक्षा कर ली जाये। 'पद्म-पुराण' एक विशालकाय ग्रन्थ होने के कारण प्रत्येक बात का सांगोपांग वर्णन देता है, राम से मिलने के बाद भरत के लौटने आदि के वर्णन में यद्यपि रविषेण ने दो-पंक्तियों से ही काम चला लिया है यथा—

"तौ विधाय यथायोग्यमुपचारं ससीतयोः।
रामलक्ष्मणयोर्यातौ मातापुत्रौ यथागतम् ॥"

तथापि अधिकांश वर्णन उसने लम्बे ही किये हैं। रविषेण को तो जरा कोई बात कहने का अवसर मिलना चाहिए, बस फिर लीजिये सांगोपांग वर्णन।

अरोचक वर्णनों के त्याग में भी प्रायः कवि जागरूक है। उन वर्णनों को प्रायः उसने नहीं किया है, जिनमे पाठक की उत्सुकता नष्ट हो। इसीलिये वर्णनों के आरोह विस्तृत हैं और अवरोह अत्यन्त संक्षिप्त यथा--रावण की अनेक राजाओं पर विस्तृत चढाई एवं संक्षिप्त प्रत्यावर्तन आदि।

निरर्थक आवृत्ति से आत्यन्तिक बचाव 'पद्मपुराण' मे नहीं हो सका है। दो-तीन बार तो 'रामकथा' का विवरणात्मक परिचय है, यथा--हनूमान् द्वारा सीता के समक्ष एवं नारद द्वारा लवकुश के समक्ष।

प्रासंगिक कथाओं की संगति का कवि ने पूर्ण प्रयत्न किया है। 'पद्मपुराण' में सुग्रीव और हनूमान् की कथा प्रासंगिक मानी जा सकती है। यह कथा आधि-कारिक कथा के साथ अन्त तक चलती हैं। सुग्रीव और हनूमान् अन्त तक राम के मित्र, सेवक और सहायक बने रहते है। सुग्रीव को राज्यप्राप्ति और स्त्री-प्राप्ति होती है एवं हनूमान् को पत्नी-राज्य-सम्मान-प्राप्ति।

पौराणिक काव्यो मे उपाख्यान पर्याप्त मात्रा में समाविष्ट रहते है। इनका कही कथा से सीधा सम्बन्ध होता है और कही परम्परा से। इनका अभिप्राय कुछ न कुछ अवश्य होता है। हमारे आलोच्य ग्रंथ में अनेक उपाख्यान आये हैं। उपाख्यान, योजना का उत्कर्षापकर्षत्व उसकी रोचकता और कथासम्बद्धता से ही आँका जाता है। 'पद्मपुराण' मे अनेक उपाख्यान आये हैं। जैन-धर्म-सम्बन्धी जितने भी प्रसिद्ध आख्यान-उपाख्यान हैं--प्राय. उन सभी का उल्लेख इसमें हुआ है। इसे धार्मिक जैन उपाख्यानो का भण्डार कहा जा सकता है। 'स्थिति,' 'वंशसमुत्पत्ति,' 'भवोक्ति' और 'परनिर्वृति' नामक अधिकारों में ये उपाख्यान अधिकतः आते है। पात्रों के पूर्वभवों के वर्णन के समय तो एक में से एक उपाख्यान उसी प्रकार निक-लता चला जाता है जिस प्रकार कदली के छिलके के अन्दर दूसरा छिलका। अधि-कांश उपाख्यान या तो गौतम गणधर ने कहे हैं या फिर किसी जैन मुनि ने। इन

उपाख्यानों को रविषेण ने अपने 'पद्मपुराण' की एक विशेषता समझा है।[१६५] यहाँ उन सब उपाख्यानों का परिचय देना अनावश्यक विस्तार ही सिद्ध होगा, अतः नामोल्लेखमात्र किया जाता है—राजाश्रेणिक-आख्यान, ऋषभजन्म-कथा, मेघवाहनकथा, सगरोपाख्यान, भरत-बाहुबलि-आख्यान, ब्राह्मणोत्पत्ति-कथा, हितकरादि-उपाख्यान, हरिदास-भावनोपाख्यान, चन्द्रावलि-उपाख्यान, श्रीकण्ठ-वज्रकण्ठ-कथा, अमरप्रभ-कथा, मुयशोदत्त-कथा, किष्किन्ध-अन्ध्रक-कथा, सुकेश-पुत्रों की जन्म-कथा, मालि-इन्द्र-युद्ध-कथा, रत्नश्रवा-केकसी कथा, वैश्रवण-रावण-कथा, हरिषेणोपाख्यान, रावण-बालि-युद्ध-कथा, सहस्ररश्मि-रावण-कथा, उपरम्भा-कथा, इन्द्र-रावण-युद्ध-कथा, अनन्तबल-रावणोपाख्यान, मरुत्वान्-यज्ञ-कथा, पवनंजय-अंजना-कथा, प्रतिसूर्य-अंजना-प्रसंग, हनूमान्-वरुण-युद्ध-कथा विभीषण-सागरबुद्धि-उपाख्यान विभीषण नारद-सीतोपाख्यान, दशरथ-केकयोपाख्यान, भामण्डलोपाख्यान, वज्रकर्ण-सिंहोदर-कथा, कूबरनरेश (कल्याणमाला)-कथा, रौद्रभूति-कथा, कपिल-ब्राह्मणोपाख्यान, वनमालोपाख्यान, अतिवीर्योपाख्यान, देश-भूषण-कुलभूषण-कथा, दण्डक-जटायु-कथा, रत्नजटी-कथा, विराधित-कथा, जिनपद्मोपाख्यान, शम्बूक-कथा, साहसगति-सुग्रीव-कथा, महेन्द्र-हनूमान्-कथा, दधिमुखद्वीपस्थ-मुनि-उपसर्ग-कथा, लंका-सुन्दरी-कथा, गिरि-गोभूति-उपाख्यान, हस्तप्रहस्त-नल-नील-कथा (इन्धक-पल्लवकोपाख्यान), चन्द्रप्रतिमोपाख्यान, द्रोणमेघ-विशल्योपाख्यान, चन्द्र-वर्द्धनविषधरकन्योपाख्यान, अरिंदमोपाख्यान, अनन्तवीर्योपाख्यान, प्रथम-पश्चिमोपाख्यान, नोदन-अभिमानोपाख्यान, अमल-भद्राचार्योपाख्यान, भरतोपाख्यान, त्रिलोकमण्डनशमोपाख्यान, मरीचि-उपाख्यान, सूर्योदय-चन्द्रोदयोपाख्यान, मृदुमति-उपाख्यान, मधु-सुन्दरोपाख्यान, यमुनदेव-चन्द्रभद्राद्युपाख्यान, अर्हद्दत्तोपाख्यान, मनोरमोपाख्यान, सिद्धार्थक्षुल्लकोपाख्यान, सकलभूषणोपाख्यान, गुणवती-धनदत्तोपाख्यान, पद्मरुचि-श्रीचन्द्र-हेमवती-वेदवती-वसुदत्ताद्युपाख्यान, प्रियंकर-हितकरोपाख्यान, अग्निभूति-वायुभूति-उपाख्यान, कृतान्तवक्त्रोपाख्यान एवं वज्रांकाद्युपाख्यान आदि। ये उपाख्यान कहीं-कहीं तो इतने अधिक हैं कि मुख्य-कथा को सँभालना कठिन सा लगता है।

'पद्मपुराण' की विषयवस्तु का निर्वाह 'भवोक्ति' और 'परनिर्वृति' नामक

---

१६५. "एतत्सुसमाहित सुनिपुणं दिव्यं पवित्राक्षरम्
नानाजन्मसहस्रसंचितघनक्लेशौघनिर्णाशनम् ।
आख्यानैर्विविधैश्चितं सुपुरुषव्यापारसंकीर्तनम्
भव्याम्भोजपरप्रहर्षजननं सकीर्तितं भक्तितः ॥

(पद्मपुराण, १२३।१६६)

अधिकारों में मिलता है। कवि राम-राज्य, राम-लक्ष्मण-प्रेम, सीता-वनवास, लवणांकुश-उत्पत्ति, सीता की अग्नि-परीक्षा, लक्ष्मणमृत्यु, सीता का आर्यिका बनकर तपस्या द्वारा स्त्रीयोनिच्छेद करने और प्रतीन्द्र बनने, लवणांकुशराज्याभिषेक और राम की जिन-दीक्षा आदि का वर्णन करता हुआ उनके केवली होने की सूचना देता है। यद्यपि जैन दृष्टिकोण के अनुसार ही कथा का उपसंहार दिखाया गया है तथापि उपसंहार है अवश्य। प्रतीन्द्र सीता तो केवली राम से सभी पात्रों का भावी जन्म भी जान लेता है। साथ ही अनेक मुनियों के द्वारा प्रायः सभी या प्रमुख पात्रों के पूर्वभव का हमे परिचय मिल जाता है। इस प्रकार 'पद्मपुराण' के कथानक का पूर्ण उपसंहार हुआ है।

●

पञ्चम अध्याय

पद्मपुराण के पात्र तथा चरित्र-चित्रण

पीछे हम महाकाव्य और पौराणिक काव्य की विशेषताएँ बताते हुए लिख चुके है कि महाकाव्य में एक नायक होता है तथा अन्य अनेक पात्र होते हैं। इसी प्रकार पौराणिक काव्यों में अनेक उपाख्यान होते हैं जिनमें अनेक पात्रों का होना स्वाभाविक ही है। किसी कथा के नायक मात्र से ही कथा को पूर्णता प्राप्त नहीं होती। उसके लिए उसे अन्य पात्रों से भी सम्पर्क रखना पड़ता है। यह सम्पर्क कही विरोधात्मक होता है और कहीं सहायता प्रदान करने वाला। इस प्रकार तीन क्षेत्र हो जाते हैं—नायक-क्षेत्र, विरोधी-क्षेत्र, एवं सहायक-क्षेत्र। इन तीनों क्षेत्रों के प्रधान पात्रों को नायक, प्रतिनायक तथा पीठमर्द कहा जाता है। इनके ही अन्य साथी भी होते है। इस प्रकार अनेक पात्रों का किसी बड़े प्रबन्धकाव्य में होना नैसर्गिक ही है। इन पात्रों का अपना-अपना चरित्र होता है जिसका चित्रण कवि तीन प्रणाणियो से करता है—

१—पात्रो के कार्यों द्वारा,

२—उनके वार्तालाप के द्वारा और

३—लेखक के कथन या व्याख्या द्वारा।

इनमें पहली और दूसरी प्रणाली नाटकीय या परोक्ष एवं तीसरी प्रत्यक्ष होती है।

'पद्मपुराण' के कथानक में भी हमारे सम्मुख अनेक पात्र आते हैं जिनका चित्रण कवि ने यथासमय तीनों पद्धतियों से किया है उन्ही पात्रों का विवेचन हमें यहां करना है।

'पद्मपुराण' में लम्बा कथानक एवं अनेक उपाख्यान होने के कारण पात्रों की संख्या बहुत बढ़ी-चढ़ी है।

इन पात्रों की नामावली इस प्रकार दी जा सकती है :[१६६]

अकम्पन (१५), अग्नि (८०), अग्निशिख (१०, १०२), अग्निकुण्डा (८५), अग्निकेतु (३९, ४१), अग्निरथ (१२), अग्निप्रभ (३९), अग्निला (१०९), अग्निभूति (१०९), अचल (२०, ४१, ७४, ९१), अच्युत (९४), अजितनाथ १, २०, ४३), अतिवीर्य (१, ५, ३७), अतिबल (५, २०), अतिध्वंस (५), अतिभीम (६), अतिभूति (३०), अतिविजय (५८), अदिति (७), अनन्तनाथ (१, ९, २०), अनन्तवीर्य (१, २२, ४१, ७६), अनावृत (१, १४), अनुराधा (१, ९), अनुत्तर (५), अनुमति (५, १०), अनिल (५), अनन्तबल (१४), अनंगवीचि (१८), अनंगपुष्पा अनगकुसुमा (१९, ४६, ४८, ५७), अनरण्य (१, २२, २८, ३०, ३१), अनन्तरथ (२२), अनुकोशा (३०), अनुद्धरा (३९), अनुन्धर (३९), अनुद्धर (५८), अनघ (६०), अनंगसेना (६३, ६४), अनंगशिरा (६४), अनंगसुन्दरी (८७), अनुमति (९६), अनगलवण (१००, ११०) अपराजित (२०), अपराजिता (२५), अपरमुख (९१), अपरग (९१), अप्रतीघात (५८). अब्धिदेव (९१), अनगशरा (६३), अभिमाना (८०), अभिनन्दन (१, ९, २०), अभयकुमार (२), अभयानन्द (२०), अभयसेन (२२), अभयनिनाद (१०५), अभिराम (८५), अमृत (५), अमल (५), अमरविक्रम (५), अमररक्ष (५), अमरप्रभ (६), अम्भोधरध्वनि (६), अंगिरस (८), अजना (१, १५, १६, १७), अमरसागर (१५), अमरावती (१०९), अमितांग (२०), अम्बिका (२०), अमृतवती (२२), अमृतवेग (५), अमृतस्वर (३९) अमृतार (४०), अमग (५१), अगारक (५१), अमलचन्द्र (५५), अमृष्ट (५८), अगद (१०, ८७, ५४, ५८, ६०, ७१, ७४), अंकुर (६०), अंग (६० १०२), अक्र (९१), अगिका (९१), अमोघशर (८०), अंकुश (मदनाकुश) (१००), अध्रक (६), अयग (४८), अरनाथ (१, ९, २०, ९८, १०९), अरिष्टनेमि (१), अरिंजय (५), अर (५), अरिमर्दन (५) अरिसन्त्रास (५), अरिसज्वर (१२), अरिंदम (१५, २०, ८७), अरिसूदन (३१), अरविन्दा (३८), अर्ककीर्ति (९), अर्कचूड (५), अर्हच्छ्री (५), अर्हद्भक्ति

१६६. कोष्ठक में पर्वों की संख्या है। कोष्ठांकित पर्व संख्या के अतिरिक्त भी पात्रों के नाम आये हैं किन्तु अपने प्रयोजन की सिद्धि एक ही पर्व की संख्या लिख देने मे भी हो जाती है, अत. सभी स्थलों का उल्लेख नहीं किया है।

(५), अर्हन्त (१०, ६७, ११४), अर्णव (२०, ५४), अर्कमाली (४९), अर्धचन्द्र (५८), अजित (६०), अर्क (६०), अर्जुनवृक्ष (९४), अर्कमुख (९१) अर्हद्दास (११९), अर्हदत्त (९२), अलक (८८), अवद्वार (९३), अशनिवेग (१, ६), अश्वधर्मा (५), अश्वायु (५), अश्वध्वज (५), अश्विनीकुमार (७), अशोकलता (८), अष्टचन्द्र विद्याधर (९), अष्टापद (१७), अश्वसेन (२०), अश्वग्रीव (२०), अशोकदत्त (८५), अशोक (१२३), अश्विनी (५९),

आकाशगामी मुनिराज (६), आकाशध्वज (१२), आक्रोश (६०), आतकी (५), आत्मश्रेय (४८), आदित्यगति (५), आदित्ययशा (५), आदिनाथ (८५), आनन्द (६. २०, ७३), आनन्दमाल (१३), आनन्दवती (२०), आनन्दा (७७), आन्तरंगतम (२७), आर्यगुप्त (२६), आवलि (५), आवली (९), आहल्या (१३),

इन्द्र (५, ७, ९, ६६, ७८, १२३), इन्द्रकेतु (२८), इन्द्रगिरि (२१), इन्द्रजित् (५, ८, ६५, ७८, ११८), इन्द्राणी (६, ८, ३६), इन्द्रदत्त (९१), इन्द्रदत्ता (९१), इन्द्रध्वज (८८), इन्द्रद्युम्न (५), इन्दुनखा (८), इन्द्रप्रभ (५), इंद्रप्रचण्ड (५५), इन्द्रमत (६), इन्द्रमुख (९१), इन्द्रमालिनी (११), इन्द्रायुध (वज्र) प्रभ (६), इन्द्रद्युति (१), इन्द्रायुध (५८), इन्द्ररेखा (५), इन्द्रवज्र (६७, ७०), इन्धक (५९), इभकर्ण (३५), इभवज्र (५५), इभवाहन (२१), इलावर्धन (२१), ईशान (७३), इषु (२५),

उग्र (१२, ६० ७३), उग्रनक्र (८ क्रूर नक्र), उग्रनाद (५७), उग्रश्री (६५), उग्रमुख (९१), उडुपालन (५), उतर (५), उत्तरवामी (१), उत्पलमती (५), उत्तम (५७), उद्भव (१२), उदयसुन्दर (२१), उदयाचल (५), उदित (५, ३९), उदितपराक्रम (५), उद्दामा (५७), उद्याम (६०) उपरम्भा (१, २), उपमन्यु (३१), उपयोगा (३९), उपास्ति (३१), उर्व- (७८), उर्वशी (७, २६, ७७), उल्का (५८) ऊर्जित (५८, ११४), ऊर्मित- रंग (७४), ऊरी (३०),

एकचूड (५), ऐन्द्री (८३), ऐर (२५), ऐराणी (२०), ऐरादेवी (२०), ऋक्षरज (७, ८, ९), ऋषभ (२०), ऋषिदास (१२३), ककुत्थ (२२), कठोर (३२), कंटक (३२), कदम्ब (५७), कनक (२८, ५७, ८, १२, ४८), कनकमाला (१०१), कनकप्रभ (१०६), कनकद्युति (१५), कनकाभ (२०), कनकावली (६), कनकाभा (२२, ७७), कनकोदरी (१७), कमलकान्ता (३०), कमलगर्भ (५४), कमलबंधु (२२), कमला (५४) कमलामेला (२६), कमलोत्सव (३९), कमलानना (७७), कयान (३०), कलभ (३७) कलावती (८३),

चन्द्ररथ (५) चन्द्र (५, ७, ५०, ६०, ६४), चन्द्रशेखर (५), चक्रधर्मा (५), चक्रायुध (५), चक्रध्वज (५, २६, ३०), चन्द्रचूड (५) चंद्रिणी (५, ८३), चन्द्रप्रभ (१, ५) चण्ड (५, ५७), चन्द्रावर्त (५, १३), चन्द्रकुण्डल (६) चन्द्रानन (६, ७१), चन्द्रवती (६), चलज्योति (७), चन्द्रमालिनी (९), चन्द्रनखा (९, १०, १९, ४५) चक्रांक (१०), चतुर्मुख (२०), चन्द्रमति (२८), चपलवेग (२८), चन्द्रवर्धन (२८, ७५, ८०), चन्द्रलेखा (५१), चन्द्रमरीचि (५४), चन्द्रज्योति (५४), चपल (५५, ५७), चलांग (५७), चल (५१), चंचल (५७), चन्द्राभ (५८, ६०, ७०, ७९), चन्द्रनपादप (५८), चण्डांशु (५८), चण्डोर्मि (५८), चन्द्ररश्मि (६०, ७०, ७४), चन्द्रमण्डल (६०, ६३), चन्द्र तरंग (६०), चन्द्रप्रतिम (६३), चन्द्रवर्धन (७५), चन्द्रमण्डला (७७), चन्द्रांकचूड (८१), चन्द्रकांता (८३), चंद्रोदय (८५), चंद्रकिरण (८८), चमरेंद्र (९०), चंद्रभद्र (९१), चंद्रानना (९३), चंद्राभा (१०९), चंद्रभाग्या (११०), चंद्रनख (११९), चंक्रस्थ (१२३), चामुण्ड (५), चारुणी (६), चारुदान (७), चारुरत्न (११८), चिन्त (२०), चितारस (२०), चित्तोत्सवा (२६) चित्ररथ (२८), चित्राम्बर (६), चूला (२०), चूडामणि (२१), चेतना (३, २०), चोल (५७),

छत्रच्छाय (१०६),

जनक (१, २६, २८), जयवती (५, ६०), जया (५, १०), जयकीर्तन (५), जह्नु (५), जनमेजय (८), जयकुमार (६, ३८), ज्वलिताक्ष (१२), जयन्त (१२), जरासन्ध (१०), जय (२८, ६०), जटायु (४४), जयमित्र (५८, ९२), जगद्बीभत्स (६०), ज्वर (६०), जम्बूमाली (६०), जयस्कन्ध (६०), जगद्युति (८५) जनवल्लभ (८८), जयवान् (९२), जककान्त (१२३) जयप्रभ (१२३), जानकी (२७), जाम्बव (५८, ६३, ७०, ७४), जाम्बूनद (६०, ८८) जितशत्रु (५, २०, ८०), जितनाथ (५), जितभास्कर (५), जिनेन्द्रदेव (१७), जितारि (२), जिनेन्द्र (३२, ११४,), जितपद्मा (३८), जिनप्रेमा (५८), जिनसंघ (५८) जिनमत (५८), जीमूत (७९), जृम्भक (१०, ११),

टक (१०), डमर (५७), डम्बर (५७), डमरमंडल (९२) डामर (१०), डिम्ब (६०), डिण्डि (५७), डिण्डिम (५७),

तडिदंगद (५), तडिन्माला (८), तनूदरी (९, ७७), तडित्पिंग (१२), तरंगमाला ५१), तडिद्वक्त्र (५४), तरंग (५८), तरल (५८), तरंगवेग (१०६), तारा (१९, २०), तारक (२८), तिलकसुन्दरी (५०) तिलकसुन्दर

परमेष्ठी (१६), पल्लवन (५६), पवनवेग (१७), पद्ममुनि (११६), परशुराम (१६, २०, ८०), पद्मप्रभ (१६, २०, ८०), पद्म (२०, २५), पद्म-रथ (२०, ५), पद्मरुचि (१०६), पद्मोत्तर (६, २०), पंकजगुल्म (२०), परि-व्राद् (८५), पद्मासन (२०), पद्मावती (२७, ३६, ७७, ८३), पर्वत (२०), पद्मनाभ (८१), पराम्भोधि (२०), पश्चिम (७, ८), पवनंजय (१, १७), पद्म-निभ (५), पद्माली (५), पयोबल (५), पति (५), पद्मा (५, ७७), पद्माभा (६), पद्मश्री (६), पवनगति (१५), पशुपाल (४८), पृथु (५७), पाताल पुण्डरीक (१६), पाप (५८), पार्श्व (२०), पाटनमण्डल (५८), पार्श्वनाथ (२०, १), पाकशासन (६), परिह्लाद (१०), प्रियंगुलक्ष्मी (१७), प्रियरूप (५८), प्रियकारिणी (२०), प्रियविग्रह (५८), पिहिताश्रव (२०), प्रियधर्म (८८), प्रियमित्र (२०), प्रियचन्द्री (१७), प्रियानन्दा (८३), पिहितमोह मुनि-राज (६), पिंगल (२६, ३०, ६६), प्रियवर्धन (३२), प्रियव्रत (३९), पीठ (२०), प्रीतिकण्ठ (५८), प्रीतिकर (६०, ७७), प्रीतिंकर (७०, ९२, १०८), प्रीति (२०), प्रीनि (५, ६, ७७), प्रीतिकान्त (६), प्रीतिमती (७), पुनर्वसु (२०, ६३, ६४), पुरुषोत्तम (२०), पुरुषसिंह (२०), पुण्डरीक (२०), पुरुषर्षभ (२०), पुलोमा (२१), पुरन्दर (२१, ८), पुंजस्थल (२२), पुष्पनखा (५), पुष्पभूति (५), पुष्पास्त्र (६०), पुष्पोत्तर (६), पुष्पवती (३०, ८२), पुष्पचंड (५७), पुष्पखेचर (५७), पुष्पदन्त (१, ६, २०, ९८), पुश्चन्द्र (५), पूर्णचन्द्र (५, ५८, ७०, ८८), पूर्णघन (५), पूजार्ह (५), प्रहसित (१६), प्रसन्नकीर्ति (१७, ५४), प्रह्लाद (१७, १५, १६, २०), प्रतिमूर्य (१८), प्रस्तर (५८), प्रजापति (२०), प्रमत्त (५८), प्रख्यात (२०), प्रचण्डालि (५८), प्रभवा (२०, १२१), प्रस्थिन (६०), प्रभावती (२०, ३०, ७७), प्रज्ञप्ति (६५), प्रवरा (७७), प्रजापाल (२०), प्रतिमन्यु (२२), प्रतिनारायण (१, ५, २०), प्रभूतसेन (५), प्रतापीतपन (५), प्रह्लादना (८५), प्रभाकर (८८), प्रभासकुन्द (१०६), प्रथम (७८), प्रभु (५), प्रतिबल (६), प्रमोद (५), प्रतिचन्द्र (६) प्रहस्त (८, १०, ५५, ५७), प्रवर (६, १२, ४१), प्रभव (१२, ८८), प्रकाश-सिंह (२६), प्रवरावली (२६), पृथ्वीधर (८०), पृथु (१०१), पृथ्वी (३४), प्रतिसन्ध्या (३४), प्रचण्ड (५७), प्रशंस (५७), पृथिवीश्वर (३६), पृथिवीमती (२१, २२), पृथ्वी २०), पृथ्वी (२४), प्रोष्ठिन (२०), पौण्डरीक (१६), प्रौष्ठिल (३७), पौण्ड्र (१०२),

बलभद्र (१, ५, २१, २५, ७२), बलांक (५) बलि (६, २० ५८, ६०, ६८, १०६), वसन्ततिलका (१५), वसन्त माला (१७), बल (२०, ५८, ७०,

२५, ५८, ६०), बसन्तलता (२२), बन्धु २८, ४८), बसन्तध्वज (३६), बन्धुपाल (४८), बर्बरक (५८), वसन्त (५८), बली (६०), बालिमुनि (६५), बलभद्र (७६, १०३, ११६), बन्धुमती (११३), बाहुबली (१, ४, ५), बालेन्दु (५), बाली (६), बालचन्द्र (२६), बालखिल्य (१३४, ७२), बुध (२८), ब्रह्मदत्त (५, २०), व्रतकीर्तन (५), ब्रह्मरुचि (११), ब्रहरथ (२०, २२), ब्रह्म-मूर्ति (२०), बृहस्पति (७), वृषभ (२०), वेलाक्षेपी (५८, ६०),

भरत (१, २८, २२, ३७, २५, ८४), भद्र (५, ३१, २०), भद्रवती (२०), भूरिश्रन्त (३७), भद्राम्भोजा (२०), भगवती (२०), भवनश्रुत (२०), भगीरथ (५, १०३), भद्रबल (२८), भट्टारक (२८), भूरिचूड (५), भयानक (५७), भर (५८), भंग (५८), भद्रा (७७), भरतमुनि (८७), भवान्तक (११४), भानुमती (८३), भावित (५८), भानुमंडल (५८) भास्कर (५५) भामंडल (५३), भानुराजा (२०), भानुकर्ण (१, ८, १४, ४५, ६०), भानु (५, २८) भानुप्रभ (५), भानुवर्मा (५), भानुगति (५), भास्कर (५), भावन (५), भीम (५, ६, ४५, ५४, ५७,१०३), भिन्नाजनप्रभ (५७), भीम-प्रभ (५), भीष्म (५), भीमनाद (५७), भीषण (५८), भीमरथ (५८, भुजबली (५), भूति (३१), भूतनाद (५४), भूरी (५८), भूधर (७४), भूतस्वन (७४), भूषण (८५), भोगवती (६), भोज (२८), भद्राचार्य (८०), भव्यंक (५),

महावीर (१, २०), मल्लिनाथ (१, २०, १०६), मन्दोदरी (१, ८, ६, ४६, ५३, ७४), महेन्द्र (१, १५, १७, ५० ५३, ५५, ५८, ५८, ९३), मरुदेवी (३), मतिसमुद्र (४), महाबल (५, २०, ५८, ६०, ११०), महेन्द्रविक्रम (५), महेन्द्रजित् (५) मणिग्रीव (५), मणिभासुर (५), मध्यक (५), मणिस्यदन (५), मध्यास्य (५), महाघोष (५), महारक्ष (५) मघवा (५, २०), महापद्म (५, २०, २८), मदनपद्मा (५), मयूरवान् (५), महाबाहु (५), मनोरम्य (५), महारव (५), मन्दर (६, २८, ५४, ५८), महोदधि (६), महोदधि के १०२ पुत्र (६), मयविद्याधर (६), मनोजव (६), मघोनी (६), मजुस्वनी (७), मकरध्वज (७, ७०, ७४, ९४), मरुद्वक्त्र (८), मनोवेगा (८, ७७), महालक्ष्मी (८), महीधर (८), मदनावली (८), मलय (२०, ५५, ९३), महाजठर (१२) मणि (१३), मणिचूल (१७), मल्लि (२०), महामेघरथ (२०), मयूर (२०), महेन्द्रदत्त (२०), महातेज (२०), महासेन (२०), मनोहारा (२०), महासुव्रत (२०) मधुकैटभ (२०) महागिरि (२१), महारथ (२१, ५७, ७०) मनोदम (२१), मयूरकुमार (२८), मधु, (३०, ८६, १०६), मदना (३६), मतिवर्धन (३६), महालोचन (३६), महोदर (४५, ६०), महाकाल (५५), मतिकान्त

(५५), मतिसागर (५५), मतिप्रिया (५५), महिदेव (५५) मकर (५७,६०) महामाली (५७), महाद्युति (५७), महाभैरव (५७), मनोहरमुख (५८), मर्दक (५८) मत्त (५८), महाधर (५८), मरुदाह (५८), मनोज्ञ (५८), मदन (६६, ६४), महेन्द्रकेतु (५४) मनोवती (७७), महादेवी (७७), मयमुनि (८०), मनोरमा (८३, ९३), मानसोत्सवा (८३), मरुदेवी (८५), महाबुद्धि (८८), मधुसुन्दर (८९), मनोवेग (९३), मगल (९४), मधुयान (९६), मल्लि-जिनेश्वर (९८), मदनांकुश (१००), मधुमुनि (१०९), महादेव (११४), महेश्वर (११४), मकरी (१२३), मालिनी (१२३), मागध (१०२), मारिदत्त (१०२), माल्यवान् (५७१, ८०), मान्धाता (२२, ८९) मानससुन्दरी (७), मारीच (८, १२, १४, ६, ५५, ५७, ६०, ७४) माली महाराज (६), मानवी (७७), माकोट (२०), मानसवेष्टित (२०), मारुतवेग (२०), माधवी (५, २०, ८५), मारण (५), माली (६, ७, ६०), मिश्रकेशी (१५), मित्रा (२०, २२), मित्रवती (४८), मित्रयशा (८०), मुनिसुव्रतनाथ (६), ६, १७, ३३, ६७, १०५), मुनिराज (२०), मुनिचन्द्र (२०), मुदित (३६, ५७), मुखान्त (९१), मुनीन्द्र (१०६), मृगांक (५, २०), मृगोद्धरण (५), मृगाधिपध्वज (८), मृदुकान्ता (१२), मृगचिह्न (१२), मृगावती (२०), ७७), मृगध्वज (३७) मृत्यु (५७, ६०), मृगेन्द्रदमन (६०), मृगेन्द्रवाहन (१०२), मेघनाद (१), मेघकुमार (२), मेघ (५), मेघध्वान (५), मेरु (६, ३२, १०६), मेरु-कान्त (६), मेनका (७), मेघरथ (७, २०, २५, ८९, १२३), मेधावी (८), मेघवाहन (८, १७, ४३, ५८, ७८), मेघप्रभ (६), मेघमाली (१२), मेरक (२०), मेघेश्वर (८६), मेघकेतु (१०४), मोहन (५), महीधर (५),

यम (३, ७, ८, ७३), यशोधर (५, २०, ३१), यक्षरज (६), ययाति (११), यशोवती (२०), यशोमित्र (३), यमुना (३३, ४८), यज्ञदत्त (४८), यक्ष, (४८), यमदण्ड (६६), यमुनादेव (९१), युगन्धर (२०), युद्धावर्त (५८), योजनगन्धा (३१),

रवितेज (५), रक्तोष्ठ (५), रम्यक (५), रतिमयूख (५), रत्नश्रवा (१, ७), रत्नजटी (१), रत्नमाला (५), रत्नवज्र (५), रत्नावली (६), रत्नचूला (१७, ५४) रत्नमाल (२१), रत्नमाला (३८, ७७), रत्नरथ (३६, ९३) रत्नकेशी (४८), रत्नवती (८३), रत्ना (८५), रत्नांक (१०२), रति-वर्धन (५८, ६०, ७८), रतिकान्ता (७७) रतिमाला (९४), रतवती (३, ६), रति (५, ९४), रवि (५), रविप्रभ (६), रविमन्यु (२२), रवियान (५८) रणजनि (५८), रणोर्मि (३७), रणदक्षक (८), रथनूपुरक (१६), रक्षिता

(५), विद्युद्दंष्ट्र (५), विद्युत्वान् (५), विद्युदाभ(५), विद्युद्वेग (५), विद्युद्-दृढ (५), विद्या (५), विद्युत्केश (६), विजयसिंह (६), विशाल (२८), विशाख(२९), विमुचि(३०), विद्युल्लता(३१), विदग्ध (३२), विनोद(३२), विद्युदंग (३३), विश्वानल (३४), विजयशार्दूल (३७), विजयरथ (३८), विजयसुन्दरी (३८), विचित्ररथ (३९), विजयपर्वत (३९), विधुरा(४१), विराधित (४५ ४८, ५०, ५६, ६०, ६३), विनयदत्त (४८), विद्युद्घन (५५), विभ्रम (५७), विद्यटोदर(५७), विद्युज्जिह्व(५७), विद्याकौशिक (५७), विटप (५७) विद्युदम्बुक (५७), विश्वसेन(२०), विष्णु (२०), विचित्रगुप्त (२०), विजया (२०), विश्वनन्दी (२०) विकट (२०), विष्णुराज (२०), विष्णुश्री (२०), विमलसुन्दरी (२०), विद्रुम (२०), विश्वावसु (७, २१, ७५), विजयस्यन्दन (२१), विद्युद्विलसित (२३), विदेहा (२६, २९), विघ्नसूदन (५७), विधि (५८, ६०), विद्युत्कर्ण (५८), विचल (५८) विघट (५८), विद्युद्वाह (५८) विघ्न (६०, ६२), विशालद्युति (६०), विन्ध्या (६३, ६४), विमलचन्द्र (७३), विमलमेघ (७३), विक्रम (७४), विदग्धा (८०) विरस (८८), विश्वांक (८५), विनय-लालस (६२), विमलप्रभ (६४), विनयवती (१०६), विह्वीत (१०६), विजयावली (१०८), विद्युद्गति (११३). वीर्यदंष्ट्र (१३), वीतभी (५), वीभत्स (५७), वीरक (२१), वीरसेन (२२, १०९), धीर (३८), बृहद्गति (५), वृहत्केतु (३०), वृहद्घन (५५), वृषभ (६४), वृषभध्वज (१०६), वेणुदारी (६०), वेदवती (१०६), वेलाध्यक्ष (६३), वेगवती (८, १३), वैश्रवण (३, ७, ८, २०), वैद्युत (५), वैवस्वत (२५), वैश्वानर (७), वैजयन्ती (२०), वज्रशीला (६),

शशि (५), शम्भवनाथ (१, ६८), शत्रुघ्न (१, २२, २५, २८), शम्बूक (५, ११८), शशांकमुख (५), शतमन्यु (८), शक्रधनु (८), शरभरथ (२२), शतबाहु (१०), शशिप्रभ (१०), शतरथ (२२), शर्मा (१०), शतार (३१), शत्रुदम (३२), शठ (३२), शल्य (५४,८८), शम्भु (५७, ६०, १०६, ११४), शक्राभ (५७), शशिकान्ता (७८), शरभ (६३, ६४), शंख (६६), शम्बर (६६), शशिचूला (१०१), शतह्रदा (११०), शान्तिनाथ (१, ५, ६, २०, २३, ८०, ८८), शाखावली (८), शान्ता (२२), शारण (७४), शाम्ब (१०९), शार्दूलविक्रीडित (५७), शिवमति (१०६), शिखी (१२, २५, २८), शिवा(२०), शिवाकर(२०), शिखीवीर(५७), शिलीमुख(५७), शिव (५८, ११४), शीतलनाथ (१, २०), शीतल (६, २०), शील (५८), शीला(७७),

शुभा (७७), शुक (८, १२, १३), शुभमति (२४), शुक (५७, ६०, ७३, ७४)

श्रीवर्धन (५, २१), श्रीदेवी (५, ६, २६), श्रीप्रभा (५, ६, ७, ६, ३६), श्रीधर (५, २८, ६४), श्रीग्रीव (१), श्रीकण्ठ (५, ६२), श्रीचंद्रा (६), श्रीमाला (६, ७७), श्रीरम्भा (१२), श्रीमाली (१५), श्रीषेण (१८), श्रीशैल (२०), श्रीधर्म (२०), श्रीवृक्ष (२८), श्रीसंजय (२८), श्रीनागदमन (३२), श्रीधर (३२), श्रीमति (३३), श्रीवर्धित (७७), श्रीदामा (८०), श्रीमुख (८५), श्रीमन्यु (६१), श्रीकान्त (६२), श्रीधर्मनाथ (१०६), श्रीनन्दन (६८), श्रीदक्षा (६२), श्रीभूति (१०६), श्रीतिलक (१०६), श्रीकृष्ण (१०८), श्रीचन्द्र (१०६), श्रीकान्ता (२०, ३७, १०६), श्रीपर्वत (७७, ८३), श्रुतकीर्ति (२०), श्रुतबुद्धि (३७), श्रुतिरत (८५), श्रुतिधर (८८) श्रेयांसनाथ (१), श्रेणिक (१, ४३),

सर्वभूतशरण्य (१), सगर (१, ५, स्तनितकुमार (२), संजयन्त (५), सहस्रनयन (५), सहस्रशीर्ष (५), सनत्कुमार (५, २०, ३५, १०६), सपरिकीर्ति (५), समीरणगति (६), सहस्रार (६), स्मय (७), सर्वश्री (८), संध्या (८), संभव (६, २०), संध्याकार (२०), सहस्ररश्मि (१०), स्वस्तिमती (११), संध्याभ्र (१२), सहस्रभाग (१३), सर्वज्ञदेव (१४), सन्देहपारण (१५), सत्यवती (१६), समुद्रविजय (२०), स्वयंप्रभ (२०, ११४, १२२), सीमन्धर (२०), सर्वगुप्ति (२०), सम्भूत (२०, २१), स्वतन्त्रलिंग (२०), स्वयंभू (२०, ५७, ६०, ११४), सर्वयशा (२०), सखि (२०), सहदेवी (२२), स्वाहा (२६), सत्यकेतु (३२), समुद्रहृदय (२३), सत्य (३२), समुद्रसंग्राम (३३), सह्यानन्द (३५), सत्यव्रत (३८), सम्भिन्नमति (४६), सर्वरुचि (४८), सत्यश्री (५४), समुद्र (५४) स्पन्दन (५५, १०२), स्मरायण (५७), सर्वभूतहित (३०), सम्मान (५८), सम्मुन्नतबल (५८, ७०), सर्वप्रिय (५८, ७०) सर्वसार (५८), संग्रामचपल (५८) सर्वद (५८, ७०), सरभ (५८), समाधिबहुल (५८, ७०), स्वपक्षरचन (५८), सम्मेद (५८, ६०, ७४), स्कन्ध (६२) सहस्रविजय (६३), सत्त्वहित (६३, ६४), समुद्रघोष (७०), सुभूषण (७०), स्कन्द (७०), सन्ध्यावली (७७), सर्वकल्याणमाला (८०), समिधा (८५), सत्यवान् (८८), सन्मुख (६१), सर्वसुन्दर (६२), सुरमन्यु (६२), सत्यकीर्ति (६४), सर्वभूषण (१०४), सकलभूषणमुनि (१०४), सरस्वती (१०६), सुरेन्द्र (१०६), सर्वगुप्त (१०८), स्थाणु (११४), सद्धर्म (११४), स्वर्णकुम्भ (११८) सात्यकि (१०६), सागरदेव (६१), साल (५८), सार (५८, ६०), सानु (५८), साधुवत्सल (५८),

सागरोपम (५८), सागरसेन (३९), साधुदत्त (३९), सागरदत्त (२०, १०६), सागरबुद्धि (२३), सामन्तवर्धन (१३), सारण (८, १२, ५७, ६०, ७३), साटोप (८), सागरवृद्धि (६), साहसगति (२०), सागर (५, २८), सितयशा (५), सिंहपाल (५), सिंहप्रभु (५) सिंहकेतु (५) सिंहविक्रम (५, १०२), सिन्धु (८, १०२), सिंहचन्द्र (१७), सिंहवाहन (१७), सिंहरथ (२०, २२), सिद्धार्थ (२०, ८८) सिंहसेन (२०), सिंहिका (२२), सिंहदमन (२२), सिंहोदर (३३, १०२), सिंहवीर्य (३७) सिंहजवन (५७, ७०), सिंहकटि (५८), सिंहजघन (६०), सिंहेन्द्र (८०), सिंहपाद (१०६), सीता (१, २०, २८ आदि), सीरगुप्ति (३३), शील (६५), सुमतिनाथ (१), सुपार्श्वनाथ (१), सुव्रतनाथ (१, १७ २०, ८२, ६८), सुधर्माचार्य (१), सुकेशी (१), सुमाली (१, ८, ६, ७, ६३, ८७), सुग्रीव (१, ५, ६, १६, २०, ४५, ४७, ७४ आदि), सुतारा (१, ४७), सुनन्दा (३, २०, ७६), सुभद्रा (८, २०, २८), सुबल (५), सुभद्र (५), सुवीर्य (५, २०, ५७), सुवज्र (५), सुनयना (५), सुमंगला (५, २०), सुलोचन (५), सुरूप (५), सुभीम (५, २०, २२, २५, २८, ६३ ८६), सुमुख (५, २१, २६, ३६, ६१), सुव्यक्त (५), सुरारि (५), सुयशोदत्त (६), सुकेश (६, ७, ३७), सुमंगला (६, २८), सुरसुन्दर (८), सुरूपाक्षी (८), सुचाप (८), सुश्रोणी (८), सुमति (६, १२, २०, २८), सुपार्श्व (६, २०, ६८) सुवेल (१०), सुयोधन (१०), सुजट (१०), सुरकान्ता (११), सुमित्र (१२, २०, २१, ८८), सुमना (१५), सुदती (१६), सुविधि (२०), सुरश्रेष्ठ (२०), सुदर्शन (२०, २८, ८५) सुनन्द (२०, ७३, ८८, १२३) सुभूति (२०), सुसीमा (२०), सुप्रतिष्ठ (२०), सुविधिनाथ (२०), सुनेत्रा (२०), सुव्रत (११६), सुवेगा (२०), सुवर्शना (२०, १०६), सुवर्णकुम्भ (२०), सुसिद्धार्थ (२०), सुरेन्द्रमन्यु (२१), सुकोसल (२१, २२), सुबन्धुतिलक (२२), सुमित्रा (२२, २५), सुशर्मा (३५), सुलोचना (३८), सुरप (३६), सुवर्णकुमार (३६, ७८), सुरप्रभ (३०) सुगुप्ति (४१), सुकेत (४१), सुन्द (४५, ५७, ११८), सुभानु (४८, १०८), सुषेण (५४, ५८, ६०, ७४), सुख (५८), सुन्दर (६५), सुखा, (७७), सुन्दरी (७७, ८३), सुकान्त (८०), सुरवती (८३), सुधी (८८), सुपार्श्वकीर्ति (६४), सुचन्द्र (८८), सुप्रजा (६०) सुबन्धु (६८), सुह्य (१०२), सुमेरु (१०२), सुवीर (१०३), सुदेव (१०८), सूरि (११४), सूर्यार (७४), सूर्योदय (८५), सूर्यज्योति (५८, ६०, ७०), सूर्यदेव (५५, ६१), सुभूम (५, ११, २०), सूरसन्निभ (५) सूर्यरज (१, ६, ७, ८६), सूर्यंजय (३१), सेना (२०), सोमदेव (१०६), सौम्यवक्त्र (५७),

सोम (३, ८, २०, ४१, ७३), सोमयशा (३, ८५), सौधर्मेन्द्र (३, ८५), सौदास (२०, ८३), संसारसूदन (११४), संत्रास (५८), संत्रासक (६०) संताप (६०), संकटप्रहार (५८), संक्षोधन (६२), संजयन्त (२१), संवृत (११), संवर (२०) संभ्रमदेव (५),

हरिश्चन्द्र (५, १७), हरिदास (५), हरि (५, २१, २२, २५, ८८), हरिषेण (५, ८, २०), हरिग्रीव (५), हरिणकेशी (७, ७०), हरिकान्त (६), हय (२०), हरिवाहन (१२, २८), हस्त (१२, ५५, ५०), हनूमान् (१५, १८), हरिमालिनी (१६), हरिकेतु (२०), ह्लादन (५७), हल (५८), हरिकटि (६०), हरिपति (८५), हरिवेग (६३), हरिनाग (६४), हा-हा (२१), हितकर (५), हित (५), हिडिम्ब (२६), हिरण्याभ (१५), हिरण्यकशिपु (२२, ७६), हिमवान् (५८), हू-हू (२१), हृदयसुन्दरी (१३), हृदयवेगा (१५), हेमरथ (५, २२), हेमपूर्ण (२०), हेमपाल (२०), हेमबाहु (२०), हेमचूला (२१), हेमप्रभ (२४), हेमगौर (५७), हेड (५८) हेमांक (८०), हेमनाभ (१०६), हेमवती (८), हेमविद्याधर (६), हैहिड (२०), हंसद्वीप (२०),

क्षितिवर (५८) क्षपितारि (६०), क्षीरकदम्बक (११), क्षीरधारा (१३), क्षुल्लक (१२), क्षुद्र (४८), क्षुब्ध (६२), क्षेमकर (२१, ३९), क्षेत्रपाल (४८), क्षेम (५८, ६६), क्षोद (५८), क्षोभन (४५, ५७, ६२), त्रिमूर्ध (१०२), ज्ञानचक्षु (११८)। इनमें बहुत से पात्रों की तो सूचना मात्र ही दी गयी है और बहुत से अत्यन्त लघु प्रदेश पर अधिकार रखते हैं। कुछ प्रसिद्ध जैन देवता हैं और कुछ उपमादि अलंकारों में समागत पौराणिक नाम है। अस्तु, इनमें ऐसे पात्र थोड़े ही है जिनका मुख्य कथा में कोई महत्त्वपूर्ण योगदान हो।

यहाँ हम मुख्य पात्रों के चरित्र-चित्रण पर चर्चा करेंगे। 'पद्मपुराण' के मुख्य पात्र इन भागों में विभक्त किये जा सकते है—

१. **रामपक्ष के पुरुष पात्र**—दशरथ, राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, अनंगलवण और मदनांकुश।

२. **राम-पक्ष के स्त्री पात्र**—अपराजिता (कौशल्या) सुमित्रा (केकयी), केकया, सुप्रभा, सीता, विशल्या, कल्याणमाला और वनमाला।

३. **रावण-पक्ष के पुरुष पात्र**—रावण, भानुकर्ण, विभीषण, इन्द्रजित्, और मेघवाहन।

४. **रावण-पक्ष के स्त्री पात्र**—मन्दोदरी, चन्द्रनखा और लंका-सुन्दरी।

५. **प्रासंगिक कथाओं के पुरुष पात्र**—बालि, सुग्रीव, पवनंजय, अंगद, हनू-

मान्, जाम्बवान् जनक, भामण्डल, कृतान्तवक्त्र, जटायु, वज्रजंघ, रत्नजटी, द्रोणमेघ, खरदूषण और चन्द्रप्रतिम ।

६. **प्रासंगिक कथाओं के स्त्री-पात्र**—केतुमती, अंजना और सुतारा ।

७. **पौराणिक महापुरुष पात्र**—भरत, बाहुबलि, हरिषेण, नारद, देशभूषण, कुलभूषण, मुनिसुव्रतनाथ आदि ।

उपर्युक्त पात्रों को संक्षेप की दृष्टि से तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—१. राम-पक्ष के पात्र, २. रावण-पक्ष के पात्र तथा ३. प्रासंगिक कथाओं के पात्र ।

राम-पक्ष के पुरुष पात्र

दशरथ : अयोध्यापति राजा अनरण्य की पृथिवीमती रानी में उत्पन्न छोटे पुत्र दशरथ हैं ।[१६७] रविषेण ने उन्हें 'निखिलविज्ञानपारदृश्वा:', 'गुणगणज्ञानपाण्डित्ययुक्त', 'दानविख्यातकीर्ति,' 'रविसमतेजा:' और 'सकलकुभावाभिलाषदोषविमुक्त' आदि विशेषणों से विभूषित किया है ।[१६८] नारद जैसे मुनि भी उन्हें 'सम्यग्दर्शनयुक्त' तथा 'गुरुपूजनकारी' कहते हैं ।[१६९] इसके अतिरिक्त उनके कार्य भी उन्हें एक उदात्त स्थान प्रदान करते हैं ।

राजा दशरथ का व्यक्तित्व आकर्षक है। उनका शरीर ऊँचा है—'वपुर्दशरथो लेभे नवयौवनभूषितम् । शैलकूटमिवोत्तुंग नानाकुसुमभूषितम् ।।'[१७०] उनके भव्य व्यक्तित्व के कारण उन्हें अपराजिता, केकयी (सुमित्रा), सुप्रभा तथा केकया जैसी कुमारियाँ पत्नी-रूप मे प्राप्त होती हैं। नरलक्षण-पण्डिता केकया राजसमूहस्थ दशरथ को उसी प्रकार पहचान लेती है जिस प्रकार कोई बकसमूहस्थ हंस को पहचान लेता है। सागरबुद्धि निमित्तज्ञानी से यह जानकर —'भविता दशवक्त्रस्य मृत्युर्दाशरथि: किल' विभीषण उन्हें मारने का उपक्रम करता है किन्तु वे नारद की सलाह से बच जाते हैं ।

दशरथ कुशल शासक तथा वीर योद्धा है। इसीलिए जनक ने म्लेच्छों का उच्छेद करने के लिए उन्हें स्मरण किया है । वे केकया के स्वयम्वर में अकेले ही अनेक राजाओं के छक्के छुड़ा देते हैं ।

राजा दशरथ परम जिनभक्त हैं। वे मुनियों का सम्मान करते हैं; प्राचीन

---

१६७. पद्मपुराण, २२।१६१-१६२

१६८. पद्मपुराण, २४।७, ४८, ३१।२४२

१६९. पद्मपुराण, २३।३२

१७०. पद्मपुराण, २२।१७०

जिनमन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाते हैं; तीर्थंकरों की पूजा करते हैं; आषाढ़धवलाष्टमी को वे जिनेन्द्र भगवान् का अभिषेक करते हैं तथा रानियों के पास गन्धोदक भिजवाते हैं। वृद्धकंचुकी की वृद्धावस्था को देखकर वे वैराग्य धारण कर लेते हैं तथा केकया को दिये गये वरदान के अनुसार भरत को ही राज्य करने के लिए उपदेश देते हैं। वे राम को वन जाते हुए देखकर भी नहीं विचलित होते। वे अकीर्तिभीरु हैं। वे स्थिरमति हैं तथा सर्वभूतहित मुनिराज के पास जिन दीक्षा धारण कर लेते हैं।

राम : राम 'पद्मपुराण' के नायक हैं। इन्ही पद्म (राम) का चरित इसमें निबद्ध है--'पद्मस्य चरितं वक्ष्ये पद्मालिंगितवक्षसः।' इसलिए स्वभावतः कवि ने राम के चरित्र की स्वत. प्रशंसा की है तथा पात्रों के मुख से भी उनकी पर्याप्त प्रशंसा कराई है। अपराजिता रानी में दशरथ से उत्पन्न अष्टम बलभद्र श्रीराम के चरित्र के एक अंश को भी पढ़ने या सुनने वाले के पाप नष्ट हो जाते हैं--ऐसा रविषेण का मत है।

राम का व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक है। बचपन से ही वे 'तरुणादित्यवर्ण', 'मनोज्ञरूप', 'विद्रुमाभरदच्छद', 'रक्तोत्पलसमच्छायपाणिपाद,' 'सुविभ्रम,' 'नवनीतसुखस्पर्श', 'जातिसौरभधारी' तथा अपनी क्रीडा से सभी का चित्त हरण करने वाले हैं।[१७१] वे सर्वांगसुन्दर है। वे 'नीलकुंचितसूक्ष्मातिस्निग्धकेश,' 'लक्ष्मीलताविषक्तांग,' 'कुमारभास्करतुल्य,' 'नयनो के समानन्द,' 'मनोहरणकोविद,' 'अपूर्व कर्मों के सर्ग,' 'ज्वलद्विशुद्धरुक्माम्बुरुहगर्भसमप्रभ,' 'मनोज्ञागतनासाग्र' 'सगतश्रवणद्वय,' 'मूर्तिमान् अनंग,' 'पुण्डरीकनिभेक्षण,' 'चापानतभ्रू,' 'पूर्णशारदेन्दुनिभानन,' 'बिम्बप्रवालरक्तौष्ठ,' 'कुन्ददवेतद्विजावलि,' 'कम्बुकण्ठ,' 'मृगेन्द्राभवक्षोभाक्,' 'महाभुज,' 'श्रीवत्सकान्तिसम्पूर्णमहाशोभस्तनान्तर,' 'गम्भीरनाभिवक्षामध्यदेशविराजित,' 'प्रशान्तगुणसम्पूर्ण,' 'नानालक्षणभूषित,' 'सुकुमारकर,' 'वृत्तपीवरोरुद्वयस्तुत,' 'कूर्मपृष्ठमहातेजःसुकुमारक्रमद्वय,' 'चन्द्राकुरारुणच्छायानखपंक्तिसमुज्ज्वल,' 'अक्षोभ्यसत्त्वगम्भीर,' 'वज्रसघातविग्रह,' तथा 'सभी सुन्दर वस्तुओ के एकत्रित सार' हैं।[१७२] इस आकर्षक व्यक्तित्व के कारण ही उन्हें अनेक कन्याओ की प्राप्ति होती है।

राम की शक्ति और वैभव भी भव्य है।[१७३] वे शैशव में ही म्लेच्छों को परास्त करते हैं तथा 'वज्रावर्त,' धनुष को चढ़ाकर सीता की प्राप्ति करते हैं।

---

१७१ पद्मपुराण, २५।२७-२८

१७२ पद्मपुराण, ४९।४१-६०

१७३. वही, ८३।२-१३

अनेक युद्धों में उनकी शक्ति के प्रमाण मिलते हैं।[१७४]

राम का शील भी दर्शनीय है। वे पिता के आज्ञापालक हैं। वे भरत को राज्य दिलाने के लिए दशरथ से कहते हैं—

"तात रक्षात्मनः सत्यं त्यजास्मत्परिचिन्तनम्।
शक्रस्यापि श्रिया किं मे त्वय्यकीर्तिमुपागते॥"[१७५]

साथ ही वे भरत से भी राज्य करने को कहते हैं। वे क्रुद्ध लक्ष्मण को समझाकर अपनी समचित्तता का प्रमाण देते हैं। वे भरत की रक्षा के लिए राजा अतिवीर्य की सभा में अपने नृत्यकौशल और वीरता से सभी को स्तब्ध कर देते हैं। वे क्षमा के सागर हैं, इसीलिए कपिल जैसे परुषभाषी को भी क्षमा कर देते हैं। वे अपार सज्जन तथा शरणागतवत्सल हैं, विभीषण पर रावण के द्वारा छोड़ी गयी शक्ति को अपनी छाती पर झेल लेते हैं। उनका भ्रातृप्रेम अनुपम है, शक्ति-निहत लक्ष्मण को देखने के लिए वे रावण से आज्ञा माँगते हैं। इसी प्रकार मृत लक्ष्मण को लिये हुए वे छः मास तक घूमते फिरते हैं। वे अपार विचारवान् तथा दयावान् हैं, अतः रावण-भानुकर्ण-मेघवाहन आदि को मुक्त करा देते हैं। वे रावण का दाहसंस्कार भी करते हैं क्योंकि उनके मत से "मरणान्तानि वैराणि जायन्ते ह्यविपश्चिताम्।" वे सीता को अपार प्रेम करते हैं तथा लोकापवाद के कारण उसे छोड़ते हुए उन्हें अपार अन्तर्द्वन्द्व का सामना करना पड़ता है। राम परम जैन हैं; वे जिनेन्द्र की स्तुति करते है, मुनि देशभूषण-कुलभूषण का उपसर्ग दूर करते हैं, मुनि से श्रद्धा सहित उपदेश सुनते है, जिन मन्दिरों का निर्माण कराते हैं, दीक्षा लेते है तथा किसी भी प्रलोभन से विचलित नहीं होते।

लक्ष्मण : 'अष्टम नारायण' लक्ष्मण राजा दशरथ और रानी सुमित्रा के पुत्र हैं तथा राम के अनुज हैं। कवि ने इनकी पर्याप्त कीर्ति गायी है। उसने इन्हे 'सर्वशास्त्रविशारद', 'सर्वलक्षणसम्पूर्ण' आदि अनेक सुन्दर विशेषणों से विशेषित किया है तथा अनेक पात्रों के कथन इनकी महत्ता का पर्याप्त अभिव्यंजन करते हैं। साथ ही इनके कार्यकलाप भी भव्य तथा उदात्त हैं।

लक्ष्मण का व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक है। वे 'प्रौढेन्दीवरगर्भाभ' 'कान्तिवारिकृतप्लव', 'सुलक्ष्मा', 'लक्ष्मीनिलयवक्षस्क' तथा अपनी साँवली सलोनी कान्ति से दर्शकों के चित्त को आकर्षित करने वाले है। वे 'इन्दीवरप्रभ', 'नीलोत्पलचयश्याम' हैं जिन्हें देखकर स्त्रियाँ उन्मत्त सी होकर कहने लगती हैं—

---

१७४. पद्मपुराण पर्व २८, ७८, १०२
१७५. वही ८१।१२५

"भिन्नांजनदलच्छाया कान्तिरस्य बलत्विषा।
भिन्ना प्रयागतीर्थस्य धत्ते शोभां विलासिनीम् ॥"[१७६]

तथा—

"अयि मूढे न पुण्येन नितान्तं भूरिणा विना।
लभ्यते सुचिर द्रष्टुमेवंविधनराकृतिः ॥'[१७७]

उनके सौन्दर्य से वशीभूत कल्याणमाला-वनमाला-जितपद्मा-विशल्या आदि अनेक कन्याएँ उन्हें प्राप्त होती हैं। सिंहोदर आदि राजाओं की ३०० कन्याओं, विद्याधर की आठ कन्याओं तथा अन्य अनेक राजकुमारियों से विवाह करके अपने प्रेम का निर्वाह करते हैं। उनकी कुल मिलाकर १७००० रानियाँ हैं।[१७८]

लक्ष्मण की शक्ति और प्रताप अद्भुत है। वे छोटी अवस्था में ही राम के साथ म्लेच्छों को परास्त करते है, सागरावर्त धनुष को चढ़ा देते हैं, चक्ररत्न की प्राप्ति करते है तथा रावण जैसे पराक्रमी को युद्ध मे परास्त करते हैं। तब फिर खरदूषण जैसे अनेक योद्धाओं को विजित करने का तो कहना ही क्या !

लक्ष्मण का शील भी प्रशमनीय है। वे महाविनयसम्पन्न हैं। उनका भ्रातृ-प्रेम अनुपम है। वे स्वभाव से तेजस्वी है। वन जाते हुए राम को देखकर उनका खून खौलने लगता है और वे एक बारगी सोचने लगते है:—

"किमद्यैव करोम्यन्या सृष्टिमुत्सृज्य दुर्जनान्।
भरतस्य बलादाहो करोमि विमुखा श्रियम् ॥
विद्यानुरच सामर्थ्य भनज्मि चिरमूर्जितम्।
निरुद्ध्य पादयोर्ज्येष्ठ करोमि श्रीसमुत्सुकम् ॥"[१७९]

किन्तु वे अपने बडे भाई का ध्यान करके शान्त हो जाते हैं—'ज्येष्ठस्तातश्च जानाति साम्प्रतासाम्प्रत बहु।' वे परम नीतिज्ञ हैं। वे सीता मे मातृबुद्धि रखते है। वे हृदय के कुछ भावुक भी है, इसीलिये सूर्यहास खड्ग से शम्बूक वध करने के बाद जब वे पास आयी चन्द्रनखा को राम के द्वारा लौटाया हुआ पाते है तो उसे देखने की उत्सुकता उनके चित्त मे रह जाती है और उसे ढूंढते फिरते है तथा सोचते है.—

"आयान्त्येव सती कस्माद् दृष्टमात्रा न सा मया।
स्तनोपपीडनाश्लेष परिरब्धा हतात्मना ॥"(पद्म० ३४।११८)

---

१७६. पद्म०, २५।२६, और भी वही, २८।६, ३८।८७, ७०।८५
१७७. वही, ४८।५३
१७८. वही, ९४।१७
१७९. वही, ३१।१९५-१९८

वे परम विलासी हैं।

साथ ही लक्ष्मण परम जिन-भक्त हैं। वे मुनियों का उपदेश सुनते हैं, उनके उपसर्ग दूर करने मे राम को सहायता देते हैं। अन्त मे भ्रातृप्रेम का परिचय देकर प्राण छोड़ देते हैं तथा नरक में जाते हैं।

भरत : भरत को प्रारम्भ से ही एक विवेकी पुरुष के रूप मे चित्रित किया गया है। वे पिता दशरथ के दीक्षा के विचार से प्रभावित होकर स्वय भी दीक्षा लेना चाहते है। उनके वैराग्य को दूर करने के लिए केकया उनके लिए दशरथ से राज्य माँगती है किन्तु वे उसे स्वीकार नही करते। वे 'नवेन वयसा कान्त:' होकर भी प्रव्रज्या लेना चाहते है और अपने विवेक का परिचय राजा को देते हैं जिस पर राजा कहते हैं—'वत्स, धन्योऽसि विबुद्धो भव्यकेसरी'। वे 'विनीताना शिरसि स्थित:' हैं।[१८०]

भरत का भ्रातृप्रेम बड़ा प्रबल है; वे राम को लौटाने के लिए जाते हैं और कहते हैं:—

> "उत्तिष्ठ स्वपुरीं याम: प्रसादं कुरु मे प्रभो।
> राज्यं पालय नि:शेष यच्छ मेऽतिसुखासिकाम्।।
> भवामि छत्रधारस्ते शत्रुघ्नश्चमराश्रित:।
> लक्ष्मण: परमो मन्त्री सर्वं सुविहितं ननु।।"[१८१]

किन्तु राम के चले जाने पर उन्ही के अनुरोध से इस शर्त पर राज्य चलाते हैं कि उनके लौटते ही वे दीक्षा ले लेंगे।

भरत प्रतापी है। वे राजा अतिवीर्य को परास्त करते हैं। जब भामण्डल आदि मे लक्ष्मण-शक्ति का समाचार सुनते है तो वे एकदम सेना को तैयार करते है।

वे परम जैनी है। उनके दर्शन कर त्रिलोकमण्डन हाथी भी शान्त हो जाता है। अन्त में वे राम के प्रत्यावर्तन पर अपनी १५० रानियों और अनेक पुत्रो को बिलखता छोड़कर दीक्षा धारण कर लेते है। वे अष्ट कर्मों का क्षय करके निर्वाण प्राप्त करते है।

शत्रुघ्न : 'पदमपुराण' मे शत्रुघ्न का कोई अधिक विशिष्ट स्थान नही है। वे दशरथ की सुप्रभा रानी से उत्पन्न है और दशरथ के सब से छोटे पुत्र हैं।[१८२] उनका मुख्य कथा में कोई विशिष्ट योगदान नही है। ८९ वें पर्व में उनकी वीरता

---

१८०. दे० 'पद्मपुराण', ३१।१३२, १४७, १४८

१८१. वही, ३२।१२२, १२३

१८२. वही, २५।३९, ३९

और जैन-धर्मपरायणता के एक साथ दर्शन होते हैं जब कि वे मधुसुन्दर से घोर युद्ध करते हुए शूलरत्न से उसे घायल कर देते हैं और घायल अवस्था में उसे केशलुंचन करके दीक्षा लेता हुआ देख उसके चरणों में गिर कर क्षमा माँगते हैं। पूर्वभवों के संस्कार के कारण मथुरा के प्रति उनका विशेष आकर्षण है। वे अन्त में संसार के आकर्षणों से विमुख होकर श्रमणत्व प्राप्त कर लेते हैं:—

"छित्वा रागमय पाशं निहत्य द्वेषवैरिणम्।
सर्वसंगविनिर्मुक्तः शत्रुघ्नः श्रमणोऽभवत् ॥"[१८३]

लवणांकुश : अनंगलवण और मदनांकुश का संयुक्त नाम लवणांकुश है। ये दोनों राम द्वारा निर्वासित सीता के पराक्रमी पुत्र हैं जो पुण्डरीकपुर नगर में, राजा वज्रजंघ के महल में उत्पन्न हुए हैं। बचपन से ही वे भव्य व्यक्तित्व वाले है, सिद्धार्थ क्षुल्लक से समस्त विद्याओ को अधिगत करते हैं, दिग्विजय करके अपना प्रताप दिखलाते हैं, अन्याय के विरोधी हैं और अयोध्या के राजा सीतानिर्वासनकर्त्ता राम पर चढ़ाई कर देते है। वे जैन हैं।

राम-पक्ष के स्त्री पात्र

अपराजिता : दर्भस्थलपुराधीश सुकोशल की अमृतप्रभावा रानी से उत्पन्न अपराजिता दशरथ की प्रधान महिषी और राम की माता है। रामवन-गमन के अवसर पर वह राम के साथ जाना चाहती है और अपने अयोध्या-निवास पर चिन्ता व्यक्त करती है। पति के दीक्षा लेने पर उसकी दशा बड़ी दयनीय हो जाती है (शोकं भेजेऽपराजिता। पद्म० ३२।१०२)। वह पुत्र के वियोग में बिलखती है तथा राम के प्रत्यावर्तन पर उनसे बड़े आनन्द से मिलती है। इस प्रकार वह एक पुत्रवत्सला माता के रूप में आती है।

सुमित्रा : 'पद्मपुराण' की सुमित्रा 'कमलसंकुल'-नगराधीश सुबन्धुतिलक की मित्रा रानी से उत्पन्न पुत्री और दशरथ की रानी है। इसका नाम 'केकयी' है और चेष्टाओं के कारण 'सुमित्रा' भी।[१८४] लक्ष्मण इसके पुत्र हैं। इसका कोई विशिष्ट चरित्र-चित्रण नहीं हुआ है।

केकया : कौतुकमंगलनगराधिपति शुभमति की पृथुश्री नामक स्त्री से उत्पन्न केकया दशरथ की तीसरी रानी है। वह समस्त कलाओं में पारंगत है।[१८५] वह वीरांगना, बुद्धिमती एव मनोविज्ञान की पारखी है। दशरथ का रथ चलाना,

१८३. पद्मपुराण ११९।३८
१८४ पद्मपुराण २२।१७५
१८५. पद्मपुराण के २४ वें पर्व में उसकी कलाओं का विस्तृत परिचय दिया गया है।

भरत के विवाह का अनुरोध करना तथा राम को मनाना आदि इसके प्रमाण हैं। वह अपने वर को अवसर के लिए सुरक्षित रखकर अपने धैर्य का परिचय देती है। भरत को दीक्षा से विरक्त कराने के लिए राजा से उसके लिए राज्य मांगती है, उसका राम को वन भेजने का इरादा नहीं है। बाद में वह राम को लौटाने भी जाती है 'साकेत' की कैकेयी की तरह वह भी राम को बहुत मनाती है। लक्ष्मण-शक्ति पर वह अपने भाई द्रोणमेघ की कन्या को लक्ष्मण के पास भिजवाकर अपने कर्त्तव्य एवं वात्सल्य का परिचय देती है। वह जिन-भक्ता है और अन्त में भरत के दीक्षा लेने पर स्वयं भी आर्यिका बन जाती हैं।

सीता : सीता 'पद्मपुराण' की नायिका है। उसके अनेक विशेषण कवि ने स्वयं भी प्रयुक्त किये हैं और अनेक पात्रों से भी कराए हैं। उसका व्यवहार तो उसे अत्यन्त ऊँचा उठा देता है।

सीता जनक की पुत्री है। जन्म लेने के कुछ समय बाद से ही उसके शरीर का विकास होने लगता हैं। वह शैशव में ही अत्यन्त भव्याकृति दिखाई देती है[१८६]

---

१८६ सीता-वर्णन की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

"प्रमदमुपगताना योषिताभगदेशं
पृथुननुभवकान्त्या लिम्पती दिक्समूहम्।
विपुलकमलयाता श्रीरिवासौ सुकण्ठा
शुचिहमितमितास्याऽर्धताम्भोजनेत्रा ॥
प्रभवति गुणसस्य येन तस्या समृद्ध
भजदखिलजनाना सौख्यसम्भारदानम्।
नदनिशयमनोज्ञा चारुलक्ष्मान्विताङ्गा
जगति निगदितासौ भूमिसाम्येन सीता ॥
वदनजितशशाङ्का पल्लवच्छायपाणि.
शितिमणिममते ज -केशसघातरम्या ।
जितसमदमहंसस्त्रीगति. सुन्दरभ्रू-
र्बकुलसुरभिवक्त्रामोदबद्धालिवृन्दा ॥
अतिमृदुभुजमाला शक्रमरत्नानुमध्या
प्रवरमरसरम्भास्तम्भसाम्यस्थितोरुः ।
स्थलकमलसमानोत्तुगपृष्ठोज्ज्वलाङ्घ्र
प्रभवदतिविशालच्छायवक्षोजयुग्मा ॥
प्रवरभवनकुक्षिव्यस्तुवारेषु कान्त्या
विविधविहितमार्गा लब्धवर्णा परं सा।
सततमुपगतान्त: सप्तकन्याशताना-
मतिशयरमणीयं शास्त्रमार्गेण रेमे ॥

उसका राम से विवाह होता है। राम के समीप खड़ी हुई सीता की शोभा अनुपम प्रतीत होती है[१८७] तथापि लोग उसके लिए 'वैदेही रामदेवस्य श्रीसमा वनिताऽभवत्' कहकर उपमा देने का प्रयत्न करते हैं।

वह भ्रातृस्नेहिनी एवं पतिव्रता है। राज्य छोड़कर जाते हुए राम के साथ 'यत्र त्वं तत्र चाप्यहम्' (३१।१८५) कहकर वह चल देती है, उसी प्रकार जिस प्रकार इन्द्र के पीछे इन्द्राणी। वन में अनेक घटनाओं से भयभीत होती है; इससे उसकी कोमलता सिद्ध होती है। वह परम दयालु है और राजा अतिवीर्य को

अपि दिनकर-कान्ति कौमुदी चन्द्रकान्ति
सुरपतिमहिषी वा कापि वा मा सुभद्रा।
यदि भजति तदीयासङ्गशोभा कथञ्चि-
न्नियतमतिमनोज्ञाम्नास्तता वेदनीया॥
विधिरिव रतिदेवी कामदेवस्य बुद्ध्या
दशरथतनयस्याकल्पयत्पूर्वजस्य।
जनकनृपतिस्ता सर्वविज्ञानयुक्ता
ननु रविकरसङ्गस्योचिता पद्मलक्ष्मी॥"

(पद्मपुराण २६।१६५-१७१)

अन्यत्र युवती सीता का वर्णन इस प्रकार है—

"अपश्यच्च महामोहसम्प्रवेशनकारिणीम्।
रत्यरत्यो समुद्भर्त्री साक्षाल्लक्ष्मीमिव स्थिताम्॥
चन्द्रमःकान्तवदना बन्धूकाभवराधराम्।
तनूदरी च लक्ष्मी च जलजच्छदलोचनाम्॥
महभकुम्भाभिसम्प्राप्तगाविपुलस्तनीम्।
यौवनोदयसम्पन्ना सर्वस्त्रीगुणसङ्गताम्॥
सहितामिव कामेन कान्तिज्या दृष्टिसायकाम्।
निजा चापलता हन्तुं सुमनैव यथास्मनम्॥
सर्वस्मृतिमहाभागी रूपातिशयवर्तिनीम्।
सीता सताभवोदारज्वरग्रहणकारिणीम्॥"

(पद्म०, ४४।६०-६४)

१८७. "पार्श्वस्थया तया रेजे स सखा सुन्दरो यथा।
यथार्थमिति दृष्टान्त यो गदेत् स गतत्रपः॥"

(पद्म०, २८।२४)

छुड़वा देती है। वह नृत्यादिकलावेदिनी है तथा जिनेन्द्र की वन्दना करती है।[१८८] राम उसे 'साध्वि, पण्डिते, चारुदर्शने, गुणमण्डने' आदि विशेषणों से सम्बोधित करते हैं। मुनियों के लिए वह शुभ्यंगी 'महाश्रद्धापरीता' है। वह वन में अणुव्रत पालन करती है।

सीता-रूपी स्वर्ण की परीक्षा रावण के द्वारा हरण-रूपी-अग्नि में होती है। वह तेजस्विनी निर्भय पतिव्रता है। वह विमान में तृण की ओट रखकर रावण को भर्त्सित करती है।[१८९] जब मन्दोदरी सीता को फुसलाने के लिए जाती है तब सीता ने उसे जो लताड़-पिलाई है वह देखने के योग्य है। उसके उत्तर में उसकी रामविषयक एक-निष्ठता दमकती-चमकती-सी निकलती है।[१९०] इसके बाद वह रावण के

---

१८८. "ततो विभिन्ननिःशेषचारुलक्षणा।
मनोज्ञाकल्पसम्पन्ना हारमाल्यादिभूषिता॥
लीलया परया युक्ता दर्शिताभिनया स्फुटम्।
चारुबाहुलताभारा हावभावादिकोविदा॥
लयान्तरवशोत्कम्पिमनोज्ञस्तनमण्डला।
निशब्दचरणाम्भोजविन्यासा चलितालका॥
गीतानुगमसम्पन्नसमस्ताङ्गविचेष्टिता।
मन्दरे श्रीरिवानृत्यज्जानकी भक्तिचोदिता॥" (पद्म० ३९, ५३-५३)

१८९. सीता की रावण को फटकार इस प्रकार है—
"अपसर्प ममाङ्गानि मा स्पृश पुरुषाधम।
निन्द्याक्षरामिमां वाणीमीदृशीं भाषसे कथम्॥
पापात्मकमनायुष्यमस्वर्ग्यमयशस्करम्।
असदीहितमेतत्ते विरुद्धं भयकारि च॥
परदारान् समाकाङ्क्षन् महादुःखमवाप्स्यसि।
पश्चात्तापपरीतात्मा भस्मच्छन्नानलोपमम्॥
महता मोहपङ्केन तवोपचितचेतस।
मुधा धर्मोपदेशोऽयमन्धे नृत्यविलासवत्॥
इच्छामात्रादपि क्षुद्र बद्ध्वा पापमनुत्तमम्।
नरके वासमासाद्य कष्टं वर्तनमाप्स्यसि॥" (पद्म० ४६।१२-१६)

१९०. "वनिते! सर्वमेतत्ते विरुद्धं वचनं परम्।
सतीनामीदृशं वक्त्रात्कथं निर्गन्तुमर्हति॥
इदमेव शरीरं मे छिन्द भिन्दाथवा हत।
भर्तुः पुरुषमन्यं तु न करोमि मनस्यपि॥
सनत्कुमाररूपोऽपि यदि वाखण्डलोपमः।
नरस्तथापि तं भर्तुरन्यं नेच्छामि सर्वथा॥
युष्मान् ब्रवीमि सक्षेपाद्दारान् सर्वानिहागतान्।
यथा बूत तथा नैतत्करोमि कुरुतेप्सितम्॥"

प्रेमप्रस्ताव पर ठोकर मार देती है जिसके कारण उसे अनेक त्रास झेलने पड़ते हैं किन्तु वह अपने पथ से रंचमात्र भी विचलित नहीं होती। रावण की माया उसे व्याघ्र पथ पथ से टस से मस भी नहीं कर सकी।[१९१] 'सीता दशाननं मेने तृणादपि जघन्यकम्।[१९२] वह बिचारी राम के विरह में 'स्निग्धज्वलनसंकाशा, बाष्पपूरित-लोचना, करविन्यस्तवक्त्रेन्दुर्मुक्तकेशी और कृशोदरी' हो जाती है; श्रीराम के लिए चूडामणि भेजती है; लक्ष्मण के शक्ति लगने के समाचार से वह परम व्याकुल होती है। युद्ध से पूर्व जब वह दशानन से कह कहती है कि 'हे दशानन बाण चलाने पूर्व राम से मेरा यह सन्देश कह देना कि आपके बिना भामण्डल की बहिन घुट-घुटकर मर गई है' और मूर्च्छित हो जाती है तो रावण भी पिघल जाता है।

अस्तु, विकट विरह के अनन्तर रावण-वध के बाद राम उससे मिलते हैं और लंका में ६ वर्ष उसके साथ बिताते है। पर हाय रे भाग्य! जनापवाद के कारण सीता अयोध्या से निकाल दी जाती है, वह भी अपने पति के द्वारा। वह फिर भी इसे झेल जाती है। वन से उसने राम के लिए सन्देश भिजवाया कि 'जिस प्रकार मुझे आपने छोड़ दिया इस प्रकार जैन-धर्म को मत छोड़ देना आदि' जिसे पढ़कर पाठकों की आँखों मे आँसू आ जाते है।

लवणांकुश के जन्म लेने पर वह एक वात्सल्यमयी माता हो जाती है। मातृत्व और पत्नीत्व का वह आदर्श उदाहरण है।

वह अग्नि-परीक्षा में सफल होती है, साथ ही ससार से विरक्त होकर दीक्षा ले लेती है। कठोर तप करके प्रतीन्द्र बनती है। फिर भी लक्ष्मण की उसे चिन्ता है और उसे प्रबोधती है। अन्त में राम केवली से पूछकर स्वर्ग चली जाती है।

सीता के चरित्र में कुछ स्थान उसकी उदात्तता के व्याघातक से हैं। यथा— भरत के साथ क्रीड़ा करना, राम की तपस्या मे विघ्न डालना आदि। फिर भी समग्रतः सीता का चरित्र महान् है।

---

१९१ "प्रचण्डैविगलद्गण्डै. करिभिर्धनबृंहितै।
भीषिताप्यगमत्सीना शरण न दशाननम्॥
द्रंष्ट्राकरालदशनैर्व्याघ्रैर्मुहनि.स्वनै.। भीषिता॥
चलत्केसरसघातै सिंहैरुग्रनखाङ्कुशै। भीषिता॥
ज्वलत्स्फुलिंगभीमाक्षैर्लसज्जिह्वैर्महोरगै.। भीषिता॥
व्यात्ताननै कृतोत्पातपतनै. क्रूरवानरै.। भीषिता॥
तमःपिण्डासितैस्तुंगैर्वेतालै. कृतहुङ्कृतैः। भीषिता॥
एवं नानाविधैरुग्रैरुपसर्गै समोद्धृतैः। भीषिता॥ (पद्म० ४६।५८-१०४)

१९२. पद्मपुराण ४६।१३९

रावणपक्ष के पुरुष-पात्र

रावण : 'पद्मपुराण' की पात्र-सृष्टि में रावण का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। रविषेण ने साक्षात् तथा परम्परा से रावण के चरित्र को पर्याप्त उच्छ्रित किया है। श्रेणिक एवं गौतम गणधर के मुख से स्पष्टतः रविषेण ही बोलते हुए उसकी राक्षसता का खण्डन करते हैं :—

"अहो कुकविभिर्मूर्खैर्विद्याधरकुमारकः ।
अभ्याख्यानमिदं नीतो दुःकृतग्रन्थकत्थकैः ॥"
"रावणो राक्षसो नैव न चापि मनुजाशनः ।
अलीकमेव तत्सर्वं यद्वदन्ति कुवादिनः ॥"[१९३]

सम्भवतः इन्द्र विद्याधर से पराजित अलंकारपुर (पाताललंका)—निवासी सुमाली की प्रीतिमती रानी में उत्पन्न रत्नश्रवा एवं व्योमबिन्दु की कनीयसी सुता केकसी से समुत्पन्न अष्टम प्रतिनारायण रावण के लिए जितने विशेषण आचार्य रविषेण ने स्वतः प्रयुक्त किये हैं अथवा पात्रों के मुख से कहलाये हैं उतने अन्य किसी पात्र के लिए नहीं। आचार्य ने स्वयं उसे स्थान-स्थान पर 'आदित्यमण्डलोपमदर्शन', 'परमाद्भुत', 'कोऽपि महान् नरः', 'कृतसिद्धनमस्कृतिः', 'पूर्णेन्दुसौम्यवदन', 'विसर्पत्कान्तितेजा', 'प्रवणचेता', 'ध्यानस्तम्भसमासक्तनिश्चलस्वान्तधारण', 'स्वेच्छाकल्पितसम्पद्', 'रणमहोत्सव', 'स्वपराक्रमगर्वित', 'कैलासकम्पन', 'साधूनां प्रणतः', 'वशी', 'पृथुशासन', 'विनयानतविग्रह', 'प्रणतेषु दयाशीलः', 'सानत्यप्रवृत्तपरमोदय', 'श्रीवत्सप्रभृतिस्तुत्यद्वात्रिंशल्लक्षणांचित', 'मनश्चौर,' 'प्राणधारिणां महोत्सव.', 'इन्दीवरचयश्यामः स्त्रीणामौत्सुक्यमाहरन्', 'नयशास्त्रविशारदः', 'सदाचारपरायण', 'कालवस्तुयोजनकोविद', 'यमविमर्द', 'मरुत्वमखविद्धिद्', 'स्फुरन्मौलिमहारत्नकेयूरधरसद्भुज.', 'बन्धुभृत्यवर्गाभिनन्दितः', 'नाकाधिपप्रख्य', 'यथाभिमतनिर्वृत्त', 'परदुर्ललितप्रिय', 'देवाधिपग्रह', 'संगतः परया लक्ष्म्या', 'सम्यग्दर्शनभावित', 'महाद्युतिः', 'द्वितीय इव देवेन्द्र.', 'पृथुविक्रम.', 'खगेशी', 'प्रीतिस्मितानन:', 'प्रमदान्वितमानस.', 'रणकोविदः', 'बहुमानधारी', 'क्षतसर्वशत्रुः', 'विशालकान्ति.', 'महानुभावः', एवम् 'महाप्रभावः खण्डत्रयस्यानुपमानकान्तिः राजा'—प्रभृति विविध विशेषणों से विशेषित किया है[१९४] तथा

---

१९३. पद्मपुराण २।२३७, ३।२७ और भी वही ११।११३८।

१९४ दे० 'पद्मपुराण' ७।२१८,२५५, २६३, २७१, २८०, २९०, ३७०; ८।२००, ९।१११,२१४,२२२, १०।८०,१४३; ११।३०७,३२७, ३३७,३७१,३७२; १२।१५,३३०,३३२, ३४९,३७०,३७४; १४।१,२,४,११,१२,३७७; १८।२; १९।२४,२६,६१,१२८,१२९,१३०, १३२ आदि अनेक स्थल।

श्रेणिक, गौतम गणधर, रत्नश्रवा, विभीषण, अनेक देवियों, अनावृत यक्ष, सुमाली, अनेक भवनासुर नारियों, कृषकों, सहस्रार, यहाँ तक कि राम-लक्ष्मण आदि अनेक पात्रों ने उसे विविध स्थलों पर 'विद्याधरकुमारक', 'त्रिजगद्गतकीर्त्ति', 'महासत्त्व', 'कुलवृद्धिविधायी', 'भवान्तरनिबद्ध सुकृत से उत्तमक्रिय', 'सुरों का भी वल्लभ', 'सुरोपम', 'कान्त्युत्सारिततारेश.', 'दीप्त्युत्सारितभास्कर', 'गाम्भीर्य-जिततोयेश', 'स्थैर्योत्सारितभूधर', 'सुरों से भी अपराजित', 'दान से मनोरथ को पूर्ण करने वाले जलद के समान', 'चक्रवर्तिसमृद्धिवान्', 'वरसीमन्तिनीचेतोलोच-नालीमलिम्लुच्', 'श्रीवत्सलक्षणात्यन्तराजितोत्तुंगवक्षा', 'नाममात्रश्रुतिध्वस्तमहा-साधनशत्रु', 'साहसैकरसासक्त', 'शत्रुपद्मक्षपाकर', 'श्रीवत्समण्डितोरस्क', 'व्यायतातत्तविग्रह', 'अद्भुतैकरसासक्तनित्यचेष्ट', 'महाबल', 'अखिल जगत् को भस्मच्छन्नाग्निवत् भस्म करने में शक्त', 'विरुद्धसमप्रयोगस्रष्टा', 'महामन.', 'महामति','उदारमन्व-दिवाकरजित्वरीद्युति-समुद्रोत्सारी गाम्भीर्य-पराक्रम-धारी', 'रक्ष:कुलविदंपक', 'लोकमहाश्चर्यकारिचेष्ट', 'उत्साहपरायण', 'बलविक्रम', 'सत्त्वप्रतापविनयश्रीकीर्ति-रुचिसमाश्रय.', 'महोत्सव', 'कुल का शुभलक्षण', 'उपमानविमुक्तेन रूपेण हृतलोचन.', 'सिद्धविद्य', 'जगत् का कोई महान् अद्भुत-कारी', 'नराणामुत्तम.', 'सुरेन्द्रसुन्दर','साक्षात् वीररस से ही निर्मित शरीर वाला', 'अनन्यसदृशप्रतापवान्', 'महातेजा', 'नयशास्त्रविशारद', 'महासाधनसम्पन्न', 'उग्रदण्ड', 'महोदय', 'शत्रुमर्द', 'धन्य', 'त्यागी', 'महाविनयसंगत', 'वीर्यवान्', 'उत्तमैश्वर्य', 'गुणविभूषण', 'सज्जन' 'वराकृति', 'इन्द्रातिक्रामकपराक्रमधारी', 'दर्शनीय वस्तुओं का एकमात्र भाजन', 'महाविभवपात्र', 'उत्तम', 'भव्य', 'कल्याणसम्भार', 'सर्वेषा प्राणिनाम् महाबन्धु.', 'लोकावगाभिगुणोपेत, 'मनोहर', 'परोपकृतिकारणमूर्तिधारी', 'रक्ष.प्रभु', 'बाहुओं एव पुण्य की उदार महिमा दिखाने वाला', 'क्षमावान्', 'समर्थ', 'कुन्दनिर्मलकीर्त्ति, 'गुणालय', 'देवाना प्रिय:', 'श्रीमान् विद्याधराधीश', 'विशालपुण्य', 'वीरमूर्द्धस्य', 'उदारकीर्ति', 'शक्रेणाप्य-पराजित:', 'सर्वविद्याधराधीश', 'पराजितसुराधिप' 'त्रैलोक्यसुन्दर', 'स्फीतबल,' 'दीप्तमहाविद्याविशारद', 'स्वामी भरतखण्डाना यस्त्रयाणा निरंकुश:', 'विदुषा श्रेष्ठ', 'धर्माधर्मविवेकी, एव अन्य अनेक उत्तम विशेषणों से स्मरण किया है,[१९५] साथ ही उसकी महनीयता के द्योतक ऐसे-ऐसे भाव अभिव्यक्त किये है—

१९५. दे० पद्मपुराण २।२३७, ७।१८६-१९७,२४६-२४९,२७३,३२३,३४१,३७८-३९१; ८।१४,१५,४५,११६,४८६, ९।५२,५३,१९८,२०८,२११, १०।१६१; ११।२७५,३०६,३३४, ३५३,३५४, ३५८, १२।१०१,१०७,११७,१५६, १३।१४,२६,३०,३१; १६।३६; १९।९२,९५,९६; ४४।२२; ४६।७५,२०६, ४७।१३, ४८।९३-९५ आदि अनेक स्थल।

> "योषित् पुण्यवती सोऽयं धृतो गर्भे ययोत्तमः।
> पिताप्यसौ कृतार्थत्व प्राप्तः कृत्वास्य सम्भवम्॥
> श्लाघ्यः स बन्धुलोकोऽपि यस्यायं प्रेमगोचर.।
> अनेनोपगता यास्तु तासां स्त्रीणां किमुच्यते॥"[१९६]

तथा—

> "नूनं भद्र समुत्पत्तिः सज्जनानां भवादृशाम्।
> सममेव गुणैः सर्वलोकाह्लादनकारिभि॥
> आयुष्मन्नस्य शौर्यस्य विनयोऽयं तवोत्तमः।
> अलंकारसमस्तेऽस्मिन् भुवने श्लाघ्यतां गतः॥
> भवतो दर्शनेनेदं जन्म मे सार्थकं कृतम्।
> पितरौ पुण्यवन्तौ तौ त्वया यौ कारणीकृतौ॥
> क्षमावता समर्थेन कुन्दनिर्मलकीर्त्तिना।
> दोषाणां सम्भवाशका त्वया दूरमपाकृता॥
> एवमेतद्यथा वक्षि सर्व सम्पद्यते त्वयि।
> ककुप्करिकराकारौ कुरुतः किं न ते भुजौ?" आदि[१९७]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि एक-आध पात्र के अतिरिक्त रावण को सभी अच्छी दृष्टि से देखते है तथा उनके चरित्र की विशेषताओं से प्रभावित हैं।

किसी भी पात्र का चरित्र-चित्रण करने के लिए उसकी तीन विशेषताओं को देखना औपयिक होता है—(१) सौन्दर्य, (२) शक्ति तथा (३) शील। रावण के चरित्र मे आचार्य रविषेण ने तीनो का ही भव्य सन्निवेश किया है।

जहाँ तक रावण के शारीरिक सौन्दर्य एवम् आकर्षक वेशभूषा का प्रश्न है, वह अत्यन्त चेतोहर है। वह निद्धौंतसायकश्याम, पक्वबिम्बफलाधर, मुकुटन्यस्त-मुक्तांशुसलिलक्षालितालक, इन्द्रनीलप्रभोदारस्फुरत्कुन्तलभारक, सहस्रपत्रनयन, शर्वरीतिलकानन, सज्यचापनतस्निग्धनीलभ्रूयुगराजित, कम्बुग्रीव, हरिस्कन्ध, पीन-विस्तीर्णवक्षा, दिङ्नागनासिकाबाहु, वज्रवमन्ध्यदुर्विध, नागभोगसमाकारप्रसृत, भग्नजानुक, सरोजचरण, न्याय्यप्रमाणस्थितविग्रह, श्रीवत्सप्रभृतिस्तुत्यद्वात्रिंशल्लक्षणांचित, रत्नरश्मिज्ज्वलन्मौलि, हारराजितवक्षा, प्रत्यर्द्धचक्रभृद्भोग[१९८], लक्ष्मी-धरसमाकारदिव्यरूपसमन्वित तथा नारीमनःकर्षणविभ्रम है[१९९]। उसके इस

---

१९६. पद्मपुराण ११।३३४-३३५।
१९७. पद्म० १३।२३-२७।
१९८. दे० पद्म०, ११।३२२-३२८।
१९९. वही, ६७।२४ और ६७।२५।

लोकोत्तर सौन्दर्य से नारियाँ वशीभूत हो जाती हैं, इसी के कारण उसकी अठारह हजार स्त्रियाँ प्रसन्न हो उससे रमण करती हैं; मन्दोदरी सदृश उदात्त पत्नी उसे इसी सौन्दर्य के कारण प्राप्त हुई है[२००]।

रावण अपरिमित शक्ति का निकाय है। जब वह गर्भ में आता है तभी उसकी माता की चेष्टाएँ क्रूर होने लगती हैं जिनसे रावण के अपार शक्तिशाली होने का अनुमान होने लगता है।[२०१] नागेन्द्र-प्रदत्त हार से क्रीड़ा करना तथा उसमें उसके मुखों का प्रतिबिम्ब पड़ना—जिससे उसे 'दशाननत्व' प्राप्त हुआ—उसकी शक्ति के ही द्योतक है। बचपन की क्रीड़ा भी उसकी भयंकर ही होती है।[२०२] वह 'त्रिलोक-मण्डन,' हाथी को वश में कर लेता है।[२०३] वह कैलाससंक्षोभ, मरुत्वमखसूदन, यमविमर्द, महाप्रभाव, स्वपराक्रमगर्वित, बलवान्, महासत्त्व, नाममात्रश्रुतिध्वस्त-महासाधनशत्रु, साहसैकरसासक्त, शत्रुपद्मक्षपाकर तथा इन्द्र जैसे पराक्रमशाली को भी विजित करने वाला है। वह विकट योद्धा और दिग्विजयी है। वह चतुरंगिणियों का अधिपति है।

जहाँ तक रावण के शील का प्रश्न है—वह आदर्श वीर है। वह शरणागत राजाओं को उनके राज्य लौटा देता है—'जित्वा विद्याधराधीशान् द्वीपान्तरगतान् वशी। भूयो न्ययोजयत् स्वेषु राष्ट्रेषु पृथुशासनः।'[२०४] उसकी सच्ची वीरता का पता तब चलता है जबकि राम के साथ युद्ध करता हुआ वह शक्तिनिहत लक्ष्मण को देखने के लिये लालायित राम को अनुमति प्रदान करके युद्ध से लौट जाता है। वह सच्चा साधक विद्याधर है। अनावृत यक्ष के द्वारा प्रत्यूह उपस्थित किये जाने पर भी वह विद्यासाधन से पराङमुख नहीं होता। वह सर्वशास्त्रविशारद है। वह नीति का पण्डित है जिसका परिचय हनूमान्, विभीषण तथा मन्त्रियों आदि अनेक पात्रों से वार्तालाप करते समय वह देता है। वह मातृभक्त है—जिसका प्रमाण वैश्रवण को जीतना है। अपने वंश का वह उन्नतिकर्ता है; प्रजा का पालक है। जिस मार्ग से वह निकल जाता है, कृषक उसकी प्रशंसा करते हैं। अनेक पात्रों के हृदय की श्रद्धा उसे प्राप्त है। धर्माधर्म का वह विवेकी है। नलकूबर की स्त्री उपरम्भा को उसने जो उपदेश दिया है वह वस्तुतः उसे एक उदात्तचरित्र पुरुष की उपाधि देता है। अनन्त-बल केवली के समक्ष उसकी यह प्रतिज्ञा—'भगवन्न मया नारी परस्येच्छावि-

२००. दे० वही, ११।३२९।
२०१. वही ७।२०४-२१०
२०२. वही, ७।२११-२२८
२०३. वही, ८।४१०-४३२
२०४. वही, १०।२०

वर्जिता। गृहीतव्येति नियमो ममायं कृतनिश्चयः।"[२०५] उसकी चारित्रिक दृढ़ता की द्योतक है। उसकी दिनचर्या से उसके सन्तुलित जीवन का पता चलता है। वह स्वाभिमानी और अन्याय का विरोधी है। अपने सगे भाई भानुकर्ण के द्वारा वरुण के नगर की स्त्रियों के पकड़े जाने पर उसने उसे जो फटकार पिलाई है उससे उसकी सज्जनता टपकती है:—

> 'अहोऽत्यन्तमिदं बाल त्वया दुश्चरितं कृतम्।
> कुलनार्यो यदानीता बन्दीग्रहणपंजरम्॥
> दोषः कोऽत्र वराकीनां नारीणां मुग्धचेतसाम्।
> खलीकारमिमा येन त्वयका प्रापिता मुधा॥[२०६]

वह वीरों का सम्मानकर्त्ता है, हनूमान् आदि को दिया गया सम्मान इसी का प्रतीक है। वह किसी से किसी वस्तु की याचना नहीं करना चाहता। यहाँ तक कि 'अमोघविजया' विद्या को भी उस 'ग्रहणदुर्विधी' ने कठिनता से ग्रहण किया।[२०७] वह बड़ों के प्रति परम विनयावत है, इन्द्र विद्याधर के पिता सहस्रार के प्रति उसकी यह उक्ति—

> 'यथा तात प्रतीक्ष्यस्त्वं वासवस्य तथा मम।
> अधिकं वा ततः कुर्यां कथमाज्ञाविलंघनम्॥
> गुरवः परमार्थेन यदि न स्युर्भवादृशाः।
> अधस्ततो धरित्रीयं व्रजेन्मुक्ता धरैरिव॥
> पुण्यवानस्मि यत्पूज्यो ददाति मम शासनम्।
> भवद्विधनियोगानां न पदं पुण्यवर्जितः॥[२०८]

उसकी विनीतता का ज्वलन्त उदाहरण है। वह परम जैन है। जैन मुनियों का वह सम्मान करता है, जैन मन्दिरों का निर्माण कराता है, जिनेन्द्र भगवान् की पूजा-स्तुति करता है एवं जैन धर्मविरोधी ब्राह्मणों का दमन करता है।[२०९]

'भवितव्यता बलीयसी' के अनुसार वह राम की स्त्री सीता पर मोहित हो जाता है। वह स्वयं पश्चात्ताप-युक्त होकर एवम् सबके समझाने पर भी दैववश हरी हुई सीता को राम के पास नहीं लौटाता। इसी कारण धर्माधर्मविवेकज्ञ, सर्वशास्त्रविशारद तथा विद्वानों में श्रेष्ठ होने पर भी उसकी अप्रतिष्ठा होती है

२०५. वही, १०।३७१
२०६. वही, १९।८४-८५
२०७. वही, ६५।८६
२०८. वही, १३।१४-१६
२०९. वही, ११वाँ पर्व

और राम के भाई लक्ष्मण के हाथ से उसका वध होता है। श्रीराम के ही शब्दों में—'वह अल्पायुष्क नहीं है तथा जन्मान्तरसमार्जित पुण्यों से मरणपर्यन्त रक्षित रहा[२१०]।' अन्त में मरकर वह नरक जाता है।

संक्षेप में, रावण अत्यन्त उदात्त कोटि का पात्र है तथा उसका अन्यथा चित्रण करना वस्तुस्थिति से मुँह मोड़ना है। वह राक्षस नहीं अपितु राक्षसवंशी था। रविषेण के शब्दों में—

'अत्यन्तमूढकविभि परमार्थदूरै-
र्लोकेऽन्यथैव कथित पुरुषः पुराणः ॥'[२११]

कुम्भकर्ण : 'पद्मपुराण' में रावण का अनुज 'भानुकर्ण' ही 'कुम्भकर्ण' है। सुन्दर कपोलों के कारण इसका नाम 'भानुकर्ण' रखा गया—

'भानुकर्णस्ततो जातः कालेऽनीते कियत्यपि।
यस्य भानुरिव न्यस्त. कर्णयोर्गण्डशोभया ॥[२१२]

वह कुम्भपुर नगर के राजा महोदर की सुरूपाक्षी नामक स्त्री से उत्पन्न तडिन्माला नामक कन्या को प्राप्त करता है और इस कुम्भपुर के सम्बन्ध से ही उसका नाम 'कुम्भकर्ण' हो जाता है—

'तत्र कुम्भपुरे तस्य केनचित् कृतशब्दने।
श्वसुरस्नेहतः कर्णौ सततं पेपतुर्यत. ॥
कुम्भकर्ण इति ख्यातिं ततोऽसौ भुवने गतः।
धर्मसक्तमतिर्वीरः कलागुणविशारद. ॥'[२१३]

रविषेण के अनुसार वह भद्र पुरुष है, मासादि का भक्षक नहीं है—

'अय स प्रखलैः ख्यातिमन्यथा गमितो जनै.।
मांसासृग्जीवनत्वेन तथा षण्मासनिद्रया ॥
आहारोऽस्य शुचि स्वादुर्यथाकामप्रकल्पितः।
सुरभिर्बन्धुयुक्तस्य प्रथम तर्पितातिथिः ॥
सन्ध्यासवेशत्तोत्थानमध्यकालप्रवर्तिनी ।
निद्रास्य शेषकालस्तु धर्मव्यासक्तचेतसः ॥

---

२१०. वही, ६२।९१-९३
२११. वही, १९।१३८, और भी १९।१२८-१३८
२१२. वही, ६।२२३
२१३. वही, ८।१४४-१४५

परमार्थावबोधेन वियुक्ताः पापचेतसः।
कल्पयन्त्यन्यथा साधून् धिक् तान् दुर्गतिगामिनः ।।'[२१४]

वह विद्या सिद्ध करता है। वह वीर है और अनेक युद्धों में रावण की ओर से लड़ता है किन्तु वरुण के नगर में लूट करते समय स्त्रियों का अपहरण करके उसने अच्छा नहीं किया जिसके लिए उसे रावण से फटकार खानी पड़ती है। वह अनन्त-बल केवली की शरण में नित्यप्रति जिनेन्द्र-वन्दना की प्रतिज्ञा लेता है। अन्त में राम से युद्ध करते हुए बन्दी हो जाता है एवं छूटने पर दीक्षा ले लेता है।

विभीषण : 'पद्मपुराण' का विभीषण विद्याधरकुमार एवं रावणानुज है। वह रावण का अत्यन्त सम्मान करता है। अपनी माता को वह रावण का प्रताप बताता है। वह विद्या-सिद्धि करता है। वह निमित्तज्ञानी से रावण की मृत्यु को जनक-दशरथापत्यजन्य जानकर दशरथ-जनक की हत्या का प्रयास करता है किन्तु बाद मे पश्चात्ताप करता है। वह रावणापहृत सीता के दुःख से सन्तप्त है। वह रावण को सीता को लौटाने के लिए नीतिपूर्ण सलाह भी देता है। वह अतिथि-सत्कार-कर्ता है, हनूमान् और राम का सत्कार इसका परिचायक है। उसकी नीतिज्ञता तब भी सिद्ध होती है जब वह नलकूबर की पत्नी उपरम्भा का मन न मारने के लिए रावण को परामर्श देता है।

किन्तु जब उसके समझाने पर भी रावण सीता को लौटाने के लिए सहमत नहीं होता और उसे तलवार से मारने को उद्यत हो जाता है तो वह भी खम्भा उखाड़कर युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाता है। मन्त्रियों के बीच-बचाव करने पर वह तीम अक्षौहिणी सेना के साथ राम से जा मिलता है और राम को अनेक प्रकार के परामर्श एवं साहाय्य देता है। वह उन्हीं के पक्ष से रावण से लड़ता भी है। इस प्रकार वह एक अन्यायी भाई के विरोधी के रूप में आता है किन्तु रावण की मृत्यु पर उसका भ्रातृप्रेम फिर जागृत हो जाता है और वह मूर्च्छित होकर फूट-फूटकर रोने लग जाता है; यहाँ तक कि आत्मघात की इच्छा करता है—

'सोदरं पतितं दृष्ट्वा महादुःखसमन्वितः।
क्षुरिकायां करं चक्रे स्ववधाय विभीषणः ।।'[२१५]

वह राम के प्रति परम कृतज्ञ है। उन्हें लंका का राज्य भी देना चाहता है, उनका परमातिथ्य करता है, चलने से पूर्व उनकी नगरी अयोध्या को कारीगरों से सजवाता है (पर्व ८१), लक्ष्मण-मृत्यु पर संवेदना प्रकट करने के लिए अयोध्या आता है। वह परम जिन भक्त है और अन्त में दीक्षा ले लेता है (पर्व ११६)।

२१४ वही, ८।१४६-१४९
२१५. वही, ७७।१

मेघवाहन और इन्द्रजित् : मेघवाहन और इन्द्रजित् रावण के पुत्र हैं। इन्द्रजित् हनुमान् को बाँधकर रावण के सामने लाता है। वह विभीषण को खरी-खोटी सुनाता है किन्तु युद्ध में उसका लिहाज भी करता है।[२१६] 'पद्मपुराण' में इन्द्रजित् मारा नहीं जाता बन्दी बनाया जाता है तथा अन्त में मुक्त होने पर दीक्षा ले लेता है।

खर-दूषण : यह एक छोटा सा चरित्र है। वह रावण का बहनोई है। वह चन्द्रनखा का हरण करता है तथा लक्ष्मण से युद्ध करता हुआ मारा जाता है।

रावण-पक्ष के स्त्री-पात्र

मन्दोदरी : जिस प्रकार रावण के चरित्र को अत्युदात्त दिखाने की चेष्टा रविषेण ने की है, उसी प्रकार उसकी पटरानी मन्दोदरी की भी भव्यता सिद्ध करने की पूर्ण चेष्टा की है। उसने उसके स्वतः भी अनेक विशेषण दिये हैं, पात्रों से भी उसकी प्रशंसा कराई है और उसके कार्यों से भी उसे उदार एवं उदात्त महिला सिद्ध करना चाहा है।

वह नितान्त सुन्दरी है।[२१७] वह वनितोत्तमा 'ह्रीः श्रीर्लक्ष्मीर्धृति. कीर्तिः प्राप्तमूर्तिः सरस्वती' सी लगती है और 'निखिलयोषिताम् मूर्ध्नि स्थिता सृष्टि' है।[२१८] उसको प्राप्त करके रावण को लगता है मानो उसने समस्तभुवनाश्रित श्री ही पा ली हो।[२१९] उसके विभ्रम अनुपम है।

वह पति की हितैषिणी है और शान्त मस्तिष्क की विचारवती स्त्री है। चन्द्रनखा के खर-दूषण द्वारा हरण किये जाने पर रावण खड्ग लेकर लड़ने जाना चाहता है किन्तु 'व्यक्तज्ञानलौकिकमस्थिति'[२२०] मन्दोदरी उसे समझाती है--

> 'कन्या नाम प्रभो देया परस्मायेव निश्चयात्।
> उत्पत्तिरेव तासा हि तादृशी सार्वलौकिकी॥
> खेचराणा सहस्राणि सन्ति तस्य चतुर्दश।
> ये वीर्याबृतसन्नाहा ममरादनिर्वर्तिनः॥
> बहून्यस्य सहस्राणि विद्याना दर्पशालिनः।

२१६. वानर सेना का ध्वंस करके इन्द्रजित् ने विभीषण को सामने आया देखकर इस प्रकार विचार किया है—

> "तातस्यास्य च को भेदा न्यायो यदि निरीक्ष्यते।
> ततोऽभिमुखमेतस्य नावस्थातु प्रशस्यते॥" (पद्म० ६०।१२३)

२१७. मन्दोदरी के 'नखशिख-वर्णन' लिए देखें 'कलापक्ष' के अन्तर्गत 'वर्णन'-विवेचन में उद्धृत 'पद्मपुराण' के ८ वें पर्व के ५७-७२ श्लोक।

२१८. पद्म०, ८।७६

२१९. वही ८।८१

२२०. वही, ९।३१

सिद्धानीति न किं लोकाद् भवता श्रवणे कृतम् ॥
प्रवृत्ते दारुणे युद्धे भवतोः समशौर्ययोः ।
सन्देह एवं जायेत जयस्यान्यतरं प्रति ॥
कथंचिच्च हतेऽप्यस्मिन् कन्याहरणदूषिता ।
अन्यस्मै नैव विश्राण्या केवलं विधवीभवेत् ॥
किंच सूर्यरजोमुक्ते त्वत्पुरे प्रत्यवस्थितम् ।
अलकारोदये नाम्ना चन्द्रोदरनभस्वरम ॥
निर्वास्यासौ स्थितः सार्थं तव स्वस्रा महाबलः ।
उपकारित्वमेतस्मात्सम्प्राप्तः स्वजनः स ते ॥'[२२१]

और रावण उसकी सलाह से प्रभावित होता हुआ अपना इरादा छोड़ देता है। वह पति को सर्वस्व समझती है और उसकी प्रसन्नता के लिए एकबारगी सीता के पास दूती बनकर भी जाती है, पति के आराम के लिए वह सापत्न्य भी झेलने को सहर्ष प्रस्तुत है।

वह अपने पति की प्राणस्वामिनी वल्लभा है और उसका पति पर प्रभाव है। जब रावण की उग्रता का वर्णन कर समस्त मन्त्री उसे समझाने में अपनी असक्तता प्रकट करते है तो मन्दोदरी स्वयं रावण को धिक्कारती हुई 'कान्तासम्मित उपदेश' देती है जिसे रावण भी स्वीकार करता है, भले ही बाद में उसका मस्तिष्क और ही हो जाता है। उसे अपने रूप का अभिमान भी है।[२२२]

रावण की मृत्यु पर वह अत्यन्त दयनीय हो जाती है तथा मेघवाहन, इन्द्रजित् एवं मय की दीक्षा पर कुररी के समान विलाप करने लगती है किन्तु शशिकान्ता आर्यिका के समझाने पर आर्यिका हो जाती है।

---

२२१. वही, ९।३२-३८

२२२. सीता के अभिलाषुक रावण का मन्दोदरी की इस फटकार का वर्णन बड़ा मनोवैज्ञानिक है।

"ऊचे मन्दोदरी सार्द्धं तया (सीतया) रतिसुखं भवान् ।
वाञ्छत्यपंय मे तामित्येव च वदतेऽत्रप. ॥
इत्युक्त्वेर्ष्याभिव त्र्यार्धं वहती विपुलेक्षणा ।
कर्णोत्पलेन सौभाग्यमतिरेनमताडयत् ॥
पुनरीर्ष्यां नियम्यान्तर्जगाद 'वद सुन्दर ।
किं माहात्म्यं त्वया तस्या दृष्टं तां यदभीप्ससि ॥
न सा गुणवती ज्ञाता ललामा न च रूपत. ।
कलासु च न निष्णाता न च चित्तानुवर्तिनी ॥

चन्द्रनखा : चन्द्रनखा रावण की बहिन और खरदूषण की पत्नी है। सूर्यहास-खड्ग-साधक अपने पुत्र शम्बूक को देखने की लालसा से वह उसके सिद्धिस्थल पर जाती है किन्तु उसे कटा हुआ देखकर स्तब्ध रह जाती है एव विलाप करती है। अस्तु। इधर-उधर घूमती हुई वह राम लक्ष्मण में से अन्यतर को सम्भोग के लिए चाहती है किन्तु उसकी उपेक्षा हो जाती है। तब वह 'त्रियाचरित्र' दिखाती हुई स्वयं विरूपित होकर खर-दूषण से 'क्वाबला क्व बली पुमान् ?' कहकर लक्ष्मण की शिकायत करती है तथा युद्ध करवाती है। इस प्रकार वही सीताहरण की भी सूत्रधारिणी है। अन्त में वह भी दीक्षा लेती है। इस प्रकार वह एक पुंश्चली कुटिल एव अन्त में जैनधर्मावलम्बिनी आर्यिका के रूप में हमारे समक्ष आती है।

लंका . पद्मपुराण में 'लकासुन्दरी' वज्रायुध की पुत्री है जो हनूमान् के द्वारा पिता की मृत्यु कर दिये पर उससे युद्ध करती है तथा बाद में उस पर आसक्त हो जाती है और विवाह कर लेती है। इस प्रकार वह वीरांगना और भावुक सिद्ध होती है।

ईदृश्यापि तया साक कान्त का ते रतो मति ।
आत्मनो लाघव शुद्ध भवस्त्व नानुबुद्ध्यसे ॥
न कश्चित्स्वयमात्मान प्रसन्नाप्नोति गौरवम् ।
गुणा हि गुणता यान्ति गुण्यमाना परानने ॥
तदह नो वदाम्येव किं नु वेत्सि स्वमेव हि ।
वराकया सीतया किं वा न श्रीरपि समेति मे ॥
विजहीहि विभाऽस्यन्त सीतामगेप्सितात्मकम् ।
माऽनुषगानले नीचे प्राप्तां नि परिहारके ॥
मदवशाकरां वाञ्छन् भूमिगोचरिणीमिमाम् ।
शिशुर्वैडूर्यमुत्सृज्य काचमिच्छसि मन्दक. ॥
न दिव्य रूपमतस्या जायते मनसि स्थितम् ।
इमा ग्रामेयकाकारा नाथ कामयसे कथम् ॥
यथामभीप्सिताकल्पकल्पनानिविचक्षणा ।
भवामि कीदृशी ब्रूहि जाये त्वच्चित्तहारिणी ॥
पद्मालया रति. सद्य श्रीर्भवामि किमीश्वर ।
शक्रलोचनविश्रान्तभूमि' किं वा शची प्रभो ॥
मकरध्वजचित्तस्य बन्धनी रतिरेव वा ।
साक्षाद्भवामि किं देव भवदिच्छानुवर्तिनी ॥"

(पद्मपुराण ७३।६९-८०)

और भी देखिये—'पद्मपुराण' के ७३ वें पर्व के संख्या ८४ से ११६ तक के श्लोक।

प्रासंगिक कथाओं के प्रधान पुरुष-पात्र

हनूमान् : हनूमान् पवनंजय और अंजना के पुत्र हैं, जिनके गिरने से चट्टान चूर-चूर हो जाती है। उनका नाम श्रीशैल भी है। वे परम पराक्रमी, तरुण, वीर तथा न्याय के पक्षपाती हैं। रावण जैसा योद्धा उनका सम्मान करता है। वे विलासी है और १८ हजार कुमारियों से विवाह करते हैं। वे वानरवंशी-विद्याधर हैं, वानर नहीं। वे मातृभक्त हैं और अपनी माता के अपमानकर्ता अपने नाना को धर्षित करते है। वे सफल दूत हैं, सीता की सुधि लाने में उनका प्रमुख हाथ है। वे निर्भीक हैं एवं रावण-मन्दोदरी को फटकारते हैं। वे राम की अनेक प्रकार की सहायता करते हैं तथा विशल्या को लाने के लिए तुरन्त लवणांकुश की तरफ से लाङ्गूलास्त्र लेकर राम की सेना से युद्ध करते है। वे विवेकी जैन हैं और ज्योतिर्बिम्ब को अन्धकार में विलीन होता हुआ देखकर दीक्षा ग्रहण कर लेते है।

बालि : बालि सुग्रीव का बड़ा भाई है। वह रावण से युद्ध करने को निष्प्रयोजन जानकर दीक्षा लेकर तपस्या करता है। जब रावण कैलास उठाता है तो बालिमुनि अपने अँगूठे से पर्वत को दबाकर अपने बल की झलक और साथ ही क्षमाशीलता भी दिखाता है। उसने सुग्रीव को स्वेच्छा से राज्य दिया है।

सुग्रीव : सुग्रीव बालि का अनुज है। वह बालि के दीक्षा लेने पर उसी की इच्छा से सिंहासन पर बैठता है, साहसगति विद्याधर के द्वारा उपद्रुत होकर वह राम की सहायता लेता है और राम द्वारा उसके वध कर दिये जाने पर वह विलासी बन जाता है किन्तु लक्ष्मण की प्रताड़ना पर पूरी शक्ति से वह राम की सहायता करता है। वह योद्धा है तथा अन्त में किष्किन्धा पर्वत का राज्य करके अंगद को युवराज बना कर जिनदीक्षा ले लेता है।

अंगद : अंगद का कार्य राम की सेवा करना और रावण को अपमानित करना है। वह सुग्रीव का पुत्र है। वह योद्धा, साहसी, सुन्दर, प्रभावक और रसिक है। वह रावण की स्त्रियों की दुर्दशा करता है किन्तु रावण के विद्या सिद्ध कर लेने पर भाग खड़ा होता है, जिससे उसकी चतुरता भी सिद्ध होती है। सुग्रीव के दीक्षा लेने पर वह राजा होता है।

जनक : जनक सीता के पिता और राम के श्वसुर हैं। वे विभीषण से आतंकित होकर दशरथ के साथ कौतुल-मंगल नगर में भाग जाते हैं। उनके भामण्डल और सीता नामक दो सन्तान हैं। दशरथ जैसे प्रतापी राजा से उनका अच्छा परिचय है। म्लेच्छ सेना के विध्वंस पर राम के साथ सीता का वाग्दान करके वे अपनी कृतज्ञता का परिचय देते हैं। वे परम स्वाभिमानी एवं निर्भय वक्ता हैं; चन्द्रगति

विद्याधर से भूमिगोचरियों की निन्दा सुनकर वे करारा उत्तर देते हैं। वे अपने वचन के पक्के हैं और सीता-राम के विवाह पर शांति की सांस लेते हैं। कथा के अन्त में राम केवली सीतेन्द्र को बताते है कि जनक स्वर्ग प्राप्त कर चुके हैं।

जाम्बवान् : 'पद्मपुराण' मे जांबवान् हनुमान् को लंका भेजने की राय देकर एक परामर्शदाता के रूप में चित्रित हुआ है।

जटायु : जटायु पूर्व जन्म में दण्डक राजा था। गुप्ति-सुगुप्ति नामक मुनियों से अपनी पूर्वजन्म-कथा सुनकर एवं धर्मोपदेश सुनकर वह सुन्दर रूप धारण कर लेता है। वह एक गिद्ध पक्षी ही है जो कि अब सीता-राम के साथ खेलता हुआ समय बिताता है। रावण द्वारा सीता हरण किये जाने पर वह अपनी चोंच से उसे घायल करके सीता-मुक्ति का असफल प्रयास करता है। अन्त मे श्रीराम के द्वारा कर्ण-जाप किये जाने पर वह देव-पर्याय को प्राप्त हो जाता है। बाद में वह देव-शरीर से राम की सहायता करता है।

प्रासंगिक कथाओं के स्त्री-पात्र

सुतारा : 'पद्मपुराण' मे सुतारा सुग्रीव की पत्नी है। जब विटसुग्रीव और असली सुग्रीव मे युद्ध होता है तब बाली का पुत्र चन्द्ररश्मि उसकी रक्षा करता है। कपटी सुग्रीव जब उसे छीनने का प्रयत्न करता है तब बिचारी का कातरत्व सिद्ध होता है। उसे अपने पति के समस्त लक्षणों की पहचान है। राम द्वारा कपटी सुग्रीव के वध पर वह असली सुग्रीव के साथ सिंहासन पर प्रतिष्ठित होती है।

पौराणिक महापुरुष-पात्र

नारद : 'पद्मपुराण' का नारद 'जल्पाकपथ-पण्डित,' 'सर्वशास्त्रार्थ-कोविद' और 'अनेकान्त-दिवाकर' है। वह ब्राह्मणो को शास्त्रार्थ में पराजित करता है और यज्ञ का विरोध करके जैन धर्म की उच्चता प्रतिपादित करता है। उसमे इधर-उधर लगाने की भी आदत है। राजा जनक और दशरथ को वह विभीषण के इरादों से परिचित कराता है और राज्य छोड़कर जाने के लिए कहता है। यद्यपि रावण के द्वारा वह उपकृत है तथापि उसकी निष्कण्टकता को संदेह में डाल देता है। सीता का चित्र भामण्डल को दिखाकर उसे सीता के प्रति उत्सुक बनाता है और अपनी प्रतिशोध प्रवृत्ति का परिचय प्रस्तुत करता है। अपराजिता से मिल-कर आकाश गति से लंका-वासी राम के पास जाकर उन्हें अयोध्या बुलवाता है। लवणांकुश के समक्ष राम की कथा सुनाकर उसका राम-लक्ष्मण से युद्ध करवा देता है। बेचारे की दुर्गति के भी कुछ स्थल हैं यथा मरुत्वान् के यज्ञ में ब्राह्मणों

द्वारा उसे पीटा जाना एवम् सीता के महल में द्वारपालों द्वारा उसके पीछे हल्ला-मचाना एवम् हाथ-धोकर पड़ जाना आदि।

'पद्मपुराण' के अन्य विशेष पात्र

'पद्मपुराण' मे और भी कुछ विशेष चरित्र हैं—जिनमें ऋषभदेव के प्रतापी पुत्र भरत और बाहुबली, दशरथ की चौथी रानी सुप्रभा, लक्ष्मण की विशल्या, वनमाला, कल्याणमाला और जितपद्मा आदि अनेक पत्नियाँ, हनुमान् के माता-पिता अजना-पवनजय, सीता का भाई भामण्डल, राम का सेनापति कृतान्तवस्त्र, पुण्डरीकनगराधिपति वज्रजघ और रत्नजटी आदि आते हैं। इनका मुख्य कथानक में कोई विशेष महत्त्व नहीं है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि रविषेण ने चरित्र-चित्रण में अपनी विचार-धारानुसार कौशल प्रदर्शित किया है। चरित्र-चित्रण के मूल-मन्त्र मनोविज्ञान का ज्ञान उसे है। अपने दृष्टिकोण के अनुसार उसने कुछ पात्रों को अधिक सुन्दरता के साथ चित्रित किया है। उसने लक्ष्मण, रावण, सीता, लवणांकुश, मन्दोदरी, लका-सुन्दरी और हनुमान् आदि का चरित्र बड़े मनोयोग और विस्तार के साथ चित्रित किया है। रावण की तो उसने काया-पलट ही कर दी है जिसका परिचय हम पीछे दे चुके है। ०

षष्ठ अध्याय

'पद्मपुराण' का भावपक्ष-निरूपण

काव्यानुशीलन के सौविध्य की दृष्टि से आलोचकों ने काव्य के दो पक्ष किये हैं—भावपक्ष और कलापक्ष। काव्य का यह पक्ष-विभाजन उपचार से ही स्वीकार किया जाना चाहिए। भावपक्ष के अन्तर्गत भावना, कल्पना और विचार पर विचार किया जाता है। भावना या रागतत्त्व के अन्तर्गत रसादि (हृदय-पक्ष) पर विचार होता है, कल्पना के अन्तर्गत प्रतिभा पर और विचार के अन्तर्गत—कवि की विचारधारा (मस्तिष्क-पक्ष) पर। यहां हम 'पद्मपुराण' की इसी दृष्टि से समीक्षा करेंगे।

'पद्मपुराण' में रस-व्यंजना

'पद्मपुराण' का अंगी-रस शान्त है जिसके प्रधान अंग है—शृंगार, वीर, रौद्र और करुण। अत एव यहाँ इन रसों की अभिव्यक्ति सर्वाधिक हुई है जब कि अन्य रसों की अपेक्षाकृत कम। इन रसों की अभिव्यक्ति करते समय कवि ने बड़े स्वाभाविक और मनोहारी वर्णन किये है जिनकी विशद सूची हम सप्तम अध्याय में 'वर्णन' शीर्षक के अन्तर्गत देंगे। यहाँ हम 'पद्मपुराण' मे रसाभिव्यक्ति पर विचार करेंगे।

सम्भोग-शृङ्गार : सम्भोग शृङ्गार की कोई इयत्ता नहीं है, अत एव इस का एक भेद कहा गया है। जितनी बार प्रेमी मिलते है, एक नया रूप होता है, क्षण-क्षण मे संयोगी को नवीनता की उपलब्धि होती रहती है, फिर भला उसका वर्गीकरण कैसे किया जाय ? इसलिए आचार्य विश्वनाथ ने कहा है—

"संख्यातुमशक्यतया चुम्बनपरिरम्भणादिबहुभेदात् ।
अयमेक एव धीरैः कथितः सम्भोगशृंगारः ॥

तत्र स्यादृतुषट्कं चन्द्रादित्यौ तथोदयास्तमय:।
जलकेलिवनविहारप्रभातमधुपानयामिनीप्रभृति: ।
अनुलेपनभूषाद्या वाच्यं शुचि मेध्यमन्यच्च ॥''[223]

और इसीलिए भरत मुनि ने भी कहा है—"यत्किंचिल्लोके शुचि मेध्यमुज्ज्वल दर्शनीयं वा तत्सर्वं शृंगारेणोपमीयते।" फिर भी पूर्वरागादि विरहभेदों के अनन्तर होने के कारण इसे 'पूर्वरागानन्तर सम्भोग' आदि नाम दिये जा सकते हैं।

'पद्मपुराण' में उपर्युक्त सभी और 'अन्यच्च' के भी यथास्थान प्रभूत उदाहरण उपलब्ध होते हैं, यथा—(१) महारक्ष की उद्यान केलि, (२) तडित्केश का सुन्दरियों के साथ विलास, (३) मन्दोदरी के साथ रावण की केलि, (४) छः सहस्र कुमारियों के साथ रावण की जलकेलि, (५) सहस्ररश्मि की जलकेलि, (६) पवनञ्जय-अञ्जना-सम्भोग, (७) सीता-राम की वनक्रीड़ा, (८) अनेक स्त्रियों के नखशिख-सौन्दर्य तथा (९) सुन्दर युवा के दर्शन की दीवानी नारियों के वर्णन आदि[224]। यहाँ एक उदाहरण प्रस्तुत है—

गलतफहमी के बाद दिल साफ होने पर पवनजय-अंजना के प्रथम रात्रि-मिलन का वर्णन करता हुआ कवि कह रहा है—

"आश्लिष्टा दयितास्यासौ तथा गात्रेष्वलीयत।
पुनर्वियोगभीतेव गतान्तर्विग्रह यथा॥
आलिंगनविमुक्तायास्तस्या: स्तिमितलोचनम्।
मुख मुक्तनिमेषाभ्यां लोचनाभ्यां पपौ प्रिय:॥
पादयो: करयोर्नाभ्यां स्तनयोश्चिबुकेऽलिके।
गण्डयोर्नेत्रयोश्चास्याश्चुम्बन मदनातुर:॥
पुन: पुनश्चकारासौ स्वेदिना पाणिना स्पृशन्।
आप्तसेवा हि सा नून क्रियते वक्त्रचुम्बने॥
तत: प्रबुद्धराजीवगर्भच्छदसमप्रभम्।
स पपावधरं तस्या विमुञ्चन्तमिवामृतम्॥

---

२२३. 'साहित्य-दर्पण' ३।२११-२१२।

२२४ दे० 'पद्मपुराण' ५।२९७-३०४, ६।२२७-२३५, ८।८४-८९, ८।९५-११०, १०। ६५-८४; १६।१७९-२१३, ३०।३३-३५, ७३।१५८ १७७, ३।३३१-३३५; ८।५७-७२; ८।३२१-३२३, ८।५२३-५२७; १२।९७ १११, १४।१३७-१४६; १५।१६-२१, १५।१४०-१४६; १९।१०८-१०९, १९।१२२-१४४, २१।३२-३५; २४।५-२३, ३४।३-७; ३८।४८-५६; २६।१६५-१७१; ३९।५४-५६ आदि अन्य अनेक स्थल।

नीवीविमोचनव्यग्रपाणिमस्य त्रपावती।
रोद्धुमैच्छन्न सा शक्ता पाणिना वेपथुश्रिता॥

० ० ०

अथ केनापि वेगेन परायत्तीकृतात्मना।
गृहीता दयिना गाढ पवनेनाब्जकोमला॥
यथा ब्रवीति वैदग्ध्यं यथाज्ञापयति स्मरः।
अनुरागो यथा शिक्षां प्रयच्छति महोदयः॥
तथा तयो रतिः प्राप्ता दम्पत्योर्वृद्धिमुत्तमाम्।
काले तत्र हि यो भावो नैवाख्यातुं स पार्यते॥

० ० ०

तिष्ठ मुञ्च गृहाणेति नानाशब्दसमाकुलम्।
तयोर्युद्धमिवोदार रतमासीत्सविभ्रमम्॥
अधरग्रहणे तस्याः पुरसीत्कारपूर्वकम्।
प्रविधूतः करो रेजे लताया इव पल्लवः॥
प्रियदत्ता नखास्तस्या नखाङ्का जघने बभुः।
वैडूर्यजगतीभागे पद्मरागोद्गमा इव॥

० ० ०

प्रियमुक्ता तनुस्तस्या ऊहे कान्तिमनुत्तमाम्।
कनकाद्रितटाश्लिष्टघनपंक्तिकृतोपमाम् ॥"[२२५]

इसी प्रकार आगे भी 'सुरतोत्सव' का पूरा ब्यौरा दिया गया है जिसे स्थानानुरोध से पूर्ण रूप से प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।

वियोग-शृङ्गार

'वियोग-शृङ्गार' के चार भेद माने गये है—(१) पूर्वराग, (२) मान, (३) प्रवास तथा (४) करुण। इनमे 'करुण-विप्रलम्भ' को छोड़कर शेष सभी वियोग के भेदों के 'पद्मपुराण' मे उदाहरण आये हैं यथा—(१) हरिषेण की विरहावस्था, (२) पवनञ्ज-अञ्जना-विरह, (३) रावण-विरह, (४) राम-विरह, (५) सीता-विरह तथा (६) वनमाला कल्याणमाला आदि के वियोग[२२६]।

---

२२५. पद्मपुराण १६।१८८-२०२।

२२६ देखिए—पद्मपुराण ८।३०८-३१५, १५।९५-१००, १०२-११७; १८।३३-४७; २८।२२-८७; ४६।१०७-११२, ४८।२-२२, ५२।४२-५५; १६।२-२४; ८४-८६,१६८-१७२; ५४।१७-२२ आदि।

उदाहरण के लिए 'राम-वियोग' का कुछ अंश प्रस्तुत है—

जिस प्रकार मुनि मुक्ति का ध्यान करते हैं, उसी प्रकार विरही राम-सीता का अनन्य ध्यान करते रहते हैं, पक्षियों से उसी के विषय मे प्रश्न करते हैं तथा समस्त जगत् को प्रियामय ही देखते हैं—

"अनन्यमानसोऽसौ हि मुक्तनिःशेषचेष्टितः।
सीतां मुनिरिव ध्यायन् सिद्धिमास्थान्महादरः॥
न शृणोति ध्वनिं किंचिद् रूपं पश्यति नादरम्।
जानकीमयमेवास्य सर्वं प्रत्यवभासते॥
न करोति कथामन्यां कुरुते जानकीकथाम्।
अन्यामपि च पार्श्वस्थां जानकीत्यभिभाषते॥
वायस पृच्छति प्रीत्या गिरेव कलनादया।
'भ्राम्यता विपुल देशं दृष्टा स्यान्मैथिली क्वचित्'॥
सरस्युन्निद्रपद्मादिकिञ्जल्कालङ्कृताम्भसि।
चक्राह्वमिथुनं दृष्ट्वा किञ्चित्सञ्चिन्त्य कुप्यति॥
सीताशरीरसम्पर्कशङ्कया बहुमानवत्।
निमील्य लोचने किञ्चित्समालिङ्गति मारुतम्॥
एतस्यां सा निषण्णेति वसुधां बहु मन्यते।
जुगुप्सितस्तया नूनमिति चन्द्रमुदीक्षते॥
अचिन्तयच्च 'किं सीता मद्वियोगाग्निदीपिता।
तामवस्थां भवेत्प्राप्ता स्यादस्या यापदैषिणाम्॥
किमियं जानकी नैषा लता मन्दानिलरता।
किमशुकमिदं नैतच्चलपत्रकदम्बकम्॥
एते किं लोचने तस्या नैते पुष्पे सषट्पदे।
करोऽयं किं चलस्तस्या नायं प्रत्यग्रपल्लवः॥"[२२७]

इसी प्रकार आगे वे सीता के अंग-प्रत्यगों का प्रकृति में कथञ्चित् पृथक्-पृथक् साक्षात्कार कर लेते हैं किन्तु एक साथ सामुदायिक रूप में उसकी शोभा नहीं पाते—

"शोभा तु समुदायस्य तस्याः पश्यामि न क्वचित्॥"[२२८]

हास्य : यद्यपि 'पद्मपुराण' में 'हास्य'-रस की अधिक अभिव्यक्ति नहीं है

२२७. पद्मपुराण ४८।४-१३।
२२८. वही, ४८।१४-१८।

तथापि ग्यारहवें पर्व में नारद की ब्राह्मणों द्वारा पिटाई के अवसर पर 'हास्य' की झलक मिल जाती है।

करुण : 'पद्मपुराण' में 'करुण' रस के अनेक उदाहरण मिलते हैं। क्योंकि कवि संसार की असारता दिखाकर दीक्षा का पक्षधर है, अतः वैभव और उसका नाश दिखाकर वह शान्त-रस के प्रति पाठक को प्रेरित करता है। इसी कारण वैभव और इष्ट के नाश पर यह 'करुण'-रस स्थान-स्थान पर अभिव्यक्त हुआ है। 'पद्मपुराण' में अनेक व्यक्तियों के नाश पर कारुणिक विलाप आये है जिनमे मुख्य ये है—(१) चन्द्रनखा-विलाप, (२) लक्ष्मण की शक्ति तथा मृत्यु पर राम के विलाप, (३) रावण की मृत्यु पर विभीषण का विलाप, (४) सीता त्याग पर राम का विलाप, (५) भाई अन्धक के लिए किष्किन्ध का विलाप आदि[२२९]। इसी प्रकार राजाओं के दीक्षा लेते समय अन्तःपुर तथा परिजनों के दृश्य भी परम कारुणिक है। इन सभी से रविषेण की करुण-रस-व्यंजना का वैभव प्रमाणित होता है।

उदाहरणार्थ—'रावणवध पर उसके सम्बन्धियों का दृश्य' तथा 'लक्ष्मणवध पर राम की दशा' के कुछ अंश प्रस्तुत हैं—

"सोदरं पतितं दृष्ट्वा महादुःखसमन्वित.।
क्षुरिकायां करं चक्रे स्ववधाय विभीषणः॥
वारयन्ती वधं तस्य निश्चेष्टीकृतविग्रहा।
मूर्च्छा कालं कियन्तचिच्चकारोपकृतिं पराम्॥
लब्धसंज्ञो जिघांसु स्व ताप दु सहमुद्वहन्।
रामेण विधृत. कृच्छ्राद्वुत्तीर्य निजतो रथात्॥
त्यक्तास्त्रकवचो भूम्या पुनर्मूर्च्छामुपागतः।
प्रतिबुद्धः पुनश्चक्रे विलाप करुणाकरम्॥

० ० ०

एतस्मिन्नन्तरे ज्ञातदशाननर्निपातनम्।
क्षुब्धमन्तःपुर शोकमहाकल्लोलसकुलम्॥
सर्वाश्च वनिता वाष्पधारासिक्तमहीतलाः।
रणक्षोणी समाजग्मुर्मुहुः प्रस्खलितक्रमा.॥

२२९ पद्मपुराण ६।४७१-४७८, ४०।७६-८७, ६३।३-२०, ७७।५-२, ९९।५९-८१; ९९।८८-१०३; १०३।४८-५४; ११६।५-६४, ४९।१४-१६, ६४।७-१३; ७७।२२-४३ आदि।

तं चूडामणिसंकाशं क्षितेरालोक्य सुन्दरम्।
निश्चेतनं पतिं नार्यो निपेतुरतिवेगतः॥

० ० ०

काश्चिन्मोहं गताः सत्यः सिक्ताश्चन्दनवारिणा।
समुत्खुतमृणालानां पद्मिनीनां श्रियं दधुः।
आश्लिष्टदयिताः काश्चिद् गाढं मूर्च्छामुपागताः।

० ० ०

निर्व्यूढमूर्च्छनाः काश्चिदुरस्ताडनचञ्चला॥"[२३०]

इसी प्रकार मृत लक्ष्मण को लिए हुए राम की चेष्टाएँ भी मार्मिक है—

"स्वरूपमृदु सदगन्ध स्वभावेन हरेर्वपु.।
जीवेनापि परित्यक्तं न पद्माभस्तदाऽत्यजत्॥
आलिंगति निधायाके मार्ष्टि जिघ्रति निक्षति।
निषीदति समाधाय सस्पृहं भुजपञ्जरे॥
अवाप्नोति न विश्वासं क्षणमप्यस्य मोचने।
बालोऽमृतफलं यद्वत् स तं मेने महाप्रियम्॥
विललाप च हा भ्रातः किमिदं युक्तमीदृशम्?
यत्परित्यज्य मां गन्तुं मतिरेकाकिना कृता॥

० ० ०

शय्या व्यरचयत् क्षिप्रं कृत्वा विष्णु भुजान्तरे।
व्यापारान्तरनिर्मुक्तः स्वप्तुं राम. प्रचक्रमे॥"[२३१]

यहाँ केवल सकेत ही दिये गये हैं, करुण-रस की पुष्कल सामग्री तो ग्रन्थ को देखने पर ही, वास्तविक रूप में, हृदयगोचर होती हैं।

रौद्र : 'पद्मपुराण' में अनेक युद्धों का वर्णन है जहाँ 'वीर'-रस के साथ ही प्रायः 'रौद्र'-रस की भी अभिव्यञ्जना हुई है। इसके अतिरिक्त कर्णकुण्डलनगर में हुए मुनि के क्रोध तथा अन्य कुछ स्थलों पर 'रौद्र' के उदाहरण मिलते हैं।[२३२] यहाँ राम के क्रोध का एक चित्र प्रस्तुत है :

"अथेक्षाञ्चक्रिरे तस्य वदनेऽव्यक्तसौम्यके।
भ्रुकुटीजालकं भीमं मृत्योरिव लतागृहम्॥

---

२३०. पद्मपुराण ७७।१-१९, और भी आगे देखिए।
२३१. पद्मपुराण ११६।२-२० और भी आगे देखिए।
२३२. पद्मपुराण ४१।८४-९१; ६।२४५-२४८।

लङ्कायां तेन विन्यस्तां दृष्टिं शोणस्फुरत्त्विषम् ।
केतुरेखामिवोद्यातां राक्षसक्षयसञ्चिनीम् ।।
तामेव च पुनर्न्यस्तां चिरमध्यस्थतां गते ।
दृष्टस्थाम्नि निजे चापे कृतान्तभ्रूलतोपमे ।।
कोपकम्पश्लथ चास्य केशभारं स्फुरद्युतिम् ।
निधानमिव कालस्य निरोद्धुं तमसा जगत् ।।
तथाविध च तद्वक्त्र ज्योतिर्वलयमध्यगम् ।
जरठीभवदुत्पातप्रभाभास्करसन्निभम् ।।
गृहीतगमनक्ष्वेड रक्षसां नाशनायतम् ।
दृष्ट्वा ते गमने सज्जा जाता सम्भ्रान्तमानसा. ।।"[२३३]

वीर : 'पद्मपुराण' में वीर के १. दानवीर, २. धर्मवीर, ३. दयावीर एव ४. युद्ध-वीर—चारों के रूप मिलते है। दानवीर दशरथ, धर्मवीर राम-लक्ष्मण (जिन्होंने मुनियों के अनेक उपसर्ग दूर किये), दयावीर रावण (जब कि लक्ष्मण को देखने के लिए वह राम को अनुमत करता है) तथा युद्धवीर अनेक राजा और राजकुमार इनके उदाहरण हैं। सर्वाधिक 'युद्धवीर' की अभिव्यक्ति है क्योंकि 'पद्मपुराण' में युद्ध के पर्याप्त चित्रण है यथा—१. भरत-बाहुबलियुद्ध, २. किष्किन्ध-अन्धक की क्षुब्ध वानर सेना, ३. वानर-विद्याधर-युद्ध, ४. इन्द्र विद्याधर और माली का युद्ध ५. वैश्रवण-रावण-युद्ध ६. सहस्ररश्मि-रावण-युद्ध, ७. इन्द्र-रावण युद्ध, ८. रावण और वरुण की सेना का युद्ध, ९. दशरथ का केकया के स्वयवर में राजाओं से युद्ध, १०. राम-लक्ष्मण का म्लेच्छों से युद्ध, ११. रावण-राम-युद्धभूमि में अनेक राजाओं के युद्ध, १२. महेन्द्र-हनूमान्-युद्ध १३. लक्ष्मण-रावण-युद्ध, १४. शत्रुघ्न-मधु युद्ध, १५. लवणाकुश-पृथु युद्ध, १६. लवणांकुश राम-युद्ध आदि।

इन युद्धों के वर्णन मे कवि ने रणशौण्ड वीरो की चेष्टाओं से वीर रस की अजस्र धाराएँ प्रवाहित की है। लवणाकुश राम-युद्ध का एक अश प्रस्तुत है जिसमे युद्धवीर मर जाना अच्छा समझते हैं किन्तु पीठ दिखाना नहीं—

"आपातमात्रकेणैव रामदेवस्य सद्ध्वजम् ।
अनंगलवणश्चाय निचकर्त्त कृतायुधः ।।
० ० ०
महाहवो यथा जातः पद्मस्य लवणस्य च ।
अनुक्रमेण तेनैव लक्ष्मणस्यांकुशस्य च ।।

---

२३३. वही, ५४।४१-४६।

एवं द्वन्द्वमभूद् युद्धं स्वामिरागमुपेयुषाम् ।
सामन्तानामपि स्व-स्व-वीर-शोभाभिलाषिणाम् ॥
अश्ववृन्दं क्वचित्तुङ्गं तरङ्गकृतरङ्गणम् ।
निरुद्धपरचक्रेण घनं चक्रे रणाङ्गणम् ॥
क्वचिद्विच्छिन्नसन्नाहं प्रतिपक्षं पुरःस्थितम् ।
निरीक्ष्य रणकण्डूलो निवधे मुखमन्यतः ॥
केचिन्नाथं समुत्सृज्य प्रविष्टाः परवाहिनीम् ।
स्वामिनाम समुच्चार्य निजम्नुरभिलक्षितम् ॥
अनादृतनराः केचिद् गर्वशौण्डा महाभटाः ।
प्रक्षरद्दानधाराणां करिणामरितामिताः ॥
दन्तशय्यां समाश्रित्य कश्चित्समददन्तिनः ।
रणनिद्रासुखं लेभे परम भटसत्तमः ॥
कश्चिदभ्यायतोऽश्वस्य भग्नशस्त्रो महाभटः ।
अदत्वा पदवी प्राणान् ददौ सकरताडनम् ॥
प्रच्युत प्रथमाघाताद् भट कश्चित्त्रपान्वितः ।
भणन्तमपि नो भूय. प्रजहार महामना. ॥
च्युतशस्त्र क्वचिद् वीक्ष्य भटमच्युतमानसः ।
शस्त्रं दूर परित्यज्य बाहुभ्यां योद्धुमुद्यतः ॥
दातारोऽपि प्रविख्याताः सदा समरवर्तिनः ।
प्राणानपि ददुर्वीरा न पुन पृष्ठदर्शनम् ॥"[२३४]

यहाँ एक नहीं–सभी समरक्षीब वीरता के पुतले दिखाई देते है। युद्धों के वर्णन मे उभयपक्ष की वीरता के अनुमप नमूने रविषेण ने प्रस्तुत किये हैं।

भयानक : 'पद्मपुराण' मे भयानक रस की भी अभिव्यक्ति अनेक स्थलों पर हुई है यथा–१. तपस्या करते हुए रावणादि का उपसर्ग, २. देशभूषण-कुलभूषण-मुनि-उपसर्ग, ३. अञ्जना के वन-भ्रमण के समय सिंह का वर्णन, ४. सहदेवी-व्याघ्री-वर्णन, ५. श्मशान-वर्णन, ६. डाकिनी-वर्णन तथा ७. नरक-वर्णन आदि ।[२३५] रावण का 'कैलासकम्पन' भी भयानक रस का सञ्चार करता है, यथा—

"ततो विषकणक्षेपिलम्बमानोरगाधरः ।
केसरिक्रमसम्प्राप्त भ्रश्यन्मत्तमतङ्गजः ॥

२३४. पद्मपुराण १०२।१७७-१९३

२३५. पद्मपुराण ६।३०६-३११, २२।६७-७१, २२।८५-९०, १७।२३४-२३८; ३३।९५-९९; १०६।११६-१३८; १०९।९३-९५; १२३।१-११ आदि स्थल देखिए

सम्भ्रान्तनिश्चलोत्कर्णसारंगककदम्बकः ।
स्फुटितोद्देशनिष्पीतत्रुटिताखिलनिर्झरः ॥
पर्यस्यदुद्धतारावमहानोकहसंहृतिः ।
स्फुटीकृतशिलाजालसन्धिशब्दैः सुदुःस्वरः ॥
पतद्विकटपाषाणरवापूरितविष्टपः ।
चलितश्चालयन् क्षोणी भृशं कैलासपर्वतः ॥
स्फुटितावनिपीताम्बुः प्राप शोषं नदीपतिः ।
ऊहुः स्वच्छतया मुक्ता विपरीतं समुद्रगाः ॥
त्रस्ता व्यलोकयन्नाशा प्रमथाः पृथुविस्मयाः ।
किं किमेतदहो-हा-हा-हुं-हीति प्रसृतस्वराः ॥
जह्नुरप्सरसो भीता लताप्रवरमण्डपम् ।
वयसां निवहा प्राप्ता. कृतकोलाहला नभः ॥
पातालादुत्थितैः क्रूरैरट्टहासैरनन्तरैः ।
दशवक्त्रैः समं दिग्भिः पुस्फोटे च नभस्तलम् ॥"[२३६]

यहाँ 'हा-हा-हुं-ही' से ऐसा लगता है मानों भय के कारण 'हाय-हाय' मची हुई हो। इसी प्रकार अन्य वर्णन भी लिये जा सकते हैं यथा कपिल ब्राह्मण के आगे सर्पादि का वर्णन।[२३७]

बीभत्स : 'पद्मपुराण' में 'बीभत्स' रस के स्थल हैं—युद्ध के बाद युद्धस्थल की बीभत्सता के वर्णन, नरक तथा श्मशान आदि के वर्णन। एक उदाहरण प्रस्तुत है—खरदूषण-लक्ष्मण-युद्ध के अनन्तर युद्धस्थल की बीभत्सता का दृश्य प्रस्तुत करता हुआ कवि कहता है—

"तत्राद्राक्षीद्रथान् भग्नान् गजांश्च गतजीवितान् ।
सामन्तानश्वसंयुक्तान् निर्भिन्नच्छिन्नविग्रहान् ॥
दह्यमानान्नृपान् कांश्चित् कांश्चिन्निश्वसितास्तथा ।
क्रियमाणानुमरणान् कान्ताभिरपरान् भटान् ॥
विच्छिन्नार्धभुजान् कांश्चित् कांश्चिदर्धोरुवर्जितान् ।
निःसृतान्त्रचयान् कांश्चित्कांश्चिद्दलितमस्तकान् ॥
गोमायुप्रावृतान् कांश्चित् खगैः कांश्चिन्निषेवितान् ।
रुदता परिवर्गेण कांश्चिच्छादितविग्रहान् ॥"[२३८]

---

२३६. पद्मपुराण ९।१३७-१४४
२३७. पद्मपुराण ३५।१३०
२३८. वही ४७।२-५

अद्भुत : 'पद्मपुराण' में 'अद्भुत' रस के लिए भी पर्याप्त अवकाश है। अनेक विद्याधरों की आकाशमार्ग से की गयी यात्राओं में, मायायुद्धों में, माया से उत्पादित दुर्ग आदि के वर्णनों में, जैन धर्म के अंगीकरण से समुपलब्ध सम्पदाओं के वर्णनों में तथा जिनेन्द्र के अभिषेकादि के वर्णनो में—'अद्भुत-रस' की अभिव्यक्ति हुई है। इसी प्रकार सीता की अग्नि-परीक्षा के समय अग्नि का जल-रूप में परिवर्तित हो जाना 'अद्भुत' रस का सञ्चार करता है, यथा—

"अभिधामेति सा देवि प्रविवेशानलं च तम्।
जातं च स्फटिकस्वच्छं सलिलं सुखशीतलम्॥
भित्त्वेव सहसा क्षोणीं तरसा पयसोद्धता।
परमं पूरिता वापी रंगद्भृंगाकुलाऽभवत्॥
ο ο ο
उत्तस्थावथ मध्येऽस्या विपुलं विमलं शुभम्।
सहस्रच्छदनं पद्मविकचं विकटं मृदु॥"[239]

इसी प्रकार बालि के प्रभाव से रावण का विमान रुकना आदि अनेक 'अद्भुत-रस' के निदर्शन उपलब्ध होते हैं।

शान्त : यह हमने प्रारम्भ में ही कह दिया है कि 'पद्मपुराण' का अंगी रस 'शान्त' है। सभी पात्रों ने अन्ततोगत्वा दीक्षा धारण कर ली है। अनेक मुनियों के उपदेशों में शान्त रस की अभिव्यक्ति हुई है। इसी प्रकार जब कोई पात्र नर्तकी की मृत्यु अथवा कलम-वन-संकोच अथवा शरद्मेघ-विलय अथवा राहुग्रस्तसूर्य अथवा पलिताकुर अथवा वृद्धावस्था अथवा बिजली का विनय आदि[240] देखकर संसार की असारता पर विचार करता है तथा उसके मन में वैराग्य की भावना आती है तो शान्त रस की अभिव्यक्ति हुई है। एक उदाहरण प्रस्तुत है :—

"अथोपरि विमानस्य निषण्णः शिखरान्तिके।
प्राग्भारचन्द्रशालायाः कैलासाधित्यकोपमे॥
ज्योतिष्पथात्समुत्तुंगात्पतत्प्रस्फुरितप्रभम्।
ज्योतिर्बिम्बं मरुत्सूनुरालोकत तमोऽभवत्॥
अचिन्तयच्च हा कष्टं संसारे नास्ति तत्पदम्।
यत्र न क्रीडति स्वेच्छं मृत्युः सुरगणेष्वपि॥

---

२३९. पद्मपुराण १०५।२९-४८

२४०. पद्मपुराण ३।२६७; ५।३०५; ६।५०२; २९।३०; २९।१४६; २९।१४६; २२।१०६; २९।७२; ११२।७६-७७ आदि।

तडिदुल्कातरंगातिभंगुरं जन्म सर्वतः ।
देवानामपि यत्र स्यात् प्राणिनां तत्र का कथा ॥
अनन्तशो न भुक्तं यत्संसारे चेतनावता ।
न तदास्ति सुखं नाम दुःखं वा भुवनत्रये ॥
अहो मोहस्य माहात्म्यं परमेतद्बलान्वितम् ।
एतावन्तं यतः कालं दुःखपर्यटितं भवेत् ॥

० ० ०

तदलं निन्दितैरेभिर्भोगैः परमदारुणैः ।
विप्रयोगः सहामीभिरवश्यं येन जायते ॥

० ० ०

आसीन्निरर्थकतमो धिगतीतकालो
दीर्घः सुखार्णवजले पतितस्य निन्द्ये ।
आत्मानमद्य भवपञ्जरसन्निरुद्धं
मोक्षामि लब्धशुभमार्गमतिप्रकाशः ॥[२४१]

भक्ति : रविषेण जैन थे। 'जिनभक्ति' उनकी दृष्टि में सर्वोच्च की। फिर भला 'भक्ति रस' के अवसर वे अपने 'पद्मपुराण' क्यों न निकालते ? इसीलिए उन्होंने स्थान-स्थान पर जिनेन्द्र पूजा कराई है। इन्द्र, राम, सुग्रीव तथा रावण आदि अनेक पात्रों के द्वारा जिन-पूजा एवं अनेक पात्रों द्वारा जिनेन्द्र देव की स्तुति के समय 'भक्ति रस' के उदाहरण मिलते हैं।[२४२] एक उदाहरण प्रस्तुत है। जिसमें रावण अपनी नस की वीणा बजाकर भगवान् जिनेन्द्र देव की स्तुति करता है :—

"निष्कृष्य च स्नसातन्त्रीं भुजे वीणामवीवदत् ।
भक्तिनिर्भरभावश्च जगौ स्तुतिशतैर्जिनम् ॥
नमस्ते देवदेवाय लोकालोकावलोकिने ।
तेजसातीतलोकाय कृतार्थाय महात्मने ॥
त्रिलोकक्कृतपूजाय नष्टमोहमहारये ।
वाणीगोचरतामुक्तगुणसंघातधारिणे ॥
महैश्वर्यसमेताय विमुक्तिपथदेशिने ।
सुखकाष्ठासमृद्धाय दूरीभूतकुवस्तवे ॥"[२४३]

---

२४१. पद्मपुराण ११२।७६-९८।
२४२. दे० पद्म० २।१२७; ३।२०२; ३।२३७; ३।२४९; ५।१४३; ९।१७-१९; १७।२८१-२८२; २८।१११-११५; ३५।१३२; ४८।२००-२१२; ८०।१४-२४।
२४३. वही, ९।१७७-१७९ और भी आगे देखिए।

वात्सल्य : वात्सल्य रस के स्थल—रामलक्ष्मण की बाल-लीला, लवणांकुश-क्रीडा, पवनंजय-प्रसंग तथा विदेहा-प्रसंग आदि हैं जिनमें इसके संयोग और वियोग दोनों रूप अभिव्यक्त हुए है। उदाहरणार्थ लवणाकुश की बाललीला का प्रसंग लिया जा सकता है :—

(संयोग) "ततः क्रमेण तौ वृद्धि बालकौ व्रजतस्तदा।
जननीहृदयानन्दौ प्रवीरपुरुषांऽकुरौ ।
रक्षार्थं सर्षपकणा विन्यस्ता मस्तके तयो.।
समुन्मिषत्प्रतापाग्नि-स्फुलिंगा इव रेजिरे ।।
वपुर्गोरोचनापंकपिंजरं परिवारितम् ।
समभिव्यज्यमानेन सहजेनेव तेजसा ।।
विकटा हाटकाबद्धवैयाघ्रनखपक्तिका ।
रेजे दर्पांकुरालीव समुद्भेदमिता हृदि ।।
आद्यं जल्पितमव्यक्तं सर्वलोकमनोहरम्।
बभूव जन्मपुण्याहः सत्यग्रहणसन्निभम् ।।
मुग्धस्मितानि रम्याणि कुसुमानीव सर्वत.।
हृदयानि समाकर्षन् कुल्मानीव मधुव्रतान् ।।
जननीक्षीरसेकोत्थविलासहसितैरिव ।
जातं दशनकैर्वक्त्रपद्मक लब्धमण्डनम् ।।
धात्रीकरांगुलीलग्नौ पंचषाणि पदानि तौ ।
एवंभूतौ प्रयच्छन्तौ मनः कस्य न जह्रतु ।।
पुत्रकौ तादृशौ वीक्ष्य चारुक्रीडनकारिणौ ।
शोकहेतु विमस्मार समस्तं जनकात्मजा ।।"[२४४]

(वियोग) केतुमती अपने दूरगत पुत्र के विषय में विलाप कर रही है :—
"हा वत्स, विनयाधार, गुरुपूजनतत्पर ।
जगत्सुन्दर, विख्यातगुण, क्वासि गतो मम ।।
भवद्दुःखाग्निसन्तप्तां मातरं भ्रातृवत्सल ।
प्रतिवाक्यप्रदानेन कुरु शोकविवर्जिताम् ।।"[२४५]

'रस्यते आस्वाद्यते' इस व्युत्पत्ति के अनुसार भाव, रसाभास, भावाभास, भावोदय, भावसन्धि, भावशबलता तथा भावशान्ति भी रसादि में परिगणित होते हैं। 'भाव' के तो उदाहरण 'भक्ति भावना' के अन्तर्गत देखे जा सकते हैं, शेष के

२४४. पद्मपुराण १००।२२-३०।
२४५. पद्मपुराण १८।६९-७०।

उदाहरण प्रस्तुत हैं :—

रसाभास : नलकूबर की पत्नी उपरम्भा के रावण के प्रति अनुराग, सीता के विरह में रावण की दशा, सीता-विरह में भामण्डल की अवस्था तथा अन्य अनेक छोटे-मोटे प्रसगों में रसाभास के दर्शन होते हैं; यथा चित्तोत्सवा आदि के प्रसङ्ग। यहाँ 'परवनिता सीता में आसक्त' रावण की विरहावस्था का प्रसंग प्रस्तुत है—

"ततो मदनदीप्ताग्निज्वालालीढः समन्ततः।
आर्त्तो व्यचिन्तयद् भूरि मग्नोऽसौ व्यसनार्णवे।।
शोचत्युन्मुक्तदीर्घोष्णनिःश्वासानिलसन्ततिः।
शुष्यन्मुखः पुनः किञ्चिद्गायत्यविदिताक्षरम्।।
स्मरप्रालेय-निर्दग्धं धुनाति मुखपंकजम्।
मुहुः किमपि सञ्चिन्त्य स्मयते क्षणनिश्चलः।।
अनुबन्धमहादाहान् समस्तावयवानलम्।
क्षिपत्यविरतं भूमौ कुट्टिमायां विवर्त्तकः।।
उत्तिष्ठति पुनः शून्यः सेवते निजमासनम्।
निःक्रामति पुनर्दृष्ट्वा जनं प्रति निवर्तते।।
नागेन्द्र इव हस्तेन सर्वदिङ्मुखगामिना।
आस्फालयति निःशङ्कः कुट्टिमं कम्पमानयन्।।
स्मरन् सीतां मनोयातामात्मानं पौरुषं विधिम्।
निरपेक्षमुपालब्धुं साश्रुनेत्रः प्रवर्त्तते।।
किंचिदाह्वयते दत्तहुंकारश्चातिकर्जनैः।
तूष्णीमास्ते पुनः किं किमिति शून्यं प्रभाषते।।
सीता सीतेति कृत्वास्यमुत्तानं भाषते मुहुः।
निष्ठत्यवाङ्मुखः भूयो नखेन विलिखन् महीम्।।
करेण हृदयं मार्ष्टि बाहुमूर्द्धानमीक्षते।
पुनर्मुञ्चति हुङ्कारं तल्पं मुञ्चति सेवते।।
दधाति हृदये पद्मं पुनर्दूरं निरस्यति।
मुहुः पठति शृंगारं गगनांगणमीक्षते।।
हस्तं हस्तेन सस्पृश्य हन्ति पादेन मेदिनीम्।
निश्वासदहनश्यामामाकृष्याधरमीक्षते।।
धत्ते कहकहं स्वानं केशान् वर्त्तयति क्षणम्।
कोपेन दुस्सहां दृष्टिं क्वचिदेव विमुञ्चति।।
जृम्भोत्तानीकृतोरस्को बाष्पाच्छादितलोचनः।

बाहुतोरणमुद्यम्य भिनत्ति स्फुटदंगुलि. ।।
अंशुकान्तेन हृदयं वीजयत्याहितेक्षणम् ।
कुसुमैः कुरुते रूपं पुनर्नाशयति द्रुतम् ।।
चित्रयत्यादरी सीतां द्रवयत्यश्रुभिः पुनः ।
दीनः क्षिपति हाकारान् न न मा मेति जल्पति ।।''[२४६]

भावाभास : राजा दण्डक के द्वारा मुनियों के ऊपर किये गये अत्याचार को सुनकर निर्ग्रन्थ मुनि के भड़कने में 'भावाभास' देखा जा सकता है :—

''अथास्य शतद्रुखेन प्रेरितः शमगह्वरात् ।
निरम्बरमहीध्रस्य निरगात्क्रोधकेसरी ।।
रक्ताशोकप्रकाशेन निखिल तस्य चक्षुषः ।
तेजसा विहितं व्योम सन्ध्यामयमिवाभवत् ।।''[२४७]

भावोदय तथा भावशान्ति : लंकासुन्दरी-हनूमान्-प्रसंग को 'भावोदय' तथा 'भावशान्ति' के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है जब कि लंका सुन्दरी के चित्त में युद्धोत्साह शान्त होकर प्रेम उदित हो जाता है.—

'चिन्तयत्येवमेतस्मिन् साप्यनगेन चोदिता ।
त्रिकूटसुन्दरीकन्या करुणासक्तमानसा ।।
विकस्वरमनोदेह त पद्मच्छदलोचनम् ।
अबालेन्दुमुख बाल किरीटन्यस्तवानरम् ।।
मूर्तियुक्तमिवानंग सुन्दर वायुनन्दनम् ।
हन्तुं समुद्यतां शक्ति सञ्जहार त्वरावती ।।
दध्यौ च मारयाम्येतं कथं दोषमपि श्रितम् ।
रूपेणानुपमानेन छिन्ते मर्माणि यो मम ।।
यद्यनेन सम सक्ता कामभोगोदयद्युतिम् ।
न निषेवे च लोकेऽस्मिन् ततो मे जन्म निष्फलम् ।।''[२४८]

भावसन्धि : 'पद्मपुराण' में भावसन्धि के अनेकों स्थल हैं; यथा वैराग्योदय के समय संसार के प्रति रति, युद्ध के समय उत्साह तथा रति आदि का अनुभव आदि । उदाहरणार्थ—

''एकतो दयितादृष्टिरन्यतः तूर्यनिस्वनम् ।

---

२४६. पद्म० ४६।१७०-१८५ ।
२४७. पद्म० ४१।८१-८२ ।
२४८. पद्म० ५२।२१-२७

इति हेतुद्वयादोलामारूढ भटमानसम् ॥"

अथवा

"ततो जगाद वैदेही प्रभ्रष्टहृदया सती।
कृतान्तवक्त्र ! कस्मात्त्व विरौषीद सुदुःखिवत् ॥
प्रस्तावेऽत्यन्तहर्षस्य विषादयसि मामपि ।"[२४९]

भावशबलता : 'भावशबलता' के 'पद्मपुराण' में अनेक उदाहरण हैं, यथा—

"श्रुत्वा स्वसुर्यथा वृत्त वात्सल्यगुणयोगतः।
बभूव परमं दुःखी प्रभामण्डलपण्डितः ॥
विषादं विस्मयं हर्षं विभ्राणश्च त्वरान्वितः।
आरुह्य मनसा तुल्य विमान पितृसगतः ॥
पौण्डरीक पुरं चैव प्रस्थितः स्नेहनिर्भर. ॥"[२५०]

इसी प्रकार राम जब सीता का त्याग करने का विचार करते है तब उनके मन में निर्वेद-चिन्ता-मोह-तर्क-विबोध-स्मृति-मति-विषाद भाव एक साथ उठते हैं:—

"अचिन्तयच्च हा कष्टमिदमन्यत्ममागतम्।
यद्यशोऽम्बुजखण्डं मे दग्धु लग्नो यशोऽनल. ॥
यत्कृत दुःसह सोढ विरहव्यसन मया।
सा क्रिया कुलचन्द्र म प्रकरोति मलीमसम् ॥
विनीता या समुद्दिश्य प्रवीरा. कपिकेतवः।
करोति मलिनां सीता सा मे गोत्रकुमुद्वतीम् ॥
यदर्थमब्धिमुत्तीर्य रिपुध्वंस रण कृतम्।
करोति कलुषं सा मे जानकी कुलदर्पणम् ॥
युक्त जनपदो वक्ति दुष्टपुसि परालये।
अवस्थिता कथ सीता लोकनिन्द्या मयाहृता ॥
अपश्यन् क्षणमात्र यां भवामि विरहाकुलः।
अनुरक्तां त्यजाम्येता दयितामधुना कथम् ॥
चक्षुर्मानसयोर्वासं कृत्वा याऽवस्थिता मम।
गुणधानीमदोषां तां कथं मुञ्चामि जानकीम् ॥
अथवा वेत्ति नारीणा चेतसः को विचेष्टितम्।
दोषाणा प्रभवा यासु साक्षाद्वसति मन्मथः ॥

० ० ०

२४९. पद्मपुराण ९७।१०५-१०६
२५०. पद्मपुराण १०२।१३०-१३२

दृङ्मात्ररमणीयां तां निर्मुक्तमिव पन्नगः।
तस्मात्त्यजामि वैदेहीं महादुःखजिहासया।
अशून्यं सर्वदा तीव्रस्नेहबन्धवशीकृतम्।।
यया मे हृदयं मुक्त्या विरहामि कथं तकाम्।
यद्यप्यहं स्थिरस्वान्तस्तथाप्यासन्नवर्तिनी।
अर्चिर्वन्मम वैदेही मनोविलयनक्षमा।।
मन्ये दूरस्थिताऽप्येषा चन्द्ररेखा कुमुद्वतीम्।
यथा चालयितुं शक्ता धृतिं मम मनोहरा।।
इतो जनपरीवादश्चेतः स्नेहः सुदुस्त्यजः।
अहोऽस्मि भयरागाभ्यां प्रक्षिप्तो गहनान्तरे।।
श्रेष्ठा सर्वप्रकारेण दिवोकोयोषितामपि।
कथं त्यजामि तां साध्वीं प्रीत्या यातामिवैकताम्।।
एतां यदि न मुञ्चामि साक्षाद्दुःकीर्तिमुद्गताम्।
कृपणो मत्समो मह्यां तदैतस्या न विद्यते।।"[२५१]

इनके अतिरिक्त निर्वेद, आवेद, दैन्य, श्रम, मद, जड़ता, उग्रता, मोह, विबोध, स्वप्न, अपस्मार, गर्व, मूर्च्छा, आलस्य, अमर्ष, निद्रा, अवहित्था, औत्सुक्य, उन्माद, शंका, स्मृति, मति, ग्लानि सत्रास, लज्जा, हर्ष, असूया, विषाद आदि सभी संचारी भावों के उदाहरण पद्मपुराण में मिलते हैं जिनको हम स्थानाभाव के कारण यहाँ प्रस्तुत नहीं कर पा रहे हैं।

'पद्मपुराण' में कल्पनातत्त्व :

कवि के लिए कल्पना अनिवार्य होती है। यही वह तत्त्व है जिसके आधार पर कवि वहाँ पहुँच सकता है जहाँ कि रवि भी नहीं पहुँच पाता। आलोचना की दृष्टि से 'कल्पना' का विचार भावपक्ष के विवेचन के अन्तर्गत हुआ करता है।

रविषेण कल्पना के धनी हैं। उनकी कल्पना का पूर्ण वैभव तो ग्रन्थावलोकन से ही शक्य है तथापि स्थालीपुलाकन्याय से इनके काव्य के कल्पनातत्त्व पर दिङ्मात्र विचार किया जा रहा है।

'पद्मपुराण' में कल्पना इन दशाओं में सहायता प्रदान करती हुई दृष्टिगोचर होती है:—

(१) गुण तथा स्वभाव-चित्रण में,

(२) भाव-चित्रण में,

---

२५१. पद्मपुराण ९६।५४-७१

(३) कार्य-व्यापार-चित्रण में,
(४) घटना-चित्रण में,
(५) वस्तु-चित्रण में तथा
(६) कल्पना-वैभव के प्रदर्शन मे ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के सप्तम अध्याय मे हम सैकड़ों ऐसे संकेत देंगे जिनमें इन रूपों को साक्षात्कृत किया जा सकेगा। उपमा-उत्प्रेक्षा-रूपकों में, विविध वर्णनो में एवं अपने अनुसार घटनाचक्र को मोड़ने मे कल्पना का सुन्दर प्रयोग किया है जिसका व्याख्यान हम प्रस्तुत-शोध प्रबन्ध के चतुर्थ और पञ्चम अध्याय में घटनाओं और पात्रों का विचार करते समय कर आये हैं एव सप्तम अध्याय में अलंकारों, वर्णनों और भाषा आदि के विचार के समय करेंगे। यहाँ व्यर्थ विस्तार की आवश्यकता नही है।

'पद्मपुराण' में विचार या बुद्धितत्त्व

काव्य के भावपक्ष मे कल्पना, भावना और विचार समन्वित रूप मे उपस्थित हुआ करते है—यह हम पहले ही बता चुके है। 'शक्तिर्व्युत्पत्तिरभ्यासः' को समष्टिरूप मे काव्यहेतुता प्रदान करने का भी यही आशय ज्ञात होता है। कवि अपने काव्य के माध्यम से अपने ज्ञान, अपने दर्शन एव अपनी विचारधारा को पाठकों तक सम्प्रेषित करना चाहता है किन्तु उसे सहृदयत्व को अक्षुण्ण बनाये रखने के निमित्त यह ध्यान रखना चाहिए कि अधिक बौद्धिकता से काव्य दर्शन न बन जाये, कहीं हृदय को मस्तिष्क दबोच न बैठे, कही सहृदय सरस भावधारा से निकल कर विचारों की विकट-विन्ध्याटवी में न उलझ जाये और कहीं कविता 'प्रोपेगन्डा' न बन जाये। प्रत्येक भाषा के प्रत्येक कवि ने किसी न किसी विचार (चाहे यह धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, साहित्यिक अथवा कैसा ही हो) को—दर्शन को—मान्यता को—अपनी कृतियों मे प्रकाशित किया है; यथा—हिन्दी के जायसी ने सूफी विचारधारा को, तुलसी ने समन्वयात्मक वैष्णव-विचारधारा को तथा प्रसाद आदि ने समरसतावाद आदि को। कवियो के इन विचारों का मूल्यांकन करते समय हमें यह देखना होता है कि ये विचार 'कान्तासम्मित' रीति से प्रस्तुत है अथवा 'कटुकौषध' रूप मे ? क्या कवि ने व्यंजना का अधिक आश्रय लिया है अथवा कोरी अभिधा का ? यहाँ हम 'पद्मपुराण' विचारतत्त्व पर संक्षिप्त विचार करेंगे।

'पद्मपुराण' की रचना के मूल में एक 'विचार' निहित है, वह है आर्य रामायण की दोषपूर्णता दिखाना तथा उसका परिष्कार। यह परिष्कार रविषेण के मत

से उसे जैनी बाना देकर ही किया जा सकता है। राजा श्रेणिक ने जो आर्य राम-कथा-विषयक चिन्ता प्रकट की है एवं उसके रचयिता वाल्मीकि को परोक्ष रीति से 'कुकवि' की उपाधि से विभूषित किया है[२५२] वह आचार्य रविषेण का जैन मस्तिष्क ही बोल रहा है जिसका समाधान गौतम गणधर के मुख से उन्होने प्रस्तुत कराया है। उनका 'कविनिबद्धवक्तृभणितिसिद्ध' विचार स्पष्टतः देखा जा सकता है—

"कथं जिनेन्द्रधर्मेण जाताः सन्तो नरोत्तमाः।
महाकुलीना विद्वांसो विद्यद्योतितमानसा.॥
श्रूयन्ते लौकिके ग्रन्थे राक्षसा रावणादयः।
वसाशोणितमांसादिपानभक्षणकारिण. ॥
० ० ०
एवंविध किल ग्रन्थ रामायणमुदाहृतम्।
शृण्वतां सकलं पाप क्षयमायाति तत्क्षणात्॥
तापत्यजनचित्तस्य सोऽयमग्निसमागमः।
शीतापनोदकामस्य तुषारानिलसगमः॥
हैयङ्गवीनकाङ्क्षस्य तदिदं जलमन्थनम्।
सिकतापीडनं तैलमवाप्तुमभिवाञ्छतः॥
महापुरुषचारित्रकूटदोषविभाविषु ।
पापैरधर्मशास्त्रेषु धर्मशास्त्रमति. कृता॥
० ० ०
अश्रद्धेयमिदं सर्व वियुक्तमुपपत्तिभिः।"[२५३]

अभिप्राय यह है कि राक्षसों, वानरों, कुम्भकर्ण के षाण्मासिक निद्रात्याग, रावण की इन्द्रादि-विजय, राम द्वारा सुवर्ण-मृग-हनन तथा छिपकर बाली-हनन आदि के विषय मे शकाएँ उठाकर उनका 'जिनेन्द्रोक्त तत्त्वशंसन पर वाक्य'[२५४] से समाधान करना ही 'पद्मपुराण' का मूल विचार है। इस समाधान के लिए भूमिका बनायी गयी जिसके अनुसार क्षेत्र-काल-कुलकर-तीर्थंकर-वानरवश राक्षसवश आदि की उत्पत्ति तथा स्थल-स्थल पर अनेक जैन-सिद्धान्तो का प्रस्तुतीकरण किया गया है क्योकि—

२५२. दे० पद्मपुराण २।२२९-२४९।
२५३ दे० पद्म० २।२३०, २३१, २३८, २३९, २४०, २४१, २४९।
२५४ वही, ३।२६।

"न बिना पीठबन्धेन विधातु सद्म शक्यते ।
कथाप्रस्तावहीनं च वचनं छिन्नमूलकम् ॥"[२५५]

ये जैन-सिद्धान्त कहीं साक्षात् रूप में और कहीं परम्परया पात्रों के वचन और कर्मों से आचार्य रविषेण ने प्रकाशित किये है। इनको तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—(१) यथावस्थित-जैनधर्म निरूपण तथा उपदेश, (२) फुटकल प्रसंगों में जैनधर्म की उदात्तता एवं कुतीर्थियों की निन्दा एवं (३) विविध पात्रों के आचरण से जैन-मान्यताओं का गौरव तथा उनके आचरण पर बल का प्रतिपादन।

जहाँ तक यथावस्थित जैन धर्म के सिद्धान्तों के निरूपण एवं उसके उपदेशों का प्रश्न है—वे एक हजार तीन सौ बहत्तर (१३७२) पद्यों मे फैले हुए हैं जिनमें महाव्रत, अणुव्रत, कषाय तीर्थंकर, कुलकर, अहिंसा, दिनभोजन, दैगम्बरी दीक्षा, जिनेन्द्रबिम्बनमस्कार आदि के माहात्म्य, जैनेतर मतों का खण्डन, वैदिक यज्ञानुष्ठान-खण्डन आदि विस्तृत रूप से वर्णित है। समस्त जैन-धर्म का निष्कर्ष इन पद्यों में देखा जा सकता है। इस आधार पर यदि 'पद्मपुराण' को जैनधर्म का 'ज्ञान-कोष' कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं है। गणभृत के द्वारा जिनेन्द्रोक्त-धर्म-कथन, क्षेत्र-काल-कुलकर-आदि-वर्णन, ऋषभ के सासारिक-क्षणिकता-प्रतिपादक विचार, वृषभदेव द्वारा अणुव्रतादि का धर्मोपदेश, अजित द्वारा तीर्थंकर-चक्रवर्ती-बलभद्र-नारायण-प्रतिनारायण-वर्णन, विद्युत्केश-महोदधि को मुनिराज का उपदेश, ब्रह्मरुचि ब्राह्मण को मुनिराज का उपदेश, मरुत्वान् के यज्ञ में नारद का शास्त्रार्थ, अनन्तबल केवली का रावण को उपदेश, गणधर द्वारा चौबीस तीर्थंकरों एवं अन्य शलाका-पुरुषों का वर्णन, गुरु का कुण्डलमण्डित को उपदेश, सर्वभूतहित का दशरथ को उपदेश, द्युतिभट्टारक का भरत को उपदेश, भरत की वैराग्य-चिन्ता, देशभूषण मुनि का उपदेश, सर्वभूषण केवली का राम को उपदेश, लक्ष्मण से पुत्रों का कथन, हनूमान् की सासारिक-क्षणिकता-विषयक-चिन्ता, इन्द्र का भाषण तथा मोहग्रस्त राम को विभीषण का समझाना—ये ऐसे उपदेश हैं जिन्हें पढ़कर आचार्य रविषेण के 'पद्मपुराण' के कथा-नेपथ्य में स्थित विचार-संघात का परिचय मिल जाता है।[२५६] इन सभी का सार यह है जो बारम्बार घूम फिर

२५५ पद्मपुराण ३।२८

२५६ देखिए—पद्मपुराण २।१५५-१९८, ३।३०-८८, ३।२६८-२६७; ४।३५-५१, ५।१८५-२८३, ५।३२५-३८२, ६।२७६-३१२, ११।३७-५१, ११।१९८-२२९, ११।१२९-२५१; १३।९२-९७, १८।१८-३५८, २०।१-२५०, २६।६८-९८; २६।९६-१०३, ३१।८-२१; ३२।१४१-१८३, ८३।४७-६४, ८५।१८-२५, १०५।१०९-२६१, ११०।७२-८९, ११२।७७-९९, ११४।१७-४४, ११७।५-४४।

कर हमारे समक्ष आता है—

"जैनमेवोत्तमं वाक्यं जैनमेवोत्तमं तपः ।
जैन एव परो धर्मो जैनमेव महामतम् ॥"[२५७]

यदि इन उपदेशों पर ही बारीकी से विचार किया जाय तो एक खासा 'शोध-ग्रंथ' लिखा जा सकता है किन्तु यहाँ उनके पूर्ण व्याख्यान का अवकाश नहीं है, अतः दिङ्मात्र संकेत कर दिया गया है।

विचारों के अभिव्यञ्जन का दूसरा रूप है फुटकल प्रसंगागत पद्य जिनमें जैन धर्म की सर्वोच्चता सिद्ध की गयी है; कुतिर्थियों, सूत्रकण्ठों, यज्ञदीक्षाव्यपातक-कारियों एवं दुष्टात्मा निर्दय वेदाभ्यासियों की निन्दा की गयी है; सम्यग्दर्शन-भावित मुनियों तथा अर्हद्बिम्ब-नमस्कारकारियों की पावनता सिद्ध की गयी है, चैत्यनिर्माण की महिमा गायी गयी है; मांसादि-त्याग पर बल दिया गया है; निर्ग्रन्थ मुनियों की सेवा को मान्य ठहराया गया है तथा वेदमञ्जक कुग्रंथ की गर्हा की गयी है। दो शब्दों में—स्वमतमण्डन एवं परमतगर्हणा की गयी है। प्राय. पर्व के अन्तिम पद्य एवं अन्य सैकड़ों पद्य इसी प्रकार के निदर्शन हैं[२५८] जिनमें ऐसे-ऐसे भाव हमारे समक्ष आते हैं :—

"इति प्रबुद्धोद्यतमानसा जना
जिनश्रुतौ सज्जत भो पुनः पुनः ॥"

तथा

"ततो भजत भो जनाः सततभूरिसौख्यावहं
भवासुखतमश्छिद जिनवरोक्तधर्मं रविम् ॥"[२५९]

विचारों की अभिव्यक्ति का तीसरा रूप है—अनेक पात्रों के आचरण द्वारा जैन धर्म-सम्मत विचारों का प्रचार। प्रायः सभी पात्रों को आरम्भ में या अन्त में

---

२५७ पद्मपुराण ६।३००

२५८ दे० पद्मपुराण ११३२; ३।२४८ २६६,२६९-२५३ २८३-२८९,३००,३३९,४।१०-१३१; ५।३३, ३८, ३९, ४२, ६७, ७०, १७७, ३०५-३१८, ३१५-३२०. ६।८५, १४५-१४७, १५०, २०७, २१४, २४१, २६०-२६६, ३३०, ३३४, ४३९-४२८; ७।१०-१२४, १०५, १९८ १९७, १९९, २०३; ८।५३, १४९, २२०, २४४-२४८, २५१, २८५, २८६, ३९८; ९।७४, ९०-९९, १२६, १४७, १६१ १७७-१९२, १९८, २०४-२०७, २१२-२२३; १०।१००, १६३-१६६; ११।४, ५, ६, ९, ७२, ७९, ८०, ८१, ८२, ८४-१०५, २८१,२९३; १२।६३-६६, १०६; १५।७४; १७।१७५, १७६, १९८, २०५, २०६, २९६, १९।५५, १३८, १३९, १४०; २१।२१-२४, ३७, ५८-७१; २२।८३, १००, १३५, १७९-१८१; २३।६, ७, १०, ११, १९; २४।६६ २५।१० तथा और भी अनेक स्थल।

२५९. पद्म० १६।२४३

दैगम्बरी दीक्षा दिलाकर अथवा श्रमणधर्म का अंगीकार कराकर अथवा जिनस्तुति कराकर रविषेण ने जैनधर्म-परायणता का स्पष्ट प्रचार किया है। कपिल ब्राह्मण की कथा से यह सिद्ध कर दिया गया है कि बिना जैन-दीक्षा के प्राणी का कल्याण हो ही नहीं सकता। इसीलिए ऐसे उपाख्यानो को पढ़ने का भी अपार माहात्म्य बताया गया है, यथा–

"य इदं कपिलानुकीर्तनं पठति प्रह्लमनिः शृणोति वा।
उपवाससहस्रसम्भवं लभतेऽसौ रविभासुर फलम्॥"[२६०]

इस प्रकार के प्रभूत उपाख्यान 'पद्मपुराण' में भरे पड़े हैं जिनमें पात्रों के पूर्वभवों के वृत्तान्त तथा इस जन्म में जलबुद्बुद-समाकार, शरद्घनसंकाश, विद्युद्द्योतप्राय नि.सार जीवन का ध्यान करके उनकी निर्ग्रन्थ-दीक्षा-दैगम्बरीदीक्षा–जिनदीक्षा का वर्णन है जिसकी ध्वनि यही है कि 'हे पद्मपुराण के पाठको, तुम भी जिनदीक्षा से मुँह मत मोडना; जैनी गुणगणकथा करते रहना।' प्रायः पात्रों के सम्यग्दर्शनयुक्त आचरण दिखाकर बाद में यह उपदेश दे दिया जाता है—

"धन्याः सद्युति कारयन्ति परम लोके जिनानां गृहम्[२६१]

अथवा

"वित्तस्य जातस्य फल विशालं
वदन्ति सुज्ञाः सुकृतोपलम्भम्।
धर्मश्च जैनः परमोऽखिलेऽस्मिन्
जगत्यभीष्टस्य रविप्रकाशे॥"[२६२]

विचारतत्त्व के अध्ययन की एक दिशा और हो सकती है--वह है सूक्तियों का अध्ययन। इन सूक्तियों से कवि के विचारों से परिचित हुआ जा सकता है। रविषेण ने सहस्राधिक सूक्तियाँ 'पद्मपुराण' में दी है जिनकी एक संक्षिप्त सूची हम परिशिष्ट में देंगे। इन सूक्तियों मे रविषेण ने अपने अनुभूत विचारों का प्रकाशन किया है।

०

२६०. वही, ३५।१९५
२६१. वही, ६७।२७
२६२. वही ६७।२८

सप्तम अध्याय

'पद्मपुराण' का कलापक्ष-निरूपण

यों तो काव्य के भावपक्ष और कलापक्ष अविभाज्य है किन्तु अध्ययन के सौकर्य के लिए उन्हें उपचार मे द्विधा विभक्त करके परीक्षित किया जाता है। काव्य के भावपक्ष मे रसादि का विवेचन हुआ करता है और कलापक्ष मे भाषा-छन्द-अलंकार-गुण-दोष-रीति-शब्दशक्ति-वक्रोक्ति-वर्णनकौशल आदि का। कहने का आशय यह है कि काव्य के कलापक्ष मे हम काव्य के उत्कर्षापकर्षाधायक तत्त्वो का विवेचन किया करते है। कलापक्ष के अध्ययन से ही हम किसी कवि की शैली से परिचित होते है। यहाँ हमे 'पद्मपुराण' का उपर्युक्त दृष्टिकोण से अध्ययन करना है।

शैली : अनुभूति की अभिव्यक्ति के प्रकार को शैली कहा जाता है। इसके अनेक गुणों मे—अनेकता मे एकता और थोड़े में बहुत की व्यंजना करना आदि आते है। इनके अतिरिक्त शैली में सरलता, सुबोधता, चारु-अलंकार-योजना, रमणीयता और प्रवाह आदि गुण भी देखने होते हैं। इन्ही के आधार पर आलोच्य ग्रन्थ का परीक्षण हमें करना है।

'पद्मपुराण' एक पौराणिक शैली का काव्य है जैसा कि पहले में बताया जा चुका है। इसमें कविता और धार्मिकता का साथ-साथ निर्वाह हुआ है। साहित्यिक संस्कृत भाषा के मात्रावृत्त और वर्णवृत्तो में कथा चलती है। आलंकारिक वर्णनों का प्राचुर्य है। कथा सात अधिकारों एवं १२३ पर्वों में विभक्त हैं। इसमे कवि की शैली बौद्धिकताप्रधान है। किसी भी चीज को स्पष्ट और तर्कसंगत रूप में उपस्थित करना कवि का लक्ष्य रहा है। इसीलिए प्रथम पर्व में 'सूत्रविधान'

किया गया है तथा अनेक स्थलों पर प्रचलित मान्यताओं की बौद्धिक व्याख्याएँ प्रस्तुत की गयी हैं। यहाँ कवि की अपने समस्त लोकशास्त्र-काव्याद्यवेक्षण को प्रदर्शित करने की प्रवृत्ति का स्पष्ट आभास मिलता है। गद्य और पद्य—दोनों शैलियों में उसने अपने काव्य को सँवारा है। कवि ने स्थान-स्थान पर अभिधा या व्यंजना से जैन धर्म का प्रचार किया है। किसी भी वस्तु या प्रसग का सांगोपांग वर्णन करने में कवि का मन बहुत रमा है। भाव यह कि 'पद्मपुराण' की शैली पौराणिक काव्य की अलंकृत शैली है।

भाषा : शब्द और अर्थ का नित्य सम्बन्ध है। अनुभूति की अभिव्यक्ति का प्रधान साधन भाषा ही है। काव्य की भाषा में उसके नादसौंदर्य तथा अवसरानुकूलता आदि का होना आवश्यक होता है। यहाँ हम अपने आलोच्य ग्रन्थ की भाषा पर विचार करेंगे।

'पद्मपुराण' की भाषा सरकृत है जिसे देखकर रविषेण के भाषाधिकार का सहज ही ज्ञान हो जाता है। उनकी भाषा की भावानुकूल समस्तता-व्यस्तता, नाद-सौन्दर्य, चित्रात्मकता, तिङन्त-सुबन्त-पदो के मंजुल प्रयोग, गतिशीलता, आलकारिकता तथा प्रासादिकता को देखकर प्रतीत होता है जैसे वाणी वश्य होकर ही उनके पीछे चल रही हो। उनकी रचना में शब्दों का 'अहमहमिकया परापतन' आदि से अन्त तक देखने को मिलता है। उनकी भाषा के गुणालकार तो हम पृथक् निर्दिष्ट करेंगे, यहाँ केवल उनकी भाषा की कतिपय विशेषताओं का सक्षिप्त संकेत करते हैं।

आचार्य रविषेण ने भाषा को भावानुसार चलाया है। विकटविन्ध्याटवी, दण्डकवन एवं युद्ध आदि के वर्णन मे वह समस्त है तथा विरह-विलाप-उपदेश आदि के समय व्यस्त। कहीं-कहीं तो श्लोक के पूरे-के-पूरे पाद एक शब्द ही बन गये है और कही अवसरानुसार एक-एक पाद मे कई-कई वाक्य हो गये है। आलंकारिक वर्णन के समय भाषा रत्नहार के सदृश ग्रथित है तो साधारण स्थलों पर मुक्ताकणों के तुल्य। उदाहरणार्थ युद्ध का वर्णन लीजिए जहाँ एक-एक चरण एक-एक शब्द हो गया है—

"एव महति सङग्रामे प्रवृत्ते भीतिभीषणे।
भटानामुत्तमानन्दसम्पादनपरायणे ॥
गजनासासमाकृष्टवीरकल्पिततत्करे ।
जवनाश्वखुराघातपनत्स्कर्त्तनोद्यते ॥
सारथिप्रेरणाकृष्टरथविक्षतवाजिनि ।
जङ्घावष्टम्भसङ्क्रान्तक्षतकुम्भमहागजे ॥

परस्परजवाघातदलत्पादातविग्रहे ।
भटोत्तमकराकृष्टपुच्छनिष्पन्दवाजिनि ॥
कराघातदलत्कुम्भिकुम्भनिष्ठ्यूतमौक्तिके ।
पतन्मातङ्गनिर्भग्नरथाहतपतङ्गटे ॥
कीलालपटलच्छन्नगलन्नामाकदम्बके ।
गजकर्णसमुद्भूततीव्राकुलसमीरणे ॥"[263]

इसी प्रकार लवणाङ्कुश और राम के युद्ध का एक अंश लिया जा सकता है—

"क्वणदश्वसमुद्धूतस्यन्दनोन्मुक्तचीत्कृतम् ।
तुरङ्गजवविक्षिप्तभटसीमन्तिताविलम् ॥
नि:क्रामद्रुधिरोद्गारसंहितोरुभटस्वनम् ।
वेगवच्छस्त्रसम्पातजातवह्निकणोत्करम् ॥
करिशूत्कृतसम्भूतसीकरासारजालकम् ।
करिदारितवक्षस्कभटसंकटभूतलम् ॥
पर्यस्तकरिसंरुद्धरणमार्गाकुलायतम् ।
नागमेघपरिश्च्योतन्मुक्ताफलमहोपलम् ॥
मुक्तासारसमाघातविकटं कर्मरङ्गकम् ।
नागोच्छालितपुन्नागकृतखेचरसङ्गमम् ॥
शिर:क्रीतयशोरत्न मूर्च्छाजनितविश्रमम् ।
मरणप्राप्तनिर्वाण बभूव रणमाकुलम् ॥"[264]

'महावन' के वर्णन में कवि की लेखनी से ऐसे ही समस्त पद धाराप्रवाह से निकलते जा रहे हैं—

"ततस्ते भूमहीध्राग्रग्रावव्रातसुकर्कशम् ।
महातरुसमारूढवल्लीजालसमाकुलम् ॥
क्षुदतिक्रुद्धशार्दूलनखविक्षतपादपम् ।
सिंहाहतद्विपोद्गीर्णरक्तमौक्तिकपिच्छलम् ॥
उन्मत्तवारणस्कन्धतप्टस्कन्धमहातरुम् ।
केसरिध्वनिवित्रस्तसमुत्कीर्णकुरङ्गकम् ।
सुप्ताजगरनि:श्वासवायुपूरितगह्वरम् ।
वराहयूथपोताग्रविषमीकृतपल्लवम् ॥

---

263. पद्मपुराण 12।299-304।
264. पद्मपुराण 102।195-200।

महामहिषशृङ्गाग्रभग्नवाल्मीकसानुकम् ।
ऊर्ध्वीकृतमहाभोगभञ्ज्वरद्भोगिभीषणम् ।।
तरक्षुक्षतसारङ्गरुधिरभ्रान्तमक्षिकम् ।
कण्टकासक्तपुच्छाग्रप्रताम्यच्चमरीगणम् ।।
दर्पसम्पूरितश्वाविन्मुक्तसूचीविचित्रितम् ।
विषपुष्परजोघ्राणघूर्णितानेकजन्तुकम् ।।
खड्गिखड्गसमुल्लीढतरुस्कन्धच्युतद्रवम् ।
उद्भ्रान्तगवयव्रातभग्नपल्लवजालकम् ।।
नानापक्षिकुलक्रूरकूजितप्रतिनादितम् ।
शाखामृगकुलाक्रान्तचलत्प्राग्भारपादपम् ।।
तीव्रवेगगिरिस्रोतःक्षतनिर्दीर्णक्षमम् ।
वृक्षाग्रविस्फुरत्स्फीतदिवाकरकरोत्करम् ।।
नानापुष्पफलाकीर्णं विचित्रामोदवासितम् ।
विविधौषधिसम्पूर्णं वनसस्यसमाकुलम् ।।
क्वचिन्नीलं क्वचित्पीतं क्वचिद्रक्तं हरित्क्वचित् ।
पिञ्जरच्छायमन्यत्र विविधं विपिनं महत् ।।"[२६५]

एक नहीं, सैकड़ों ऐसे स्थल है जहाँ कवि ने इस समास-शैली का अवलम्बन किया है। प्राय आलकारिक और सश्लिष्ट वर्णनों में यही समास-बहुल भाषा प्रयुक्त हुई है। ऐसी भाषा को देखकर दण्डी-बाण-सुबन्धु याद आने लगते है। मुनि सुव्रत जिनेन्द्र का पचकल्याणक-वर्णन तो एक ही वाक्य मे समाप्त हुआ है जिसमे रवि-षेण की गद्यमयी भाषा की स्फीति दर्शनीय है। इस 'वृत्तगन्धि गद्य' में 'महीरत्न-प्रभाशकेगबालुकापङ्क्षमप्रभाध्वान्तभानिप्रकृष्टान्धकाराभिधा'—जैसे समासो की छटा देखते ही बनती है।[२६६]

यदि एक ओर ऐसे कलापक-कुलको तथा महावाक्यो का कवि को मोह है तो दूसरी ओर उसके चित्त मे छोटे-छोटे वाक्यों की भी प्रीति समाई हुई है। वस्तुत 'रससिद्ध कवीश्वरों' की भाषा ऐसी ही होती है। वियोगी राम की उक्ति की भाषा ऐसी ही रही है—

"भो भो महीधराधीश धातुर्भिर्विविधैश्चित।
मुनर्दशरथस्य त्वां पद्माख्यः परिपृच्छते।।

---

२६५. पद्मपुराण ३३।२७-३३।
२६६. दे० वही, ७८।६२-६३ के बीच का गद्यभाग।

विपुलस्तननम्राङ्गा बिम्बोष्ठी हंसगामिनी।
सन्नितम्बा भवेद् दृष्टा सीता मे मनसः प्रिया॥
दृष्टा दृष्टेति किं वक्षि ब्रूहि ब्रूहि क्व सा क्व सा।
केवलं निगदस्यैवं प्रतिशब्दोऽयमीदृश ॥"२६७

इसी प्रकार सूक्तियों में अथवा उपदेश-दान के समय भाषा परम सरल तथा व्यस्त हो गयी है, यथा—

"प्राप्यते येन निर्वाण किमन्यत्तस्य दुष्करम्।"२६८

रविषेण ने अवसरानुकूल ऐसे शब्दों से अपनी भाषा को सजाया है जो भावों के चित्र-से उपस्थित कर देते हैं। वाद्यों की ध्वनि एवं पक्षियों के शब्दों के साक्षात् चित्र से उपस्थित कर दिये गये हैं, यथा—

"सधारलम्बिताम्भोदवृन्दनिर्घोषभैरवाः ।
शंखकोटिस्वनोन्मिश्रास्तूर्याणामुद्ययु. स्वना ॥
भम्भाभेर्यो मृदङ्गाश्च लम्पाका धुन्धुमण्डुका ।
झम्लाम्लातकहक्काश्च हुङ्कारा दुन्दुकाणका ॥
झर्झराहेकगुञ्जाश्च काहला दर्दुरादय ।
समाहता महानाद मुमुचु कर्णपूर्णकम् ॥"२६९

इसी प्रकार—

"प्रलम्बजलभृत्तुल्यास्तूर्यघोषा समुद्ययु ।
शङ्खकोटिरवोन्मिश्रा भम्भाभेरी-महारवा ॥
पटहाना पटीयासो मन्द्राणा मन्द्रता ययु ।
लम्पाना कम्पशम्पाना धुन्धूना मधुरा भृशम् ॥
झल्लाम्लातकहक्काना हैकहुङ्कारसङ्गिनम् ।
गुञ्जारटितनाम्नाञ्च वादित्राणा महास्वना ॥
मुकला. काहला नादा घना हलहलारवा ।
अट्टहासास्तुरङ्गैर्भामहस्याद्यादिनिस्वना. ॥"२७०

इन पद्यों को पढ़ते-पढ़ते बिना अर्थ समझे भी—प्रतीत होने लगता है जैसे कहीं बाजे बज रहे हों, हल्ला-कोलाहल मच रहा हो। इसी प्रकार की चित्रविधायिनी भाषा युद्धस्थलों में योद्धाओं की उक्तियों में तथा नारियों के भावालाप-वर्णनों में

२६७. पद्मपुराण ४४।१३६-१३८।
२६८. पद्मपुराण ५६।५५
२६९. वही, ५८।२६-२८
२७०. वही, ८२।२९-३२

देखी जा सकती है।

'पद्मपुराण' की भाषा में नाद-सौन्दर्य तो बहुलता से व्याप्त है, पढ़ते-पढ़ते तरंग आने लगती है, श्लोक को पढ़कर कण्ठ कर लेने को जी चाहता है, यथा—

"जुगुञ्जुर्मञ्जवो गुञ्जा विनेदुः पटहा पटु।
नान्द्यो ननन्दुरायातं चक्वणुः काहलाः कलम्॥
अशब्दायन्त शङ्खौघाः धीर तूर्याणि दध्वनुः।
ववणुर्विशदं वंशाः कांसनालानि चक्वणुः॥"[२७१]

'पद्मपुराण' की भाषा को अनुरणनात्मक शब्दों के प्रयोग (ऑनोमोटोपोइया) ने एक विशिष्ट विच्छित्ति प्रदान कर रखी है। युद्ध की छमछमाहट तथा धमधमाहट एवं जल की गुलगुल-कलकल का ऐसे ही शब्दों से क्या ही अच्छा चित्र खींचा गया है—

"क्वचिद्ग्रसदिति ध्वानो भवत्यन्यत्र शृदिति।
क्वचिद्रणरणारावः क्वचित्किणिकिणिस्वनः॥
त्रपत्रपायतेऽन्यत्र तथा दमदमायते।
छमाछमायतेऽन्यत्र तथा पटपटायते॥
छलछलायतेऽन्यत्र टद्दटद्दायते तथा।
तटत्तटायतेऽन्यत्र तथा चटचटायते॥
घग्घरघग्घायतेऽन्यत्र रण शस्त्रोत्थितैः स्वरैः।
शब्दात्मकमिवोद्भूतं तदा त्वजिरमण्डलम्॥"[२७२]

इसी प्रकार सीता के अग्नि-प्रवेश के समय अग्नि-कुण्ड का वापी मे परिवर्तित हो जाना निबद्ध करते समय कवि ने वापी के जल की इन अनुरणनात्मक शब्दों के सहारे अभिव्यक्त की है—

"भवभ्मृङ्गनिस्वानात् क्वचिद् गुलकुलायते।
भुभुद्भुंभायतेऽन्यत्र क्वचित् पटपटायते॥
क्वचिन्मुञ्चति हुङ्कारान् घूकारान्क्वचिदायतान्।
क्वचिद्दिमिदिमिस्वानान् जुगुधुद्भूदिति क्वचित्॥
क्वचित्कलकलारावाञ्छसद्मसदिति क्वचित्।
टुटुघण्टासमुद्घुष्टमिति क्वचिदितीति च॥"[२७३]

'पद्मपुराण' मे रविषेण ने सुबन्त-तिङन्त-पदों के बड़े सुन्दर-सुन्दर प्रयोग

२७१. पद्मपुराण १०५।५२-५३।
२७२. वही, १२।२६०-२६३।
२७३. वही, १०५।३३-३५।

किये हैं। ऐसे स्थलों पर दीपक अलंकार माना जाता है। यहाँ ऐसे एक क्रिया-पद-प्रयोग को प्रस्तुत किया जा रहा है—

"चक्रवत्परिवर्तन्ते व्यसनानि महोत्सवैः।
शनैर्मर्यादयो दोषाः प्रयान्ति परिवर्द्धनम्॥
क्लिश्यन्ते द्रव्यनिर्मुक्ता म्रियन्ते बालतासु च।
पूर्वोपात्तायुषि क्षीणे हेतुना चोपसंहृते॥
नाना भवन्ति तिष्ठन्ति निघ्नन्ते शोचयन्ति च।
रुदन्त्यदन्ति बाधन्ते विवदन्ति पठन्ति च॥
ध्यायन्ति यान्ति वल्गन्ति प्रभवन्ति वहन्ति च।
गायन्त्युपासतेऽश्नन्ति दरिद्रति नदन्ति च॥
जयन्ति रान्ति मुञ्चन्ति राजन्ते विलसन्ति च।
तुष्यन्ति शासति क्षान्ति स्पृहयन्ति हरन्ति च॥
त्रपन्ते दान्ति सज्जन्ति दूयन्ते कूटयन्ति च।
मार्गयन्तेऽभिधावन्ते कुहयन्ते सृजन्ति च॥
क्रीडन्ति स्यन्ति यच्छन्ति शीलयन्ति वमन्ति च।
लुच्यन्ति मान्ति सीदन्ति क्रुध्यन्ति विलपन्ति च॥
तुष्यन्त्यर्चन्ति वञ्चन्ति सान्त्वयन्ति विदन्ति च।
मुह्यन्त्यर्वन्ति नृत्यन्ति स्निह्यन्ति विनयन्ति च॥
नुदन्त्युच्छन्ति कर्षन्ति भृज्यन्ति विनमन्ति च।
दीव्यन्ति दान्ति शृण्वन्ति जुह्वत्यञ्जन्ति जाग्रति॥
स्वपन्ति विभ्यतीङ्गन्ति श्यन्ति दन्ति तुदन्ति च।
प्रान्ति सुन्वन्ति सिन्वन्ति रुन्धन्ति विरुवन्ति च॥
सीव्यन्त्यटन्ति जीर्यन्ति पिबन्ति रचयन्ति च।
वृणते परिमृद्नन्ति विस्तृणन्ति पृणन्ति च॥
मीमांसन्ते जुगुप्सन्ते कामयन्ते तरन्ति च।
चिकित्सन्त्यनुमन्यन्ते वारयन्ति गृणन्ति च॥
एवमादिक्रियाजालसन्ततव्याप्तमानसाः।
शुभाशुभसमासक्ता व्यतिक्रामन्ति मानवाः॥"[२७४]

'पद्मपुराण' की भाषा अनेक स्थलों पर समयानुसार आलंकारिक होती गयी है जिसका संकेत हम, पृथक् से, अलंकारों के विवेचन मे करेंगे।

---

२७४. पद्मपुराण २१।६९-७१।

रविषेण का शब्दकोष अत्यन्त स्फीत है। एक-एक वस्तु अथवा प्राणी के लिए उन्होंने नये-नये शब्द प्रयोग किये है यथा—भानुकर्ण के लिए 'भास्करश्रवण', 'भास्करश्रुति' आदि, 'दशानन' के लिए 'विंशत्यर्धमुख', 'दशास्य' आदि। इसी प्रकार उन्होंने प्रत्येक नाम की व्युत्पत्ति देकर अपनी शब्दशासकता का परिचय दिया है, यथा—

"अजितं विजिताशेषबाह्यशारीरशात्रवम्।
शम्भवं शं भवत्यस्मादित्यभिख्यामुपागतम्॥
अभिनन्दितनिःशेषभुवनं चाभिनन्दनम्।
सुमतिं सुमतिं नाथं मतान्तरनिरासिनम्॥
उद्यदर्ककरालीढपद्माकरसमप्रभम्।
पद्मप्रभं सुपार्श्वं च सुपार्श्वं सर्ववेदिनम्॥
शरत्सकलचन्द्राभं परं चन्द्रप्रभं प्रभुम्।
पुष्पदन्तं च सम्फुल्लकुन्दपुष्पप्रभद्विजम्॥
शीतलं दीनतथ्यानदायिनं परमेष्ठिनम्।
श्रेयांसं भव्यसत्त्वानां श्रेयांसं धर्मदेशिनम्॥
वासुपूज्यं सतामीशं वसुपूज्यं जितद्विपम्।
विमलं जन्ममूलानां मलानामतिदूरगम्॥"[२७५]

इस प्रकार 'पद्मपुराण' की भाषा अत्यन्त प्राञ्जल है। हाँ, जहाँ उसमे जैन-धर्मगत परिभाषिक शब्दों की बाढ़ आती है—यथा अनुप्रेक्षा, अणुव्रत, महाव्रत उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी आदि—वहाँ अवश्य हृदय घबरा उठता है।

छन्द. काव्य के कलापक्ष मे छन्द का अपना महत्त्व है। आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपने 'औचित्य-विचार-चर्चा' नामक ग्रन्थ में छन्दों के औचित्य पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। विविध रसों का अभिव्यंजन करने की क्षमता आंशिक रूप मे छन्दोंमें भी

---

२७५. पद्म० १।४-१ ऐसे शब्दों के लिए देखिए और भी वही १।८-१६; ३।२५६, २५९, २८१; ८।५९, १२२, १२३, ५।४, १३, ६४,२१२-२१६; ५।३७८, ३८६; ६।३, ८४, २०८-२१४ ३८५, ३९०, ३९८, ४०१, ४०२, ४०६, ४०७; ७।२,१८, २२१, २२५, ३०१, ३०२; ८।१०३ १०५, १४४-१४५,१५२,४३२,३५४; ९।४४,१५३, ११।३०१, ३१०, १२।५४, ९७; १५।१२-१४ ८०, २०६; १६।१५५-५६; १८।२, २८, १२७, १२४; १९।५१,१०७, १०६-१०८; २०।१५, १८, २०, २७, १७२, २१०; २१।७, २४, ५३, ७७, ८२, २२।१०२, ११३, १३१, १४७, १५४, १६०, १६९,१७५; २८।३, ११३; २५।२२,२६, २८।१६२, १६३, २११, २१२; ३०।७०; ३३।१४२, ३९।११, १५३, ४०।४५; ४७।१३६-१४१; ५३।६५; ८८।३; ८९।११; ९४।१९-२४, २८-३५; ११०।१८-१९ आदि

होती है। यही कारण है कि काव्य में एक प्रधान छन्द के अतिरिक्त अन्य सहायक छन्दों का भी अवसरानुकूल प्रयोग हुआ करता है।

'पद्मपुराण' में छन्दों का अपना महत्त्व है। नाना वर्णनों में रुचिरता लाने के निमित्त औचित्यावह छन्दों का रविषेण न प्रयोग किया है। प्रसिद्ध 'मात्रिक' तथा वर्णवृत्तों का तो उन्होंने प्रयोग किया ही है, साथ ही कुछ छन्दों की स्वत. भी कल्पना की है। पर्वों के अन्त में प्रायः छन्द-परिवर्तन हुआ है। 'नानावृत्तमय क्वापि सर्ग. कश्चन दृश्यते' के अनुसार बयालीसवां पर्व तो अनेक छन्दों से सँजोया गया है जिसमें दण्डकवन की विविधता का साक्षात्कार सा होने लगता है। यहाँ 'पद्मपुराण' में प्रयुक्त छन्दों पर हमें विचार करना है।

१. प्रधानतः 'पद्मपुराण' 'अनुष्टुभ्' छन्द में ही लिखा गया है जिसका लक्षण है—

"श्लोके षष्ठ गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्व सप्तमम् दीर्घमन्ययोः॥"

उदाहरणार्थ—

"पद्मस्य चरित वक्ष्ये पद्मालिङ्गितवक्षसः।
प्रफुल्लपद्मवक्त्रस्य पुरुपुण्यस्य धीमतः॥"

इसके अतिरिक्त उन्होंने ४४ 'मात्रावृत्त' तथा 'वर्णवृत्त' प्रयुक्त किये हैं जिनका एक-एक उदाहरण प्रस्तुत है—

२. आर्या :

"स्थित्यधिकारोऽय ते श्रेणिक गदित· समासतस्त्वेनम्।
वशाधिकारमधुना पुरुपरवे, विद्धि सादर वच्मि॥"[२७६]

३. आर्यागीति :

"त्रिभुवनकुशलमतिशयपूत (नित्य) नमामि भक्त्या परया।
मुनिसुव्रतचरणयुग सुरपतिमुकुटप्रवृत्तनखमणिकिरणम्।"[२७७]

---

२७६ पद्म० ४।१३२, आर्या के लिए देखिए और भी—वही, १५।२२७; २१।८४२; ४२।३९, ४३; ४३।१४८; ४८।२५०; ६९।२२-२४, ७०।१००-१०१; ७८।८१-९२; ८०।२०८-२०९; ८२।६५-६६; ८५।१७५; ९०।२७-२९; ९१।५०-५१, ९६।४०; ९५।४८-५७; ९८।१०३-१०५; ९९।११६-११७; १००।८३; १०१।१०४-१०६; १०२।२०१-२०२; १०५।२६७-२६८; ११०।९२; ११२।९९, ११३।४४-४५; ११६।४३-४४; ११७।४३-४५।

२७७. वही, १७।२८२ और भी—८७।१६-१८, ९२।९१-९२ १०३।।२९ (आधा), १११।२१, ११५।६३-६४: ११९।६१-६२; १२२।७५-७६, १२३।१४४-१६५।

४. आर्यागीति :

"एवं प्रशस्यमानौ नमस्यमानौ च पौरलोकसमूहैः।
स्वभवनमनुप्रविष्टौ स्वयम्प्रभं वरविमानमिव देवेन्द्रौ ॥"[२७८]

५. शार्दूलविक्रीडित : (सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्)

"पद्मादीन्मुनिसत्तमान् स्मृतिपथे तावन्नृणां कुर्वतां,
दूरं भावभरानतेन मनसा मोदं परं बिभ्रताम्।
पापं याति भिदां सहस्रगणनैः खण्डैश्चिरं सञ्चितं,
निःशेषं चरितं तु चन्द्रधवलं किं शृण्वतामुच्यते।"[२७९]

६. मालिनी : (ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः)

"अथ कुसुमपटान्तःसुप्तनिष्क्रान्तभृंग-
प्रहितमधुरनादात्यन्तरम्यैकदेशात्।
जडपवनविधूताकम्पिताकापाण्डुदीपा-
न्निरगमदवनीशः श्रीमतो वासगेहात् ॥"[२८०]

७. शालिनी : (शालिन्युक्ता म्तौ तगौ गोऽब्धिलोकैः)

"श्रेण्योरेवं रम्ययोस्तन्निताम्त
विद्याजायासम्परिष्वक्तचित्ताः।
इष्टान् भोगान्भुञ्जते भूमिदेवा
धर्मासक्तानन्तरायेण मुक्ताः ॥"[२८१]

८. वसन्ततिलका : (उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः)

"एवं भवान्तरकृतेन तपोबलेन
सम्प्राप्नुवन्ति पुरुषा मनुजेषु भोगान्।
देवेषु चोत्तमगुणा गुणभूषितागा
निर्दग्धकर्मपटलाश्च भवन्ति सिद्धाः ॥"[२८२]

---

२७८. वही, १०७।६७।

२७९. वही, १।१०२ और भी वही—५।१०३; ७।३९४-३९५; ८।५३०-५३२; १८।१३३-१३४; ३८।१४२-१४३; ४२।४०; ६१।२३; ६३।२६-२७; ७७।७१-७२, ७८।९३-९५; ८५।१७४, १००।८२ १०६।२४७-२४८; १२३।१६६-१६९।

२८०. वही, २।२५४ और भी वही, २।२५५-२५६; १९।१३९-१४०; २६।१६५-१७१; ४२।८४, १०१, १०२; ४३।१२२-१२३; ५३।२७३-२७४; ५६।३५-३६; ६२।९९-१००; ६५।८०-८१; ९७।१८९-१९२, १०३।९३; ११४।५६।

२८१. वही ३।३३८ और भी वही, ३।३९; ४५।५५, १०४-१०५; ५७।७३-७४।

२८२. वही ५।४०५ और भी वही, ५।४०६; ४२।४१; ९६।७२; ११३।९७-९८।

६. मन्दाक्रान्ता : (मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैर्म्भौ नतौ ताद्गुरू चेत्)

"भुक्त्वा भुक्त्वा विषयजनितं सौख्यमेवं महान्तौ
लब्ध्वा जैनं भवशतमलध्वंसनं मुक्तिमार्गम् ।
याताः प्रायः प्रियजनगुणस्नेहपाशादपेताः
सिद्धिस्थानां निरुपमसुखं राक्षसा वानराश्च ॥"[२८३]

१०. रथोद्धता : (रान्नराविह रथोद्धता लगौ)

"बालिचेष्टितमिदं शृणोति यो
भावतत्परमतिः शुभो जनः ।
नैष याति परतः पराभवं
प्राप्नुते च रविभासुरं पदम् ॥"[२८४]

११. शिखरिणी : (रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी)

"सुसन्नद्धान् जित्वा तृणमिव समस्तानरिगणान्
पुरोपात्तात्पुण्यात् समधिगतसुप्राज्यविभवः ।
क्षयं प्राप्ते तस्मिन् विगलित-रुचिर्भ्रष्टविभवो
बभूवासौ शक्रो धिगतिचपल मानुषसुखम् ॥"[२८५]

१२. दोधक : (दोधकवृत्तमिदं भभभादृगौ)

"पश्यत चित्रमिदं पुरुषाणां
चेष्टितमूर्जितवीर्यसमृद्धम् ।
यच्चिरकालमुपार्जितभोगा
यान्ति पुनः पदमुत्तमसौख्यम् ॥"[२८६]

१३. वंशस्थ : (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ)

"भवन्ति कर्माणि यदा शरीरिणां
प्रशान्तियुक्तानि विमुक्तनाविनाम् ।
तदोपदेशं परम गुरोर्मुखा-
दवाप्नुवन्ति प्रभवं शुभस्य ते ॥"[२८७]

---

२८३. पद्म० ६।५७१ और भी वही, ६।५७२; ११।३८२-३८३; २९।११५-११६; ३३।२३१-२३२; ४२।४२; ४६।२३१-२३२; ५४।७९-८०; ६०।१४२-१४३ ।

२८४. वही ९।२२४ और भी वही १०।१७७-१७९ ।

२८५. वही, १२।३७५ और भी वही, १२।३७६: ४२।६८ ।

२८६. वही, १३।११० और भी वही, १३।१११-११३; ४२।४५; ५२।८४-८५; ५९।३२-३४ ।

२८७. वही, १४।३८० और भी वही, १४।३८१; २१।१४५-४६, १५२, १६१, १६५; ४२।४४, ४५, ९९; ५०।५४-५५; ५८।४७, ६१।२०-२२, २४; ६६।८७; ६९।१८-१९; ८१।१२५-१२६; ९६।७३; १०९।१७०, १७२ ।

१४. पृथ्वी : (जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः)

"कदाचिदिह जायते स्वकृतकर्मपाकोदयात्
सुखं जगति सगमादभिमतस्य सद्वस्तुनः ।
कदाचिदपि सम्भवत्यसुभृतामसौख्यं परं
भवे भवति न स्थितिः समगुणा यतः सर्वदा ।।"[288]

१५. विद्युन्माला : (मो मो गो गो विद्युन्माला)

"देवादेवैर्भक्तिप्रह्वैः पुष्पैरर्घैर्नानागन्धैः ।
अर्चामुच्चैर्नीतं वन्द्यं देवं भक्त्या त्वामर्हन्तम् ।।"[289]

१६. उपजाति : (इसके अनेक भेद होते हैं। यह 'इन्द्रवज्रा' तथा उपेन्द्रवज्रा' छन्दों के पाद जोड़कर बनता है—
अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ता.)

"अथैवमुक्तो वरुणः स वीरः कृत्वाञ्जलिं प्रावददेतमेव ।
विशालपुण्यस्य तवात्र लोके मूढो जनो तिष्ठति वैरभावे ।।"[290]

१७. उपेन्द्रवज्रा : (उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ)

"अहो महद्धैर्यमिदं त्वदीयं मुनेरिव स्तोत्रमहस्रयोग्यम् ।
विहाय रत्नानि पराजितोऽहं त्वया यदभ्युन्नतशासनेन ।।"[291]

१८. इन्द्रवज्रा : (स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः)

"तन्निश्चित्य मन्त्रिजनोऽवगत्य विख्यातमगारचयं महान्तम् ।
आनाय्य मध्येऽस्य मरीचिरम्यं वैदूर्यमस्थापयदत्युदारम् ।।"[292]

१९. स्रग्धरा : (म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्)

---

२८८. पद्मपुराण १६।२४२ और भी वही, १६।२४३, ४२।७८ ।

२८९. वही, १७।८८, २८१ और भी वही, ४०।५६ ।

२९०. वही, १९।९७ और भी वही, १९।९४-१०२, १०६-१०८, ११०-११५, ११७-१३२; २१।१४७, १४८, १५०, १५१, १५५-१५८, १६०, १६२-१६४; २०।६०, ६१, ६४-६५, ३०।१७१; ३२।१८९ १९१, १९३-१९६, ३४।१०४-१०६, ३७।१६४-१६६; ४०।४४-४५; ४१।१६८-१६९; ४२।३८, ९८; ४९।११३ ११८, ५४।१४-१५; ६३।२९-४०; ६४।११५, ६५।६७-७९; ६६।८८-९३; ६७।२८, ७१।९२-९३, ७२।९६-९७, ७४।११५-११६; ७५।६१-६२; ७८।६३-८८, ७९।६९-७०; ८३।११३४; ८४।३५, ८६।२५-२७, ८८।४३-४४; ८९।११५-११७, ९८।३९; ९७।१८८; १०८।५१-५२, १०९।१७१; ११०।९४-९५; ११८।१२५-१२७; १२१।२७-२८ ।

२९१. वही, १९।९३ और भी वही १९।१०३-१०५, १०९, १३३-१३८, २१।१४९ १५४, १५९, २३।६६, ३०।१७२, ४८।४८-४९, ६४।११४, ८३।१३३ ।

२९२. वही, २१।१५३ और भी वही, २३।६२-६३, ३०।१७०; ३२।१९०-१९२; ८४।३४ ९२।५५-५७ ।

"दग्ध्वा कर्मोरुकक्षं क्षुभितबहुविधव्याधिसम्भ्रान्तसत्त्व
मृत्युव्याघ्रातिभीमं भवविपुलसमुत्तुङ्गवृक्षोरुखण्डम्।
याता निर्वाणमष्टौ हलधरविभव प्राप्य सविग्नभावाः
सम्प्राप ब्रह्मलोक चरमहलधरः कर्मबन्धावशेषात्॥"[293]

२०. **भुजंगप्रयात** : (भुजङ्गप्रयातं भवेद्यैश्चतुर्भिः)

"इति प्रोक्तमात्रे जगौ भूमिनाथः समग्रेन्दुनाथप्रतिस्पर्द्धिवक्त्रः।
भवत्येव युद्धे पृथुश्रोणिसौम्य त्रिवर्णातिकान्तप्रसन्नोरुनेत्रे॥"[294]

२१. **द्रुतविलम्बित** : (द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ)

'सकलविष्टपनिर्गतकीर्तयः परमरूपपयोनिधिवर्तिनः।
पितृजनार्पितसंमदसम्पदः परमरत्नविभूषितविग्रहाः॥"[295]

२२. **वियोगिनी** :

"विजहार महातपास्ततः कपिलश्चारुचरित्रवीवधः।
परमार्थनिविष्टमानसः श्रमणश्रीपरिवीतविग्रहः॥"[296]

२३. **पुष्पिताग्रा** : (अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा)

"इति वरगहनान्यपि प्रयाताः सुकृतसुसंस्कृतचेतसो मनुष्याः।
अतिपरमगुणानुपाश्रयन्ते रविरुचयः सहसा पदार्थलाभान्॥"[297]

२४. **इन्दुवदना** : (इन्दुवदना भजसनैः सगुरुयुग्मैः)

"देशकुलभूषणमुनी नु जगदर्च्यौ
सर्वभवदुःखमलसङ्गमविमुक्तौ ॥
ग्रामपुरपर्वतमटम्बपरिरम्यान्
बभ्रतुरुत्तमगुणैरूपचिन्तागान्॥"[298]

२५. **स्रक्छन्द** : (नननननस-स्रगिणि भवति रमनवकयतिरियम्)

क्वचिदिदमतिघनवरनगकलित
क्वचिदणुबहुविधतृणपरिनिचितम्।

---

२९३ वही २०।२४८ और भी वही, २०।२४९-२५०, २५।५८-५९; ४२।६०।
२९४. वही, २४।१३१ और भी वही, २४।१३२-१३५।
२९५. वही, २८।२७१ और भी वही, २८।२७२-२७५; ४२।४६, १०३।९७।
२९६. वही, ३५।१९४ और भी वही, ३८।१९५, ४२।७५-७९।
२९७. वही, ३६।१०३ और भी वही, ४२।६५,८२, ६६।९४,९५।
२९८. वही, ३९।२३५ और भी वही, ३९।२३६।

क्वचिदपगतभयमृगपुरुपटलम्
क्वचिदनिभययुतरुरुहितगहनम् ।।"२९९

२६ : चण्डीछन्द : (ननससग)
"क्वचिदुरुमदगजपातितवृक्षम्
क्वचिदभिनवतरुजालकयुक्तम् ।
क्वचिदलिकुलकलझङ्कृतिरम्यं
क्वचिदतिखररवसम्भृतकक्षम् ।।"३००

२७. प्रमाणिका : (प्रमाणिका जरौ लगौ)
'अमी समीरणेरिते वरोष्ठि वृक्षमस्तके।
विभान्ति गह्वरे लवा रवेः करा क्वचित् क्वचित् ।।"३०१

२८. तोटक : (वद तोटकमम्बुधिसैः प्रथितम्)
"अरुणं धवलं कपिलं हरित
वलित निभृतं सरवम् विरवम् ।
विरलं गहन सुभग विरस
तरुण पृथुक विपम सुसमम् ।।"३०२

२९. रुचिरा : (यह अतिरुचिरा ही है—जभसजग-चतुर्ग्रहैरतिरुचिरा जभस्जगाः)
"अथ क्वचित् फलभरनम्रपादपः
क्वचित् स्थितैः कुसुमपटलैरलंकृतः ।
क्वचित् खगैः कलरवकारिभिश्चितो
विभात्यम वरमुखि दण्डको गिरिः ।।"३०३

३०. कोकिलकछन्द : (नजभजजलग—हयदशभिर्नजौ भजजला गुरु नर्कुटकम्
मुनिगुहकार्णवैः कृतयति वद कोकिलकम्)
"इह चमरीगणोऽयमतिदुष्टमृगोपगतः
प्रियतरवालिधिः प्रियतमैरनुयातपथः ।
अनतिविसृष्टमन्दगतिरिन्दुरुचिः पुरुष
प्रविशति गह्वरं न पृथुकाहितचञ्चलदृक् ।।"३०४

---

२९९. वही, ४२।४७
३००. वही, ४२।४८ ।
३०१. वही ४२।५७ और भी वही, ४२।४९ ।
३०२ वही ४२।५० ।
३०३ वही ४२।५८ और भी वही, ४२।७२, ७३।१७८-१८०; ७६।४२-४३ ।
३०४. वही ४२।५९ ।

३१. **अश्वललितच्छन्द** : (नजभजभजभलग--यदिह नजौ भजौ भजभलगास्त-दश्वललितं हरार्कयतिमत्। इसके चार चरण होने चाहिएँ जब कि 'पद्म-पुराण' में दो ही प्राप्त हैं। अतः यह पद्य चिन्त्य है।)

"मृदुमरुदीरयङ्कुरमल तटस्थतरुपुष्पसहितवरम्।
भवशयनीय-रूप-सुभगं सुकेशि जलमत्र राजतितराम्॥"[३०५]

३२. **भद्रकच्छन्द** : (भरनरनरनग--भ्रौ नरना रनावथ गुर्दिगर्कविरमं हि भद्रकमिति। इसके भी चार चरण होने चाहिएँ किन्तु दो ही प्राप्त हैं। अतः यह पद्य भी चिन्त्य है।)

"हंसकुलाभफेनपटलप्रभिन्नबहुपुष्पपुञ्जकलितम्।
भृङ्गनिनादपूरितवना क्वचिद् विकटसंकटोपलचयैः॥"[३०६]

३३. **वंशपत्रपतितच्छन्द** : (दिङ्मुनिवंशपत्रपतितं भरनभनलगैः)

"रक्तशिलौघरश्मिनिचिता क्वचिदियममला
भाति समुद्यदर्कसमये दिगिव सुरपतेः।
भिन्नजला क्वचिच्च हरितैरुपलकरचयैः
शैवलशङ्कयागमकृतो विरसयति खगान्॥"[३०७]

३४. **हरिणी** : (रसयुगहयैर्न्सौ म्रौ स्लौ गौ यदा हरिणी तदा)

"कमलनिकरेष्वत्र स्वेच्छाकृतातिकलस्वनं
निभृतपवनासंङ्गात् कम्पेष्वभीक्ष्णकृतभ्रमम्।
परमसुरभेर्गन्धाद् वक्त्रात्तवेव समुद्गतान्
मधुकपटल कान्ते क्षीबं विभाति रजोऽरुणम्॥"[३०८]

३५. **चतुष्पदिका** : (१६ मात्रा। यह मात्रिक छन्द है, इसे 'अडिल्ला' या 'पादा-कुलक' छन्द मान सकते है।)

'अत्र विभाति व्योमगवृन्दम्
बहुविधजलभववनकृतचरणम्।
प्रेमनिबद्ध तारविरावं
क्वचिदतिमदवशपरिचितकलहम्॥"[३०९]

३६. **मत्तमयूर** : (वेदैः रन्ध्रैर्म्तौ यसगा मत्तमयूरम्)

---

३०५. पद्मपुराण ४२।६२
३०६. वही, ४२।६५
३०७. वही, ४२।६६ और भी वही, १७।४०५-४०६
३०८. वही, ४२।६७
३०९. वही, ४२।६९ और भी वही ४२।७०

"एषा यातानेकविलासाकुलिताम्बु—
स्तं.याधीशं वीचिवरभ्रूरतिकान्ता।
तद्वद्च्चारुस्फीतगुणौघं शुभचेष्ट
विष्टपसुन्दरमुत्तमशीला भरतेशम् ॥"[३१०]

३७. **प्रहर्षिणी** : (म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम्)

"नद्येषा विमलजला तरङ्गरम्या
हंसाद्यैः खगनिवहैः कृताभिलाषा।
एतस्या प्रियतम ते मनोगत चे—
त्तोयेऽस्या. किमिति रतिक्षणं न कुर्मः ॥"[३११]

३८. **अतिरुचिराछन्द** : (जभसजग—चतुर्ग्रहैरतिरुचिरा जभस्जगाः। रुचिरा एवं अतिरुचिरा एक ही है, केवल नाम-भेद है।)

"महानरानिति पुरुदुःखलङ्घितान्
पुराकृतादसुकृतकर्मजृम्भणात् ।
अहो जना भृशमवलोक्य दीयता
मतिः मदा जिनवरधर्मकर्मणि ॥"[३१२]

३९. **अनुकूला** : (भतनगग)

"ये भरताद्यैर्नृपतिभिरद्धाः कारितपूर्वा जिनवरवासा।
भङ्गमुपेतान् क्वचिदपि रम्यान् सोऽनयदेतानभिनवभावान् ॥"[३१३]

४०. यह विषम वर्णिक छन्द है जिसका प्रथम एवं द्वितीय चरण 'प्रमाणिका' (जरलग) का, तृतीय चरण 'त्वरितगति' (ननननग) तथा चतुर्थ चरण 'कमलदलाक्षरी' (नयनलग) छन्द का है। विषम छन्दों के नाम प्राप्त नहीं होते हैं, ऐच्छिक हैं।

'अय मदालसेक्षण' करी करेणुचोदितः।
मधुकरविघटितदलनिचयः प्रविशति सीते कमलवनम् ॥"[३१४]

४१. यह भी विषम छन्द है। इसका प्रथम चरण अज्ञातनाम (भरलग) है द्वितीय एवं चतुर्थ चरण 'जलोद्धतगति' (जसजस) के है, तृतीय चरण 'निषध' (भरस) छन्द का है।

---

३१० वही ४२।७१

३११. वही ८०।३४

३१२ वही, ४८।१५० और भी वही, ४८।१५१, ५१।५०-५१

३१३ वही २२।१७९-१८१

३१४. वही, ४२।३७

"ग्राहसहस्रचारविषमा क्वचिच्च पुरुवेदसङ्कतजला ।
घोरतपस्विवेष्टितसमा क्वचिच्च वहति प्रशान्तगुरियम् ।।'[३१५]

४२. यह 'प्रकीर्णक' छन्द है। इसका नाम प्राप्त नहीं है (ममतननननननजभर)।
"पूर्वं चक्रे लक्ष्मीनाथः स्नपनमभिनवघृतगजपतिवनपथपरिचितश्च मप्रतिनोदनम्।
तस्मादूर्ध्वं नानास्वादप्रवरकिसलयकुसुममुच्चयमुचिता च परिक्रियाम् ।।"[३१६]

४३. **स्कन्धकच्छन्दः** (यह मात्रिक छन्द है। इसमें प्रथम एवं तृतीय चरण में १२ मात्राएँ और द्वितीय तथा चतुर्थ में २० मात्राएँ होती हैं।)

"दीर्घं कालं रन्त्वा नाके गुणयुवतीभिः सुविभूतिभिः।
मर्त्यक्षेत्रेऽप्यसम भूयः प्रमदवरललितवनिताजनैः परिललितः ।।"[३१७]

४४. यह भी विषम छन्द है। प्रथम एवं तृतीय चरण 'अच्युत' छन्द (रससलग) का, द्वितीय 'द्रुतविलम्बित' और 'रथोद्धता' का मिश्रण सा तथाचतुर्थ 'रथोद्धता' (रनरलग) का है। यह कल्पित छन्द ही है।

"कर्मणामिदमीदृशमीहित बुद्धिमानपि यदेति विमूढताम्।
अन्यथा श्रुतमर्वनिजायति. क करोति न हितं सचेतनः ।।"[३१८]

४५. **मालभारिणी** : (यह अर्धसमवर्णिक छन्द है। प्रथम एव तृतीय चरण में ससजगग और द्वितीय तथा चतुर्थ चरण में—सभरय होते है।)

'हलचक्रभृतोद्विपोऽनयोश्च प्रथित वृत्तमिदं समस्तलोके।
कुशल कलुष च तत्र बुद्ध्या शिवमात्मीकुरुतेऽशिवं विहाय ।।"[३१९]

अलंकार अलकार काव्य के उत्कर्षाधायक होते है। यदि ये 'अपृथग्यत्न-निर्वत्य' हों तो कहना ही क्या? इनके मुख्य तीन प्रकार है—शब्दालकार, 'अर्थालकार और उभयालकार। फिर इनके अनेक भेदोपभेद चलते है। रविषेण ने अपने काव्य में उत्कर्ष लाने के निमित्त यथावसर अनेक अलकारों का प्रयोग किया है।[३२०]

रविषेण अपने 'पद्मपुराण' में सबकुछ समाविष्ट करना चाहते थे। उन पर

---

३१५. वही, ८२।६४

३१६. वही, ८२।७६ और भी वही ८२।७७, ८०, ८१।

३१७. वही, ११२।९५ और भी वही ११२।९६।

३१८. वही, ११८।५४ और भी वही ११४।५५

३१९. वही, १२३।१७० और भी वही, १२३।१७१-१७९, १८१-१८८

३२०. रविषेण 'पद्मपुराण' के अन्त में लिखते है—'लक्षणालंकृती वाच्यं प्रमाण छन्द आगम। सर्वं चामलचित्तेन ज्ञेयत्र मुखागतम् ।।'

कालिदास और बाण का अत्यन्त प्रभाव था जैसा कि हम द्वितीय अध्याय में दिखा चुके हैं। कालिदास की 'उपमा' और बाण के 'रूपक-उत्प्रेक्षा-परिसंख्या' आदि अलंकारों ने उन्हें पर्याप्त प्रभावित किया है। इनके अतिरिक्त अर्थान्तरन्यास भी बहुत प्रयुक्त हुआ है। अतः सर्वाधिक इन्हीं अलंकारों का प्रयोग उन्होंने किया है, शेष अलंकार इनकी अपेक्षा कम प्रयुक्त हुए हैं जिनमें कुछ के उदाहरण प्रस्तुत हैं।

'अनुप्रास' के उदाहरण तो प्रायः सभी पदों में प्राप्त हैं। अन्त्यानुप्रास के लिए 'पद्मपुराण' के नवम पर्व के १७७-१८४ पद विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं। अनुप्रासों के अन्य भेदों के उदाहरण सहस्रों स्थलों पर मिलते हैं जिनका पूर्ण परिचय देना स्थान-कदर्थन ही होगा।

यमक : ततः पाणिग्रहस्तेन कृतः कौतुकमंगले।
कन्यायाः परलोकेन कृतकौतुकमंगले॥' (पद्म० २४।१२१)

श्लेष : 'आसीत्तत्र पुरे राजा श्रेणिको नाम विश्रुतः।
देवेन्द्र इव विभ्राणः सर्ववर्णधरं धनुः॥'[३२१] (पद्म० २।३०)

उपमा : "गुणदोषसमाहारे गुणान् गृह्णन्ति साधवः।
क्षीरवारिसमाहारे हंसाः क्षीरमिवाखिलम्॥"[३२२]

(पद्मपुराण, १।३५)

---

३२१. श्लेष के लिए देखें और भी —पद्म०, २।५१,५२; ६।४०१, ५१५, ५५०; ९।११३; ११।३८०; ६४।१८; ८३।५७; १०१।११; १०७।६४ आदि

३२२ रविषेण ने 'पद्मपुराण' में एक-से-एक बढ़कर उपमाएँ दी हैं जिनके अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं किन्तु स्थानाभाव से उनके कुछ सकेत ही दिये जा रहे हैं। सहृदयजन उपमाओं का आनन्द 'पद्मपुराण' के इन स्थलों पर ले सकते हैं—१।२६२।८४; ३।१५१, १५८,१८७,१९७,२१६; ४।१३, ५।२८,८५, १६८,१७३,२५२,२६०,३०४,३४९; ६।१७,१८, २३,१३४,३३२,३४५,३५४,४०६,४०७,४१४,४२३,४३३,४५३,५०९,५४२; ७।६९,८७,९३,९४, १३८,१७०,२२८,२५०,२७७,३६१; ८।२५,८४,१७७,१८२,१८४,२३४,४३०,४७९,५१८; १०। ११८,११९,१४०; ११।७,२२,८२,९५,१०१,१२१,१४३,२५५,२६२,३४७,३७५,३८०; १२।९०, ९८,२१०,२१७,२१९,२४६,३१०,३१२,३१६,३२४,३३१,३३५,३५४,३६९,३७१; १३।२८,३३, ७७; १४।२३,६१,७७,११५,१५९; १५।४६,५४,९५,१५०,२००,२०८; १६।१५,८७,८९,१३३, १६७; १७।४४,५०,२९६; १८।५३,८३; १९।१६,२५,३१,३५,४१,४५,४६,५०,५२,५५,५७,१०३, १२९,१३४; २१।१००,१५५,१६०,१६१,१७४,१७६,१७७,१८०; २३।६६; २४।९१,१०२,१८४; २६।११,१२,१७,१८,५९,६०,६१,६२,८४,८८; २८।१२,६१,८५,११०,१३२,१३९,१६०,१९३, १९६,२३५,२६३; २९।९,५०,९९,१०२,१०४,११६; ३०।२,१२,१७,४९,१६४; ३१।१६२,१७४, १९१,२०४,२१७,२२६;३२।२४,५३,६२; ३३।१४,४८,१४७,१४९,२११,२३२,२४०,२४३,२५१, २५२,२६३; ३४।३५,६२,८६,१०६; ३५।२२,१५७; ३६।२७,५५,७४; ३७।२६, ३७,४०,४७,७६, ७७,१०२, १६,११९,१५६; ३८।२६,५८,९१,१०३,१०९,११४; ३९।२७,३०,४८,५६,५९,१५६,

प्रतीप : "पूर्णः परमरूपेण ह्रेपयन् कान्तितो विधुम् ।
तिरस्कुर्वन् रविं दीप्त्या अयंस्थैर्येण मन्दरम् ॥"[३२३]
(पद्म० ५।३१६)

अनन्वय : "रावणेन समं युद्धं लक्ष्मणस्य बभूव यत् ।
लक्ष्मणेन समं युद्धं रावणस्य बभूव तत् ॥"[३२४] (पद्म० ७५।६)

रूपक : "स्तबकस्तननम्राभिश्चलत्पल्लवपाणिभिः ।
समालिङ्ग्यन्त वल्लीभिर्भ्रमराक्षीभिरङ्घ्रिपाः ॥"[३२५]
(पद्म० १५।६५)

२०७; ४०।१४,४९; ४१।१५१;४२।७,६१,६२,६५,७१,९७,१००; ४३।७६,८८,९१,१००; ४४।१,२,३९;५२।५५,७४,८३,१२२,१४०; ४५।९४; ४६।१५,१०६,१४०,१६२; ४७।२७,५५,५६,६१,७७,७९,९८,११४,११८,१२१; ४८।४,४८,७६,९१; ५०।१८-२४; ५१।१८; ५२।१४; ५३।२१,३२,१२२,२१३,२१७,२२७,२४४,२४५,२४६,२५१,२६२,२७१; ५४।३२; ५५।४३-४६,८९; ५८।३७; ६०।२३,५०,५४,७०,९४,१०३,१०९; ६१।८; ६२।२३,३४,६१,६७,७०,८३,८४ ६३।३६; ६४।४३; ५४,५९,७४; ६५,३८,५२,६०,७४; ६६।११,१४,७९: ६७।२३; ६८।२२; ६९।५; ७०।४५,४८,५७,७८,९३,९४; ७१।३,९,१०,२३,५१,६७,७१,८४,९३; ७२।२५,२७,२८,४६,४८,५६,५८,७१; ७३।३४,३८,३९,५३,५४,१२५,१५४; ७४।३०,४६,५०,५१,५२; ७५।२३; ७६।३०,३५; ७७।११,१७,१८,१९; ७८।४; ७९।३२,३५; ८१।१०४; ८३।२३,६६; ८६।१५,८९।५३,८०; ९०।९,२८; ९४।३०,३६,३७; ९५।४९,५२,५४; ९६।३५; ९७।७३,८४,१०१,१०९,१११; १०२।८५,१०१, १०३।९०; १०७।२३,९१,६४; १०८।२२,२४,३३; १०९।७,१८,३०,४७,१०१; १ ०।८,२६,२७,२९,३३,३६,७५; १११।१८; ११२।२२,४८-५२; ११३।२,१२,२४; ११८।९३,९६; १२२।५४,५९; १२३।३७,५० आदि।

३२३ और भी देखें वही, ३।१००-१०१; ७।६६; २८।४; ६१।४; ८०।११८।

३२४. और भी देखें वही, ७९।५३।

३२५. रूपक के 'पद्मपुराण' में पग-पग पर उदाहरण है जिनके कुछ संकेत प्रस्तुत हैं— ५।११९७,२८०,३०४,३८०; ६।५७,९७,९८,२२३,३३२,३५०,३६३,५६५; ७।२००,२३१; ८।१७३, २१६९।११८; १२।२२५; १५।६५,१७९-१८०; १६।२२,१३८,१६६; १८।२६; १९।३२,६२,१२७; २०।१०१,१०२,१९८-१९९,२०४; २२।१४; २४।१०८,११८; २५।९,२६,१४,१९; २८।२१३; ३०।५,१०,५५,८८,१०४,१६०; ३१।१२,२३५; ३५।१७९; ३७।४३,१२४; ३८।४७,१३८; ३९।१२०,२१३; ४०।२३; ४१।८१; ४४।२,१३०; ४८।१८७; ४७।८७; ४९।६२; ५४।१९; ६०।४१,४९; ६१।२; ६२।१५ ६६।७८,८३,८५,८६; ७१।१४,६०; ७२।७०; ७३।३९,४२,४५,५४,६७; ९३।३१; ९५।१७-२७; ९७।८४; १०५।४३; १०८।४३,४५; ११०।५६; १११।६; ११२।१२; ११३। १८,३१-३४; ११४।२२ आदि।

इनके अतिरिक्त श्लिष्टरूपकों और सांगरूपकों के लिए ये स्थल भी देखिए— ६।२९०-२९२,४०१,५५०,३५१; ९।६०-६२; ११।२८६-२८८; २१।३२-३५; ३१।६३-६४,८६-८९-३७।१६५; ३८।१३७; ३९।१२१-१२६; ४२।७८,४४।८६; ४८।११; ७३।१०७-११०; ९५।११-१६; १०६।१०५; १०९।८०-८२; ११०।८५-८८ आदि।

उल्लेख : "तपोवनं मुनिश्रेष्ठैर्वेश्याभिः काममन्दिरम् ।
लासकैर्नृत्तभवनं शत्रुभिर्यमपत्तनम् ॥"

० ० ०

चारणैरुत्सवावासः कामुकैरप्सरःपुरम् ।
सिद्धलोकश्च विदितं यत्सदा सुखिभिर्जनैः ॥"[३२६]

(पद्म० २।३९-४४)

स्मरण : "इति चिन्तयतस्तस्य प्रियायां मानसं गतम् ।
तत्प्रीत्या चैक्षनोद्देशास्तद्विवाहे निषेवितान् ॥"

(पद्म० १६।११७)

भ्रान्ति : "लताभवनमध्यस्थान्नर्तयन्तुरगद्विप. ।
गम्भीराम्भोदनिर्घोषधीरयोदाहरद्गिरा ॥"[३२७] (पद्म० ३।२५)

सन्देह : "स्थाणुः स्याच्छ्रमणोऽयं नु शैलकूटमिदं भवेत् ।
इति राज्ञो वितर्कोऽभूत् कायोत्सर्गस्थिते मुनौ ॥[३२८]

(पद्म० २१।८६)

अपह्नुति : "नैषा सीता समानीता पित्रा तव कुबुद्धिना ।
रक्षोभोगविलं लकामेषानीता विषौषधिः ॥" (पद्म० ५५।२५)

उत्प्रेक्षा : "अथ तीर्थकरोदारतेजोमण्डलदर्शनात् ।
विलक्ष इव तिग्मांशुरब्धिमैच्छन्निषेवितुम् ॥"[३२९] (पद्म० २।२००)

---

३२६. और भी देखें—पद्म० ३।२०२ २१०, ५।२१६, ६।२३२-२३५ ।

३२७ मुखामोद से आकृष्ट भ्रमरों के वर्णन में 'भ्रान्ति' पर्याप्त प्रयुक्त हुई है। भ्रान्ति के लिए और भी देखें—वही ६।२७५; ७।१७८; ११।३८१; २१।३३; २६।१६७; २८।२३७; ३२। १४१, ४२।६७ आदि ।

३२८. 'सन्देह' के लिए देखें और भी—वही, ८।७५; ११।२३-२४, ४८।९१-९२, ३३।५९-६९, ६५-६७, ४८।१०९; ४७।४५-५०, ६०।७३, ६२।४६; ६४।६८; ६५।७६ आदि ।

३२९ उपमा-रूपक के सदृश ही उत्प्रेक्षा भी बहुत प्रयुक्त हुई है। विविध वर्णनो में इसका सर्वाधिक प्रयोग हुआ है । कुछ दर्शनीय स्थल उल्लिखित हैं—

'पद्म०' २।३३-३८,१०१-१०३,११४-११७,१९९-२१६; ३।३६,९१-९४,१४२-१४८; ४।३ ५।१७५,२३१, ६।१४-१५ २६,६०,७।७२,७३-९०,१२५-१२८; १९७,५१०-५१७;७।९८,१५०-१५७,२२६,३४९; ८।२८,४१,६२ ६२,६७,७२,९२,९४,१०२,१९४,२६५,४०२,४८०; ९।७१ १०।१३३,१३४,१३५,३३७,३५६,३५९,१२।९१; १२७।२०३,२२९,२४; १,४५०,२६३,३२०, ३३७,३४३, १३।१३, १५।१६-२२,५५-६६,१३०-१३४,१४०-१४६,१८५-१९३,२२३; १६।१९, २०,८५,१११,११८,१४९,१७२,१८४,१८५-२०९; १७।४५-४७;१९।३०;२०।१०७,१५९,१८४; २१।१०३; २२।३७,४८,५०-६५,१२६; २५।३३,४०,५६-५७; २९।९५; ३०।१; ६६।७४,९९

अतिशयोक्ति : "धूतोऽन्येन जटाभारश्छन्नाशेषदिगाननः ।
छायया तस्य सञ्जाता शर्वरीव तदा चिरम् ॥" (पद्म० ६।४४३)

दीपक : "नाना भवन्ति तिष्ठन्ति निघ्नन्ते शोचयन्ति च ।
रुदन्त्यवदन्ति बाधन्ते विवदन्ति पठन्ति च ॥"[३३०]
(पद्म० २१।६१)

निदर्शना : "मृगैः सिंहवधः सोऽयं शिलानां पेषणं तिलैः ।
वधो गण्डूपदेनाहेर्गजेन्द्रशसनं शुना ॥"[३३१] (पद्म० २।२४७)

व्यतिरेक : "दहति त्वचमेवार्को बहिरन्तश्च मन्मथः ।
अन्तर्द्वारस्ति सूर्यस्य मन्मथस्य न विद्यते ॥" (पद्म० २८।४५)

सहोक्ति : "मूर्च्छया पतिते तस्मिन्स्ववर्गस्यापतन्मनः ।
मूर्च्छायाश्च परित्यागादुत्थिते पुनरुत्थितम् ॥"
(पद्म० १२।२३५)

विनोक्ति : "पुनस्तदुद्वृत्य जगाद राजन् यथामुना रत्नवरेण हीनः ।
न शोभतेऽगारकलाप एष त्वया विनेदं भुवनं तथैव ॥"
(पद्म० २१।१५४)

समासोक्ति : "यत्रौषधिप्रभाजालैस्तमो दूरं निराकृतम् ।
चक्रे बहुलपक्षेऽपि समावेशं न रात्रिषु ॥" (पद्म० ६।७७)

परिकर : "हा वत्स, विनयाधार, गुरुपूजनतत्पर ।
जगत्सुन्दर, विख्यातगुण, क्वासि गतो मम ॥" (पद्म० १८।६९)

पर्यायोक्त : "जाता विशुद्धवंशेषु वरक्रीडनभूमयः ।
मा भूवन् विधवा भद्र, तवैता वरयोषितः ॥"[३३२]
(पद्म० ३७।११८)

३१।२०२-२३२; ३३।२०२,२०३,२०४; ३४।२७-३४; ३६।३३-६८; ३७।४६,७३; ३९।१२,१७, २९,५८; ४१।१५३; ४२।२४-२७, ४३।८५,१२०; ४४।६३; ४६।१५५ १५८; ५०।१; ५२।२; ५४।११,४०-४६,५७; ५७।१९; ६०।१७,८८,९७,१०१; ६१।९,१२; ६२।४४-४५; ६४।५७; ६५।७५, ६६।१७,७७; ७१।४३,५०, ७३।३६,४१-४२,१२५-१४०,१४७,१५० ७४।११, ७९।४७ ८३।३१,३४, ९५।१८,२०,२१; ९६।१; ९७।१३५; १००।२-७,२२-३१,५३-८३; १०४।१४,३९,४०,६२, १०८।३४; १०९।४,७१; ११०।१३,१६,२१; ११२।८, १२,६९ आदि ।

३३०. दीपक का यह उदाहरण हम भाषा के विवेचन में दे चुके हैं, दे० पद्म० २१।५९-७१ ।

३३१. निदर्शना के लिए और भी देखिए—पद्म०, २।२३८-२४०; ६।२८१, १३।६२ १४। ७५ ४१।६० आदि ।

३३२. पर्यायोक्त के लिए और भी देखिए—पद्म०, ६।८,३९१; ७।२३,१६०; ८।१५६, १६।१२६; ४१।२३; ४७।७२,१३३; ५४।६५ आदि ।

आक्षेप : "न विद्म: स किमस्माकं क्रुद्धो नाथ: करिष्यति ।
अथवा सप्रणामेषु देवो यास्यति मार्दवम् ॥"
(पद्म० ३७।१३५)

विरोधाभास : "यत्र मातंगगामिन्यः शीलवत्यश्च योषितः ।
श्यामाश्च पद्मरागिण्यो गौर्यश्च विभवाश्रयाः ॥"[333]
(पद्म० २।४५)

विशेषोक्ति : "रूपं पश्यन् जिनस्यासौ सहस्रनयनोऽपि सन् ।
तृप्तिमिन्द्रो न सम्प्राप त्रैलोक्यातिशयस्थितम् ॥"
(पद्म० ३।१७४)

विषम : "जटामुकुटभारः क्व, क्व चेदं प्रथमं वयः ।
विरुद्धसम्प्रयोगस्य स्रष्टारो यूयमुद्गताः ॥"[334] (पद्म० ७।२७३)

कारणमाला : "प्राणिनो ग्रन्थसंगेन रागद्वेषसमुद्भवः ।
रागात् सञ्जायते कामो द्वेषाज्जन्तुविनाशनम् ॥
कामक्रोधाभिभूतस्य मोहेनाक्रम्यते मनः ।
कृत्याकृत्येषु मूढस्य मतिर्न स्याद्विवेकिनी ॥"
(पद्म० ११।१३६-१३७)

सार : "दुर्लभं सति जन्तुत्वे मनुष्यत्वं शरीरिणाम् ।
तस्मादपि सुरूपत्व ततो धनसमृद्धता ॥
ततोऽप्यार्यत्वसम्भूतिस्ततो विद्यासमागमः ।
ततोऽप्यर्थज्ञता तस्माद् दुर्लभो धर्मसंगमः ॥"
(पद्म० ५।२३३-२३४)

यथासंख्य : "शोभयारयाङ्घ्रिहस्तानां जंगमामिव पद्मिनीम् ।
जयन्ती करिणी हंसीं सिंही च गतिविभ्रमैः ॥" (पद्म० ८।६६)
"अश्वै रथैर्भटैर्नागैः पतद्भिरतिरंहसा ।
अश्वा रथा भटा नागा न्यपात्यन्त सहस्रशः ॥'
(पद्म० १२।२८३)

पर्याय : "प्रभासमुज्ज्वलः कायो योऽयमासीन्महाबलः ।
जात. सम्प्रत्यसौ वर्षाहतचित्रसमच्छविः ॥"[335]
(पद्म० २१।१३५)

---

३३३. और भी—पद्म०, २।४६-४८, ५३-५४, ७।२६७; ९।९८१-९८४; २४।११२ आदि ।

३३४. विषम के लिए देखिए और भी—पद्म०, ९।११३; २३।६१; २८।१४५; १०७।३३; १२२।४५ ।

३३५. और भी—पद्म०, १२।२२१;२१।१३३-१३४;२३।४७-४८; २६।५२-५६; ३२।१००-१०१ ।

परिसंख्या : "रत्नबुद्धिरमूढस्य मलमुक्तेषु साधुषु।
पृथिवीभेदविज्ञानं पाषाणशकलेषु तु ॥"[३३६] (पद्म० २।५५)

परिवृत्ति : "मदिरायां परिन्यस्तं नारीभिर्मुखसौरभम्।
लोचनेषु निजो रागस्तासां मदिरया कृतः॥" (पद्म० ७३।१३८)

विकल्प : "कुरु सज्जौ करं दातुमादातुं वायुधं करौ।
गृहाण चामरं शीघ्रं ककुभां वा कदम्बकम् ॥
शिरो नमय चापं वा नयाज्ञां कर्णपूरताम्।
मौर्वीं वा दुस्सहारावामात्मजीवितदायिनीम् ॥
मत्पादजं रजो मूर्ध्नि शिरस्त्रमथवा कुरु।
घटयाञ्जलिमुद्वृत्य करिणां वा महाचयम् ॥
विमुञ्चेषुं धरित्रीं वा भजैकं वेत्रकुन्तयोः।
पश्य मेऽङ्घ्रिघनखे वक्त्रमथवा खड्गदर्पणे ॥[३३७]
(पद्म० ९।६०-६३

समाधि : "वारयन्ती वधं तस्य निश्चेष्टीकृतविग्रहा।
मूर्च्छा कालं कियन्तंचिच्चकारोपकृतिं पराम् ॥" (पद्म० ७७।२)

अर्थापत्ति : "यासा(धेनूनां)वर्चश्च मूत्रं च शुभगन्धं तुरुष्कवत्।
कान्तिवीर्यप्रदं तासां पयः केनोपमीयते ॥"[३३८]
(पद्म० ३।३२२)

काव्यलिंग : "पृच्छ्यमाना च यत्नेन मूर्च्छाहेतुं इलयांगिका।
शशाक त्रपया वक्तुं न सा स्तिमितलोचना ॥"(पद्म० १५।२०२)

अर्थान्तरन्यास : "तद्वराऽन्वेषणे तस्य ततः सक्ताऽभवन्मतिः।
अत्यन्तव्याकुलप्रायः कन्यादुःखं मनस्विनाम् ॥"[३३९]
(पद्म० १५।२३)

---

३३६. और भी—पद्म, ७।१३४-१३७ आदि।

३३७. विकल्प के लिए देखिए और भी पद्मपुराण, २८।४६; ३३।२२९; ३७।३६ आदि।

३३८. अर्थापत्ति के लिए देखिए और भी वही, ६।३४०; ७।१६,३४४; १३।३६; १४।८८ २८।१८; ३७।११२; १३४; ५७।११ आदि।

३३९. अर्थान्तरन्यास का तो कवि ने बहुत खुलकर आश्रय लिया है। सहस्र के लगभग उक्तियाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार की उदाहरण बनकर आयी हैं। कुछ के संकेत प्रस्तुत हैं—पद्म०, १।२४, १०३; २।११७, १८१; ३।७२; ४।३५,३६,९५,९७,९९; ५।१२१,२७६,३०७, ३२८,४०५,४०६; ६।२५,४३,४९,१४४,१६७,१७१,२००,२११,२१६,२६७,२८६,३१६,३९४, ४५०,४६३,४८०,४८१,४८५,४९६,५०३; ७।५२,९९,११०,१८४,२०२,२२०,२४०,२८०,३०३, ३०४,३०६,३१५,३९४; ८।१०,११,३१,४८,४९,५१,७३,१०७,१५७,१७१,१८९,१९०,१९२,

सम्भावना (यथार्थेऽ 'अपि दिनकरदीप्तिः कौमुदी चन्द्रकान्तिः
तिशयोक्ति :) सुरपतिमहिषी वा कापि वा सा सुभद्रा ।
यदि भजति तदीयासङ्गशोभां कथञ्चि-
न्नियतमतिमनोज्ञास्तास्ततो वेदनीयाः ॥' (पद्म० २६।१७०)

स्वभावोक्ति : राजा श्रीकण्ठ वानरों के साथ क्रीड़ा करता है। वानरों की चेष्टाओं का वर्णन कवि करता है:—
'यूकापनयनं पश्यन् विनयेन परस्परम् ।
प्रेम्णा च कलह रम्य कृतखोत्कारनिस्वनम् ॥
कर्णान् विदूषकासक्तश्रवणाकारधारिणः ।
नितान्तकोमलश्लक्ष्णानचलद्वपुषां स्पृशन् ॥'
(राजा तैस्साक रन्तु प्रववृते'—इति शेष. ॥)[३४०] (पद्म० ६।११५,११७)

उदात्त : 'अनेक वैभवशाली वस्तुओं के वर्णन में इसका प्रयोग देखा जा सकता है।'[३४१]

निरुक्ति : जहाँ नामो की व्युत्पत्ति दी गयी है वहाँ इसके अनेक उदाहरण हैं। इनके सकेत हम इसी अध्याय में भाषा' उपशीर्षक में दे चुके है।

निश्चय : 'नामूनि शतपत्राणि न चैते वत्स तोयदाः ।
सितकेतुकुलच्छायाः सहस्राकारतोरणाः ॥
शृङ्गेषु पर्वतस्यामी विराजन्ते जिनालयाः ॥' (पद्म० ८।२७५-२७६)

मालोपमा : हसीव पद्मिनीखण्डे महिषीव महाह्रदे ।
सस्ये सारङ्गबालेव तत्राभूत् साभिलाषिणी ॥' (पद्म० ४३।६४)

उपर्युक्त अलकारो के उदाहरण दिङ्मात्र प्रस्तुत कर दिये गये हैं। इनका वास्तविक आनन्द तो ग्रन्थ पढ़ते हुए ही आता है जब कि अलकार अहमहमिकया

२२०,२२६,२३०,२३३,२४२,२५६,३७७; ९।२२,२०१,२०२,२०५; १०।१३,२१,२६,३२,१४७, १६३,१६५; ११।३०,५८,७४,१२३,१८८,१६६,१८५,१९८,२००,२०३,२०९,२१०,३००, ३०५,३७१,३८१; १२।५०,१००,१०१,१२५,१३१,१३२,१६५,१७२,३७५; १३।४,३०,४०,६८, ६०,९२; १५।२२,३५,५२,१०१,११२; १६।३०,५८,६९,११६,२३२; १८।४७,७९; १९।११,७९, ८९; २०।१६०, २१।११५,११६,११७,१३६,१४६,१५५; २३।४५,६४; २४।१००; २५।४४ ५३।८५,९१, २४२,२४८,२४९,; ५६।३६; ५७।४४; ५८।४८; ६०।६८,८७,९०; ६२।२७; ६३।१३,२३; ६४।१६, १।१, ६५।१६,५५, ६६।३,२६,५३,८७,८९; ६७।२७; ७२।६४,९० ,७३।७४; ७६।१२,२६; ७७।६८, ६०. ९१।४८ आदि अनेक स्थल ।

३४०. और भी पद्मपुराण ६।११२-११८,२४५-२४७,३६४-३७८; ८।५२३-५२९; १५।४८; १६।२१७-२१९; २८:२४६-२४८; ४२।५९; ४३।१०९; ५७।२१; ६५।१८, ७९ आदि ।

३४१. यथा—पद्म० ३।११८-१२१; ३१३-३३७ आदि ।

अपनी चमत्कृति दिखाते हैं और अनेक संसृष्टि-संकर आते हैं। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक और अर्थान्तरन्यास अलंकार तो जहाँ एक बार आरम्भ हो जाते हैं, फिर रुकने का कठिनता से ही नाम लेते हैं। इन सभी उदाहरणो से रविषेण के अलंकाराधिकार की पूर्ण परिपुष्टि हो जाती है।

गुण : गुण रस के धर्म होते हैं जिन्हे गुणवृत्ति से शब्दार्थ का धर्म भी कह दिया जाता है—

'ये रसस्यांगिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः॥'

० ० ०

गुणवृत्त्या पुनस्तेषां वृत्तिः शब्दार्थयोर्मता॥"[३४२]

ये तीन माने गये हैं:—१–माधुर्य २–ओज तथा ३–प्रसाद। इन्ही में अनेक आलकारिकों द्वारा माने गये १०-१० और २४-२४ गुण अन्तर्भावित हो जाते हैं। माधुर्य कोमल रसों—संभोग शृंगार, वियोग शृंगार, करुण तथा शान्त में, ओज कठोर रसों–वीर, बीभत्स तथा रौद्र में एवं प्रसाद सभी में होता है। यहाँ दिङ्मात्र उदाहरण देकर हम 'पद्मपुराण' के गुणों पर विचार करेंगे।

'पद्मपुराण' में प्रकृति के वर्णनों में, सौंदर्य-वर्णनो में, वियोग-वर्णनों में तथा स्तुतियों में 'माधुर्य' गुण के दर्शन होते है। यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं:—

"वलयाना रणत्कारः कलालापसमन्वितः।
तदा मनोहरो जज्ञे भ्रमरौघरवोपमः॥
तस्यास्ते काम्यमानाया नेत्रके करतारके।
मुकुले दधतु: शोभां चलदिन्दीवरस्थिताम्॥"[३४३]
"पुस्कोकिककलकलालापैर्जयशब्दमिवाकरोत्।
वातकम्पितवृक्षाग्रो वज्रबाहोर्धराधरः।
वीणाझंकाररम्याणां भृङ्गाणां मदशालिनाम्।
नादेन श्रवणौ तस्य मानसेन समं हृतौ॥"[३४४]

"सफेनवलया लसत्प्रकटवीचिमालाकुला
विमर्दितसितासितारुणपयोजपत्राचिता।

३४२. काव्य-प्रकाश ८।६६,७१
३४३. पद्मपुराण १६।१९९-२००
३४४. वही, २१।८५-८६

समुद्गतकलस्वनातिरहसंगमासेविता
समं रघुकुलेन्दुना रतिमिवाकरोदापगा ॥"[२४५]

"जुगुञ्जुर्मञ्जवो गुञ्जा विनेदुः पटहाः पटु।
नान्द्यो नन्दन्दुरायातं चक्वणुः काहलाः कलम् ॥"[२४६]

इनके अतिरिक्त मूल ग्रन्थ में अनेक स्थानों पर 'माधुर्य' के दर्शन किये जा सकते हैं।

'पद्मपुराण' में युद्ध के ऐसे बहुत से वर्णन हैं जहाँ ओज के दर्शन किये जा सकते हैं। समासभूयस्कता तो पद-पद पर है जिसका संकेत हम भाषा का विवेचन करते हुए कर आये हैं। यहाँ तो नाम-मात्र के लिए उदाहरण प्रस्तुत करते हैं:—

"दंष्ट्राकरालवदना स्फुरत्पिंगनिरीक्षणा।
मस्तकोर्ध्वबलत्पुच्छा नखक्षतवसुन्धरा॥
कृतगम्भीरहुंकारा मारीवोपात्तविग्रहा।
लसल्लोहितजिह्वाग्रा विस्फुरद्देहधारिणी॥"[२४७]

जहाँ तक 'प्रसाद' का सम्बन्ध है—पारिभाषिक शब्दों के स्थलों को छोड़कर सर्वत्र व्याप्त है। लम्बे-लम्बे समासों में भी प्रासादिकता है, छोटे वाक्यों में तो है ही, उदाहरणार्थ—

"हा वत्स, विधियोगेन महादुर्लङ्घ्यमर्णवम्।
उत्तीर्य संगतोऽस्येतामवस्थामतिदारुणाम्॥
अयि मद्भक्तिसच्चेष्टो मदर्थं सततोद्यतः।
क्षिप्रं प्रयच्छ मे वाचं किं मौनेनावतिष्ठसे॥

० ० ०

क्व सौमित्रिः क्व सौमित्रिरिति नाढं समुत्सुकः।
लोकोऽपि हि समस्तो मे प्रक्ष्यति प्रेमनिर्भरः॥

० ० ०

पर्यट्य पृथिवीं सर्वां स्थानं पश्यामि तन्ननु।
यस्मिन्नवाप्यते भ्राता जननी जनकोऽपि वा॥"[२४८]

---

२४५. वही, ४२।७२
२४६. वही, १०५।४६
२४७. व्याघ्रीवर्णन, पद्मपुराण, २२।८६-८७
२४८. वही, ६३।४-५, ९,१४।

रीति और वृत्ति : रीति का लक्षण करते हुए विश्वनाथने लिखा है—'पदसंघटना रीतिरङ्ग-संस्थाविशेषवत् । उपकर्त्री रसादीनाम् ।'[२४९] अर्थात् शरीर की अङ्गसंस्था के समान रीति होती है। रीति को ही प्रायः वृत्ति कहा जाता है अन्तर इतना है कि रीति का सम्बन्ध देश से है और वृत्ति का मन से। वृत्तियों के मम्मट ने तीन भेद माने हैं—१—परुषा, २—उपनागरिका, तथा ३—कोमला। रीतियों के चार भेद माने गये हैं—१—गौडी, २—वैदर्भी, ३—पांचाली तथा ४—लाटी। गौडी या परुषा ओजःप्रकाशकवर्णों का आडम्बर बाँधने वाली रीति है, वैदर्भी या उपनागरिका माधुर्यव्यंजक शब्दों की ललित रचना है, पाञ्चाली या कोमला थोड़े समासों वाली प्रसादव्यञ्जिका रचना है। लाटी वैदर्भी और पाञ्चाली के बीच की मानी गयी है।

'पद्मपुराण' में उपर्युक्त गुणों में उक्त रीतियाँ या वृत्तियाँ प्रयुक्त हैं जिनके उदाहरण 'गुण'—प्रकरण में देखने चाहिए।

दोष : दोष काव्यात्मा रस के अपकर्षाधायक होते हैं। विशालकाय काव्यों में प्रायः कहीं न कहीं कोई दोष आ ही जाता है—'सर्वथा निर्दोषस्यैकान्तमसम्भवात्'[२५०]। दोष के अनेक भेद होते है यथा—पदगत, पदांशगत, वाक्यगत, रसगत। इनके भी अनेक भेदोपभेद होते हैं।

'पद्मपुराण' मे भी कुछ दोष आ गये हैं। जहाँ शास्त्रार्थ, धर्मोपदेश और नामावलियो के वर्णन आते हैं वहाँ 'अंगिनोऽनुसन्धानमनङ्गस्य च कीर्तनम्' के साथ अप्रतीतत्वादि दोष पर्याप्त मात्रा में आ गये हैं, दूसरे भारतीय दृष्टिकोण से सीता पूज्य हैं, स्थान-स्थान पर उनके स्तनों एव कामोत्पादकत्व का व्याख्यान शायद किसीको ठीक न लगे। साथ ही हनूमान् के पिता का यद्यपि शृंगार-वर्णन बहुत अच्छा है किन्तु यह भी 'पित्रोः सम्भोगवर्णनमिवात्यन्तमनुचितम्' वाली कोटि में रखा जा सकता है। तीसरे, उपाख्यानों में जहाँ एक-से-एक उपाख्यान निकलता जाता है, वहाँ भी पाठक भटक-सा जाता है। अस्तु, महाग्रन्थों में छोटे-मोटे दोषों का आ जाना अस्वाभाविक नहीं है। यह निश्चित है कि दोषों की अपेक्षा गुण ही इस काव्य में अत्यधिक समृद्ध रूप में उपलब्ध हैं। दोष का दिङ्मात्र उदाहरण प्रस्तुत हैं—'क्वचिद्विभ्रान्तसत्त्वकं क्वचिद्विश्रब्धसत्त्वकम्' (४२।४६) यहाँ संयुक्ताद्यदीर्घ मानने पर छन्दोभंग होता है। अस्तु—'महात्मनां दोषेद्घोषणमात्मनो दोषायैव'—इत्यलम्।

संवाद : पौराणिक काव्यों में वक्ता-श्रोता-योजना होने के कारण संवादों

२४९. साहित्यदर्पण ९।१

२५०. 'साहित्यदर्पण', प्रथम परिच्छेद।

की स्थिति अवश्यम्भावी है। मुख्य संवाद के अतिरिक्त कथा में और भी अनेक संवाद आते हैं। काव्य में संवादों के सद्भाव से ताजगी और एक विशिष्ट विच्छित्ति आ जाती है। संवादों का परीक्षण करते समय हमे उनकी स्वाभाविकता, व्यंजनाशीलता, अवसरानुकूलता, व्यावहारिकता, गत्यात्मकता एवं प्रभावशालिता पर विचार करना होता है। यहाँ हम 'पद्मपुराण' के संवादों पर संक्षिप्त विचार करेंगे।

'पद्मपुराण' में गौतम गणधर और राजा श्रेणिक के संवाद के अतिरिक्त अनेक संवाद आये हैं इन संवादों का नामग्राह इस प्रकार किया जा सकता है—श्रेणिक-गणधर-संवाद,[३५१] मय-चन्द्रनखा-संवाद,[३५२] रावण-सहस्ररश्मि-संवाद'[३५३] नारद-पर्वतक-वसु-स्वस्तिमती-संवाद,[३५४] संवर्त-नारद-पुरोहित-संवाद,[३५५] उपरम्भा-विचित्रमाला-संवाद,[३५६] विचित्रमाला-रावण-संवाद,[३५७] युद्धोक्ति,[३५८] सहस्रार-रावण-संवाद,[३५९] रावण-अनन्तबल-संवाद,[३६०] प्रह्लाद-पवनजय-सवाद,[३६१] वरुण-रावणदूत-संवाद,[३६२] पवनंजय-अंजना-संवाद,[३६३] केतुमती-प्रहसित-संवाद,[३६४] चन्द्रगति-पुष्पवती-संवाद,[३६५] चन्द्रगति-जनक-संवाद,[३६६] दशरथ-सुप्रभा-संवाद,[३६७] दशरथ-कंचुकी-संवाद,[३६८] दशरथ-भरत-संवाद,[३६९] राम-भरत-सवाद,[३७०] राम-अपराजिता-सवाद,[३७१] राम-सीता-संवाद,[३७२] पुरवासियो के भावालाप,[३७३] राम-भरत-केकया-सवाद,[३७४] भरत-द्युतिभट्टारक-सवाद,[३७५] वज्रकर्ण-साधु-सवाद,[३७६] कपिल-राम-लक्ष्मण-सवाद,[३७७] लक्ष्मण-वनमाला-सवाद,[३७८] राम-सीता-लक्ष्मण-संवाद,[३७९] वनवासी-रामलक्ष्मण को देखकर नारियों के भावालाप,[३८०] लक्ष्मण-

---

३५१. पद्म० पर्व २,
३५२. वही, ८।३२-३९,
३५३. वही, १०।१५९-१६९
३५४. वही, १२।३६-६३
३५५. वही, पर्व १२
३५६. वही, १२।९९-११२
३५७. वही, १२।११५-१३२
३५८. वही, १२।२६८-२७३
३५९. वही, १२।२६८-२७३
३६०. वही, १३।३-२१
३६१. वही, १५।२११-२१८
३६२. वही, १६।३५-४०
३६३. वही, १६।८६-९६
३६४. वही, १८।५८-६३
३६५. वही, २६।१३६-१४५
३६६. वही, २८।१२०१५१
३६७. वही, २९।२५-४०
३६८. वही, २९।४१-७१
३६९. वहा, ३१।१२८-१५३
३७०. वही, ३१।१५४-१६३
३७१. वही, ३१।१६६-१८३
३७२. वही, ३१।१८४-१८५
३७३. वही, ३१।२०४-२१४
३७४. वही, ३२।११६-१३५
३७५. वही, ३२।१४६-१८३
३७६. वही, ३३।८८-१०९
३७७. वही, ३५।१५४-७४
३७८. वही, ३६।४१-४९
३७९. वही, ३६।५०-६२
३८०. वही, ३८।४८-५६

शत्रुदमन-संवाद,[३८१] रावण-चन्द्रनखा-संवाद,[३८२] रावण-मन्दोदरी-संवाद,[३८३] मन्दोदरी-सीता-संवाद,[३८४] रावण-हनूमान्-संवाद,[३८५] भामण्डल-चन्द्रप्रतिम-संवाद[३८६] राम-रावणदूत-भामण्डल-संवाद,[३८७] रावण-तद्दूत-संवाद,[३८८] पूर्णभद्र-मणिभद्र-राम-यक्ष-संवाद,[३८९] मन्दोदरी-रावण-संवाद,[३९०] रावण-लक्ष्मण-सवाद,[३९१] रावण-लक्ष्मण-संवाद,[३९२] भरत-केकया-रामलक्ष्मण-राजा-सवाद,[३९३] राम-लक्ष्मण-शत्रुघ्न-संवाद,[३९४] शत्रुघ्न-सुप्रभा-संवाद,[३९५] कृतान्तवक्त्र-सीता-संवाद,[३९६] मदनांकुश-नारद-सीता-संवाद,[३९७] भामण्डलादि-सीता-संवाद,[३९८] रामकेवली-सीता-संवाद।[३९९]

इन संवादो मे कुछ सवाद तो महत्त्वपूर्ण नहीं कहे जा सकते हैं किन्तु कुछ विशिष्ट कहे जा सकते हैं। प्रायः दूतो के सम्भाषणों से रविषेण का राजादिगतोचिताचारपरिज्ञान परिलक्षित होता है, नारियों के परस्पर संलापों से उसका सहज-सवाद-सौष्ठव सिद्ध होता है और अन्य अनेक संवादों से उनका गतिशील-सव्यंग्य-सवाद-योजन सिद्ध होता है। राम-मुनि-संवाद तथा रावण-मुनि-संवाद आदि कुछ संवाद धार्मिक-प्रचार-प्रधान होने के कारण पाठक को रंजित नहीं कर पाते। हनूमान्-सीता-संवाद एवं नारद-मदनांकुश-सवाद से कथा की सूचना मिलती है।

गतिशीलता की दृष्टि से एक सवाद—'चन्द्रगति-पुष्पवती-सवाद' प्रस्तुत है—

> "पर स विस्मयं प्राप्तः पप्रच्छ प्रियदर्शना।
> कथाय जनितो नाथ पुष्पवत्या स्त्रिया शिशुः॥
> सोऽवोचद्दयिते जातस्तवायं प्रवरः सुतः।
> प्रतीहि सशयं मा गास्त्वत्तो धन्या परा तु का॥

---

३८१. वही, ३८।९०-११८
३८२. वही, ४६।३१-३७
३८३. वही, ४६।४४-७०
३८४. वही, ४६।७३-८६
३८५. वही, ५३।२३०-२५५
३८६. वही, ६४।१८-३१
३८७. वही, ६६।२१-६०
३८८. वही, ६६।६१-९५
३८९. वही, ७०।६८-१०१
३९०. वही, ७३।२८-१२४
३९१. वही, ७४।८७-९७
३९२. वही, ७६।१७-२७
३९३. वही, ८३।६७-८८
३९४. वही, ८९।१-१८
३९५. वही, ८९।१९-३०
३९६. वही, ९७।१०५-४९
३९७. वही, १०२।७-८२
३९८. वही, १०४।२५-३५
३९९. वही, १२३।६८-८५

सावोचदप्रिय वन्ध्यास्मि कुतो मे सुतसम्भवः।
प्रतारितास्मि दैवेन किं मे भूयः प्रतार्यते।।
सोऽब्रोचद्देवि मा शङ्कां कार्षीः कर्मनियोगतः।
प्रच्छन्नोऽपि हि नारीणां जायते गर्भसम्भवः।।
सावोचदस्तु नामैवं कुण्डले त्वतिचारुणी।
ईदृशी मर्त्यलोकेऽस्मिन् सुरत्ने भवतः कुतः।।
सोऽब्रोचद्देवि नानेन विचारेण प्रयोजनम्।
शृणु तथ्यं पतन्नेष गगनादाहृतो मया।।" आदि[४००]

प्रकृति-चित्रण : प्रकृति से चिर-सम्बन्ध होने के कारण कवि अपने काव्य में उसका चित्रण किया करता है। यह चित्रण अनेक रूपों में होता है यथा—(१) आलम्बन रूप मे, (२) उद्दीपन रूप में, (३) संवेदनात्मक रूप में, (४) वातावरणनिर्माण के रूप में, (५) रहस्यात्मक रूप में, (६) प्रतीक के रूप में, (७) अलंकार के रूप में, (८) लोक-शिक्षा के रूप में, (९) दूती के रूप में तथा (१०) मानवीकरण के रूप में। हमारे आलोच्य ग्रन्थ में भी प्रकृति-चित्रण कई रूपों में हुआ है जिनका संक्षिप्त संकेत हम यहाँ कर रहे है। इनका पूर्ण विवरण हम वक्ष्यमाण 'वर्णन' शीर्षक मे देंगे।

'पद्मपुराण' मे प्रायः वातावरण-निर्माण के रूप में, उद्दीपन रूप मे, लोकशिक्षा के रूप में, संवेदनात्मक रूप में तथा अलंकार रूप मे अधिक प्रकृति-चित्रण हुआ है। शेष रूप कम ही आये हैं। प्रायः सूर्योदय-सूर्यास्त के वर्णन तो वातावरण निर्माण एवं संवेदनात्मक रूप में ही किये गये हैं। ऋतुवर्णनों में प्रकृति-चित्रण उद्दीपन रूप मे प्रधान है। कमलकोप में भ्रमर के संपीडन तथा ज्योतिर्बिम्ब के लीन होने आदि के वर्णनों मे प्रकृति लोक-शिक्षा-प्रदात्री के रूप मे चित्रित है। इन सभी उदाहरणों की सूची 'वर्णन' शीर्षक में दी जा रही है।

वर्णन : 'लोकोत्तरवर्णनानिपुणकविकर्म काव्य'[४०१] के लिए वर्णन अत्यावश्यक होते हैं। वर्णनों से कवि की 'निपुणता' का ज्ञान होता है जो 'लोक शास्त्र एवं काव्यादि के अवेक्षण'[४०२] से आती है तथा जिसके विषय मे कहा गया है—

---

४००. पद्मपुराण २६।१३६-१४६।
४०१. देखिए—काव्यप्रकाश १।२
४०२. वही, १।३

'छन्दोव्याकरणकलालोकस्थितिपदपदार्थविज्ञानात् ।
युक्तायुक्तविवेको व्युत्पत्तिरियं समासेन ॥
विस्तरस्तु किमन्यत्तत इह वाच्यं न वाचकं लोके ।
न भवति यत्काव्याङ्गं सर्वज्ञत्वं ततोऽन्यैषा ॥'[४०३]

इसी निपुणता-कांचन के निकषग्रावा होते हैं वर्णन जिनकी स्वाभाविकता एवं मनोहरता उनका जीवातु है। वर्णनों की कोई इयत्ता नहीं है तथापि उनकी एक सूची साहित्य-दर्पणकार विश्वनाथ ने इस प्रकार दी है जिसे सभी सहृदय स्वीकार करते हैं—

'सन्ध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः ।
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः ॥
सम्भोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः ।
रणप्रयाणोपयमा मन्त्रपुत्रोदयादयः ॥
वर्णनीया यथायोग्यं साङ्गोपाङ्गा अमी इह ॥'[४०४]

दण्डी ने भी इससे पहले विविध वर्णनों की अनिवार्यता पर काव्य-लक्षण में बल दिया था। इस प्रकार स्पष्ट है कि काव्य मे, विशेषतः वर्णनात्मक महाकाव्य में वर्णनो का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यहाँ हम 'पद्मपुराण' के वर्णनों की स्वाभाविकता, समुचित विस्तृति, रसमयता तथा मनोहारिता का परीक्षण करेंगे।

'पद्मपुराण' को आदि से अन्त तक पढ़ने पर वर्णनों का प्राचुर्य स्पष्ट ही दृष्टिगोचर हो जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि रविषेण के हृदय से वर्णन अहमहमिका से उसी प्रकार आतुरता से प्रकट हो रहे है जैसे किसी पर्वत से निर्झर प्रवाह। यदि 'पद्मपुराण' के लगभग २५० वर्णनों के आधार पर 'रविषेण' को वर्णनों का 'बादशाह' अथवा 'जैनसाहित्य का बाण' कहा जाय तो कोई अनौचित्य न होगा। एक ही वस्तु का कई बार नवीन प्रकार से वर्णन करते हुए रविषेण सहृदय को बलात् आकर्षित कर लेता है। उन सभी वर्णनों का पृथक्तया वर्णन करना अत्यधिक स्थानसापेक्ष है अतः संक्षिप्त सूचीबद्ध विवरण देना ही अधिक औपयिक समझा जा रहा है—

१. आत्मपरिचय

(१) कवि का आत्म-निवेदन[४०५]

---

४०३. रुद्रट, काव्यालंकार १।१८, १९
४०४. साहित्यदर्पण ६।३२२-३२४
४०५. पद्मपुराण, १।१५-२२

(२) पद्मपुराण-माहात्म्य-वर्णन[४०६]

२. धार्मिक वर्णन—

(१) समवसरण-वर्णन,[४०७] (२) जिनेन्द्र-मन्दिर-वर्णन,[४०८]
(३) जिन-पूजा वर्णन,[४०९] (४) शास्त्रार्थ-वर्णन,[४१०]
(५) जैन-मुनि-वर्णन,[४११] (६) धर्म के फल,[४१२]
(७) धर्म का विशेष कथन,[४१३] (८) पर्व-वर्णन,[४१४]

३. स्थान-वर्णन—

(१) मगधदेश-वर्णन,[४१५] (२) राजगृह-नगर-वर्णन,[४१६]
(३) लंका-नगरी-वर्णन,[४१७]
(४) सुषमाकालस्थ-भरत-क्षेत्र वर्णन,[४१८]
(५) द्वीपस्थनगर-पर्वतादि-वर्णन,[४१९]
(६) वानरद्वीप-वर्णन[४२०] (७) किष्कुपुर-नगर-वर्णन,[४२१]
(८) स्वयम्प्रभनगर-वर्णन,[४२२] (९) किष्किन्धनगर-वर्णन,[४२३]
(१०) ग्राम-नगर-वर्णन,[४२४] (११) क्षेमांजलि-नगर-वर्णन,[४२५]
(१२) अलंकारोदय-नगर-वर्णन,[४२६] (१३) महेन्द्र-नगर-वर्णन[४२७]

---

४०६. वही, १२३।१६६-१८७ ४०७. वही, २।१३४-१४२ ।

४०८. वही, २८।८८-९६, ३१।२२४-२३०, ४०।२७-३२, ६७।११-२०; ८०।६० ७-१०; ८०।७०-७५, ११२।२५-४८ ।

४०९. वही, ६९।१-७, १०।८७-९०, ९५।४८-५७ ।

४१०. वही, ११।३६-२५२ ।

४११. वही, ६।२९०-२९२; २१।९१-९४, २२।१-५; ३६।८३।८३-८४, ५८।१६-१७; २९।३३-३५, ४९-५१, १०६-१०९; ४१।१३-१६; १०५।९०-९३ १४।१६६-१८१ ।

४१२. वही, १४।१४७-१६० तथा और भी अनेक स्थान ।

४१३. वही, १४।१६४-२४० । ४१४. वही, २९।१-६

४१५. वही, २।१-३२ । ४१६. वही, २।३३-४९ ।

४१७. वही, ५।१३५-१७७, ८।५११-५१८, १२।३६५-३६९; ५४।७३-७६; ४८।१०६-११६ ।

४१८. वही ३।४९-६३ । ४१९. वही, ६।६२-६९ ।

४२०. वही, ६।७०-९० । ४२१. वही, ६।१२२-१३२ ।

४२२. वही, ७।३२७-३४० । ४२३. वही, ९।८-९ ।

४२४ वही, ३३।५४-५६ । ४२५. वही, ३८-४२-६४ ।

४२६. वही, ४३।२०-२७ । ४२७. वही, ५०।४-७ ।

(१४) दधिमुख-द्वीप-नगर का वर्णन,[४२८]
(१५) नव-निर्मित अयोध्या-नगरी का वर्णन,[४२९]
(१६) शत्रुघ्न-निर्मित-नगरी का वर्णन,[४३०]

४. प्रकृति-वर्णन—

(१) सन्ध्या-सूर्यास्त-चन्द्रोदय-रात्रिमुख-वर्णन,[४३१]
(२) सूर्योदय प्रभात-वर्णन,[४३२]
(३) पर्वत (विपुलाचल, त्रिकूट, कैलाश आदि)-वर्णन,[४३३]
(४) वापी-वर्णन,[४३४]
(५) नदी (नर्मदा, शर्वरी, गंगा आदि)-वर्णन,[४३५]
(६) वन (भीम, महावन, दण्डक, श्वापद आदि)-वर्णन,[४३६]
(७) उपवन-वर्णन,[४३७] (८) वृक्ष-वर्णन,[४३८]
(९) समुद्र-वर्णन,[४३९] (१०) वसन्त-ऋतु-वर्णन,[४४०]
(१०) वर्षा-ऋतु-वर्णन,[४४१] (१२) शरद्-ऋतु-वर्णन,[४४२]
(१३) हेमन्त-ऋतु-वर्णन,[४४३] (१४) ग्रीष्म-वर्णन,[४४४]

---

४२८. वही, ५।१-८। ४२९. वही, ८१।११४-१२३।

४३०. वही, ९२।८३-८९।

४३१. वही २।२००-२१८, ८।४०२-४०४, १०।५२-५६,१३३-१३५, १६।१५०; १७।२२७-२२३; १९।११,३०-३२, ३१।२१९-२२२; ७३।१५-१२९।

४३२. वही, ३।१४१-१४९; ८।४३३; २९।९९-१०४, ४६।१०५-१०८; ९९।९०-९३।

४३३ वही, २।१०२-१०८; ३।३०९-३३८, ५।१५२-१६५; ९।१३६-१४४, २१।८२-८८, ३८।१४-१५।

४३४. वही, ८।९०-९४, ४६।१६०-१६२, १०५।९०-९३।

४३५. वही, १०। ९-६४, ३२।३२-३५, ९७।९६-१००।

४३६. वही, ६।५१०-५१७; ७।२५७-२६१, ८।२२-२४, ३३।२२-३३; ४१।३-४, ४२।५-१०१, ४६।१४१-१५९; ६४।५४-५९, ९७।८२-९४, ९९।३०-३४, ९९।४७-५५; १२२।२८-३३।

४३७. वही, ५३।१४-१८। ४३८. वही, ६।९१-१०६।

४३९. वही, ८।५०८-५०९।

४४०. वही, १५।५५-७३, ९५।११-२३, २१।८२-८८।

४४१ वही, ११।३५७-३६९; २२।५०-६५; ३५।३५-३९; ६४।७३; ११२।९-१२।

४४२. वही, २२।७४-८३, ४३।१-११; ६४।७१, ११२।१३-१८; ३०।१-६।

४४३. वही, ३१।६३-७५। ४४४. वही, ६४।७२ ११२।२-८।

(१५) सरोवर-वर्णन,[४४५]

५. नारी-सौन्दर्य-व्यापार-आलाप-वर्णन—

(१) रानी चेलना का वर्णन,[४४६]
(२) नाभिराज-पत्नी मरुदेवी का वर्णन,[४४७]
(३) गर्भवती मरुदेवी की परिचर्या का वर्णन,[४४८]
(४) विजयार्द्ध-पर्वत की नगरियों की स्त्रियों का वर्णन,[४४९]
(५) वानर-दर्शनजन्य-भयकातर गुणवती का वर्णन,[४५०]
(६) केकसी का नखशिख-सौन्दर्य-वर्णन,[४५१]
(७) गर्भवती केकसी का वर्णन,[४५२]
(८) मन्दोदरी का सुनियोजित नखशिख-सौन्दर्य-वर्णन,[४५३]
(९) हरिषेण-दर्शनोन्मत्त स्त्रियों का वर्णन,[४५४]
(१०) दशानन-दर्शनोत्सुक-पुरांगनाओं का वर्णन,[४५५]
(११) मदनाक्रान्त-उपरम्भा का वर्णन,[४५६]
(१२) अप्सराओं का नखशिख-सौन्दर्य-वर्णन,[४५७]
(१३) निकृष्ट तथा उत्कृष्ट स्त्रियों का वर्णन,[४५०]
(१४) अंजना-सुन्दरी का नखशिख-सौन्दर्य-वर्णन,[४५९]
(१५) पद्मरागा-सौन्दर्य-वर्णन,[४६०]
(१६) हनूमद्दर्शनोत्सुक नारियों की व्याकुलता का वर्णन,[४६१]
(१७) दिव्यस्त्री-पद्मखण्डरूपक,[४६२]
(१८) केकया की कलाओं का वर्णन,[४६३]
(१९) पुरुषवेशी कल्याणमाला का वर्णन,[४६४]

---

४४५. वही, १६।१०३-१०६ ।
४४६. वही, २।७१ ।
४४७. वही, ३।९१-१११ ।
४४८. वही, ३।११२-१२० ।
४४९. वही, ३।३२१-३३५ ।
४५० वही, ६।१६८-१७० ।
४५१ वही, ७।१४९-१५७ ।
४५२. वही, ७।२०४-२०८ ।
४५३. वही, ५७।७२ ।
४५४. वही, ८।२२१-२२३ ।
४५५. वही, ८।५२३-५२७ ।
४५६ वही, १२।९७-१११ ।
४५७. वही, १४।१३७-१४६ ।
४५८. वही, १४।२९२-३०७ ।
४५९. वही, १५।१६-२१, १४०-१४६ ।
४६०. वही, १९।१०८-१०९ ।
४६१. वही, १९।१२२-१२४ ।
४६२. वही, २१।३२-३५ ।
४६३. वही, २४।५-८३ ।
४६४. वही, ३४।३-७ ।

(२०) राम-लक्ष्मण-दर्शिनी नारियों के भावालापों का वर्णन,[४६५]
(२१) सीता-सौन्दर्य-वर्णन,[४६६]
(२२) नृत्यकारिणी सीता का वर्णन,[४६७]
(२३) नागदत्ता की कामोद्दीपक चेष्टाओं का वर्णन,[४६८]
(२४) सीता-नखशिख-वर्णन,[४६९]
(२५) सुग्रीव की तेरह पुत्रियों का वर्णन,[४७०]
(२६) हनूमद्दर्शन-विस्मित-नारी-समालाप-वर्णन,[४७१]
(२७) विशल्या-सौन्दर्य-वर्णन,[४७२]
(२८) रावण को समझाने के लिये मन्दोदरी के गमन का वर्णन,[४७३]
(२९) मन्दोदरी की शोभा का वर्णन,[४७४]
(३०) सीता की गर्भावस्था का वर्णन,[४७५]
(३१) लवणांकुश-दर्शनोत्सुक-नारी-कुतूहल-वर्णन,[४७६]
(३२) नारी-वार्तालाप-वर्णन,[४७७]
(३३) तपस्विनी सीता का वर्णन,[४७८]
(३४) राम के तप में विघ्न डालने वाली कन्याओं की शृंगार-चेष्टाओं आदि का वर्णन।[४७९]

६. पुरुष के सौन्दर्य-वैभव-व्यापारों के वर्णन :

(१) राजा श्रेणिक का वर्णन,[४८०]
(२) महावीर जिनेन्द्र का वर्णन,[४८१]
(३) सुप्तोत्थित राजा श्रेणिक के शय्या त्याग कर शयनागार से बाहर आने का वर्णन,[४८२]
(४) सामन्त-वर्णन,[४८३]

---

४६५. वही, ३८।४८-५६
४६६. वही, २६।६६५-१७१
४६७. वही, ३९।५४-५६
४६८. वही, ३९।१८८-१९२
४६९. वही, ४४।६०-६५
४७०. वही, ४७।१३६-१४७
४७१. वही, ५३।१७३-१७७
४७२. वही, ६५।३४-७६
४७३. वही, ७३।३२-३७
४७४. वही, ७३।४०-४३
४७५. वही, १००।१-१६
४७६. वही, १०३।७७-९६
४७७. वही, १०७।५३-६६
४७८. वही, १०९।७-१६
४७९. वही, १२२।४९-६०
४८०. वही, २।५०-७०
४८१. वही, २।७२-१०१
४८२. वही, २।२५४-२५६
४८३. वही, ३।२-५

(५) ऋषभ-तारुण्य-वर्णन[४८४]
(६) विजयार्द्धपर्वतस्थित विद्याधरों के आवासों तथा समृद्धि का वर्णन,[४८५]
(७) भरत चक्रवर्ती के ऐश्वर्य का वर्णन,[४८६]
(८) भरत की राज्य-समृद्धि का वर्णन,[४८७]
(९) महोदधि के दीक्षा-ग्रहण के समय व्याकुल परिजनों के भावालापों का वर्णन,[४८८]
(१०) श्रीमाला के स्वयंवर में स्थित विविध राजकुमारों का वर्णन,[४८९]
(११) इन्द्र के प्रताप और ऐश्वर्य का वर्णन,[४९०]
(१२) माली-प्रभाव-वर्णन,[४९१]
(१३) केकसी के भावी पुत्रों के प्रताप का वर्णन,[४९२]
(१४) रत्नश्रवा-प्रताप-वर्णन,[४९३]
(१५) रावण-प्रताप वर्णन,[४९४]
(१६) रावणादि की विद्यासिद्धि, अनावृत यक्ष के द्वारा विघ्न तथा उनकी विद्या-प्राप्ति का वर्णन,[४९५]
(१७) रावण-परिजनोल्लास-वर्णन,[४९६]
(१८) रावण-स्नान-वर्णन,[४९७]
(१९) रावण-सौन्दर्य-वर्णन,[४९८]
(२०) पवनंजय-सौन्दर्य-व र्णन,[४९९]
(२१) राम-लक्ष्मण-वर्णन,[५००]
(२२) दशरथ-पुत्रों के मिथिला-नगरी-प्रवेश का वर्णन,[५०१]
(२३) पृथ्वीधर के नगर में प्रवेश करते हुए राम-लक्ष्मण का वर्णन,[५०२]

---

४८४. वही, ३।२२४-२३०
४८५. वही, ३।३०९-३३२
४८६. वही, ४।६१-६६
४८७. वही, ४-७८-८४
४८८. वही, ६।३३९-३४८
४८९. वही, ६।३८१-४२६
४९०. वही, ७।१९-३२
४९१. वही, ७।३३-३६
४९२. वही, ७।८६-९४
४९३. वही, ७।१३३-१४४
४९४. वही, ७।२१३-२२२
४९५. वही, ७।२९२-३०९,३२४-३३५
४९६ वही, ७।३४७-३५१
४९७. वही, ९।३५९-३६६, ७२।११-१७
४९८. वही, ११।३२२-३३७
४९९. वही, १५।४९-५१
५००. वहा, २५।२७-३३
५०१. वही, २२।२७१-२७५
५०२. वही, ३६।९६-१००

(२४) अतिवीर्य-प्रताप-वर्णन,[५०३]
(२५) राम-स्वरूप-वर्णन,[५०४]
(२६) विद्याधरकुमार-वर्णन,[५०५]
(२७) शासनदेव-वर्णन,[५०६]
(२८) रावण-भवन-वैभव-वर्णन,[५०७]
(२९) राम-लक्ष्मण-स्नान-वर्णन,[५०८]
(३०) राम-लक्ष्मण-वैभव-वर्णन,[५०९]
(३१) वज्रजंघ-प्रताप-वर्णन,[५१०]
(३२) बालक-लवणांकुश-वर्णन,[५११]
(३३) विद्याग्राही-मदनांकुश-वर्णन,[५१२]
(३४) राममुनि-स्वभाव-वर्णन आदि।[५१३]

७. सम्भोग-क्रीडा तथा उत्सव-आमोद आदि के वर्णन :

(१) महारक्ष की उद्यान-केलि का वर्णन,[५१४]
(२) सुन्दरियों के साथ तडित्केश के विलास का वर्णन,[५१५]
(३) मन्दोदरी के साथ रावण की केलि का वर्णन,[५१६]
(४) छ. सहस्र कुमारियों के साथ रावण की जलकेलि का वर्णन,[५१७]
(५) सहस्ररश्मि की जलकेलि का वर्णन,[५१८]
(६) पवनंजय-अजना-सम्भोग-वर्णन,[५१९]
(७) सीता-राम-लक्ष्मण की वन-क्रीड़ा का वर्णन,[५२०]
(८) सैनिक-विलास-वर्णन,[५२१]
(९) ग्रीष्म-वर्षा-शीतानुसार राम-लक्ष्मण के विलास का वर्णन,[५२२]

---

५०३. वही, ३७।३३-३६
५०४. वही, ४९।५१-६३
५०५. वही, ७०।३१-३३
५०६. वही, ७०।५९-६७
५०७. वही, ७१।१६-४१
५०८. वही, ८०।७०-७५
५०९. वही, ८३।२-३३
५१०. वही, ९८।१५-२५
५११. वही, १००।२२-३१
५१२. वही, १००।५३-८३
५१३. वही, १२०।१५-३५
५१४. वही, ५।२९७-३०४
५१५. वही, ६।२२७-२३५
५१६. वही, ८।८४-८९
५१७. वही, ८।९५-११०
५१८. वही, १०।६५-८४
५१९. वही, १६।१७९-२१३
५२०. वही, ३९।३३-३५
५२१. वही, ७३।१५८-१७७
५२२. वही, ११२।१-१८

(१०) नाभिराज-जन्मोत्सव-वर्णन,[५२३]
(११) इन्द्र द्वारा नाभिराज के अभिषेक-मण्डनोत्सव का वर्णन,[५२४]
(१२) श्रीमाला के स्वयंवर-उत्सव का वर्णन,[५२५]
(१३) सहस्रार के पुत्र इन्द्र के जन्मोत्सव का वर्णन,[५२६]
(१४) इन्द्र के विजयोल्लास का वर्णन,[५२७]
(१५) दशानन-जन्मोत्सव-वर्णन,[५२८]
(१६) केकया-स्वयंवर-समारोह-वर्णन,[५२९]
(१७) सीता-स्वयंवर-समारोह-वर्णन,[५३०]
(१८) दशरथपुत्रों के मिथिला-नगरी-प्रवेश-समारोह का वर्णन,[५३१]
(१९) उत्सव मनाने का वर्णन,[५३२]
(२०) सुरप्रभ द्वारा राम-लक्ष्मण-सीता के स्वागत का वर्णन,[५३३]
(२१) मुनिसुव्रत जिनेन्द्र के पंचकल्याणक का वर्णन,[५३४]
(२२) लक्ष्मण के अभिषेकोत्सव का वर्णन,[५३५]
(२३) राम-लक्ष्मण के नगरीप्रवेश-समारोह का वर्णन,[५३६]

८. युद्ध, सेना, यात्रा, उपद्रव तथा तत्सम्बद्ध वर्णन :

(१) भरत-बाहुबलि-युद्ध-वर्णन,[५३७]
(२) किष्किन्ध-अन्धक की क्षुब्ध वानर सेना का वर्णन,[५३८]
(३) वानर-विद्याधर-युद्ध-वर्णन,[५३९]
(४) माली द्वारा पीड़ित सामन्तों की प्रार्थना पर इन्द्र-विद्याधर की रण-सज्जा एव माली से युद्ध का वर्णन,[५४०]
(५) वैश्रवण की रणयात्रा एव रावण से युद्ध का वर्णन,[५४१]
(६) चतुरंग सेना का वर्णन,[५४२]

---

५२३. वही, ३।१६०-१७२
५२४. वही, ३।१७३-२००
५२५. वही, ६।३५९-३८०
५२६. वही, ७।१४-१८
५२७. वही, ७।१६१-१०६
५२८. वही, ७।२१२
५२९. वही, २४।८७-९८
५३०. वही, २८।२०६-२५९
५३१. वही, २८।२७१-२७५
५३२. वही, ३६।९३-९५
५३३. वही, ४०।२-२४
५३४. वही, ७८।६२-६३ के मध्य का गद्य
५३५. वही, ८८।२६-३७
४३६. वही, ८२।२७-५४
५३७. वही, ४।६८-७३
५३८. वही, ६।४३४-४४६
५३९. वही, ६।४४७-४६७
५४०. वही, ७।६८-९६ ।
५४१. वही, ८।१९९-२४२
५४२. वही, ८।५०७

(७) रावण की सेना का वर्णन,[५४३]

(८) सहस्ररश्मि-रावण-युद्ध-वर्णन,[५४४]

(९) इन्द्र की युद्ध-सज्जा का वर्णन,[५४५]

(१०) इन्द्र-सेना का युद्ध-वर्णन,[५४६]

(११) युद्धस्थल का वर्णन,[५४७]

(१२) इन्द्र और रावण के विविध शस्त्रास्त्रों से विकट युद्ध का वर्णन,[५४८]

(१३) विजयैश्वर्यशालिनी सेना का वर्णन,[५४९]

(१४) रावण एवं वरुण की सेना के युद्ध का वर्णन,[५५०]

(१५) केकया-स्वयम्वरोपरान्त राजाओं से दशरथ के युद्ध का वर्णन,[५५१]

(१६) म्लेच्छों से राम-लक्ष्मण के युद्ध का वर्णन,[५५२]

(१७) खरदूषण-लक्ष्मण-युद्ध-वर्णन,[५५३]

(१८) विराधित-सहित लक्ष्मण के खरदूषण से युद्ध का वर्णन,[५५४]

(१९) युद्धस्थल की भयंकरता तथा बीभत्सता का वर्णन,[५५५]

(२०) महेन्द्र-हनूमान्-युद्ध-वर्णन,[५५५]

(२१) रावण की चतुरंगिणी सेना का वर्णन,[५५७]

(२२) अनेक राजाओं के अनेक बार युद्धों का वर्णन,[५५८]

(२३) युद्धयात्रा-वर्णन,[५५९]

(२४) लक्ष्मण-रावण-युद्ध तथा युद्ध-चेष्टा-वर्णन,[५५९]

(२५) लक्ष्मण-शक्ति पर क्षुब्ध अयोध्या की युद्ध-सज्जा का वर्णन,[५६०]

(२६) विद्याधर-कुमारों की लंका के लिए युद्ध-यात्रा का वर्णन,[५६१]

(२७) वीरों के युद्धार्थ प्रस्थान का वर्णन,[५६२]

(२८) रावण-लक्ष्मण-युद्ध-वर्णन,[५६३]

(२९) शत्रुघ्न-मधु-युद्ध-वर्णन,[५६४]

---

५४३. वही, १०।३९-५१
५४४. वही, १०।१०७-१३२
५४५. वही, १२।१८१-१९३
५४६. वही, १२।१९४-१९८
५४७. वही, १२।१९९-३०८
५४८. वही, १२।३१७-३४५
५४९. वही, १२।३५५-३६१
५५०. वही, १९।४१-६८
५५१. वही, २४।१०१-१२
५५२. वही, २७।४६-८५
५५३. वही, ४४।५१-५८
५५४. वही, ४५।१-३०
५५५. वही, ४७।१-५
४५६. वही, ५०।१४-३६
५५७. वही, ५६।२-१४
५५८. वही, ६०।१-१४१
५५९ वही, ४६०।१-९२
५६० वही, ६५।७।२२
५६१ वही, ७०।१६-२३
५६२. वही, ७३।१७८-१७७
५६३. वही, ७४।१६-११४
५६४. वही, ८९।५९-९५

(३०) लवणांकुश-पृथु-युद्ध-वर्णन,[५६५]
(३१) लवणांकुश-दिग्विजय-वर्णन,[५६६]
(३२) लवणांकुश-रणयात्रा-वर्णन,[५६७]
(३३) राम-लक्ष्मण की सेना के वैभव का वर्णन,[५६८]
(३४) वज्रजंघ की सेना सहित लवणांकुश के राम से युद्ध का वर्णन,[५६९]
(३५) राम-लक्ष्मण से लवणांकुश के विविध शस्त्रास्त्रों से युद्धका वर्णन,[५७०]
(३६) आकाश-यात्रा-वर्णन'[५७१]
(३७) इन्द्र की यात्रा का वर्णन,[५७२]
(३८) माली की यात्रा का वर्णन,[५७३]
(३९) वैश्रवण की यात्रा का वर्णन,[५७४]
(४०) राक्षस-यात्रा-वर्णन,[५७५]
(४१) ब्राह्मण-नारद-कलह तथा यज्ञ-ध्वंस का वर्णन,[५७६]
(४२) सिंहोदर की सभा के क्षोभ का वर्णन,[५७७]
(४३) उपद्रव के समय नर-नारियों के भावालापों का वर्णन,[५७८]
(४४) अग्निप्रभदेव द्वारा उपसर्ग का वर्णन,[५७९]
(४५) वनध्वंस-वर्णन,[५८०]
(४६) राम के क्रोध का वर्णन,[५८१]
(४७) युद्ध के लिए विदा होते समय वीरों तथा उनकी पत्नियों के भावालापो का वर्णन,[५८२]
(४८) साढ़े चार करोड़ कुमारों के लंका से रणप्रयाण का वर्णन,[५८३]
(४९) राम की सेना के रणप्रयाण का वर्णन,[५८४]
(५०) विद्याधर-कुमारों के आगमन पर लंकावासियों की आकुलता का

---

५६५ वही, १०१।२६-५८
५६६ वही, १०१।६८-१०६
५६७ वही, १०२।८६-११५
५६८ वही, १०२।१३९-१५३
५६९. वही १०२।१५४-२००
५७० वही, १०३।२-३०
५७१ वही, ५।६७-१३४
५७२ वही, ६।१३५-१३९
५७३ वही, ७।३७-४०
५७४ वही, ७।२३०-२३३
५७५ वही, ८।५०४-५०७
५७६ वही, ११।२५३-२७७
५७७ वही, ३३।२३०-२३६
५७८. वही, ३३।२४७-२६८
५७९ वही, २९।१८८-१९२
५८० वही, ५३।१९०-२१५
५८१. वही, ५४।४०-४६
५८२. वही, ५७।३-४३
५८३. वही, ५७।४२-६७
५८४ वही, ५८।१-४३

वर्णन,[५८५]

(५१) कुमारों के उपद्रव का वर्णन,[५८६]

(५२) पदाति-सैनिक वर्णन,[५८७]

(५३) लंका में अंगदादि के द्वारा उपद्रव का वर्णन,[५८८]

(५४) कुंभकर्ण द्वारा वरुण के नगर की लूट का वर्णन,[५८९]

९. विरह तथा विलाप-वर्णन :

(पुरुष-विरह) (१) हरिषेण-विरहावस्था-वर्णन,[५९०]

(२) पवनंजय-कामदशा-वर्णन [५९१]

(३) पवनंजय-विरहावस्था-वर्णन,[५९२]

(४) भामण्डल-विरहावस्था-वर्णन,[५९३]

(५) मदनाक्रान्त-रावण की अवस्था का वर्णन,[५९४]

(६) राम-विरह-वर्णन,[५९५]

(स्त्री-विरह) (७) अंजना-विरहावस्था-वर्णन,[५९६]

(८) विरहक्षाममुखी अंजना की दयनीय दशा का वर्णन,[५९७]

(९) विरहक्षीण अंजना के पवनंजय से साक्षात्कार का वर्णन,[५९८]

(१०) निष्कासित अंजना की अवस्था तथा वनभ्रमण का वर्णन[५९९]

(११) सीता-विरहावस्था-वर्णन,[६००]

(१२) आगमिष्यत्पतिका विरहिणी सीता की दशा का वर्णन,[६०१]

(पुरुष-विलाप) (१३) भाई अन्ध्रक के लिए किष्किन्ध के विलाप का वर्णन,[६०२]

(१४) लक्ष्मण-शक्ति पर राम के विलाप का वर्णन,[६०३]

(१५) रावण की मृत्यु पर विभीषण के विलाप का वर्णन,[६०४]

(१६) सीता-त्याग पर राम के विलाप का वर्णन,[६०५]

---

५८५ वही, ७०।३१-३३
५८६ वही, ७०।५१-५८
५८७ वही, ७०।४-७
५८८. वही, ७१।५२-८०
५८९. वही, ९९।४१-६८
५९० वही, ८।३०८-३१५
५९१ वही, १५।९५-१००
५९२ वही, १५।१०२-११७
५९३. वही, २८।२२-४७
५९४ वही, ४६।१०७-१९२
५९५ वही, ४८।२-२२
५९६ वही, १६।२-२४
५९७ वही, १६।८४-८६
५९८. वही, १६।१६८-२७२
५९९. वही, १७।४४-५०; १७९९-१०८
६००. वही, ५४।१७-२२
६०१. वही, ७९।३१-४८
६०२. वही, ६।४७१-४७८
६०३. वही, ६३।३-२०
६०४. वही, ७७।५-८
६०५. वही, ९९।४९-८१

(१७) सीता-त्याग पर लक्ष्मण के विलाप का वर्णन,[६०६]
(१८) लवणांकुश-दर्शन पर राम के विलाप का वर्णन,[६०७]
(१९) लक्ष्मण की मृत्यु पर राम के विलाप का वर्णन,[६०८]
(स्त्री-विलाप) (२०) अंजना-विलाप-वर्णन,[६०९]
(२१) केतुमती-विलाप-वर्णन,[६१०]
(२२) वनगमन के समय राम माता के विलाप का वर्णन,[६११]
(२३) अनंगकुसुमा-विलाप-वर्णन,[६१२]
(२४) लक्ष्मण-शक्ति पर सीता के विलाप का वर्णन,[६१३]
(२५) रावण की मृत्यु पर उसकी स्त्रियों के विलाप का वर्णन,[६१४]
(२६) मन्दोदरी-विलाप-वर्णन,[६१५]
(२७) कौशल्या-विलाप-वर्णन,[६१६]
(२८) वन में परित्यक्त सीता के विलाप का वर्णन,[६१७]
(२९) शम्बूक-वध पर चन्द्रनखा के विलाप का वर्णन आदि[६१८]

१०. अन्य वर्णन :

(१) हस्ति-वर्णन,[६१९]
(२) अशोकवृक्षतलस्थ-सिंहासन-वर्णन,[६२०]
(३) शय्या-वर्णन,[६२१]
(४) विविध रानियों के स्वप्नों का वर्णन,[६२२]
(५) विजयार्द्धपर्वतस्थित-विद्याधरावास-समृद्धि-वर्णन,[६२३]
(६) वानर-वर्णन,[६२४]
(७) विवाह-वेदीस्थ-चित्र-वर्णन,[६२५]

---

६०६. वही, ९९।८८-१०३
६०७. वही, १०३।४८-५४
६०८ वही, ११६।५-४४
६०९ वही, १७।६३-७९; १८७६-८३
६१० वही, १८।६४-७२
६११ वही, ३१।१६७-१७०
६१२. वही, ४९।१४-१६
६१३ वही, ६४।७-१३
६१४ वही, ७७।२२-४३
६१५ वही, ७८।८९-९१
६१६ वही, ८१।७-९
६१७ वही, ९७।१५३-१८२
६१८ वही, ४९।७६-८९
६१९ वही, २।११४-२२३; ८।४१६-४२२, ७।७१-७३,
६२० वही, १।१४३-१५२
६२१ वही, २।२१९-२२४; १६।२३९-२४०
६२२. वही, ५।१२३-१३९, ७।७५-८३; २५।२-३, २५।१२-१५; ९५।३-१०
६२३. वही, ३।३०९-३३८
६२४. वही, ६।१०७-११९
६२५. वही, ६।१६३-१६६

(८) नरक-वर्णन,[६२६]
(९) शकुन-अपशकुन-वर्णन,[६२७]
(१०) नगर-प्रासाद-वर्णन,[६२८]
(११) पुष्पक-विमान-वर्णन,[६२९]
(१२) कैलास-कम्पन-वर्णन,[६३०]
(१३) वैक्रियिक-शरीर-वर्णन,[६३१]
(१४) यंत्र-वर्णन,[६३२]
(१५) व्याकुल-चक्रवाकी-वर्णन,[६३३]
(१६) सिंह-वर्णन,[६३४]
(१७) व्याघ्री-वर्णन,[६३५]
(१८) जीव-क्रिया-वर्णन,[६३६]
(१९) अश्व-वर्णन,[६३७]
(२०) राम-वन-गमन पर पुरवासियों के भावालापों का वर्णन,[६३८]
(२१) विविध-व्यंजन-वर्णन,[६३९]
(२२) परुष-ब्राह्मण कपिल-वर्णन,[६४०]
(२३) पत्र-वर्णन,[६४१]
(२४) नृत्य-वर्णन,[६४२]
(२५) मुनिक्रोध-वर्णन,[६४३]
(२६) रथ-वर्णन,[६४४]
(२७) स्फुट-प्रकृति-दृश्य-वर्णन[६४५]
(२८) चक्ररत्न-वर्णन,[६४६]
(२९) गज-उपद्रव-वर्णन,[६४७]
(३०) शिबिका-वर्णन,[६४८]
(३१) संक्षिप्त-रामकथा-वर्णन,[६४९]
(३२) तपस्विनी-सीता-वर्णन,[६५०]
(३३) श्मशान-वर्णन,[६५१]
(३४) सैनिक-वार्तालाप-वर्णन,[६५२]

इस प्रकार स्पष्ट है कि 'पद्मपुराण' एक वर्णन-भरा काव्य है। उपर्युक्त सूची में समागत वर्णनों के अतिरिक्त और भी अनेक संक्षिप्त वर्णन हैं, किन्तु वे अधिक महत्त्वपूर्ण नही है। 'पद्मपुराण' के वर्णनों में एक विशिष्ट विच्छित्ति है, एक

---

६२६. वही, ६।३०६-३११ ३३।९५-९९ १०५।११६-१३८ १२३।१-११
६२७. वही, ७।४२।४८ १६।७९-८३ ५४।८९-५४ ५७।६९-७२ ७३।१८-२१ ९७।७५-७७
६२८. वही, ८।२५-२६ १८।१२८-१३२ ४९।२-८ ११०।६३-६७
६२९. वही, ८।२५३-२५८
६३०. वही, ९।१३६-१८८
६३१ वही, १४।१३४-१३६
६३२. वही, ६।५४१
६३३ वही, १६।१०७-११३
६३४. वही, १७।२२४-२३८
६३५ वही, २२।८५-९०
६३६ वही, २१।५९-७१
६३७. वही, २८।६४-७१
६३८ वही, ३२।२०५-२१८
६३९ वही, ३२।१३-१६
६४०. वही, ३५।३५-३९
६४१ वही, ३७।३२-३६
६४२. वही, ३७।१००-११२
६४३ वही, ४१।८५-९१
६४४. वही, ४२।१-४ ७४।५-९
६४५. वही, ५३।२२४-२२८
६४६. वही, ७५।४३-४७
६४७ वही, ८३।११०-११५
६४८. वही, ९९।१-३
६४९. वही, १०२।१२-३९
६५०. वही, १०९।७-१६
६५१. वही, १०९।९३-९५
६५२ वही, ११८।५५-५९।

अनोखा आकर्षण है, सहृदय को रमाने की विलक्षण शक्ति है, कवि की निपुणता है, रसोपकारकता है, आलंकारिकता है तथा अवसरोचित भाषा का मंजुल प्रयोग है जिसकी पुष्टि हम निम्नोद्धृत उदाहरणों से करेंगे।

'पद्मपुराण' के कुछ विशिष्ट वर्णन

'पद्मपुराण' के वर्णनों में कुछ बहुत ही विशिष्ट और मनोहारी हैं। यहाँ हम कुछ शीर्षकों में रविषेण के वर्णनों पर दृष्टिपात करके उसके वर्णन-कौशल का परिचय प्राप्त करेंगे। वर्णनों की परीक्षा करने के लिए हम निम्नलिखित शीर्षकों मे विभक्त वर्णनों को लेंगे।

(१) नगर-वर्णन, (२) ऋतु-वर्णन, (३) नदी-सरोवर-समुद्र-वर्णन, (४) सौन्दर्य-वर्णन, (५) पूर्वानुराग-जलक्रीड़ा-वर्णन तथा (६) युद्ध-वर्णन।

'पद्मपुराण' में नगर-नगरियों के अनेक चारु चित्र उपलब्ध होते हैं जिनका उल्लेख हमने पहले कर दिया है। यहाँ केवल मगध देश के 'राजगृह' नगर एव लंका के वर्णनों को ही उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है—

"तत्रास्ति सर्वतः कान्तं नाम्ना राजगृहं पुरम्।
कुसुमामोदसुभगं भुवनस्येव यौवनम्॥
महिषीणा महर्त्यैर्यत्कुङ्कुमाञ्चिताविग्रहैः।
धर्मान्तःपुरनिर्भासं धत्ते मानसकर्षणम्॥
मरुदुद्धूतचमरैर्बालव्यजन-शोभितै।
प्रान्तैरमरराजस्य च्छायां यदवलम्बते॥
मन्तापमपरिप्राप्तैः कृतमीश्वरमार्गणैः।
मनुजैर्यत्करोतीव त्रिपुरस्य जिगीषुताम्॥
सुधारससमासङ्गपाण्डुरागार-पङ्क्तिभि·।
टङ्कककल्पितशीनांशुशीलाभिरिव कल्पितम्॥
मदिरामत्तवनिता - भूषणस्वनसभृतम्।
कुबेरनगरस्येव द्वितीय सन्निवेशनम्॥
तपोवन मुनिश्रेष्ठैर्वेश्याभिः काममन्दिरम्।
लासकैर्नृत्तभवन शत्रुभिर्यमपत्तनम्॥
शस्त्रिभिर्वीरनिलयोऽभिलाषमणिरर्थिभि.।
विद्यार्थिभिर्गुरोः सद्म बन्दिभिर्धूर्तपत्तनम्॥
गन्धर्वनगरं गीतशास्त्रकौशलकोविदैः।
विज्ञानग्रहणोद्युक्तैर्मन्दिर विश्वकर्मणः॥

साधूनां सङ्गमः सद्भिर्भूमिर्लाभस्य वाणिजैः।
पञ्जरं शरणप्राप्तैर्वज्रदारुविनिर्मितम् ॥
वार्तिकैरसुरुञ्छिद्रं विदग्धैर्विटमण्डली।
परिणामो मनोज्ञस्य कर्मणो मार्गवर्तिभिः ॥
चारणैरुत्सवावासः कामुकैरप्सरःपुरम्।
सिद्धलोकश्च विदितं यत्सदा सुखिभिर्जनैः ॥
यत्र मातङ्गगामिन्यः शीलवत्यश्च योषितः।
श्यामाश्च पद्मरागिण्यो गौर्यश्च विभवाश्रयाः ॥
चन्द्रकान्तशरीराश्च शिरीषसुकुमारिकाः।
भुजङ्गानामगम्याश्च कञ्चुकावृतविग्रहाः।
महालावण्ययुक्ताश्च मधुराभाषतत्पराः।
प्रसन्नोज्ज्वलवक्त्राश्च प्रमादरहितेहिताः ॥
कलत्रस्य पृथोर्लक्ष्मीं दधतेऽथ च दुर्विधाः।
मनोज्ञा नितरां मध्ये सुवृत्ताश्चायतिं गताः ॥
लोकान्तपर्वताकारं यत्र प्राकारमण्डलम्।
समुद्रोदरनिर्भासपरिखाकृतवेष्टनम् ॥
आसीत्तत्र पुरे राजा श्रेणिको नाम विश्रुतः।
देवेन्द्र इव बिभ्राणः सर्ववर्णधरं धनुः ॥"[६५१]

[अर्थात् उस (मगध देश) में सब ओर से सुन्दर तथा पुष्पों की सुरभि से मनोहर, ससार के यौवन के समान 'राजगृह' नामक नगर है। वह नगर धर्म अर्थात् यमराज के अन्तःपुर के समान सदा मन को अपनी ओर आकर्षित करता रहता है। क्योंकि जिस प्रकार यमराज का अन्तःपुर केसर से युक्त शरीर को धारण करने वाली सहस्रों महिषियों (भैंसों) से युक्त होता है उसी प्रकार वह भी केशर से लिप्त शरीर वाली सहस्रों महिषियो (रानियों) से पूर्ण रहता है। उस नगर के प्रदेश यत्र-तत्र बालव्यजनों (छोटे पखो) से सुशोभित थे जिनमें मरुत् (वायु) के द्वारा चमर हिलते रहते थे जिनके कारण वह इन्द्र की शोभा को प्राप्त कर रहा था क्योंकि इन्द्र के पास भी बालव्यजन रहते हैं तथा उनमें मरुत (देवों) के द्वारा चमर कम्पित रहते हैं। वह नगर, मानों त्रिपुर नगर को जीतना ही चाहता है क्योंकि जिस प्रकार त्रिपुर नगर के निवासी मनुष्य ईश्वरमार्गणों (महादेव के बाणों) से सन्तप्त हैं उस प्रकार यहाँ के निवासी ईश्वरमार्गणों (धनिक वर्ग की याचना) से सन्तप्त नहीं हैं। वह सफेद चूने से पुते हुए धवल महलों की पंक्ति से

६५१. पद्म०, २।३३-५०

ऐसा लगता है मानो टाँकियों से गढ़े चन्द्रकान्त-मणियों से ही बनाया गया हो। वह नगर मदिरा के नशे में मस्त स्त्रियों के आभूषणों की झंकारों से सदा भरा रहने के कारण कुबेर की नगरी अलकापुरी का प्रतिबिम्ब ही जान पड़ता है। उस नगर को श्रेष्ठ मुनियो ने तपोवन, वेश्याओं ने काम का मन्दिर, नृत्यकारों ने नृत्य-भवन, शत्रुओं ने यमराज का नगर, शस्त्रधारियों ने वीरों का घर, याचकों ने चिन्तामणि, विद्यार्थियो ने गुरु का भवन, बन्दीजनो ने धूर्तों का नगर, संगीत-शास्त्र में निपुण लोगों ने गन्धर्वनगर, विज्ञानग्रहण में तत्पर लोगों ने विश्वकर्मा का भवन, सज्जनों ने सत्समागम का स्थान, व्यापारियों ने लाभ की भूमि, शरणागतों ने वज्रमय लकड़ी से निर्मित-सुरक्षित पंजर, समाचार-प्रेषकों ने असुरों के बिल जैसा रहस्यपूर्ण स्थान, चतुर जनो ने विटों का समूह, समीचीन मार्ग में चलने वालों ने किसी मनोज्ञ कर्म का सुफल, चारणो ने उत्सवों का निवास, कामियों ने अप्सराओं का नगर और सुखीजनों ने सिद्धों का लोक माना था।

वहाँ की स्त्रियाँ मातंगगामिनी (१. चाण्डालगामिनी, २. गजगामिनी) होकर भी शीलवती थी; श्यामा (१. काली, २. तरुणी) होकर भी पद्मरागिणी (१. पद्म के समान लाल आभा वाली, या २. कमलो में अनुराग रखने वाली अथवा ३. पद्मरागमणियों से युक्त) थी; गौरी (१. पार्वती, २. गौरवर्ण वाली) होकर भी विभवाश्रया (१. महादेव के आश्रय से रहित, २. वैभवयुक्त) थी; चन्द्रकान्त-शरीर वाली (१. चन्द्रकान्त-मणिनिर्मित शरीर वाली, २. चन्द्रमा के समान प्रिय कान्ति से युक्त शरीर वाली) होकर भी शिरीष के पुष्प के समान कोमल थी; भुजंगों (१. सर्पों, २. गुण्डों) के द्वारा अगम्य होती हुई भी वे कंचुकावृतविग्रहा (१. केंचुली से ढके शरीर वाली, २. चोलियों से ढके शरीर वाली) थीं; महा-लावण्य (१. अत्यधिक खारेपन, २. अत्यधिक तारुण्य) से युक्त होकर भी मीठा बोलने में तत्पर थी, प्रसन्न तथा उज्ज्वल मुखों वाली तथा प्रमादरहित चेष्टाओ वाली थीं; दुर्विध होकर भी स्त्री-सम्बन्धी भारी लक्ष्मी को धारण करती थी सुवृत्त होकर भी आयति को प्राप्त करती थीं (अर्थात् वे अत्यन्त सुन्दर थीं, सदाचारयुक्त थीं तथा उत्तम भविष्य से सम्पन्न थी)। उस नगर का कोट मनुष्य-लोक के अन्त में स्थित मानुषोत्तर पर्वत के समान जान पड़ता था तथा समुद्र के समान गम्भीर परिखा उसे चारों ओर से घेरे हुए थी। उसमें देवेन्द्र-सदृश राजा श्रेणिक रहता था।

इसी प्रकार लंका का एक संक्षिप्त-सा वर्णन लीजिए:—

"तुगप्राकारयुक्तां तां हेमसद्मसमाकुलाम्।
कैलासशिखराकारैः पुण्डरीकैर्विराजिताम्॥

विचित्रैः कुट्टिमतलैरालोकेनावभासतीम् ।
पद्मोद्यानसमायुक्तां प्रपादिकृतभूषणाम् ॥
चैत्यालयैरलंतुंगैर्नानावर्णसमुज्ज्वलैः ।
विभूतिषां पवित्राञ्च महेन्द्रनगरीसमाम् ॥
लंका दृष्ट्वा समासन्नां सर्वे खेचरपुंगवाः ।
हंसद्वीपकृतावासा बभूवुः परमोदयाः ॥[६५४]

'ऋतु-वर्णन' की दृष्टि से 'पद्मपुराण' के एक वर्षा-वर्णन एवं एक शरद् ऋतु-वर्णन को लिया जा सकता है:—

(वर्षा-वर्णन) "तयोर्विहरतोर्युक्तं यत्रास्तमितशायिनोः ।
कृष्णीकुर्वन् दिशां चक्रमुपतस्थौ घनागमः ॥
नभः पयोमुचां व्रातैरनुलिप्तमिवासितैः ।
वलाकाभिः क्वचिच्चक्रे कुमुदौघैरिवार्चनम् ॥
कदम्बस्थूलमुकुलः क्वणद्भृंगकदम्बकः ।
पयोदकालराजस्य यशोगानमिवाकरोत् ॥
नीलाञ्जनचयैर्व्याप्तं जगत्तुंगनगैरिव ।
चन्द्रसूर्यौ गतौ क्वापि तर्जिताविव गर्जितैः ॥
अच्छिन्नजलधाराभिर्द्रवतीव नभस्तलम् ।
तोषादिवोत्तमात् मह्या शष्पकञ्चुकमावृतम् ॥
जनितं जलपूरेण समं सर्वं नतोन्नतम् ।
अतिवेगप्रवृत्तेन प्रखलस्येव चेतसा ॥
भूमौ गर्जन्ति तोयौघा विहायसि घनाघनाः ।
अन्विष्यन्त इवारातिं निदाघसमयं द्रुतम् ॥
कन्दलैर्निबिडैश्छन्ना धरा निर्झरशोभिनः ।
अत्यन्तजलभारेण पतिता जलदा इव ॥
स्थलीदेशेषु दृश्यन्ते स्फुरन्तः शक्रगोपकाः ।
घनचूर्णितसूर्यस्य खण्डा इव महीं गताः ॥
चचार वैद्युतं तेजो दिक्षु सर्वासु सत्वरम् ।
पूरितापूरितं देशं पश्यच्चक्षुरिवाम्बरम् ॥
मण्डितं शक्रचापेन गगनं चित्रतेजसा ।
अत्यन्तोन्नतियुक्तेन तोरणेनेव चारुणा ॥

---

६५४. पद्म०, ५४/७३-७६

कूलद्वयनिपातिन्यो भीमावर्ता महाजवा: ।
वहन्ति कलुषा नद्यः स्वच्छन्दप्रमदा इव ॥
घनाघनरवत्रस्ता हरिणीचकितेक्षणा: ।
आलिलिंगुर्द्रुतं स्तम्भान्नार्यः प्रोषितभर्तृका: ॥
गर्जितेनातिरौद्रेण जर्जरीकृतचेतना: ।
प्रोषिता विह्वलीभूता: प्रमदाशाहितेक्षणा: ॥
अनुकम्पापरा: शान्ता निर्ग्रन्थमुनिपुंगवा: ।
प्रासुकस्थानमासाद्य चातुर्मासीव्रतं स्थिता: ॥
गृहीतं श्रावकै: शक्त्या नानानियमकारिभि: ।
दिग्विरामव्रत साधुसेवातत्परमानसै: ॥"[६५५]

(अर्थात्—इस प्रकार सूर्यास्तशायी कीर्तिघर मुनि और सुकोशल के अनुकूल विहार करने पर दिक्चक्र को मलिन करता हुआ वर्षाकाल आ गया। मेघों के समूह से आकाश लिप्त-सा प्रतीत होता था, बक-पंक्तियों से ऐसा प्रतीत होता था मानों उस पर कुमुदों के समूह से अर्चा की गयी हो। जिन पर भ्रमर गुञ्जार कर रहे थे—ऐसी कदम्ब की बड़ी-बड़ी कलियाँ वर्षा काल रूपी राजा का यशोगान सा कर रही थीं। जगत् ऐसा प्रतीत होता था मानो ऊँचे-ऊँचे पर्वतों के समान नीलाञ्जन के समूह से ही व्याप्त हो गया हो, चन्द्रमा और सूर्य मेघों के गर्जन से तर्जित हुए के समान कहीं चले गये थे। अनवरत जलधारा के द्वारा आकाश पिघलता-सा प्रतीत होता था, पृथ्वी पर हरी-हरी घास ऐसी लगती थी मानों पृथ्वी ने उत्तम (अपार) सन्तोष के कारण हरा कञ्चुक धारण कर लिया हो। जिस प्रकार अतिशय दुष्ट मनुष्य का चित्त छोटे-बड़े सभी को समान कर देता है (उसे पूज्यापूज्य का विवेक नहीं रहता) उसी प्रकार वेग से बहने वाले जल-समूह ने पृथ्वी को समान कर दिया था। भूमि पर जल-समूह गरजते थे, और आकाश मे बादल जिससे ऐसा भान होता था मानो वे भागे हुए ग्रीष्म रूपी शत्रु की खोज कर रहे हों। झरनों से सुशोभित पर्वत अत्यन्त सघन कन्दलों से आच्छादित हो गये थे जिससे वे ऐसे लगते थे मानो जल के बहुत भारी भार से मेघ ही नीचे गिर पड़े हों। पृथ्वी पर चमकते हुए इन्द्रगोप (वीरबहूटी) ऐसे लगते थे जैसे बादलों के द्वारा चूर्णित सूर्य के खण्ड ही पृथ्वी पर आ पड़े हों। बिजली का तेज समस्त दिशाओं में शीघ्रता से फैल जाता था जो आकाश के उस नेत्र के सदृश प्रतीत होता था जो वर्षा-जल से भरे और न भरे स्थलों की परीक्षा

---

६५५ पद्म०, २२/५०-६५

करता हो। अनेक प्रकार के तेज को धारण करने वाले इन्द्रधनुष से आकाश ऊँचे भव्य तोरण के द्वारा मण्डित हुआ-सा लगता था। दोनों तटों को गिराने वाली, भयंकर आवर्तों वाली तथा महावेग सम्पन्न कलुषित नदियाँ स्वच्छन्द स्त्रियों के समान बह रहीं थी। मेघों के गर्जन से भयभीत मृगाक्षी प्रोषितभर्तृकाएँ शीघ्र ही खम्भों का आलिंगन कर लेती थीं। अत्यन्त भयंकर मेघ-गर्जन से जर्जर चेतना वाले परदेशी मनुष्य उसी दिशा में नेत्र लगाये हुए विह्वल हो रहे थे जिस दिशा में उनकी स्त्री थी। सदा अनुकम्पा के पालन में दत्तचित मुनिराजों ने प्रासुक स्थान प्राप्त कर चातुर्मास व्रत का नियम ले लिया। जो शक्ति के अनुसार नाना प्रकार के व्रत-नियम आदि धारण करते थे तथा साधुओं की सेवा में तत्पर रहते थे—ऐसे श्रावकों ने दिग्व्रत धारण कर लिया था।)

(शरदृतु-वर्णन) "ततः शरदृतुः प्राप सोद्योगाखिलमानवः।
प्रत्यूष इव निःशेषजगदालोकपण्डितः॥
सितच्छाया घनाः क्वापि दृश्यन्ते गगनांगणे।
विकासिकाशसघातसंकाशा मन्दकम्पिताः॥
घनागमविनिर्मुक्तं भाति खे पद्मबान्धवः।
गते सुदुःषमाकाले भव्यबन्धुर्जिनो यथा॥
तारानिकरमध्यस्थो राजते रजनीपतिः।
कुमुदाकरमध्यस्थो राजहंसयुवा यथा॥
ज्योत्स्नया प्लावितो लोकः क्षीराकूपारकल्पया।
रजनीषु निशानाथ-प्रणालमुखमुक्तया॥
नद्यः प्रसन्नतां प्राप्तास्तरङ्गाङ्कितसैकताः।
क्रौञ्चसारसचक्राह्वनादसंभाषणोद्यताः॥
उन्मज्जन्ति चलद्भृङ्गाः सरःसु कमलाकराः।
भव्यसङ्घा इवोन्मुक्तमिथ्यात्वमलसञ्चयाः॥
तलेषु तुङ्गहर्म्याणा पुष्पप्रकरचारुषु।
रमन्ते भोगसम्पन्ना नरा नक्तं प्रियान्विताः॥
सम्मानितसुहृद्बन्धुजनसद्मा महोत्सवाः॥
दम्पतीनां वियुक्तानां सञ्जायन्ते समागमाः॥
कार्तिक्यामुपजातायां विहरन्ति तपोधनाः।
जिनातिशयदेशेषु महिमोद्यतजन्तुषु॥"[६५६]

६५६. पद्म०, २२।७४-२३

(अर्थात्—तदनन्तर, जिसमें समस्त मानव उद्योग-धन्धों से लग गये थे तथा जो प्रात:काल के समान समस्त संसार को प्रकाशित करने में निपुण थी, ऐसी शरद्-ऋतु आयी। उस समय आकाशाङ्गण में कहीं-कहीं ऐसे श्वेत मेघ दिखाई देते थे जो फूले हुए काँस के फूलों के समान थे तथा मन्द-मन्द हिल रहे थे। जिस प्रकार उत्सर्पिणी काल के दुखमाकाल बीतने पर भव्य जीवों के बन्धु श्रीजिनेन्द्रदेव सुशोभित होते हैं उसी प्रकार मेघागम-रहित आकाश में सूर्य सुशोभित होने लगा। जिस प्रकार कुमुदो के बीच में तरुण राजहंस सुशोभित होता है उसी प्रकार ताराओं के समूह के मध्य मे चन्द्रमा सुशोभित होने लगा। रात्रि के समय चन्द्रमा रूपी पतनाले के मुख से निकली हुई क्षीरसागर-सदृश धवल चाँदनी से समस्त संसार व्याप्त हो गया। जिनके रेतीले किनारे तरङ्गों से चिह्नित थे तथा जो क्रौञ्च, सारस, चक्रवाक आदि पक्षियों के शब्द के बहाने मानो परस्पर वार्तालाप कर रही थी, ऐसी नदियाँ प्रसन्नता को प्राप्त हो गयी थी। जिन पर भ्रमर चल रहे थे—ऐसे कमलों के समूह तालाबों में ऐसे सुशोभित हो रहे थे जैसे मिथ्यात्व-रूपी मैल के समूह को छोड़ते हुए भव्य जीवों के समूह। भोगी मनुष्य फूलो के समूह से सुन्दर ऊँचे-ऊँचे प्रासादतलों मे रात्रि के समय अपनी प्रियाओं के के साथ रमण करने लगे। जिनमें मित्र तथा बन्धुजनों के समूह सम्मानित किये गये थे तथा जिनमें महान् उत्सवों की वृद्धि हो रही थी ऐसे वियुक्त स्त्री-पुरुषो के समागम होने लगे। कार्तिक मास की पूर्णिमा व्यतीत होने पर तपस्वी जन उन स्थानो मे विहार करने लगे जिनमें भगवान् के गर्भ-जन्म आदि कल्याणक हुए थे तथा जहाँ लोग अनेक प्रकार की प्रभावना करने में उद्यत थे।

'जलाशय-वर्णन' की दृष्टि से 'पद्मपुराण' के नर्मदा, शर्वरी एवं गगा आदि नदियो के वर्णन तथा 'समुद्र' एव 'सरोवर' के वर्णन लिये जा सकते हैं जिनमें यहाँ 'नर्मदा नदी का वर्णन' प्रस्तुत है :—

"ततः नानाशकुन्तौघैः कुर्वद्भिर्मधुरस्वरम्।
संभाषणमिव भ्रष्टमर्याद कुर्वतीमयम्॥
ददर्श नर्मदां फेनपटलैः सस्मितामिव।
शुद्धस्फटिकसङ्काशसलिलां द्विपभूषिताम्॥
तरङ्गभ्रू विलासाढ्यामावर्त्तोत्तमनाभिकाम्।
विस्फुरच्छफरीनेत्रां पुलिनोरुकलत्रिकाम्॥
नानापुष्पसमाकीर्णां विमलोदकवाससम्।
वराङ्गनामिवालोक्य महाप्रीतिमुपागतः॥

उग्रनक्रकुलाक्रान्तां गम्भीरां वेगिनीं क्वचित् ।
क्वचिच्च प्रस्थितां मन्दं क्वचित्कुण्डलगामिनीम् ।।
नानाचेष्टितसम्पूर्णां कौतुकव्याप्तमानसः ।
अवतीर्णः स तां भीमां रमणीयां च सादरः ।।"[६५७]

[तदन्तर (रावण ने) नर्मदा नदी देखी। वह मधुर शब्द करने वाले पक्षियों के समूह के साथ मानो खुलकर बातें कर रही थी। फेन के समूह से ऐसा जान पड़ता था मानो वह हँस रही हो; उसका जल स्वच्छ स्फटिक के समान निर्मल था; वह हाथियों से सुशोभित थी। वह नर्मदा तरङ्गरूपी भ्रुकुटी के विलास से युक्त थी, आवर्तरूपी नाभि से सहित थी, तैरती हुई मछलियाँ ही उसके नेत्र थे; दोनों विशाल तट ही उसकी ऊरु तथा श्रोणी थे; वह नाना पुष्पों से व्याप्त थी और निर्मल जल ही उसका वस्त्र था। इस प्रकार वराङ्गना-सदृश नर्मदा को देख कर रावण बहुत प्रसन्न हुआ। वह नर्मदा कहीं तो उग्र मगरमच्छों के समूहों से व्याप्त होने के कारण गम्भीर थी; कहीं वेग से, कहीं मन्द गति से और कहीं टेढ़ी-मेढ़ी चाल से बहती थी। वह नाना चेष्टाओं से युक्त थी तथा भयङ्कर होने पर भी रमणीय थी। कौतुकी रावण ने ऐसी नदी में बड़े आदर के साथ प्रवेश किया।]

'सौन्दर्य-वर्णन' की दृष्टि से 'पद्मपुराण' के कई स्थल दर्शनीय हैं। 'केकसी', 'मन्दोदरी' और 'सीता' का सौन्दर्य-वर्णन तो बहुत ही उत्कृष्ट कहा जा सकता है, जिनमें पृथक्-पृथक् उपमानों का प्रयोग हुआ है, यथा:—

(**केकसी-वर्णन**) "नीलोत्पलेक्षणां पद्मवक्त्रां कुन्ददलद्विजाम् ।
शिरीषमालिकाबाहुं पाटलादन्तवाससम् ।।
बकुलामोदनिःश्वासां चम्पकत्विक्समत्विषम् ।
कुसुमैरिव निःशेषां निर्मितां दधतीं तनुम् ।।
मुक्तपद्मालया पद्मां रूपेणैव वशीकृताम् ।
परमोत्कण्ठयानीता पादविन्यस्तलोचनाम् ।।
अपूर्वपुरुषालोकलज्जितानतविग्रहाम् ।
ससाध्वसविनिक्षिप्तनिःश्वासोत्कम्पितस्तनीम् ।।
लावण्येन विलिम्पन्तीं पल्लवानन्तिकागताम् ।
निःश्वासाकृष्टमत्तालिकुलव्याकुलिताननाम् ।।"[६५८]

६५७. पद्म०, १०।५९-६४

६५८. आचार्य रविषेण ने नायिका के मुखामोद का वर्णन करते समय उससे भ्रमर की भ्रान्ति का अनेकशः उल्लेख किया है। केकसी, विद्युत्केश की रानियों, सीता, अनेक भूमिगोचरियों की कन्याओं तथा सुव्रतनाथ की रानियों आदि के वर्णनों में उनके मुख के श्वास से भ्रमरों को

सौकुमार्यादिवौदारादिवस्यतानतिनिर्भरम् ।
यौवनेन कृताश्लेषां सम्भूतिं योषितः पराम् ॥
गृहीत्वेवाखिलस्त्रैणं लावण्यं त्रिजगद्गतम् ।
कर्मभिर्निर्मिता कर्त्तुमद्भुतं सार्वलौकिकम् ॥
शरीरेणेव संयुक्ता साक्षाद्विद्यामुपागताम् ।
वशीकृतामुदारेण तपसा कान्तिशालिनाम् ॥"[६५९]

[(रत्नश्रवा ने केकसी को देखा) केकसी के नेत्र नील कमल के समान थे, मुख कमल के समान था; दाँत कुन्दकली के समान थे; भुजाएँ शिरीष-माला के समान थीं; अधर गुलाब के समान था। उसकी श्वास से मौलिश्री के पुष्पों की सुरभि आ रही थी; उसकी कान्ति (पके हुए) चम्पे के फूल के समान थी; उसका सम्पूर्ण शरीर पुष्प-निर्मित-सा ही प्रतीत होता था। रत्नश्रवा के पास खड़ी वह ऐसी लगती थी मानो उसके रूप से वशीभूत होकर लक्ष्मी ही कमलरूपी घर को छोड़कर बड़ी उत्कण्ठा से उसके समीप आयी हो; वह (लज्जा के कारण अपने अथवा सम्मान के कारण रत्नश्रवा के) चरणों में नेत्र गड़ाकर खड़ी थी। अपूर्व पुरुष के देखने से उत्पन्न लज्जा के कारण उसका शरीर नीचे की ओर झुक रहा था तथा घबराहट के साथ निकलते हुए श्वासोच्छ्वास से उसके स्तन काँप रहे थे। वह अपने लावण्य से पल्लवों को लिप्त कर रही थी; वह रत्नश्रवा के पास ही खड़ी थी; उसके सुगन्धित निःश्वास से आकृष्ट भौंरों के समूह से उसका मुख व्याकुल हो रहा था। वह अत्यधिक सौ-

---

आकृष्ट दिखाते हुए रविषेण का मन बहुत रमा है। उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं —
'निःश्वासामोदनिर्णिद्रद्विरेफसमुपासिने।' (पद्मपुराण, ७।१७८)
'बकुलसुरभिवक्त्रामोदबद्धालिवृन्दा।' (पद्मपुराण, २६।१६७)
'आमोद रावणो जज्ञे केतकीना न योषिताम्।
'निःश्वासमरुताकृष्टगुञ्जद्भ्रमरपंक्तिना ॥' (पद्म०, ११/३८१)
'सौरभाकृष्टसम्भ्रान्तभ्रमरीपृथुवृन्दत. ।' (पद्म०, २१/३३)
'कमलनिकरेष्वद्य स्वैच्छकृतानिकलस्वनं।
निभृतपवनासगात्कम्पेष्वभीक्ष्णकृतभ्रमम् ।
परमसुरभिगन्धाद्वक्त्रात्स्वेव समुद्गतान् ।
मधुकपटलं कान्ते क्षीब विभाति रजोरुणम् ॥ (पद्म० ४२/६७)
इस 'कविसमयख्याति' का वाल्मीकि और कालिदास ने भी प्रयोग किया है, दे० 'वाल्मीकि-रामायण' ५/९/३८-३९, 'रघुवंश' ७/११ आदि। स्वयंभू ने भी अपने 'पउमचरिउ' में रविषेण से प्रभावित होते हुए इसका प्रयोग किया है—यथा—'पउमचरिउ' १/१३/९, १०/३/६ और १३/७/४ आदि।

६५९. पद्म०, ७/१५०-१५७।

कुमार्य के कारण इतनी इतनी अधिक नीचे को झुक रही थी कि यौवन डरते-डरते ही उसका आलिगन कर रहा था। केकसी क्या थी, मानो स्त्रीत्व की परम सृष्टि थी। समस्त ससार-सम्बन्धी आश्चर्य इकट्ठा करने के लिए ही मानों त्रिभुवन-सम्बन्धी समस्त स्त्रियों का सौन्दर्य एकत्रित कर कर्मों ने उसकी रचना की थी। वह उदार तप से वशीभूत होकर आई हुई साक्षात् विद्या के सदृश प्रतीत होती थी।]

[मन्दोदरी-सौन्दर्य] "चक्षुषो गोचरीभावं निन्ये मन्दोदरीमसौ ॥
चारुलक्षणसम्पूर्णां सौभाग्यमणिभूमिकाम् ।
तनुस्निग्धनखोत्तुङ्गपृष्ठपादसरोरुहाम् ॥
रम्भास्तम्भसमानाभ्यां तूणाभ्यां पुष्पधन्वनः ।
लावण्याम्भःप्रवाहाभ्यामूरुभ्यामतिराजिताम् ॥
युक्तविस्तारमुत्तुङ्गं मन्मथास्थानमण्डपम् ।
नितम्बं दधतीमग्रकुकुन्दरमनोहराम् ॥
वज्रमध्यामघोवक्त्रां हेमकुम्भनिभस्तनीम् ।
शिरीषसुमनोमाला - मृदुबाहुलतायुगाम् ॥
कम्बुरेखानतग्रीवा पूर्णचन्द्रसमाननाम् ।
नेत्रकान्तिनदीसेतुबन्धसन्निभनासिकाम् ॥
रक्तदन्तच्छदच्छायाच्छुरिताच्छकपोलकाम् ।
वीणाभ्रमरसोन्मादपरपुष्टसमस्वनाम् ॥
इन्दीवरारविन्दानां कुमुदानाञ्च संहतीः ।[६६०]
विमुञ्चन्तीमिवाशासु दृष्ट्या दूत्या मनोभुवः ॥
अष्टमीशर्वरीनाथसमानालिकपट्टिकाम् ।
संगतश्रवणां स्निग्धनीलसूक्ष्मशिरोरुहाम् ॥
शोभयास्याघ्रिहस्तानां जङ्गमामिव पद्मिनीम् ।
जयन्ती करिणी हंसी सिंहीं च गतिविभ्रमैः ॥
विद्यालिङ्गनजामीर्ष्यां धारयन्ती दशानने ।
पद्मालयं परित्यज्य लक्ष्मीमिव समागताम् ॥

---

६६०. रविषेण ने नायिका के 'त्रिवर्ण' नेत्रों का पर्याप्त वर्णन किया है 'बिहारी' की नायिका के 'रँगे त्रिविध रँग' नयन सप्तम श० ई० मे पर्याप्त प्रसिद्ध हो चुके थे। 'पद्मपुराण' के इन बारह स्थलों पर इनका उल्लेख मिलता है—२।२३५, ८।६४, १५।१४०, १७।११६, २१।१३४, २४।१२२, ३९।७, ४२।३१, ४८।१५, ६५।७४, ७९।७ एव ९९।६० । प्रतीत होता है कि रविषेण को तिरगे नेत्रो ने पर्याप्त प्रभावित किया था ।

अङ्गनाविषयां सृष्टिमपूर्वामिव कर्मणा।
आहृत्य जगतोऽशेषं लावण्यमिव निर्मिताम्॥
दिवाकरकरस्पर्शास्वर्भानुग्रहभीतितः ।
तारापतिं परित्यज्य क्षितिं कान्तिमिवागताम्॥
सीमन्तमणिमाजालरचितास्यावगुण्ठनाम् ।
हारेण वक्त्रलावण्यसेतुनेव विभूषिताम्॥
कर्णयोर्बालिकालांकान्मुक्ताफलसमुत्थितात् ।
सितस्य सिन्दुवारस्य मञ्जरीमिव बिभ्रतीम्॥
कन्दर्पदर्पसंक्षोभं सहते जघनं न यत्।
इतीव वेष्टितं काञ्च्या मणिचक्रककान्तया॥[६६१]"

[उस (रावण) ने मन्दोदरी को देखा। वह मन्दोदरी सुन्दर लक्षणों से पूर्ण थी, सौभाग्यरूपी मणियों की भूमि थी; उसके चरणकमलों का पृष्ठभाग छोटे स्निग्ध नखों से ऊपर को उठा हुआ प्रतीत होता था। वह कदलीस्तम्भ, कामदेव के तरकस तथा सौन्दर्य रूपी जल के प्रवाह के सदृश ऊरुओं से अत्यन्त सुशोभित हो रही थी। वह योग्य विस्तार संयुक्त ऊँचे उठे हुए, कामदेव के सभामण्डप के तुल्य तथा कुछ ऊँचे उठे कूल्हों से युक्त नितम्ब को धारण करती थी। उसकी कमर हीरे के समान चमकदार थी; लज्जा के कारण उसका मुख नीचे की ओर था, स्वर्ण-कलश के सदृश उसके स्तन थे; शिरीष के पुष्पों की मालाओ के सदृश उसकी दोनों भुजाएँ थी। उसकी गरदन शङ्ख जैसी रेखाओं से सुशोभित तथा कुछ नीचे की ओर झुकी हुई थी; उसका मुख पूर्णचन्द्रमा के सदृश था; उसकी नाक ऐसी प्रतीत होती थी जैसे नेत्रों की कान्ति रूपी नदी पर पुल ही बाँध दिया गया हो। उसके स्वच्छ कपोल ओष्ठों की अरुण आभा से व्याप्त थे तथा उसकी आवाज वीणा भ्रमर और उन्मत्त कोयल की ध्वनि के समान थी। उसकी दृष्टि कामदेव की दूती के समान थी जिससे वह दिशाओं में नीले, लाल तथा तथा सफेद कमलो के समूह बिखेरती सी प्रतीत होती थी। उसका मस्तक अष्टमी के चन्द्रमा के समान था, कान सुन्दर थे तथा बाल चिकने और काले थे। वह मुख, चरण तथा हाथों की शोभा से चलती-फिरती कमलिनी को एवं गति के विभ्रम से हस्तिनी हंसिनी तथा सिंहिनी को जीत लेती थी। "विधाओं ने दशानन का आलिङ्गन कर लिया और मैं ऐसी ही रह गयी"—मानों इस ईर्ष्या से साक्षात् लक्ष्मी ही कमल रूपी घर को छोड़कर रावण के पास आ गयी थी। कर्मरूपी विधाता ने संसार

६६१. पद्म०, ८।५७।७२

के समस्त सौन्दर्य को एकत्रित कर उसके व्याज से स्त्रीविषयक अपूर्व सृष्टि ही रची ऐसा प्रतीत होता था। वह सूर्य की किरणों के स्पर्श तथा राहुग्रह के आक्रमण भय से चन्द्रमा को छोड़कर पृथ्वी पर आयी हुई चन्द्रमा की कान्ति के समान जान पड़ती थी। उसने अपने सीमंत में जो मणि पहिन रखी थी उसकी कान्ति का जाल उसके मुख पर घूँघट का काम कर रहा था। वह जिस हार से सुशोभित थी वह मुख के सौन्दर्य के प्रवाह के सेतु के सदृश लगता था। उसने अपने कानों में मोतीजड़ी बालियाँ पहिन रखी थीं जो कि कान्ति से ऐसी प्रतीत होती थी मानों सफेद सिन्दुवार की मञ्जरी ही हों। क्योंकि जघनस्थल कामदेव के दर्पजन्य क्षोभ को सहन नहीं करता था—इसलिए ही मानो उसे मणिसमूह से सुशोभित काञ्ची (मेखला) से बांध दिया गया था।]

[सीता-सौन्दर्य] "अपश्यच्च महामोहसम्प्रवेशनकारिणीम्।
रत्यरत्योः समुद्भूतीं साक्षाल्लक्ष्मीमिव स्थिताम्॥
चन्द्रमःकान्तवदनां बन्धूकाभवराधराम्।
तनूदरीं च लक्ष्मीं च जलजच्छदलोचनाम्॥
महेभकुम्भशिखरप्रोत्तुङ्गविपुलस्तनीम्।
यौवनोदयसम्पन्नां सर्वस्त्रीगुणसद्गताम्॥
सहितामिव कामेन कान्तिज्यां दृष्टिसायकाम्।
निजां चापलतां हन्तुं सुखेनैव यथेप्सितम्॥
सर्वस्मृतिमहाचारीं रूपातिशयवर्तिनीम्।
सीतां मनोभवोदारज्वरग्रहणकारिणीम्॥"[६६२]

[(आते ही रावण ने उस) सीता को देखा जो महामोह में प्रवेश कराने वाली, रति और अरति—दोनों को एक साथ उत्पन्न करने वाली तथा साक्षात् लक्ष्मी के समान थी। वह चन्द्रमा के समान कान्तियुक्त मुख तथा दुपहरी (बन्धूक) के पुष्प के समान लाल अधर को धारण करने वाली, क्षीण उदर वाली तथा कमलदल के तुल्य नेत्रों वाली लक्ष्मी सी थी। किसी बड़े हाथी के गण्डस्थल के अग्रभाग के सदृश उन्नत तथा स्थूल उसके स्तन थे; वह यौवन के उदय से सम्पन्न तथा समस्त प्रमदोचित गुणों से सम्पन्न थी। वह इच्छित पुरुष को अनायास ही मारने के लिए कामदेव के द्वारा धारण की गयी उसकी अपनी (खास) चाप-लता सी प्रतीत होती थी जिसकी डोरी उसकी कान्ति एवं उस पर चढ़ाये बाण उसके नेत्र थे। वह समस्त स्मृति की हरणकर्त्री थी, अत्यन्त रूपवती थी तथा काम

६६२. पद्म०, ४०।६०-६४

रूपी महाज्वर को उत्पन्न करने वाली थी।]

'शृंगार' के वर्णनों से तो पद्मपुराण भरा पड़ा है जिनकी एक सूची हमने पहले दे दी है। यहाँ केवल एक 'जलकेलि-वर्णन' दिया जा रहा है :—

"जले यन्त्रप्रयोगेण क्षणेन विधृते सति।
भ्रमन्ति पुलिने नार्यो नानाक्रीडनकोविदाः॥
कलत्रनिबिडाश्लिष्टसुसूक्ष्मविमलांशुकाः।
बभूवः सत्रपा दृष्टा रमणेन वराङ्गनाः॥
विगतालेपना काचित् कुचौ नखपदाङ्कितौ।
दर्शयन्ती चकारेर्ष्यां प्रतिपक्षस्य कामिनी॥
काचिद्दृश्यसमस्ताङ्गा वरयोषित् त्रपावती।
अभिप्रियं निचिक्षेप कराभ्यां जलमाकुला॥
प्रतिपक्षस्य दृष्ट्वाऽन्या जघने करजक्षतीः।
लीलाकमलनालेन जघान प्रमदा प्रियम्॥
काचित् कोपवती मौनं गृहीत्वा निश्चला स्थिता।
पत्या पादप्रणामेन दयिता तोषमाहृता॥
यावत्प्रसादयत्येका तावदन्यपरा रुषम्।
यथाकथञ्चिदानिन्ये तोषं सर्वाः पुनर्नृप॥
दर्शनात् स्पर्शनात् कोपात् प्रसादाद्विविधोदितात्।
प्रणामाद्वारिनिक्षेपादवतंसकताडनात्॥
वञ्चनादंशुकाक्षेपान्मेखलादामबन्धनात्।
पलायनान्महारावात् सम्पर्कात् कुचकम्पनात्॥
हासाद् भूषणनिक्षेपात् प्रेरणाभ्रूविलासतः।
अन्तर्धानात् समुद्भूतेरन्यस्माच्च सुविभ्रमात्॥
रेमे बहुरसं तस्या स मनोहरदर्शनः।
आवृतो वरनारीभिर्देवीभिरिव वासवः॥
पतितान् सिकतापृष्ठे नालङ्कारान् पुनः स्त्रियः।
आवकाक्षुर्महाचित्ता निर्माल्यस्रग्गुणानिव॥
काचिच्चन्दनलेपेन चकार धवलं जलम्।
अन्या कुंकुमपङ्केन द्रुतचामीकरप्रभम्॥
धौतताम्बूलरागामधराणां सुयोषिताम्॥
चक्षुषां व्यञ्जनानां च लक्ष्मीरभवदुत्तमा॥

पुनश्च यन्त्रनिर्मुक्तवारिमध्ये यथेप्सितम् ।
रेमे समं वरस्त्रीभिर्नरेशः स्मरहेतुभिः ।।"[६६३]

[यन्त्रों के प्रयोग से क्षण भर में नर्मदा का जल रुक जाने पर नाना क्रीडाओं में निपुण स्त्रियाँ किनारे पर घूमने लगी । उन स्त्रियो के अत्यन्त पतले और उज्ज्वल वस्त्र जल का सम्पर्क पाकर उनके नितम्ब-स्थलों से एकदम चिपक गये थे जिसके कारण वे पति के देखने पर लज्जा से गढ़ी जाती थी। शरीर का लेप धुल जाने के कारण नखक्षतो से चिह्नित स्तन दिखलाने वाली कोई स्त्री अपनी सौत के लिए ईर्ष्या उत्पन्न कर रही थी । जिसके समस्त अंग दिख रहे थे, ऐसी कोई उत्तम स्त्री लजाती हुई दोनों हाथों से बड़ी आकुलतावश पति की ओर पानी उछाल रही थी । कोई अन्य स्त्री सौत के नितम्बस्थल पर नखक्षत देखकर क्रीडा-कमल की नाल से पति पर प्रहार कर रही थी । कोई एक स्वभाव से क्रोधिनी स्त्री मौन धारण कर निश्चल खडी थी; तब पति ने चरणों में प्रणाम कर उसे किसी प्रकार सन्तुष्ट किया । राजा सहस्ररश्मि जब तक एक स्त्री को प्रसन्न करता तब तक दूसरी स्त्री क्रोध कर बैठती थी; इस कारण वह समस्त स्त्रियों को बडी कठिनाई से सन्तुष्ट कर सका था । उत्तमोत्तम स्त्रियों से परिवृत मनोहर-रूपधारी वह राजा किसी स्त्री की ओर देखकर, किसी का स्पर्श कर, किसी को गैब दिखाकर, किसी के प्रति अनेक प्रकार की प्रसन्नता प्रकट कर, किसी को प्रणाम कर, किसी के ऊपर पानी उछाल कर, किसी को कर्णभूषण से ताडित कर, किसी का धोखे से वस्त्र खीचकर, किसी को मेखला से बाँधकर, किसी के पास से दूर हटकर, किसी को भारी डाँट दिखाकर, किसी के साथ सम्पर्क कर, किसी के स्तनों में कम्पन उत्पन्न कर, किसी के साथ हँसकर, किसी के आभूषण गिराकर, किसी को गुदगुदाकर, किसी के प्रति भौंह चलाकर, किसी से छिपकर, किसी के समक्ष प्रकट होकर तथा किसी के साथ अन्य प्रकार के विभ्रम दिखाकर नर्मदा नदी मे बड़े आनन्द से उस प्रकार क्रीड़ा कर रहा था जिस प्रकार देवियों के साथ इन्द्र क्रीड़ा करता है । उदार हृदय को धारण करने वाली उन स्त्रियो के जो आभूषण बालू के ऊपर गिर गये थे, उन्होंने निर्माल्य के समान उन्हे फिर उठाने की इच्छा नहीं की । किसी स्त्री ने चन्दन के लेप से पानी को सफेद कर दिया था तो किसी ने केसर के द्रव से उसे सुवर्ण के समान पीला बना दिया था । जिनकी पान की लालिमा धुल गयी थी ऐसी स्त्रियों के ओठ तथा जिनका काजल छूट गया था, ऐसे नेत्रों की कोई अद्भुत ही शोभा हो रही थी । तदनन्तर यन्त्र के द्वारा छोड़े

६६३. पद्म०, १०।६९-८४

गये जल के बीच में, वह राजा काम उत्पन्न करने वाली अनेक उत्कृष्ट स्त्रियों के साथ इच्छानुसार क्रीड़ा करने लगा।]

'युद्ध-वर्णन' के दर्शन 'पद्मपुराण' में अनेक स्थलों पर होते हैं जिनकी सूची पीछे दी जा चुकी है। पूरे के पूरे पर्व युद्ध-वर्णन में निकल जाते हैं। जिनका स्थानाभाव से यहाँ उल्लेख करना असम्भव है। केवल 'लक्ष्मण-इन्द्रजित्-युद्ध' का कुछ अंश प्रस्तुत है :—

"अन्येऽप्येवं महायोधा यथायोग्यं परस्परम्।
आरेभिरे रणं कर्त्तुमाह्वानमुखराननाः ॥
गृहाण प्रहरागच्छ जहि व्यापादयोग्दिरः।
छिन्धि भिन्धि क्षिपोत्तिष्ठ तिष्ठ दारय धारय ॥
बधान स्फोटयाकर्ष मुञ्च चूर्णय नाशय।
सहस्व दरस्व निःसर्प सन्धत्स्वोच्छ्य कल्पय ॥
किं भीतोऽसि न हन्मि त्वा धिक् त्वां कातरको भवान्।
कस्त्वं बिभेसि नष्टोऽसि मा कम्पिष्ठा क्व गम्यते ॥
अयं स वर्तते कालः शूराशूरविचारकः।
भुज्यतेऽन्नं यथा मृष्ट न तथा युध्यते रणे ॥
गर्जितैरिति धीराणा तूर्यनादैस्तथोन्नतैः।
नर्दन्तीव दिशो मत्ता क्षतजातान्धकारिताः ॥
चक्रशक्तिगदायष्टिकनकाष्टिघनादिभिः ।
दंष्ट्रालमिव सञ्जात गगनं भीषणं परम् ॥
रक्ताशोकवनं किं तत्किं वा किंशुककाननम्।
पारिभद्रद्रुमारण्यमुत जात क्षत बलम् ॥
कश्चिद्विघटितं दृष्ट्वा कङ्कटं छिन्नबन्धनम्।
सन्धत्ते त्वरित भूयः स्नेह माधुजनो यथा ॥
कश्चिन्सन्धार्य दन्ताग्रैः खड्ग परिकर दृढम्।
बध्वा दीप्रः पुनर्योद्धुं श्रमयुक्त. प्रवर्तते ॥
मत्तवारणदन्ताग्रक्षतवक्षस्थलोऽपरः ।
चलत्कर्णसमुद्धूतैर्वीजितः कर्णचामरैः ॥
उत्तीर्णस्वामिकर्त्तव्यो निराकुलमतिः परम्।
दन्तोत्सङ्गे तत. शिष्यं सम्प्रसार्य भुजद्वयम् ॥
धातुपर्वतसङ्काशाः केचित् क्षतजनिर्झराः।
मुमुचुः शीकरासारसेकबोधितमूर्च्छिताम् ॥

पर्यस्ता भूतले केचिद्दष्टौष्ठाः शस्त्रपाणयः।
कुञ्चितभ्रूदुरीक्ष्यास्या वीरा मुञ्चन्ति जीवितम् ॥
उपसंहृत्य संरम्भं त्यक्तशस्त्रास्तथाऽपरे।
मुञ्चन्ति जीवितं धीरा ध्यायन्तः परमाक्षरम् ॥
विषाणकोटिसंसक्तपाणयः केचिदुत्कटाः।
आन्दोलनं गजेन्द्राणामग्रतः समुपासिरे ॥
रक्तच्छटां विमुञ्चन्तश्चञ्चलाः शस्त्रपाणयः।
कबन्धा नर्त्तनं चक्रुः क्षतशोऽतिभयानकम् ॥
केचिदस्त्रविनिर्मुक्ता जर्जरीभूतकङ्कटाः।
प्रविष्टाः सलिलं क्लिष्टा जीविताशापराङ्मुखाः ॥

× × ×

महातामसशस्त्रं च भीमं शक्रजिदक्षिपत्।
विनाशं भ.नवीयेन तदस्त्रेणानयद्रिपुः ॥"६६४

[···'उस समय अनेक योधाओं ने एक दूसरे को ललकारते हुए युद्ध करना प्रारम्भ किया। उस समय वीरों के इस प्रकार गर्जन-भरे शब्द मुख से निकल रहे थे—'पकड़ो', 'प्रहार करो', 'आओ', 'मारो' 'जान से मार डालो', 'छेदो', 'भेदो' 'फेंक दो', 'उठो', 'बैठो', 'खड़े रहो', 'विदीर्ण करो', 'धारण करो', 'बाँधो', 'फोड़ डालो', 'घसीटो', 'छोड़ो', 'चूर-चूर कर दो', 'नष्ट कर दो', 'सहन करो', 'दो', 'पीछे हटो' 'सन्धि करो', 'उन्नत हो', 'समर्थ बनो', 'तू क्यों डरता है ? मैं तुझे नही मारता'. 'धिक्कार है तुझे, तू डरपोक है !', 'तू क्यों डरा हुआ है ? मत काँप' 'अरे ! अब बचकर कहाँ जाएगा ?' 'यह समय आया है जबकि शूर और कायर की परीक्षा होगी। जैसा मीठा अन्न खाया है वैसा रण में युद्ध नही कर रहे हो !' इस प्रकार धीर-वीरों की गर्जना और तुरही के उन्नत शब्दों से दिशाएँ ऐसी प्रतीत होती थी मानो रुधिर की वर्षा से अन्धकारयुक्त तथा पागल होकर चिल्ला ही रही हों। चक्र, शक्ति, गदा, यष्टि, कनक, आर्ष्टि तथा घन आदि शस्त्रों से आकाश उस प्रकार अत्यन्त भयकर हो गया था मानो सब को निगलने के लिए डाढ़ें ही धारण कर रहा हो। खून से लथपथ घायल सेना को देखकर ऐसा सन्देह होता था कि क्या यह रक्त अशोक का वन है ? अथवा पलाश का कानन है ? अथवा पारिभद्र वृक्षों का ही वन है ? किसी का कवच टूट गया तथा उसके बन्धन खुल गये, इसलिए उसने शीघ्र ही उसे उस प्रकार जोड़ लिया जिस प्रकार साधुजन टूटे स्नेह

६६४. पद्म०, ३२।३९-५९ और आगे भी देखिए।

को शीघ्र ही जोड़ लेते हैं। कोई तेजस्वी योद्धा दाँतों के अग्रभाग से तलवार दबा तथा हाथों से कमर कसकर श्रमरहित हो फिर से युद्ध करने के लिए तैयार हो गया। मदोन्मत्त हाथी के दन्ताग्र से जिसका वक्षःस्थल घायल हो गया था ऐसा कोई योद्धा हाथी के चञ्चल कानों से ऊपर उठे हुए कर्णचामरों से बीजित हो रहा था। जिसने स्वामी का कर्त्तव्य पूरा कर दिया था—ऐसा कोई योद्धा निराकुलचित्त हो दोनों हाथ पसार पर हाथी के दाँतों के बीच सो रहा था। जिनसे रुधिर के निर्झर झर रहे थे तथा जो गेरू के पर्वत के समान जान पड़ते थे ऐसे कितने ही योद्धाओं ने जलकणों की वर्षा के सिञ्चन से सचेत हो मूर्च्छा छोडी थी। जो ओंठ डस रहे थे हाथों मे शस्त्र लिये थे और टेढ़ी भौंहों से जिनके मुख भयकर दिख रहे थे ऐसे कितने ही योद्धा पृथ्वी पर पडे हुए प्राण छोड़ रहे थे। कितने ही धीर-वीर योद्धा ऐसे भी थे जो क्रोध का सकोच कर तथा शस्त्रों का त्याग कर परब्रह्म का ध्यान करते हुए प्राण छोड रहे थे। कितने ही प्रचण्ड वीर गजदन्तों के अग्रभाग को हाथों से पकड़ कर झूला झूल रहे थे। जो रक्त की छटा छोड़ रहे थे तथा हाथों में शस्त्र धारण किये हुए था, ऐसे सैकड़ो उछलते कबन्ध अत्यन्त भयंकर नृत्य कर रहे थे। जिनके कवच जर्जर हो गये थे ऐसे कितने ही दु.खी योद्धा, जीवन की आशा से विमुख हो शस्त्र छोड पानी में घुस गये। × × ऐसे युद्ध मे इन्द्रजित् ने अत्यन्त भयकर महातामस नामक शस्त्र छोडा जिसे लक्ष्मण ने सूर्यास्त्र के द्वारा नष्ट कर दिया।'']

●

अष्टम अध्याय

पद्मपुराण में जैन धर्म-दर्शन

धर्म और दर्शन एक-दूसरे के पूरक शब्द हैं। 'धर्म' की अनेक व्याख्याओं और 'दर्शन' की विचारधाराओं का मिलान करने पर धर्म और दर्शन अलग-अलग नही दिखाई देते। ये अन्योन्याश्रित दिखाई देते है। यद्यपि विवेचन के सौकर्य की दृष्टि से दर्शन को विचारपक्ष और धर्म को आचारपक्ष के रूप मे पृथक्तया देखा जा सकता है तथापि इनका ऐकान्तिक पार्थक्य असम्भव है। जैन धर्म और दर्शन के विषय मे भी यह बात लागू होती है। जैन-दर्शन का मूल विचार 'अहिंसा' है और 'अहिंसा' से फलित होने वाला आचार जैन-धर्म है। पद्मपुराण पर जैन धर्म और दर्शन का पर्याप्त प्रभाव है।

डा० राधाकृष्णन् ने जैन-दर्शन की मुख्य विशेषताएं ये बतायी हैं :—'इसका प्राणिमात्र का यथार्थ रूप मे वर्गीकरण, इसका ज्ञान सम्बन्धी सिद्धान्त, जिसके साथ संयुक्त है इसके प्रख्यात सिद्धान्त 'स्याद्वाद' एवं 'सप्तभंगी' अर्थात् निरूपण की सात प्रकार की विधियाँ; और इसका संयमप्रधान नीतिशास्त्र अथवा आचार-शास्त्र। इस दर्शन में अन्यान्य भारतीय विचार-पद्धतियों की भांति क्रियात्मक नीतिशास्त्र का दार्शनिक कल्पना के साथ गठबन्धन किया गया है।'[६६५] इन समस्त विशेषताओं को इन तीन शब्दों में कहा जा सकता है :—**सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र**। ये तीनों मिलकर ही मोक्षमार्ग बनते हैं।[६६६] सम्यग्दर्शन होने पर ही सम्यग्ज्ञान होगा और सम्यग्ज्ञान होने पर ही सम्यक् चारित्र होगा; तभी मोक्षलाभ होगा। 'तत्त्वार्थश्रद्धान' को सम्यग्दर्शन कहते है। जिस-जिस

---

६६५. 'भारतीय दर्शन (हिन्दी अनुवाद)', राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, संस्क० १९६६, पृष्ठ २७० ।

६६६. तत्त्वार्थसूत्र १।१ पर सर्वार्थसिद्धि टीका—"मार्ग इति चैकवचननिर्देशः समस्तस्य मार्गभावज्ञापनार्थः। तेन व्यस्तस्य मार्गत्वनिवृत्ति कृता भवति। अतः सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रमित्येतत्त्रितयं समुदितं मोक्षस्य साक्षान्मार्गो वेदितव्यः॥"

प्रकार से जीवादि पदार्थ व्यवस्थित हैं उसी प्रकार से उनकी अवगति को सम्यक्-ज्ञान कहा जाता है। संसार के कारण की निवृत्ति के प्रति उद्यत ज्ञानी जिन अच्छे कामों को करता है उसे सम्यक्चारित्र कहा जाता है। सम्यक् शब्द यहाँ साभिप्राय है जैसा कि पूज्यपाद ने 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' (तत्त्वार्थ-सूत्र १।१) की व्याख्या करते हुए लिखा है—"पदार्थानां याथात्म्यप्रतिपत्ति-विषय-श्रद्धानसंग्रहार्थं दर्शनस्य सम्यग्विशेषणम्। येन येन प्रकारेण जीवादयः पदार्था व्यवस्थितास्तेनतेनावगमः सम्यग्ज्ञानम्। अनध्यवसायसंशयविपर्यय-निवृत्त्यर्थं सम्यग्विशेषणम्। संसारकारणनिवृत्तिं प्रत्यागूर्णस्य ज्ञानवतः कर्मा-दाननिमित्तक्रियोपरमः सम्यक्चारित्रम्। अज्ञानपूर्वकाचरणनिवृत्यर्थं सम्यग्वि-शेषणम्।"[६६७]

इन्हीं तीनों का विचार उमास्वाति के 'तत्त्वार्थाधिगमसूत्र' या 'तत्त्वार्थसूत्र', कुन्दकुन्द के 'पञ्चास्तिकायसार' एवं सिद्धसेन दिवाकर के 'न्यायावतार' में हुआ है।[६६८]

सम्यग्दर्शन : तत्त्वार्थश्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहा गया है। जैनदर्शन में मूल दो तत्त्व हैं—जीव और अजीव। इन दोनों का विस्तार पाँच अस्तिकाय,

---

६६७. तत्त्वार्थसूत्र १।१ पर सर्वार्थसिद्धि टीका।

६६८. ये सभी ग्रन्थ रविषेण से पूर्व रचे जा चुके थे।

जैनदर्शन का सर्वप्रसिद्ध ग्रन्थ है उमास्वाति का 'तत्त्वार्थसूत्र' जिसका काल ईसा की पहली शताब्दी से तीसरी तक माना जाता है। 'तत्त्वार्थसूत्र' को 'मोक्षशास्त्र' भी कहा जाता है। "भगवद्भिस्तत्त्वार्थसूत्रापरनाममोक्षशास्त्रस्यैव केवलस्य विरचना कृता।"—मोतीचन्द्र कोठारी। 'सर्वार्थसिद्धि', भूमिका भाग, पृष्ठ ३४। प्रका० रावजी सखाराम दोषी, माणिकचन्द्र, दिगम्बर जैन, परीक्षालय तृतीय संस्करण, १९३९ ई०। इस ग्रन्थ के स्पष्टीकरण के लिए अनेक विद्वानों ने टीकायें लिखी जिनका उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है :—(१) समन्त-भद्रस्वामि-विरचित गन्धहस्ति-महाभाष्य (२) पूज्यपादस्वामि-विरचित सर्वार्थसिद्धि टीका, (३) अकलङ्कभट्ट-विरचित राजवार्तिक, (४) विद्यानन्दिप्रणीतश्लोकवार्तिकालङ्कार, (५) भास्करनन्दि की टीका, (६) श्रुतसागर की श्रुतसागरी टीका, (७) द्वितीयश्रुतसागरकृता तत्त्वार्थसुखबोधिनी टीका, (८) विबुधसेनाचार्य की तत्त्वार्थटीका, (९) योगीन्द्रदेव की तत्त्व-प्रकाशिका टीका, (१०) योगदेव की तत्त्वार्थवृत्ति, (११) लक्ष्मीदेव की तत्त्वार्थटीका तथा (१२) अभयनन्दिसूरि की टीका। इसके अतिरिक्त प्राकृत भाषा में रचित अनेक अर्वाचीन टीकाएं भी उपलब्ध होती हैं। इन सभी टीकाओं से इस ग्रन्थ का महत्त्व सिद्ध होता है। भगवत्कुन्दकुन्द का समय ५० वर्ष ईसा पूर्व से लेकर छठी शताब्दी ई० तक माना जाता है। सिद्धसेन दिवाकर का समय ईसा की पाचवीं शताब्दी माना जाता है।

छः द्रव्य अथवा सात या नव तत्त्व के रूप में पाया जाता है।[६६९] पाँच अस्तिकाय हैं—जीव, धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल। छः द्रव्य हैं—जीव, धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल। सात तत्त्व हैं—जीव, अजीव, आस्रव, संवर, बन्ध, निर्जरा और मोक्ष। नव तत्त्व हैं—जीव, अजीव, आस्रव, संवर, बन्ध, निर्जरा, मोक्ष, पाप और पुण्य। इन तत्त्वों की सरल विवेचना श्री दलसुख मालवणिया के शब्दों में इस प्रकार की जा सकती है—

"जैन दर्शन में मूल दो तत्त्व है : जीव और अजीव। इन दोनों का विस्तार पाँच अस्तिकाय, छः द्रव्य अथवा सात या नव तत्त्व के रूप मे पाया जाता है। चार्वाक केवल अजीव को पाँच मूलरूप मानते थे और उपनिषद के ऋषि केवल जीव अर्थात् आत्मा—पुरुष—ब्रह्म को मानते थे। इन दोनों मतों का समन्वय जीव एव अजीव ये दो तत्त्व मानकर जैन दर्शन में हुआ। संसार और सिद्धि अर्थात् निर्वाण अथवा बन्धन और मोक्ष सभी घट सकते हैं जब जीव और जीव से भिन्न कोई हो। इसीलिए जीव और अजीव दोनों के अस्तित्व की तार्किक संगति जैनो ने सिद्ध की और पुरुष एवं प्रकृति का अस्तित्व मानकर प्राचीन सांख्यो ने वैसी सगति साधी। इसके अतिरिक्त आत्मा को या पुरुष को केवल कूटस्थ मानने से भी बन्ध मोक्ष जैसी विरोधी अवस्थाएँ जीव में नही घट सकती। इससे सब दर्शनों से अलग पड़कर, बौद्धसम्मत चित्त की भाँति, आत्मा को भी एक अपेक्षा से जैनों ने अनित्य माना और सबकी तरह नित्य मानने में भी जैनों को कुछ आपत्ति तो है ही नही, क्योंकि बन्ध और मोक्ष तथा पुनर्जन्म का चक्र एक ही आत्मा में है। इस प्रकार आत्मा को जैन मत में परिणामी नित्य माना गया और पुरुष को कूटस्थ, जैनों ने जड़ और जीव दोनों को परिणामी-नित्य माना। इसमें भी उनकी अनेकान्त दृष्टि स्पष्ट होती है।

जीव के चैतन्य का अनुभव मात्र देह में ही होता है, अतः जैन मत के अनुसार

---

६६९ जिनसेन ने अपने 'हरिवंशपुराण' (८४० वि० सं०) में—

'एकद्वित्रिचतुःपञ्चषट्सप्ताष्टनवास्पदा।
अपर्यायापि सत्सेवानन्तपर्यायभाविनी॥' (हरिवंश, ५८।५)

कहकर एक से नौ तक जैन धर्म के तत्त्व गिनाये हैं।

एक—जीव, दो—चेतन-अचेतन अथवा मूर्तिक-अमूर्तिक, तीन—सम्यक् दर्शन, ज्ञान और चारित्र अथवा चेतन-अचेतन और चेतना, चेतन द्रव्य, चार—चार गति, चार कषाय अथवा चार प्रत्यय, आठ—अष्ट कर्म।

जीव-आत्मा देह परिणाम है। नये नये जन्म जीव धारण करता है, इसलिए उसके लिए गमनागमन अनिवार्य है। इसी कारण जीव को गमन में सहायक द्रव्य धर्मास्तिकाय के नाम से और स्थिति में सहायक द्रव्य अधर्मास्तिकाय के नाम से—इस प्रकार दो अजीव द्रव्यों का मानना अनिवार्य हो गया। इसी प्रकार यदि जीव का संसार हो तो बन्धन भी होना ही चाहिए। वह बन्धन पुद्गल अर्थात् जड द्रव्य का है। अतएव पुद्गलास्तिकाय के रूप में एक दूसरा भी अजीव द्रव्य माना गया। इन सबको अवकाश देने वाला द्रव्य आकाश है, उसे भी जडरूप अजीव द्रव्य मानना आवश्यक था। इस प्रकार जैन दर्शन मे जीव, धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल—ये पाँच अस्तिकाय माने गये हैं। परन्तु जीवादि द्रव्यों की विविध अवस्थाओं की कल्पना काल के बिना नही हो सकती। फलत: एक स्वतंत्र काल-द्रव्य भी अनिवार्य था। इस प्रकार पाँच अस्तिकायों के स्थान पर छह द्रव्य हुए। जब काल को स्वतंत्र द्रव्य नही माना जाता तब उसे जीव और अजीव द्रव्यों के पर्याय रूप मानकर काम चलाया जाता है।

अब सात तत्व और नौ तत्व के बारे में थोडा स्पष्टीकरण कर ले। जैन दर्शन मे तत्त्वविचार दो प्रकार से किया जा सकता है। एक प्रकार के बारे में हमने ऊपर देखा। दूसरा प्रकार मोक्षमार्ग में उपयोगी हो, उस तरह पदार्थों की गिनती करने का है। इसमें जीव, अजीव, आस्रव, संवर, बन्ध, निर्जरा और मोक्ष—इन सात तत्वों की गिनती का एक प्रकार और उसमें पुण्य एव पाप का समावेश करके कुल नौ गिनने का दूसरा प्रकार है। वस्तुत: जीव और अजीव का विस्तार करके ही सात और नौ तत्त्व गिनाये हैं, क्योंकि मोक्षमार्ग के वर्णन मे वैसा पृथक्करण उपयोगी होता है। जीव और अजीव का स्पष्टीकरण तो ऊपर किया ही है। अंशत: अजीव-कर्मसस्कार-बन्धन का जीव से पृथक् होना निर्जरा है और सर्वांशत: पृथक् होना मोक्ष है। कर्म जिन कारणों से जीव के साथ बन्ध में आते है वे कारण आस्रव हैं और उसका निरोध संवर है। जीव और अजीव कर्म का एकाकार जैसा सम्बन्ध बन्ध है।

साराश यह कि जीव मे राग-द्वेष, प्रमाद आदि जहाँ तक रहते हैं, वहाँ तक बन्ध के कारणों का अस्तित्व होने से ससारवृद्धि हुआ करती है। उन कारणों का निरोध किया जाय तो ससारभाव दूर होकर जीव सिद्धि अथवा निर्वाण अवस्था प्राप्त करता है। निरोध की प्रक्रिया को संवर कहते है, अर्थात् जीव की मुक्ति होने की साधना—विरति आदि—संवर हैं, और केवल विरति आदि से सन्तुष्ट न होकर जीव कर्म से छूटने के लिए तपश्चर्या आदि कठोर अनुष्ठान आदि भी करता हैं, उससे निर्जरा—आंशिक छुटकारा—होता है और अन्त में वह मोक्ष को

प्राप्त करता है।"[६७०]

सम्यग्ज्ञान : डॉ० राधाकृष्णन् के अनुसार उसका (वर्धमान का) का ज्ञान-सम्बन्धी सिद्धान्त उसका अपना है और दर्शनशास्त्र के विद्यार्थी के लिए अपना एक विशेषत्व रखता है।[६७१]

'येन येन प्रकारेण जीवादयः पदार्था व्यवस्थितास्तेन तेनावगमः सम्यग्ज्ञानम्।' यह ज्ञान पाँच प्रकार का माना गया है—मति, श्रुति, अवधि, मनःपर्यय और केवल।[६७२]

(१) "मतिज्ञान साधारण ज्ञान है, जो इन्द्रिय के प्रत्यक्ष सम्बन्ध द्वारा प्राप्त होता है। इसी के अन्तर्गत आते हैं स्मृति, संज्ञा अथवा प्रत्यभिज्ञा अथवा पहचान; और तर्क अथवा प्रत्यक्ष के आधार पर किया गया आगमन अनुमान, अभिनिबोध या अनुमान अथवा निगमन विधि का अनुमान।[६७३] मतिज्ञान के कभी-कभी तीन भेद किये जाते हैं अर्थात् उपलब्धि अथवा प्रत्यक्ष ज्ञान भावना अथवा स्मृति और उपयोग अथवा अर्थग्रहण।[६७४] इन्द्रियों एवं मन (जिसे इन्द्रियों से भिन्न होने के कारण अनिन्द्रिय भी कहते हैं) के संयोग के द्वारा जो ज्ञान प्राप्त किया जाता है उसे मतिज्ञान कहते है।[६७५] मतिज्ञान की उत्पत्ति से पूर्व हमें सदा दर्शन होता है। (२) श्रुतिज्ञान अथवा शब्द या आप्तप्रमाण वह ज्ञान है जो लक्षणों, प्रतीकों अथवा शब्दों द्वारा हमें प्राप्त होता है। जब कि मतिज्ञान हमे परिचय द्वारा मिलता है, यह ज्ञान केवल वर्णन द्वारा प्राप्त होता है। श्रुतिज्ञान भी चार प्रकार का है—लब्धि अथवा ससर्ग या साहचर्य, भावना अथवा ध्यान देना, उपयोग अथवा अर्थ-ग्रहण, और नय अथवा वस्तुओं के तात्पर्य के नाना पक्ष।[६७६] नय को यहाँ इसलिए दर्शाया गया है चूँकि धार्मिक ग्रन्थों की भिन्न-भिन्न व्याख्याएँ विवाद के लिए उपस्थित की जाती हैं। (३) देश और काल की दूरी रहते हुए भी वस्तुओं का

६७० दलसुख मालवणिया, 'जैनधर्म का प्राण (प० सुखलाल)' की भूमिका, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, संस्क० १९६५, पृ० ९-११।

६७१. 'भारतीय दर्शन' (हिन्दी अनुवाद), पृ० २७०

६७२. मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानम्॥ —तत्त्वार्थसूत्र १।९

६७३. 'पञ्चास्तिकाय समयसार', ४१

मति. स्मृति. संज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम्।—तत्त्वार्थसूत्र १।१३

६७४. वही, ४२।

६७५. 'इन्द्रियैर्मनसा च यथास्वमर्थान्मन्यते, अनया मनुते, मननमात्रं वा मतिः।

(तत्त्वार्थसूत्र १।९ पर सर्वार्थसिद्धि)

६७६ पञ्चास्तिकाय, समयसार, ४३।

जो सीधी या प्रत्यक्ष ज्ञान है उसे अवधि कहते हैं। यह ज्ञान असाधारण दृष्टि द्वारा अतीन्द्रिय विषयों का ज्ञान है। (४) मनःपर्यय, अन्य व्यक्तियों के वर्तमान एवं भूत विचारों साक्षात् ज्ञान; जैसे टेलीपैथी द्वारा दूसरों के मन में प्रवेश किया जाता है। (५) केवल अथवा पूर्णज्ञान, सब पदार्थों एवं उनके परिवर्तनों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेना।[६७७] यह देश, काल एवं विषय की सीमा से रहित सर्वज्ञता है। पूर्ण चेतना के लिए सम्पूर्ण यथार्थता प्रत्यक्ष रूप में प्रकट है। यह ज्ञान जो इन्द्रियों के ऊपर निर्भर नहीं है और जो केवल अनुभवगम्य ही है एवं वाणी द्वारा जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता, केवल ऐसे पवित्रात्माओं के लिए ही सम्भव है जो बन्धनों से मुक्त हो चुके हैं। पहले तीन प्रकार के ज्ञानों मे भ्रान्ति की सम्भा- है, किन्तु पिछले दोनों में कोई दोष नहीं हो सकता।[६७८]

पुनः ज्ञान दो प्रकार का है : **प्रमाण** अर्थात् पदार्थ को उसी रूप में जानना जिस रूप में वह है, और **नय** अर्थात् पदार्थ का किसी सम्बन्ध-विशेष के साथ ज्ञान। नयों को कई प्रकार से विभक्त किया गया है यथा—नैगमनय, सग्रहनय, व्यवहारनय, ऋजुसूत्रनय, शब्दनय, समभिरूढनय और सर्वमूतनय।[६७९] नयों के और भी भेद किये गये हैं; यथा द्रव्यार्थिक एवं पर्यायार्थिक। इन नयों का सबसे महत्त्वपूर्ण उपयोग निश्चय ही 'स्याद्वाद' पर 'सप्तभंगी' में होता है। 'सप्तभगी' का अर्थ है किसी वस्तु अथवा उसके गुणों के विषय में कथन करने के, दृष्टिकोण के रूप से, सात भिन्न-भिन्न प्रकार, जो ये हैं—(१) स्याद् अस्ति, (२) स्याद् नास्ति, (३) स्याद् अस्ति नास्ति (४) स्याद् अवक्तव्यम्, (५) स्याद् अस्ति च अवक्तव्यम्। (६) स्याद् नास्ति अवक्तव्यम्, (७) स्याद् अस्ति च नास्ति च अवक्तव्यम्। यह 'सप्तभङ्गी' जैन तर्कशास्त्र का बहुचर्चित पारिभाषिक शब्द है।

सम्यक्चारित्र : कर्म जिन कारणों से जीव के साथ बन्ध में आते हैं वे कारण **आस्रव** हैं और उनका निरोध **संवर** है।[६८०] जीव की मुक्त होने की साधना, विरति आदि—संवर है और केवल विरति आदि से सन्तुष्ट न होकर जीव की कर्म से छूटने के लिए तपश्चर्या आदि कठोर अनुष्ठान आदि निर्जरा-आंशिक छुटकारा है, अन्त में मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस प्रकार संवर और निर्जरा सम्यक् चारित्र के अन्तर्गत आते हैं। पूज्यपाद ने सम्यक्चारित्र की परिभाषा देते हुए लिखा है कि संसार के कारणों की निवृत्ति के प्रति समुद्यत ज्ञानवान् का कर्मादाननिमित्तक्रियोपरम

---

६७७ सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य।—तत्त्वार्थसूत्र १।२९

६७८. डा० राधाकृष्णन् 'भारतीय दर्शन', पृष्ठ २७०-२७१

६७९. नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरूढैवम्भूता नयाः।—तत्त्वार्थसूत्र १।३३

६८०. आस्रवनिरोधः संवरः।—तत्त्वार्थसूत्र ९।१

सम्यक्चारित्र है।[६८१] इस चारित्र के अन्तर्गत सागार तथा अनागारों का धर्म आता है। महाव्रत, अणुव्रत, गुप्तियाँ, समितियाँ, शिक्षाव्रत, गुणव्रत एवं अनेक नियम इस चारित्र के अन्तर्गत आते हैं। मोटे तौर से इन्हें अहिंसा-दर्शन का क्रियात्मक पक्ष कहा जा सकता है।

'पद्मपुराण' में जैन-धर्म के इन तीन स्तम्भों—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र का यथावसर पर्याप्त विवेचन मिलता है। दिगम्बर और श्वेताम्बर—जैन धर्म के दोनों सम्प्रदायों में पद्मपुराण का समान सम्मान है। इसका कारण यह है कि रविषेण ने अपने पूर्ववर्ती ग्रन्थों—जिन्हें आज दिगम्बर या श्वेताम्बर सम्प्रदाय के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ कहा जाता है—का गहन अध्ययन किया था और उनकी मान्यताओं को अपने ग्रन्थ में स्थान दिया। यही कारण है कि 'पद्मपुराण' में कुछ बातें ऐसी आ गयी हैं जो दिगम्बर-सम्प्रदाय में मान्य हैं कुछ ऐसी भी जो श्वेताम्बर-सम्प्रदाय में मान्य है। उमास्वाति भी रविषेण को मान्य हैं और कुन्दकुन्द भी। सम्यक् दर्शन, ज्ञान और चारित्र का विवेचन वर्धमान, गौतमस्वामी, सर्वभूषण केवली, अनन्तबल, मुनिराज आदि के उपदेशों में मुखरित हुआ है। जैन तर्कशास्त्र की मान्यताओं का उपयोग एकादश पर्व में नारद-पर्वतक के शास्त्रार्थ के समय किया गया है। 'पद्मपुराण' मे तत्त्वों का विवेचन प्रायः उमास्वाति के सूत्रों के आधार पर किया है।[६८२] क्षेत्र तथा काल के वर्णन उमास्वाति के सूत्रों और यतिवृषभ की 'तिलोयपण्णत्ति' से पर्याप्त प्रभावित हैं। 'ज्ञान' के सिद्धान्त के प्रकाशन में 'अनेकान्तवाद', 'स्याद्वाद', 'सप्तभङ्गी' आदि शब्दों का प्रयोग रविषेण ने किया है। चारित्र का विस्तृत विवेचन उसने विविध उपदेशों के समय किया है। यह स्मरणीय है कि रविषेण ने धर्म का प्रयोग कही पूरे मोक्ष मार्ग (दर्शन-ज्ञान-चारित्र) के लिए, कही चारित्र के लिए और कहीं केवल

---

६८१ संसारकारणनिवृत्ति प्रत्यागूर्णस्य ज्ञानवन. कर्मादाननिमित्तक्रियोपरम सम्यक्चारित्रम्॥
तत्त्वार्थसूत्र १।१ पर सर्वार्थसिद्धि टीका।

६८२ तिलोयपण्णत्ति (त्रिलोकप्रज्ञप्ति)' की रचना रविषेण से पूर्व हो चुकी थी। प्राकृत भाषा मे रचित इस ग्रन्थ का विषय मुख्यत विश्वरचना—लोकस्वरूप है तथा प्रसंगवश इसमें धर्म और सस्कृति से सम्बन्ध रखने वाली अनेक अन्य बातो की भी चर्चा आयी है। समस्त ग्रन्थ नौ महाधिकारों में विभाजित है—(१) सामान्य लोक का स्वरूप, (२) नारक लोक, (३) भवनवासी लोक, (४) मनुष्य लोक, (५) तिर्यग्लोक, (६) व्यन्तरलोक, (७) ज्योतिर्लोक, (८) देवलोक और (९) सिद्धलोक।

इसका प्रथम भाग (चतुर्थ महाधिकार तक) १९४३ ई० में और दूसरा भाग १९५१ ई० में प्रो० हीरालाल जैन, आदिनाथ उपाध्ये एवं पं० बालचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री के सम्पादकत्व में जैन संस्कृति-संरक्षक-संघ शोलापुर से प्रकाशित हुआ है।

धार्मिक अनुष्ठानादि के लिए किया है, । कहीं जिनेन्द्र-शासन का अर्थ धर्म है और कहीं 'भारवति' के अर्थ में। इसीलिए 'पद्मपुराण' में 'धर्म' शब्द से धर्म और दर्शन दोनों की सम्मिश्रित अर्थावगति होती है।

'पद्मपुराण' के अनुसार जैनधर्म ही एक ऐसा धर्म है जो निष्कलुष एवं आदर्श है। यद्यपि मिथ्यादृष्टियों (ब्राह्मणों) के कुशासन में भी कहीं थोड़ा बहुत धर्म का लेश मिल सकता है तथापि सम्यग्दर्शन के बिना वह निर्मूल ही है।[६८३]

'पद्मपुराण' के अनुसार--धर्म का मूल है दया और उसका मूल--अहिंसा[६८४] धर्म दो प्रकार का है--महाव्रत और अणुव्रत। इनमें महाव्रत गृहत्यागियों (अनागारों) का है और अणुव्रत गृहस्थों का।

मुनियों को पंच महाव्रतों का पालन करना पड़ता है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का ऐकान्तिक और आत्यन्तिक पालन करना पंचमहाव्रत-पालन है। अनागारों को तीन गुप्तियों, पंच समितियों एवं नाना तपों को वश मे करना होता है।[६८५]

गृहस्थों का धर्म मुख्यतः इन द्वादश भागों में विभक्त है---पाँच अणुव्रत, चार शिक्षाव्रत एवं तीन गुणव्रत।[६८६] इनके अतिरिक्त यथाशक्ति उन्हें अनेक नियम धारण करने होते हैं। स्थूल हिंसा, स्थूल झूठ, स्थूल पर-द्रव्य-ग्रहण, पर-स्त्री-समागम और अनन्ततृष्णा से विरत होना---ये गृहस्थों के पाँच अणुव्रत हैं।[६८७] इन व्रतों की रक्षा के लिए अहिंसा, सत्य, अस्तेय, परस्त्रीविरक्ति तथा इच्छा का परिमाण परम आवश्यक है।[६८८]

अणुव्रतों के साथ ये तीन गुणव्रत भी लेने पड़ते हैं:---अनर्थदण्डो का त्याग करना, दिशाओं और विदिशाओं में आवागमन की सीमा निर्धारित करना एवं भोगोपभोगो का परिमाण करना।[६८९]

चार शिक्षाव्रत ये है---प्रयत्नपूर्वक सामायिक करना, प्रोषधोपवास धारण करना, अतिथि-संविभाग और आयु का क्षय होने पर सल्लेखना धारण करना।[६९०] सामायिक व्रत में गृहस्थ को प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल में नित्य कुछ समय तक आध्यात्मिक तत्त्वानुशीलन करना होता है। प्रोषधोपवास के अनुसार गृहस्थ को दोनों पक्षों की अष्टमी और चतुर्दशी को भोजन से विरत रहने का व्रत लेना होता है। अतिथि-संविभाग के द्वारा उसे अथितियों का स्वागत करना होता है एवं उन्हें भोजन देकर स्वयं भोजन करना होता है। जिसने अपने आगमन के

६८३. पद्म०, ६।२८२। ६८४. वही, ६।२८६। ५८५. वही, ६।२८९-२९२, १४। १६४-१८१। ६८६. वही, १४।१८३। ६८७. वही, १४।१८४-१८५। ६८८. वही, १४।१८६-१९४। ६८९. वही, १४।१९८। ६९०. वही, १४।१९९।

विषय में किसी तिथि का संकेत नहीं किया है, जो परिग्रह से रहित है और सम्यग्दर्शनादि गुणों से युक्त होकर घर आता है ऐसा मुनि अतिथि कहलाता है। ऐसे अतिथि के लिए अपने वैभव के अनुसार आदरपूर्वक लोभरहित हो भिक्षा तथा उपकरण आदि देना चाहिए।[६९१] सल्लेखना के अनुसार शुद्धमन होकर, सभी मनोविकारों से मुक्त होकर और सभी लोगों को क्षमा प्रदान करके अपने सभी पापों की आलोचना की जाती है और अन्त में महाव्रतों को अपना कर शोक-भय-विषाद-अरति आदि से चित्त को विमुक्त करके भोजन और पेय का सर्वथा त्याग करके समाधि-मरण अपना लिया जाता है। इन व्रतों में से सामायिक प्रोषधोपवास और अतिथिसंविभाग क्रमशः वैदिक संस्कृति के ब्रह्मचर्य, व्रतोपवास और अतिथि-यज्ञ के समकक्ष पड़ते हैं।[६९२]

इनके अतिरिक्त गृहस्थ के लिए पालनीय ये नियम हैं—मधुत्याग, मद्य-त्याग, मांस-त्याग, द्यूत-त्याग, रात्रिभोजन-त्याग और वेश्यागमन-त्याग आदि।[६९३]

इस प्रकार धर्माचरण करने से गृहस्थ मरकर देव-पर्याय को प्राप्त होता है और वहाँ से च्युत होकर उत्तम मनुष्यत्व प्राप्त करता है। ऐसा जीव अधिक से अधिक आठ भवों में रत्नत्रय का पालन कर अन्त में निर्ग्रन्थ होकर सिद्धिपद को प्राप्त हो जाता है।[६९४]

'पद्मपुराण' के अनुसार जो भी व्यक्ति जिनेन्द्र की वन्दना करता है अथवा उनका भावपूर्वक स्मरण करता है, उसके पाप क्षीण हो जाते हैं।[६९५] जिनेन्द्र की स्तुति से, जिनेन्द्र की प्रतिमा बनवाने से और जिनेन्द्र की पूजा करने से कुछ भी दुर्लभ नहीं रह जाता।[६९६] जो भी प्राणी धर्म से युक्त होता है वही समस्त संसार में पूज्य होता है और स्वर्ग में अपार सौख्य प्राप्त करता है।[६९७]

इस मुनिधर्म और गृहस्थ धर्म के विपरीत जो भी आचरण अथवा ज्ञान है वह 'अधर्म' है[६९८]—जिससे परलोक और पुनर्जन्म में अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं।[६९९] अधर्मी प्राणी अनेक नरकों में जाता है[७००]—ऐसी 'पद्मपुराण' की मान्यता है।

'पद्मपुराण' के अनुसार, यज्ञ करना (विशेषतः हिंसायज्ञ) पातक है और

---

६९१. वही २४।२००-२०१।
६९२ रामजी उपाध्याय : प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका।
६९३. पद्म० १४।२०२।
६९४. पद्म० १४।२०३-२०४
६९५. वही, १२।२०८
६९६. वही, १४।२१३
६९७. वही, १४।२१४
६९८. वही, ६।३०४
६९९. वही, १४।२६६-२८५
७००. वही, ६।३०५-३११

दिन भर व्रत करके रात्रि में व्रत की पारणा करना भी अधर्म है।[७०१]

'पद्मपुराण' के अनुसार, जैनधर्म में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्-चारित्र—इनकी एकता ही मोक्ष का मार्ग है।[७०२] इनमें से तत्त्वों का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन कहलाता है।[७०३] अनन्त गुण और अनन्त पर्यायों को धारण करने वाला तत्त्व चेतन-अचेतन के भेद से दो प्रकार का है।[७०४] स्वभाव अथवा परोपदेश के द्वारा भक्तिपूर्वक जो तत्त्व को ग्रहण करता है, वह जिनमत का श्रद्धालु सम्यग्दृष्टि जीव कहा गया है।[७०५] शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टिप्रशंसा और प्रत्यक्ष ही उदार मनुष्यों में दोष लगाना—उनकी निन्दा करना—ये पाँच अतिचार हैं।[७०६] परिणामों की स्थिरता रखना, जिनायतन आदि क्षेत्रों में रमण करना—स्वभाव से उनका अच्छा लगना, उत्तम भावनाएँ भाना तथा शंकादि दोषों से रहित होना—ये सब सम्यग्दर्शन को शुद्ध रखने के उपाय हैं।[७०७] सम्यग्ज्ञानपूर्वक जितेन्द्रिय मनुष्य के द्वारा जो आचरण किया जाता है वह सम्यक्चारित्र कहलाता है।[७०८] सम्यक्चारित्र में, इन्द्रियों का वशीकरण, वचन तथा मन का नियन्त्रण, न्यायपूर्ण प्रवृत्ति करने वाले त्रस-स्थावर जीवों पर अहिंसा, मन और कानों को आनन्दित करने वाले, स्नेहपूर्ण, मधुर, सार्थक और कल्याण-कारी वचनों का कथन, अदत्त वस्तु के ग्रहण में मन-वचन-काय से निवृत्ति, न्यायपूर्वक दी गयी वस्तु का ग्रहण, ब्रह्मचर्य-धारण, मोक्ष-मार्ग में महाविघ्नकारी मूर्च्छा के त्याग के साथ परिग्रह का त्याग, मुनियों के लिए दान एवं विनय-नियम-शील-ज्ञान-दया-दम-मोक्ष के लिए ध्यान-धारण आदि करने होते हैं।[७०९] कल्याण-प्राप्ति के लिए जिन-शासनोक्त सम्यक्चारित्र का अवश्य पालन करना चाहिए।[७१०] इनके विरुद्ध मिथ्या दर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र हैं जिनसे प्राणी संसार से नहीं निकल पाता।[७११]

किन्तु इस विवेचन से पद्मपुराण की काव्यात्मकता अत्यन्त बोझिल प्रतीत होने लगती है। यदि जैन धर्म और दर्शन के सिद्धान्तों का सार प्रस्तुत किया जाता तो अधिक सरसता बनी रह सकती थी। किन्तु रविषेण, मानों कच्चे माल की भरती करने के आदी हैं। जिस तत्परता से वे बाण के हर्षचरित के वाक्य के वाक्य

---

७०१. वही, पर्व १४ — ७०२. वही, १०५।३-२१०
७०३. वही, १०५।२११ — ७०४. वही, १०५।२११
७०५. वही, १०५।२१२ — ७०६. वही, १०५।२१३
७०७. वही, १०५।२१४ — ७०८. वही, १०५।२१५
७०९. वही, १०५।२१६-२२३ — ७१०. वही, १०५।२२४
७११. वही, १०५।२२६-२६१

पद्मीकृत करके राजगृह नगर का अथवा श्रेणिक राजा का वर्णन करते हैं उसी तत्परता से वे कुन्दकुन्द के 'पंचास्तिकायसार' उमास्वाति के 'तत्त्वार्थसूत्र' एवं यतिवृषभ की 'तिलोयपण्णत्ति' की सामग्री को अनुष्टुप्-बद्ध करके पाठकों के सम्मुख रखते हैं, चाहे उनका पाठक उसे सरलता से पचा सके या न पचा सके[७११]। कुछ तुलनात्मक उद्धरण प्रस्तुत हैं—

उमास्वाति और रविषेण

१. उमास्वाति	:	सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।[७१३]
रविषेण	:	उवाच भगवान् सम्यग्दर्शनज्ञानचेष्टितम्। मोक्षवर्त्म समुद्दिष्टमिदं जैनेन्द्रशासने॥[७१४]
२. उमा०	:	तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्।[७१५]
रवि०	:	तत्त्वश्रद्धानमेतस्मिन् सम्यग्दर्शनमुच्यते।[७१६]
३. उमा०	:	तन्निसर्गादधिगमाद्वा।[७१७]
रवि०	:	निसर्गाधिगमद्वाराद्गुरुत्वा तत्त्वमुपाददत्।[७१८]
४. उमा०	:	शङ्काकांक्षाविचिकित्साऽन्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतीचाराः।[७१९]
रवि०	:	शङ्काकांक्षा चिकित्सा च परशासनसंस्तवः। प्रत्यक्षोदारदोषाद्या एते सम्यक्त्वदूषणाः॥[७२०]
५. उमा०	:	तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पञ्च पञ्च।[७२१]
रवि०	:	स्थैर्यं जिनवरागारे रमण भावनाः पराः। शङ्कादिरहितत्वं च सम्यग्दर्शनशोधनम्॥[७२२]

---

७१२ आगे चलकर जिनसेन ने भी अपने 'हरिवंशपुराण' (८४० वि० सं०) के ५८वें सर्ग में जैन धर्म के तत्त्वों का इसी प्रकार विस्तृत विवेचन किया है। दे० 'हरिवंशपुराण', (सम्पादक, प० पन्नालाल जैन साहित्याचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, संस्क० १९६२ ई०) पृ० ६६०-६९३। क्षेत्र, काल तथा श्रुत-मति-केवल ज्ञानों का विवेचन भी रविषेण की रीति से 'हरिवंशपुराण' के चतुर्थ, पंचम, सप्तम तथा दशम सर्ग में हुआ है।

७१३ तत्त्वार्थसूत्र, १।१ | ७१४. पद्म०, १०५।२१०

७१५. तत्त्वार्थ०, १।२ | ७१६. पद्म०, १०५।२११

७१७. तत्त्वार्थ०, १।३ | ७१८. पद्म०, १०५।२१२

७१९. तत्त्वार्थ०, ७।२३ | ७२०. पद्म०, १०५।२१३

७२१. तत्त्वार्थ०, ७।३ | ७२२. पद्म०, १०५।२१४

६. उमा० : कायवाङ्मनःकर्म योगः।[७२३]
स आस्रवः।[७२४]

रवि० : गोपायितहृषीकत्वं वचोमानसयन्त्रणम्।
विद्यते यत्र निष्पापं सुचारित्रं तदुच्यते॥[७२५]

७. उमा० : हिंसाऽनृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्।[७२६]

रवि० : अहिंसा यत्र भूतेषु त्रसेषु स्थावरेषु च।
क्रियते न्याययोगेषु सुचारित्रं तदुच्यते॥
मनःश्रोत्रपरिह्लादं स्निग्धं मधुरमर्थवत्।
शिवं यत्र वचः सत्यं सुचारित्रं तदुच्यते॥
अदत्तग्रहणे यत्र निवृत्तिः क्रियते त्रिधा।
दत्तं च गृह्यते न्याय्यं सुचारित्रं तदुच्यते॥
सुराणामपि सम्पूज्यं दुर्धरं महतामपि।
ब्रह्मचर्यं शुभं यत्र सुचारित्रं तदुच्यते॥
शिवमार्गमहाविघ्नमूर्च्छात्यजनपूर्वकः।
परिग्रहपरित्यागः सुचारित्रं तदुच्यते॥[७२७]

८. उमा० : बन्धवधच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः।[७२८]
क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्यप्रमाणातिक्रमाः।[७२९]

रवि० : वधताडनबन्धाङ्कदोहनादिविधायिनः।
ग्रामक्षेत्रादिसक्तस्य प्रव्रज्या का हतात्मनः॥
क्रयविक्रयसक्तस्य पंक्तियाचनकारिणः।
सहिरण्यस्य का मुक्तिर्दीक्षितस्य दुरात्मनः॥[७३०]

९. उमा० : रत्नशर्करावालुकापङ्कधूमतमोमहातमःप्रभाभूमयो घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठाः सप्ताधोऽधः।[७३१]

रवि० : रत्नाभा प्रथमा तत्र यस्यां भवनजाः सुराः।
षडधस्तात्ततः क्षोण्यो महाभयसमावहाः॥

---

७२३. तत्त्वार्थ०, ६।१
७२४. वही, ६।२
७२५. पद्म०, १०५।२१६
७२६. तत्त्वार्थ०, ७।१
७२७. पद्म० १०५।२१७-२२२,
७२८. तत्त्वार्थ०, ७।२५
७२९. वही, ७।२९
७३०. पद्म०, १०५।२३१-२३२
७३१. तत्त्वार्थ०, ३।१

शर्करावालुकापङ्कधूमध्वान्ततमोनिभाः ।
सुमहादुःखदायिन्यो नित्यान्धध्वान्तसंकुलाः ॥[७३२]
···अधस्तान्महीरत्नप्रभाशर्करावालुकापङ्कधूमप्रभाध्वान्त-भातिप्रकृष्टान्धकाराभिधास्ताश्च नित्यं महाध्वान्त-युक्ता··।[७३३]

१०. उमा० : नारका नित्याशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रियाः ।[७३४]
रवि० : चक्षुषः पुटसङ्कोचो यावन्मात्रेण जायते ।
तावन्तमपि नो कालं नारकाणां सुखासनम् ॥[७३५]

११. उमा० : जम्बूद्वीपलवणोदयादयः शुभनामानो द्वीपसमुद्राः ॥[७३६] द्विर्द्विविष्कम्भाः पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो वलयाकृतयः ॥[७३७] तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥[७३८] भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ॥[७३९] तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरुक्मिशिखरिणो वर्षधरपर्वताः ॥[७४०] हेमार्जुनतपनीयवैडूर्यरजतहेममयाः ॥[७४१] मणिविचित्रपार्श्वा उपरि मूले च तुल्यविस्ताराः ॥[७४२] पद्ममहापद्मतिगिञ्छकेसरिमहापुण्डरीकपुण्डरीका ह्रदास्तेषामुपरि ॥[७४३] प्रथमो योजनसहस्रायामस्तदर्द्धविष्कम्भो ह्रदः ॥[७४४] दशयोजनावगाहः ॥[७४५] तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ॥[७४६] तद्द्विगुणाद्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च ॥[७४७] तन्निवासिन्यो देव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिकपरिषत्काः ॥[७४८] गङ्गासिन्धुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकान्तासीतासीतोदानारीनरकान्तासुवर्णरूप्यकूला-

---

७३२. पद्म०, १०५।१११-११२
७३३. वही, ७८।६२ के बाद का गद्य ।
७३४. तत्त्वार्थ०, ३।३
७३५. पद्म०, २।९८२
७३६. तत्त्वार्थ, ३।७
७३७. तत्त्वार्थ०, ३।८
७३८. वही, ३।९
७३९. वही, ३।१०
७४०. वही, ३।११
७४१. वही, ३।१२
७४२. वही, ३।१३
७४३. वही, ३।१४
७४४. वही, ३।१५
७४५. वही, ३।१६
७४६. वही, ३।१७
७४७. वही, ३।१८
७४८. वही, ३।१९

रक्तारक्तोदा: सरितस्तन्मध्यगा: ॥[७४९] द्वयोर्द्वयो: पूर्वा: पूर्वगा: ॥[७५०] शेषास्त्वपरगा: ॥[७५१] चतुर्दश नदी सहस्रपरिवृता गङ्गासिन्ध्वादयो नद्य: ॥[७५२] विदेहेषु संख्येयकाला ॥[७५३] द्विर्घातकीखण्डे ॥[७५४] पुष्करार्द्धे च ॥[७५५] प्राङ्-मानुषोत्तरान्मनुष्या: ॥[७५६] आर्या म्लेच्छाश्च ॥[७५७] भरतैरावतविदेहा: कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्य: ॥[७५८] नृस्थिती परापरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते ॥[७५९] तिर्यग्योनिजनानां च ॥[७६०]

रवि० : जम्बूद्वीपमुखा द्वीपा लवणाद्याश्च सागरा: ।
प्रकीर्त्तिता: शुभा नाम संख्यानपरिवर्जिता: ॥
पूर्वाद् द्विगुणविष्कम्भा: पूर्वविक्षेपवर्तिन: ।
वलयाकृतयो मध्ये जम्बूद्वीप: प्रकीर्त्तित: ॥
मेरुनाभिरसौ वृत्तो लक्षयोजनमानभृत् ।
त्रिगुणं तत्परिक्षेपादधिकं परिकीर्तितम् ॥
पूर्वापरायतास्तत्र विज्ञेया: कुलपर्वता: ।
हिमवांश्च महाज्ञेयो निषधो नील एव च ॥
रुक्मी च शिखरी चेति समुद्रजलसङ्गता ।
वास्याभ्येर्भिर्विभक्तानि जम्बूद्वीपगतानि च ॥
भरताख्यमिदं क्षेत्र ततो हैमवतं हरि: ।
विदेहो रम्यकाख्यं च हैरण्यवतमेव च ॥
ऐरावतं च विज्ञेयं गङ्गाद्याश्चापि निम्नगा ।
प्रोक्त द्विर्घातकीखण्डे पुष्करार्द्धे च पूर्वकम् ॥
आर्या म्लेच्छा मनुष्याश्च मानुषाचलतोऽपरे ।
विज्ञेयास्तत्प्रभेदाश्च संख्यानपरिवर्जिता: ॥
विदेहे कर्मणो भूमिर्भरतैरावते तथा ।
देवोत्तरकुरुर्भोगक्षेत्रं शेषाश्च भूमय: ॥

---

७४९. वही, ३।२०
७५०. वही, ३।२१
७५१. वही, ३।२२
७५२ वही, ३।२३
७५३ वही, ३।३१
७५४. वही, ३।३३
७५५. वही, ३।३४
७५६. वही, ३।३५
७५७. वही, ३।३६
७५८. वही, ३।३७
७५९. वही, ३।३८
७६०. वही, ३।३९

त्रिपल्यान्तर्मुहूर्तं तु स्थिती नृणां परावरे।
मनुष्याणामिव ज्ञेया तिर्यग्योनिमुपेयुषाम् ॥[७६१]

१२. उमा० : देवाश्चतुर्णिकायाः ॥[७६२] दशाष्टपञ्चद्वादशविकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यन्ता ॥[७६३] भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः ॥[७६४] व्यन्तराः किन्नरकिम्पुरुषमहोरगगन्धर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः ॥[७६५] ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ॥[७६६] मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥[७६७] सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजयवैजयन्तजयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥[७६८]

रवि० : अष्टभेदजुषो देवा व्यन्तराः किन्नरादयः।
तेषा क्रीडनकावासा यथायोग्यमुदाहृताः॥
ऊर्ध्वं व्यन्तरदेवानां ज्योतिषा चक्रमुज्ज्वलम्।
मेरुप्रदक्षिणं नित्यङ्गतिश्चन्द्रार्कराजकम्॥
सख्येयानि सहस्राणि योजनानां व्यतीत्य च।
तत ऊर्ध्वं महालोको विज्ञेयः कल्पवासिनाम्॥
सौधर्माख्यस्तथैशानः कल्पस्तत्र प्रकीर्तितः।
ज्ञेयः सानत्कुमारश्च तथा माहेन्द्रसंज्ञकः॥
ब्रह्म ब्रह्मोत्तरो लोको लान्तवश्च प्रकीर्तितः।
कापिष्ठश्च तथा शुक्रो महाशुक्राभिधस्तथा॥
शतारोऽथ सहस्रारः कल्पश्चानतशब्दितः।
प्राणतश्च परिज्ञेयस्तत्परावारणच्युतौ॥
नव ग्रैवेयकास्ताभ्यामुपरिष्टात्प्रकीर्त्तिताः।
अहमिन्द्रतया येषु परमास्त्रिदशाः स्थिताः॥

---

७६१. पद्म०, १०५।१५८-१६३ इसके अतिरिक्त पद्म० ३।३९-४० भी देखें।
७६२. तत्त्वार्थ०, ४।१
७६३. तत्त्वार्थ, ४।३
७६४. वही, ४।१०
७६५. वही, ४।११
७६६. वही, ४।१२
७६७. वही, ४।१३
७६८. वही, ४।१९

विजयो वैजयन्तश्च जयन्तोऽथापराजितः ।
सर्वार्थसिद्धिनामा च पञ्चैतेऽनुत्तराः स्मृताः ॥[७६९]

१३. उमा० : भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणी-भ्याम् ॥[७७०]

रवि० उत्सर्पिण्यवसर्पिण्योरेवं क्रमसमुद्भवः ॥[७७१]

१४. उमा० : पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ॥[७७२]
संसारिणस्त्रसस्थावराः ॥[७७३]

रवि० : पृथिव्यापश्च तेजश्च मातरिश्वा वनस्पतिः ।
शेषास्त्रसाश्च जीवानां निकायाः षट् प्रकीर्तिताः ॥[७७४]

१५. उमा० : अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ॥[७७५] द्रव्याणि ॥[७७६]
जीवाश्च ॥[७७७] आ आकाशादेकद्रव्याणि ॥[७७८]

रवि० धर्माधर्मवियत्कालजीवपुद्गलभेदतः ।
षोढा द्रव्यं समुद्दिष्टं सरहस्यं जिनेश्वरैः ॥[७७९]

१६. उमा० : तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ॥[७८०] तन्निसर्गादधिगमाद्वा ॥[७८१] नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः ॥[७८२] प्रमाणनयैरधिगमः ॥[७८३] सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालान्तरभावाल्पबहुत्वैश्च ॥[७८४] नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरूढैवम्भूता नयाः ॥[७८५] जीवभव्याभव्यत्वानि च ॥[७८६] उपयोगो लक्षणम् ॥[७८७] स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥[७८८] संसारिणो मुक्ताश्च ॥[७८९] समनस्कामनस्काः ॥[७९०] संसारिणस्त्रसस्थावराः ॥[७९१] पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ॥[७९२]

---

७६९. पद्म०, १०५।१६४-१७१
७७० तत्त्वार्थसूत्र २।२७
७७१ पद्म०, ३।७३
७७२. तत्त्वार्थसूत्र २।१३
७७३. वही, २।१२
७७४. पद्म०, १०५।१४१
७७५. तत्त्वार्थसूत्र, ५।१
७७६. वही, ५।२
७७७ वही, ५।३
७७८. वही, ५।६
७७९. पद्म० १०५।१४२
७८०. तत्त्वार्थसूत्र १।२
७८१. वही १।३
७८२. वही, १।५
७८३. वही १।६
७८४. वही, १।८
७८५. वही १।३३
७८६. वही, २।७
७८७. वही २।८
७८८. वही, २।९
७८९. वही २।१०
७९०. वही, २।११
७९१. वही २।१२
७९२. वही, २।१३

द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः ॥[793] पञ्चेन्द्रियाणि ॥[794] स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि ॥[795]

रवि० सप्तभंगीवचोमार्गः सम्यक्प्रतिपदं मतः ।
प्रमाणं सकलादेशो नयोऽवयवसाधनम् ॥
एकद्वित्रिचतुःपञ्चहृषीकेष्वविरोधतः ।
सत्त्वं जीवेषु विज्ञेयं प्रतिपक्षसमन्वितम् ॥
० ० ०
भव्याभव्यादिभेदं च जीवद्रव्यमुदाहृतम् ।
संसारे तद्द्वयोन्मुक्ताः सिद्धास्तु परिकीर्तिताः ॥
ज्ञेयदृश्यस्वभावेषु परिणामः स्वशक्तितः ।
उपयोगश्च तद्रूपं ज्ञानदर्शनतो द्विधा ॥
ज्ञानमष्टविधं ज्ञेयं चतुर्धा दर्शनं मतम् ।
संसारिणो विमुक्ताश्च ते सचित्तविचेतसः ॥
वनस्पतिपृथिव्याद्याः स्थावराः शेषकास्त्रसाः ।
पञ्चेन्द्रियाः श्रुतिघ्राणचक्षुस्त्वग्रसनान्विताः ॥[796]

१७. उमा० : सम्मूर्च्छनगर्भोपपादा जन्म ॥[797] सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ॥[798] जरायुजाण्डजपोतानां गर्भः ॥[799] देवनारकाणामुपपादः ॥[800] शेषाणां सम्मूर्च्छनम् ॥[801]

रवि० पोताण्डजजरायूनामुदितो गर्भसम्भवः ।
देवानामुपपादस्तु नारकाणाञ्च कीर्तितः ॥
सम्मूर्च्छनं समस्तानां शेषाणां जन्मकारणम् ।
योन्यस्तु विविधाः प्रोक्ता महादुःखसमन्विताः ॥[802]

१८. उमा० : औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानि शरीराणि॥[803] परम्परं सूक्ष्मम् ॥[804]

793. वही, 2।14 794. वही, 2।15
795. वही, 2।19 796 पद्म०, 105।143-149
797. तत्त्वार्थसूत्र, 2।31 798. वही, 2।32
799. वही, 2।33 800. वही, 2।34
801. वही, 2।35 802. पद्म०, 105।150-151
803. तत्त्वार्थसूत्र, 2।36 804. वही, 2।37

रवि० औदारिकं शरीरं तु वैक्रियाऽऽहारके तथा।
तैजसं कार्मणं चैव विद्धि सूक्ष्मं परं परम् ॥[८०५]

१९. उमा० : प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक्तैजसात् ॥[८०६] अनन्तगुणे परे ॥[८०७] तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्ना चतुर्भ्यः ॥[८०८]

रवि० असंख्येयं प्रदेशेन गुणतोऽनन्तके परे।
आदिसम्बन्धमुक्ते च चतुर्णामिककालता ॥[८०९]

२० उमा० : देवाश्चतुर्णिकायाः ॥[८१०] भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः ॥[८११] व्यन्तराः किन्नरकिम्पुरुषमहोरगगन्धर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः ॥[८१२] ज्यौतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ॥[८१३] वैमानिकाः ॥[८१४] कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ॥[८१५]

रवि० ज्योतिषाः भावनाः कल्पा व्यन्तराश्च चतुर्विधाः।
देवा भवन्ति योग्येन कर्मणा जन्तवो भवे ॥[८१६]

२१. उमा० : ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः ॥[८१७]

रवि० : ईर्यावाक्यैषणादाननिक्षेपोत्सर्गरूपिका ।
समितिः पालनं तस्याः कार्यं यत्नेन साधुना ॥[८१८]

२२. उमा० : सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः ॥[८१९] कायवाङ्मनःकर्म योग. ॥[८२०]

रवि० : वाङ्मनःकायवृत्तीनामभावो ऽथवा ।
गुप्तिराचरण तस्या विधेयं परमादरात् ॥[८२१]

२३. उमा० : दिग्देशानर्थदण्डविरतिसामायिकप्रोषधोपवासोपभोगपरिभोगपरिमाणातिथिसंविभागव्रतसम्पन्नश्च ।[८२२] मार-

---

८०५. पद्मपुराण, १०५।१५२
८०६. तत्त्वार्थसूत्र, २।३८
८०७ वही, २।३९
८०८. वही, २।४३
८०९ पद्मपुराण, १०५।१५३
८१०. तत्त्वार्थसूत्र, ४।१
८११ वही, ४।१०
८१२ वही, ४।११
८१३. वही, ४।१२
८१४. वही, ४।१६
८१५ वही, ४।१७
८१६. पद्मपुराण, ३।८२
८१७. तत्त्वार्थसूत्र, ९।५
८१८. पद्म०, १४।१०८
८१९ तत्त्वार्थ०, ९।४
८२०. वही, ६।१
८२१ पद्म०, १४।१०९
८२२. तत्त्वार्थ०, ७।२१

णान्तिकीं सल्लेखनां घोषिता।[823]

रवि० : पद्मपुराण (१४।१८३-१९६)। किन्तु रविषेण ने 'सल्लेखना' को चार शिक्षाव्रतों में चौथा माना है जो कि 'कुन्दकुन्द' की स्पष्ट मान्यता है। उमास्वाति ने सल्लेखना को चार शिक्षाव्रतों में परिगणित नहीं किया है।

कुन्दकुन्द और रविषेण

२४. कुन्दकुन्द : पंचेवणुव्वयाइं गुणव्वयाइं हवंति तह तिण्णि।
सिक्खावय चत्तारि य संजमचरणं च सायारं॥
थूले तसकायवहे थूले मोसे अदत्तथूले य।
परिहारो परमहिला परिग्गहारंभ परिमाण॥
दिसविदिसमाणपढमं अणत्थदण्डस्स वज्जणं विदिय।
भोगोपभोगपरिमा इयमेव गुणव्वया तिण्णि॥
सामाइय च पढम विदिय च तहेव पोसहं भणिय।
तइयं च अतिहिपुज्जं चउत्थ सल्लेहणा अंते॥[824]

रविषेण : व्रतान्यणूनि पञ्चैषां शिक्षा चोक्ता चतुर्विधा।
गुणास्त्रयो यथाशक्ति नियमास्तु सहस्रशः॥
प्राणातिपाततः स्थूलाद्विरतिर्विततात्तथा।
ग्रहणात्परवित्तस्य परदारसमागमात्॥
अनन्तायाश्च गर्द्धायाः पञ्चसङ्ख्यमिदं व्रतम्।
भावना चेयमेतेषां कथिता जिनपुङ्गवैः॥
× × ×
विगमोऽनर्थदण्डेभ्यो दिग्विदिक्परिवर्जनम्।
भोगोपभोगसङ्ख्यानं त्रयमेतद्गुणत्रम्॥
सामायिकं प्रयत्नेन प्रोषधानशनं तथा।
सविभागोऽतिथीना च सल्लेखश्चायुषः क्षये॥[825]

यतिवृषभ और रविषेण

२५. 'तिलोयपण्णत्ति' के नरलोक महाधिकार में मनुष्यलोक का निर्देश, जम्बुद्वीप, लवणसमुद्र, धातकी खण्ड, कालोदक समुद्र, पुष्करार्द्ध

---

८२३. वही, ७।२२
८२४. चारित्तपाहुड २३-२६
८२५. पद्म० १४।१८३-१९९

द्वीप, इन अढ़ाई द्वीपसमुद्रों में स्थित मनुष्यों के भेद, संख्या, अल्पबहुत्व, गुणस्थानादि, आयुबन्धक, परिणाम, योनि, सुख, दुःख, सम्यक्त्वग्रहण के कारण और मोक्ष जाने वाले जीवों का प्रमाण, इस प्रकार १६ अधिकार हैं। इसके २९९१ पद्यों और एक गद्यभाग में वेदिका, भरतादि क्षेत्रों और कुलपर्वतों का विन्यास, भरत क्षेत्र, उसमें प्रवर्तमान छः काल, हिमवान्, हैमवत महाहिमवान्, हरिवर्ष, निषध, विदेह क्षेत्र, नील पर्वत, रम्यक क्षेत्र, रुक्मि पर्वत, हैरण्यवत क्षेत्र, शिखरी पर्वत और ऐरावत क्षेत्र—इन १६ अन्तराधिकारों द्वारा जम्बूद्वीप का वर्णन, बहुत विस्तार पूर्वक किया गया है।

यहाँ प्रसंगवश २४ तीर्थंकरों का वर्णन ५२२ से गाथाओं में विस्तार के साथ किया गया है।

चक्रवर्तिप्ररूपणा में (गाथा १२८१ से १४१० तक) भरतादिक चक्रवर्तियों का उत्सेध, आयु, कुमारकाल, मण्डलीककाल, दिग्विजय, राज्य और संयमकाल का वर्णन है।

गा० १४११ से १४-७३ में बलदेव, नारायण, प्रतिनारायण, रुद्र, नारद और कामदेव की संक्षिप्त प्ररूपणा की गयी है।

रविषेण ने पद्मपुराण के तीसरे, बीसवें और एक सौ पाँचवें पर्व में मुख्यतः इस धार्मिक सामग्री का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए एक संकेत दिया जा रहा है।

यतिवृषभ ने तीर्थंकरों की ऊँचाई (उत्सेध) इस प्रकार निरूपित किया है–

"पंचसयधणुपमाणो उसहजिणिदस्स होदि उच्छेहो।
तत्तो पण्णासूणा णियमेण य पुप्फदंतपेरंते ॥
एत्तो जाव अणंतं दस दस कोदंडमेत्तपरिहीणो।
तत्तो णेमि जिणंतं पणपणचावेहिं परिहीणो ॥
णव हत्था पासजिणे सग हत्था वड्ढमाणणामम्मि।
एत्तो तित्थयराणं सरीरवण्णं परूवेमो ॥"८२६

---

८२६ तिलोयपण्णत्ति, चतुर्थ महाधिकार

रविषेण ने भी इसी रूप में तीर्थंकरों के उत्सेध का उल्लेख किया है—

"शतानि पञ्च चापानां प्रथमस्य महात्मनः।
उत्सेधो जिननाथस्य वपुषः परिकीर्तितः॥
पञ्चाशच्चापहान्यातः प्रत्येकं परिकीर्तितम्।
शीतलात् प्राग् जिनेन्द्राणां नवतिः शीतलस्य च॥
ततो धर्मजिनात्पूर्वं दशचापपरिक्षयः।
प्रत्येकं धर्मनाथस्य चत्वारिंशत्सपञ्चिका:॥
ततः पार्श्वजिनात्पूर्वं प्रत्येकं पञ्चभिः क्षयः।
नवारत्निमितः पार्श्वो महावीरो द्विवर्जितः॥"[८२७]



---

८२७. पद्म०, २०।११२-११५

राजनीतिक रहन-सहन : राजघरानों की परम्पराओं, उत्सवों, आमोद-प्रमोदों तथा वैभवादि के वर्णनों से यह ध्वनित होता है कि 'पद्मपुराण' में वर्णित राजनीतिक रहन-सहन पर्याप्त उच्चस्तरीय है।

राजाओं में बहुपत्नीत्व-प्रथा खूब प्रचलित थी, अन्तःपुर भरे रहते थे—ऐसा प्रतीत होता है। राजा श्रेणिक के अन्तःपुर में सहस्रों महिषियों का उल्लेख है।[८३१] राजाओं की दिनचर्या प्रातःकाल से रात्रि तक अत्यन्त व्यस्त थी। उनके शयनीय-गृह में अत्यन्त शोभा होती थी। शय्या पर रत्न एवं पुष्प जड़े होते थे।[८३२] शय्या के पास बैठकर वेश्याएँ गान करती थीं।[८३३] राजा स्त्रियों के द्वारा मंगल किये जाने पर (स्वस्त्रीभिः कृतमंगलः) शयनीय से उठता था।[८३४] वन्दीजन तुरहीवादन एवं मांगलिक शब्द करते थे।[८३५] वेश्याएँ उसका जयकार करती थीं।[८३६] जागकर राजा भद्रविष्टर (सिंहासन) पर कृताशेषतनुस्थिति एवं सर्वालंकारसम्पन्न होकर बैठता था।[८३७] तनुस्थिति का प्रधान अंग था—स्नान। गन्ध और उद्वर्तन के साथ स्नान का अनेक बार उल्लेख हुआ है।[८३८] राजाओं और युवराजों की स्नानविधि बड़ी उपचारपूर्ण थी। सुन्दर वनिताएँ उन्हें स्नान कराती थीं। रत्न-जटित और स्वर्णनिर्मित चौकियों पर बैठकर वे स्नान करते थे। सौवर्ण और राजत कलशों से उनका अभिषेक किया जाता था। इन कलशों के मुख पर नव-पल्लव रखे रहते थे और वे हारों से सुशोभित रहते थे। इनमें सुवासित जल रहता था। कलशों में एक या अथवा अनेक मुख होते थे। स्नान के समय गन्धलेपन और उद्वर्तन होता था एवं कुलांगनाएँ मंगलाचार करती थीं। तूर्यनाद होता था। स्नानोपरांत वस्त्राभूषण धारण किये जाते थे, राजकुमार गुरुजनों की वन्दना भी करते थे।[८३९]

प्रतीहारदत्तद्वार सामन्त प्रातःकाल आकर राजा को प्रणाम करते थे।[८४०] जब राजा किसी धार्मिक स्थान पर जाता था तो सामन्त उसके साथ चलते थे।[८४१] वह कुथा (झूल) से युक्त हाथी पर चढ़कर चलता था।[८४२] आगे-आगे पैदल

---

८३१ पद्मपुराण, २।३४ — ८३२. वही, २।२१९-२२०
८३३. वही, २।२२० — ८३४. वही, २।२५३
८३५. वही, १०।५७ — ८३६ वही, २।२५६
८३७. वही, ३।१
८३८. वही, ३।१८५।७२।१२।१७ तथा ८३।१०७-१०८ आदि।
८३९. वही, ७।३५९-३६७। बाण ने भी कादम्बरी में शूद्रक के स्नान का ऐसा ही वर्णन किया है।
८४०. वही, ३।२-४ — ८४१. वही, ३।५
८४२. वही, ३।३५

सिपाही भीड़ को हटाते चलते थे[८४३] तथा वन्दीजन सुभाषित पढ़ते चलते थे।[८४४] किसी बड़े मुनि के पास जाकर राजा हाथी से उतरकर पैदल ही जाता था और उनकी तीन प्रदक्षिणाएँ करके कृतांजलि होकर उन्हें प्रणाम करता था।[८४५] हाथी से उतरना अपार शिष्टाचार का द्योतक था।[८४६] राजा आदि के सामने आकर तथा अनुग्रहकामना सूचित करने के लिए पृथ्वी पर घुटने टेकने तथा सिर पर अंजलि रखने की प्रथा थी।[८४७] उच्च मुनियों तथा महर्षियों का राजकुलों में विशेष आदर होता था।[८४८] राजा और रानियाँ मन्दिरों में धार्मिक पूजा के लिए आज्ञा प्रसारित करते थे।[८४९]

राजकुलों मे **अन्तःपुर की व्यवस्था** के लिए कंचुकी रखे जाते थे।[८५०] कन्याओं के अन्तःपुरों में द्वारपालियाँ भी रखी जाती थी।[८५१] रानियों की शय्याओं पर गल्लक (गद्दे), उपधान (तकिये) तथा चारों ओर सशस्त्र स्त्रियाँ पहरे के लिए खड़ी रहती थीं।[८५२] शंखों एवं तूर्यों के मधुर शब्दों और चारणों की रम्य वाणी से रानियाँ जागती थी।[८५३] रानी की गर्भावस्था में उसकी परिचर्या पर विशेष ध्यान दिया जाता था। इस परिचर्या की झलक रानी मरुदेवी की गर्भावस्था के वर्णन में मिलती है। परिचारिकाएँ रानी की स्तुति करती थीं।[८५४] वीणा बजाकर उसका गुणगान करती थी,[८५५] उसे गीत सुनाती थीं,[८५६] उसके पैर पलोटती थी,[८५७] कोई ताम्बूल देती थी कोई आसन,[८५८] कोई तलवार हाथ में लेकर उसकी रक्षा करती थी,[८५९] कोई महल के भीतरी द्वार पर और कोई महल के बाहरी द्वार पर माला, सुवर्ण की छड़ी, दण्ड और तलवार आदि हथियार लेकर पहरा देती थीं,[८६०] कोई चमर डोलती थी, कोई वस्त्र लाकर देती थी, कोई आभूषण लाकर उपस्थित करती थी,[८६१] कोई शय्या बिछाने के कार्य में रत रहती थी, कोई झाड़ू लगाती थी। कोई पुष्प बिखेरने में लीन रहती थी, कोई सुगन्धित द्रव्य का लेप करती थी, कोई भोजन-पान के कार्य में व्यग्र रहती थी और कोई आह्वान-कर्म में लीन रहती

८४३ वही, ३।८
८४४. वही, ३।९
८४५. वही, ३।९३-९५
८४६. वही, ३६।८८
८४७. वही, २९।४२
८४८ वही, १०।१४२, २९।८७
८४९. वही, ६९।११
८५०. वही, २९।४१
८५१ वही, २८।८
८५२. वही, ७।१७२-१७३
८५३. वही, ७।१७
८५४. वही, ३।११४
८५५. वही, ३।११४
८५६. वही, ३।११५
८५७. वही, ३।११५
८५८. वही, ३।११६
८५९. वही, ३।११६
८६०. वही, ३।११७
८६१. वही, ३।११८

थी।[८६२] प्रमोद के अवसर पर राजा लोग भी नृत्य करते थे।[८६३]

'पद्मपुराण' के अनेक वर्णनों मे राजाओं के आमोद-प्रमोदों का भी परिचय मिल जाता है। राजा लोग रानियों के साथ प्रमदोद्यान में क्रीडा और वापिकाओं में जलक्रीड़ा किया करते थे। प्रमदोद्यान में सरोवर, दोला (झूले) कृत्रिम क्रीडा-पर्वत (जिस पर सीढ़ियाँ बनीं होती थीं) एवं वृक्षों के झुरमुट बनाये जाते थे।[८६४] राजाओं के द्वारा रात्रि में उत्तुंग भवन के शिखर पर बैठकर चारुगोष्ठीसुधास्वाद ग्रहण करने का भी उल्लेख आया है।[८६५] इसके अतिरिक्त नृत्य, वाद्य एवं संगीत द्वारा भी राजाओं का मनोविनोद होता था। वेश्या, नृत्यकार(लासक), वन्दीजन, गीतशास्त्रकौशलकोविद वार्तिक (पेशेवर कहानी सुनाने वाले), चारण तथा विटों का मनोरंजन के साधन के रूप में उल्लेख हुआ है।[८६६] पानगोष्ठी भी प्रचलित थी। स्त्रियाँ भी मदिरापान करती थीं।[८६७]

'पद्मपुराण' के राजवैभव-वर्णनों से निष्कर्ष निकलता है कि खजाने, खान, गौएँ, हल, उत्तम हाथी, घोड़े, अनेक वशंवद राजा, अनेक सुन्दर स्त्रियाँ एव रत्न राजा के वैभव के प्रतीक थे।[८६८] अनेक यन्त्रों का भी उल्लेख हुआ है।[८६९] राज-भवनों को विविध रंगों से सजाया जाता था। सम्पन्न महलों तथा भवनों में हाथी-घोड़े आदि रखे जाते थे। विमान, उज्ज्वल छत्र, चामर आदि राजाओं की विभूति के परिचायक थे। वीणा-तूर्य, बाँसुरी और शंख आदि के मांगलिक शब्द राज-भवनों में होते रहते थे।[८७०] राजभवनों में अनेक द्वार तथा गोपुर होते थे। विभिन्न भवनों तथा शालाओं के नाम अलग-अलग रखे जाते थे। कोट और सभाएँ होती थीं। प्रेक्षागृहों, कार्यालयों एवं गर्भगृहों का व्यवस्थित रूप से निर्माण होता था। रानियों के महलो की पक्तियाँ एक तरफ होती थी। सुसज्जित शय्यागृह होते थे। अनर्घ्य वस्त्र, दिव्य आभूषण, दुर्भेद्य कवच, आभूषण तथा शस्त्रास्त्र, ऊँचे कोट, वाहन, मणिमय फर्शों, छज्जों, खम्भों तथा स्नानभूमि आदि से समन्वित, क्षुद्र-घण्टिका-रेशमी वस्त्र-पट्टलम्बूष (फन्नूस)-चामर-उत्तमोत्तमप्राकार-तोरण-गोपुरादि से अलङ्कृत अनेक मञ्जिलों वाले ससंगीत विशाल प्रासाद राजाओं के वैभव में परिगणित थे।[८७१] ग्रीष्म-वर्षा और शीत में ऋतु के अनुसार राजाओं का

---

८६२. वही, ३।११९-१२०

८६३. वही, ३८।३१५

८६४. वही, ५।२९७-३०४, ६।२२७- ३१

८६५. वही, ६।३३५-१३६

८६६. वही, २।३९-४३

८६७. वही, २।३८

८६८. वही. ४।६१।६६

८६९. वही, ८।२५८-२५९

८७० वही, ८।५११-५१८।

८७१. वही, ८३।४-१४, १०२।११८, ११०।६३-६७, ११२।४४-४८

वैभव-विलास होता था। गर्मियों में वे चन्दन का लेप लगवाते थे; जलयन्त्रों (फव्वारों) में स्नान करते थे; ठण्डे उपवनों, चामर, जलकणों से युक्त पंखों, स्फटिक की स्वच्छ मणियों, इलायची, लौंग, कर्पूरचूर्ण युक्त शीतल स्वादिष्ट मनोहर जल एवं कथासक्त स्त्रियों का सेवन करतेथे।[८७२] वर्षा में वे उत्तम महलों एवं महाविलासिनी स्त्रियों का सेवन करते थे।[८७३] शीतकाल में तरुणी-स्तनों का सेवन करके वे शीतापनोदन करते थे।[८७४]

राजव्यवस्था और राजा के कर्त्तव्य का भी परिचय 'पद्मपुराण' हमें देता है। राजा सभी भीषित, दरिद्र और दु:खियों का शरण समझा जाता था एवं उनका कष्ट दूर करना उसका कर्त्तव्य था।[८७५] इसके लिए वह अन्याय का दमन तथा न्याय की उन्नति करके राज्य व्यवस्था को सुदृढ़ करता था। अनेक सामन्तों, गुप्तचरों, लेखवाहक दूतों तथा अन्य प्रशासकों तथा नौकरों के द्वारा वह राज्य की स्थिति से अवगत होता रहता था तथा व्यवहार-निर्णय किया करता था।[८७६] अत्यन्त गोपनीय समाचारों को वह बिल्कुल एकान्त मे सुनता था।[८७७]

राज्यापराध और दण्ड का भी 'पद्मपुराण' परिचय देता है। उपद्रव, लूट, राजद्रोह, विषदान, हत्या, षड्यन्त्र तथा और भी अनेक अपराध राजनीतिक क्षेत्र मे होते थे एव उनके कर्ताओं को कठोर दण्ड दिया जाता था।[८७८] कन्या, वेश्या तथा रत्नादि को लूट में झपटा जा सकता था।[८७९] नगर का ध्वंस करना, बाग उजाड़ना, रक्षकों को विह्वल करना, प्याऊ आदि नष्ट करना, अन्तःपुर में उपद्रव करना, रात्रि में वीरों की हत्या, हाथी-घोड़ों की चोरी आदि राज्यापराध पद्म-पुराण में उल्लिखित हैं।[८८०] अपराधी को साँकलो में बाँधकर नंगी तलवार के पहरे मे लाया जाता था।[८८१] उसे नगर में भी घुमाया जा सकता था जहाँ कि जनता उसे धिक्कारती थी।[८८२] अपराधी के गर्दन, हाथ तथा पैरों को साँकलों में जकड़ा जाता था, उस पर धूल फेंकी जाती थी। राजदण्ड में, अपराधी को तलवार से दो टुकड़े करा देना, मुद्‌गरों की मार से प्राण घुटाकर मरवा देना, लकड़ियों के

---

८७२. वही, ११२।३-८ ८७३. वही, ११२।१०-१२
८७४. वही, ११२।१३-१८ ८७५. वही, २६।२२
८७६. वही, ६।५३८, १२।७९-८१, १०।२०-२२
८७७. वही, १२।११८-११९
८७८. वही, ५।१०५, ८।१६१-१६३, ८।४८२, १०।१५८-१६१, २७।८१-८५, ५३।२५०-२५१, ५३।२५७-२६१, ५३।२२१-२२६, ५३।२४१. ७२।५२-७७, ७२।७१-७६, १०६।२७-३४।
८७९. वही, ८।१६२।
८८०. वही, ३७।८१-८५ ८८१. वही. १०।१५८ ८८२. वही. ५३।२१९-२२१

शिकंजे में कसकर अत्यन्त तीक्ष्ण धार वाली करौत से चिरवा देना एवं अन्यान्य शस्त्रों से चूर-चूर करा देना, पानी में विष मिलवाकर पिलवा देना आदि आते थे।[८८३] राजपथों और जंगलों में रहकर आभूषण आदि लूटना भी राज्य-अपराध थे।[८८४]

युद्ध के विषय में प्रभूत सूचनाएँ पद्मपुराण में मिलती हैं। युद्ध का प्रधान कारण दिग्विजय की भावना थी। राजा अपनी सर्वोच्चता का परिचय देने के लिए नरसंहारकारी दिग्विजय का आयोजन करते थे। दिग्विजय ही नवाभिषिक्त राजा के प्रतापारोपण का एकमात्र साधन था। युद्ध का कारण स्वयंवर में कन्या द्वारा किसी राजा को वरा जाना भी था। चुने गये राजा को प्रतिपक्षी ललकारते थे और दोनों की सेनाओं में युद्ध हो जाता था।[८८५] कन्याओं का हरण आम बात थी।[८८६] इसे वंश के लिए अपमान समझा जाता था और कन्यापक्षीय व्यक्ति अपहरणकर्त्ता को मारने तक के लिए तैयार हो जाते थे।[८८७] यदि अपहृत कन्या को अपहर्त्ता से छुड़ा लिया जाता था तो उसका विवाह करने को सुविधा से कोई तैयार नहीं होता था और उसे आजीवन विधवा के समान भी रहना पड़ सकता था।[८८८]

बलवान राजा दूसरे राजाओं को झुकाने के लिए पहले दूत-प्रेषण करता था। दूत अपने राजा की बड़ाई करता हुआ दूसरे राजा को पहले नीति से समझाता था और फिर राजा को पाखण्ड-भरे अपमानजनक वाक्य भी कह देता था।[८८९] दूत को मारना, नीति-विरुद्ध समझा जाता था किन्तु उसका तिरस्कार खूब किया जा सकता था।[८९०] दूत के साथ सेना भी चल सकती थी।[८९१] दूत अपने सैनिकों को डेरे के बाहर ही ठहराकर द्वारपाल के द्वारा राजा की अनुज्ञा पाकर कुछ आप्तजनों के साथ भीतर पहुँचता था जहाँ कि वह शिष्टतापूर्वक सन्ध्यादि का प्रस्ताव राजा के सम्मुख रखता था।[८९२] दूत की कभी-कभी दुर्गति भी हो जाती थी। स्वामी के प्रधान सामन्त की आज्ञा से क्रुद्ध भट्ट दूत के पैर पकड़कर उसे घसीटते थे तथा नगरी के मध्य तक घसीटकर उसे छोड़ देते थे जहाँ से वह धूलि-धूसरित होकर भाग जाता था।[८९३] दूत की दुर्गति देखकर उसका स्वामी राजा कुपित होकर प्रतिपक्षी से प्रतिशोध लेने के लिए सन्नद्ध हो सकता था।[८९४]

८८३ वही, ७२।७३-७६
८८४. वही, ९८।१३
८८५. वही, ६।१२७-४३३
८८६. वही, ९।१५-१६
८८७. वही, ९।२९
८८८ वही, ९।३६।
८८९. वही, ९।१५-६५
८९०. वही, ९।६८, ६६।५१-५९
८९१ वही, ६६।१७
८९२. वही, ६६।२०-३२
८९३. वही, २७।३७-४८
८९४. वही, २७।४३-५४

रण के विषय में राजा अपने लोगों से सलाह लेता था।[८९५] युद्ध की तैयारी के लिए रणभेरी, तूर्य एवं शंख बजाये जाते थे जिससे योद्धा तैयार होकर राजा के सम्मुख आ जाते थे।[८९६] मित्र राजा युद्ध के लिए आते थे एवं राजा उनका अस्त्र, वाहन तथा कवच आदि से सत्कार करता था।[८९७]

युद्ध-यात्रा बड़े जोर-शोर से होती थी।[८९८] बड़े-बड़े राजाओं के पास चतुरंगिणी सेना होती थी।[८९९] लवणांकुश की अयोध्या पर चढ़ाई के वर्णन से ज्ञात होता है कि युद्ध-यात्रा के मार्ग को साफ करने के लिए अनेक पुरुष बड़े-बड़े कुल्हाड़े तथा कुदाल लेकर चलते थे। उनसे वे वृक्ष आदि को काटते जाते थे तथा उच्चावच भूमि को समतल करते थे। सेना में सबसे पहले खजाने के भार को धारण करने वाले भैंसे, ऊँट तथा बड़े-बड़े बैल चलते थे, फिर गाड़ियों के सेवक चलते थे, तदनन्तर पैदल सैनिकों के समूह और उनके बाद घोड़े चलते थे। उनके पीछे चतुर हाथी, घुड़सवार एवं सशस्त्र पदाति चलते थे। सेना में सभी के लिए शयन, आसन, ताम्बूल, गन्ध, माल्य, वस्त्र, आहार, विलेपनादि का प्रबन्ध रहता था। राजा की आज्ञा (राजवाक्य) से मार्ग में स्थान-स्थान पर नियुक्त पुरुष समस्त युद्ध यात्रियों के लिए मधु, शीधु, घृत, जल तथा विविध रसवत् व्यंजन प्रस्तुत करते थे। यात्रा में सजी हुई स्त्रियाँ भी चलती थीं। प्रायः नदी के किनारे पड़ाव डाल दिया जाता था।[९००]

युद्ध-यात्रा में विविध वादित्र, घोड़ों की हिन-हिनाहट, गजों की गर्जना, पदातियों को बुलाने के शब्द (आकारित), योद्धाओं के सिंहनाद, बन्दियों के जय शब्द एवं कुशीलवों के गीत हलचल किये रहते थे।[९०१]

आगत शत्रु का आक्रमण होने पर प्रतिपक्षी राजा आयुधशाला (सन्नाह-मण्डप) में जाकर युद्ध की तैयारी के लिये तूर्य बजवाता था, वहाँ हाथी तैयार होते थे, घोड़ों पर पलान कसे जाते थे, तलवार, कवच, धनुष, शिरस्त्राण, अर्धबाहुलिका, सायकपुत्रिका आदि से सैनिक लैस होते थे।[९०२] वे असि, तोमर, पाश, ध्वज, छत्र, शरासनों, अर्धबाहुलिका, अर्धसन्नाह, सन्नाहकण्ठसूत्र, शिरस्त्राण आदि से युक्त होकर और किरीट एवं सिर पर माणिक्य-शकल आदि धारण करके युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाते थे।[९०३] युद्ध के आरम्भ में सेनाओं में योद्धाओं को

---

८९५. वही, ५५।२ | ८९६ वही, ५५।३-५
८९७. वही, ५५।८३-८९ | ८९८. वही, १०।३५-५१
८९९. वही, ८।४६७-४६८ | ९००. वही, १०२।९०-१२२
९०१. वही, ७३।१७५-१७६ | ९०२. वही, १२।१८१-१८४
९०३. वही, १२।१८८, ४४।५६, १०।११६, ५७।३०, ५७।३२, ५७।३९

उत्तेजित करने के लिए शंख, तूर्य, भम्भा, भेरी, मृदंग, लम्पाक, कुम्बु, मंडुक, मम्ला, अम्लातक, हुक्का, हुंकार, दुन्दुकाणक, झर्झर, हेकगुंजा, काहल और दर्दुर आदि बजाकर तुमुल-नाद किया जाता था।[९०४]

तूर्यनाद के संकेत पर आक्रमण करने वाली सेना पहले शत्रु-सेना का 'मुख-भंग' करती थी।[९०५] इस पर दूसरी सेना बचाव के लिए अपनी सर्वाधिक शक्ति मुख पर ही लगाती थी। सेना की मुख-रक्षा दोनों सेनाओं का साध्य होता था।[९०६] युद्ध में प्रयुक्त होने वाले अनेक शस्त्रास्त्रों का उल्लेख मिलता है। असि, प्रास, कनक, भिण्डीमाल, अर्धचन्द्राकार बाण, गदा, शक्ति, कुन्त, मुसल, शर, परिघ, चक्र, करवाली, अहिप, शूल, पास, भुशुण्डी, कुठार, मुद्गर, घन, ग्रावा, लांगल, दण्ड, कौण, सायक, वेणु, शिलीमुख, परशु, शतघ्नी, उल्का, लांगूल, शिला, यष्टि, आर्ष्टि (वज्र) और पाँच प्रकार के शस्त्र आदि का युद्ध में खुलकर प्रयोग होता था।[९०७] विभिन्न दिव्यास्त्रों का भी उल्लेख मिलता है यथा—आग्नेयास्त्र,[९०८] वारुणास्त्र,[९०९] तामसास्त्र[९१०] प्रभास्त्र[९११] नागास्त्र,[९१२] गरुडास्त्र[९१३] आदि। निद्रा[९१४] एवं प्रतिबोधिनी[९१५] विद्याओं के प्रयोग का भी उल्लेख है। पर यह पौराणिक प्रभाव प्रतीत होता है।

वीर परस्पर ध्वजा-छेद, धनुर्भंग एवं कवच-विदारण करते थे। योद्धा एक कवच छिन्न हो जाने पर दूसरा तत्काल पहन लेते थे।[९१६] घनघोर युद्ध में सेना के चारों अंगों का परस्पर घात-प्रतिघात होता था।[९१७] शस्त्र लिये ही मर जाना सम्मान की बात थी।[९१८] शस्त्र के गिर जाने पर घूँसों से भी शत्रु को मारा जा सकता था।[९१९] शत्रु को पीठ दिखाना बुरा माना जाता था।[९२०] न्याय-संग्राम-तत्पर योद्धा त्यक्त-युद्ध प्रतिपक्षी को देखकर अपना भी शस्त्र छोड़ देता था।[९२१] योग्य शत्रु के साथ युद्ध करना शोभनीय था। पुत्र के रहते पिता का युद्ध करना

---

९०४. वही, ५८।२६-२८
९०५. वही, १२।११४
९०६. वही, १२।११७-११९
९०७. वही, १०।११२, १२।१३४, १२।२३६, १२।२१२, १२।२४७-२४८, ५०।३२, ५०।३७, ५२।४०, ६२।७, ७३।१७४
९०८. वही, १२।३२४
९०९. वही, १२।३२५
९१०. वही, १२।३२८
९११. वही, १२।२३०
९१२. वही, १२।३३२
९१३. वही, १२।३३६
९१४. वही, ६०।६०
९१५. वही, ६०।६२
९१६. वही, ३३।३५
९१७. वही, ३२।२६४-२६५
९१८. वही, १२।२७७
९१९. वही, १२।२७९
९२०. वही, १२।२८२
९२१. वही, १२।२९०
९२२. वही, १२।२३१

पुत्र के लिए लज्जाजनक था।[९२३] मानी राजा असमान सामन्तों पर प्रहार नहीं करते थे।[९२४]

अधिक संकट आने पर हाथी पर चढ़कर युद्ध किया जाता था।[९२५] हाथी पर युद्ध करते समय प्रबल राजा दूसरे राजा के हाथी पर पैर रखकर महावत को नीचे गिराकर उसे बाँधकर भी पकड़ सकता था।[९२६] जीवित प्रतिपक्षी को पकड़ लेना चातुर्य और वीरता का द्योतक था।[९२७] योद्धा एक-दूसरे को बालों से नीचा दिखाते थे,[९२८] बाणों से कवचछेद, छत्रपात, धनुषछेद, रथाश्वों का वध, शक्ति-छेद[९२९] आदि करते थे। रथ पर उछलकर प्रतिपक्षी को पकड़ा भी जा सकता था।[९३०] वाहन के साथ योद्धा का छेद करना वीरता का प्रतीक था।[९३१]

युद्ध के समय कभी-कभी सामन्त अवसर देखकर बिना प्रधान राजा की आज्ञा के भी (अनापृच्छ) लाभकारी युद्ध कर बैठते थे।[९३२] ऐसे अवसर पर बिना आज्ञा के युद्ध करना भी ठीक ही समझा जाता था। मध्य रात्रि में भी भयंकर युद्ध हो सकता था।[९३३] रण-सज्जा के लिए रात या दिन कभी भी रणभेरी बज सकती थी।[९३४] स्त्रियों के युद्ध करने तथा बाण से प्रतिपक्षी के पास सन्देश-प्रेषण का भी उल्लेख हुआ है।[९३५] दृष्टि-युद्ध, जल-युद्ध एवं बाहु-युद्ध की भी चर्चा है।[९३६]

कवच और शस्त्र का त्याग युद्ध-विराम का द्योतक था।[९३७] शत्रु-सेना के नायक को मारकर शंखनाद किया जाता था और नायक के मरने पर सेना प्रायः भाग जाती थी।[९३८] भागी हुई सेना को कोई नायक तुरन्त सँभालकर उत्साहित कर सकता था।[९३९] स्वामिभक्ति से प्रेरित होकर सैनिक अत्यधिक युद्ध करते थे।[९४०] चूँकि नायक-रहित सेना में लड़ने की हिम्मत नहीं रहती थी अतः नायक-रक्षा पर विशेष बल दिया जाता था।[९४१] सेना के क्षय हो जाने पर राजा स्वयं आकर लड़ता था।[९४२]

प्रतीत होता है कि शत्रु की प्रार्थना पर कुछ देर के लिए युद्ध-विराम भी हो

---

९२३. वही, १२।२२३-२५५
९२४ वही, १२।३०६
९२५. वही, ६०।६९
९२६ वही, ८।४५१
९२७. वही, ८।४५१
९२८ वही, ५०।२९
९२९ वही, ४६।१२५, ५२।३८, ५०।१८, ५०।१९, ५२।३९
९३० वही, ५०।३५-३६
९३१ वही, ४६।५८
९३२ वही, ५७।४४
९३३. वही, ८।४४४
९३४. वही, ६६।८
९३५ वही, ५२।३१, ५८
९३६ वही, ४।७१, ७२
९३७ वही, १०३।४४
९३८. वही, १२।२४२
९३९. वही, १२।२४३-२४४
९४०. वही, १२।२५६
९४१. वही, ६०।१११-११५
९४२. वही, ८।४४६, १०।११५

सकता था।[९४३]

सेना के नायक को गृहीत कर लेने पर प्रायः सेना को ध्वस्त नहीं किया जाता था।[९४४] गृहीतनायक सेना प्रायः विशीर्ण हो जाती थी।[९४५] सामन्तों की स्थिति पूर्ववत् भी रह सकती थी।[९४६] मूछित प्रधान योद्धाओं को कैद कर लिया जाता था।[९४७] जीवित शत्रुओं को पकड़कर बाँध लिया जाता था और अपने डेरे पर लाया जाता था।[९४८] बन्दी राजा को विजयी राजा के सामने नंगी तलवार के पहरे में लाया जाता था।[९४९] बन्दी राजा को कभी-कभी किसी महापुरुष की प्रार्थना पर छोड़ा भी जा सकता था एवं उसका सम्मान भी किया जा सकता था।[९५०] बन्दी योद्धाओं को मारा भी जा सकता था।[९५१] दूसरे द्वीपों के राजाओं को जीतकर उन्हें वहीं का अधिकारी भी बना दिया जाता था।[९५२] दिग्विजयी राजा को विजित राजा भेंट ले-लेकर तथा हाथों को जोड़कर तथा उन्हें मस्तक से लगाकर नमस्कार करते थे।[९५३] दिग्विजय बहुत बड़ी वीरता की द्योतक थी।[९५४] 'पराभिभवमात्रेण क्षविथाणा कृतार्थता' की भावना को ऊँचा स्थान प्राप्त था।[९५५]

विजयी राजा बड़ी शान से अपनी राजधानी को लौटता था जहाँ उसका परम स्वागत होता था।[९५६] उसका पटह, शंख, झर्झर एवं बन्दीजनों के जयनाद द्वारा अभिनन्दन होता था।[९५७]

आदर्श युद्ध में पीड़ितों की सहायता का उल्लेख इस प्रकार आया है : —

'युद्ध की यह विधि है कि दोनों पक्षों के खेद-खिन्न तथा महाप्यास से पीड़ित मनुष्यों के लिए मधुर तथा शीतल जल दिया जाता है, क्षुधा से दुःखी मनुष्यों के लिए अमृत-तुल्य भोजन दिया जाता है, पसीने से युक्त मनुष्यों के लिए आह्लाद का कारण गोशीर्षचन्दन दिया जाता है, तालवृक्ष आदि से हवा की जाती है। बर्फ के जल के छींटे दिये जाते हैं। इनके अतिरिक्त जो कार्य आवश्यक होता है उसकी पूर्ति भी समीपस्थ लोग तत्परता से करते हैं। युद्ध की यह विधि जिस प्रकार अपने पक्ष के लोगों के लिए है उसी प्रकार दूसरे पक्ष के लोगों के लिए भी। युद्ध में निज और पर का भेद नहीं होता। ऐसा करने से ही कर्त्तव्य की समग्र सिद्धि

९४३. वही, ६२।६४-६५
९४४ वही, १२।३५७
९४५. वही, १२।३५४
९४६. वही, १२।३५१
९४७. वही, ६०।११२
९४८. वही, १०।१३०-१३२
९४९. वही, १०।१५८
९५०. वही, १०।१५६-१६१, १३।१-२२
९५१ वही, ६६।६
९५२ वही, १०।२०
९५३. वही, १०।२४-२५
९५४. वही, १०।१९
९५५. वही, १०।१४७
९५६. वही, १२।३५७-२७४
९५७. वही, १२।३५५

होती है।[९५८] मूर्छित हो जाने पर वस्त्र के छोर से हवा करने, उसे आत्मीय जनों के द्वारा सुरक्षित स्थान पर ले जाकर चन्दन-मिश्रित शीतल जल से उसकी मूर्च्छा दूर करने तथा घायलों के घाव ठीक करने का भी विधान था।[९५९] युद्धभूमि में घायल सेनानायक की चिकित्सा के लिए विशिष्ट शिविर बनाया जाता था। लक्ष्मण-शक्ति के प्रसंग में सप्तकक्षाट्टसम्पन्न विशिष्ट शिविर का उल्लेख हुआ है जहाँ पर कठोर पहरा लगा हुआ था।[९६०]

पराङ्मुख क्लीबसम शत्रु को मारना वीरता का द्योतक नहीं था।[९६१]

कपोत, शुक, काम्बोज, मकन आदि म्लेच्छों के आर्य देश पर आक्रमण का भी उल्लेख मिलता है। वे युद्ध करने में बहुत बर्बर थे। वे कारुण्य-विवर्जित होकर बड़े वेग से टिड्डियों के समान आक्रमण करते थे।[९६२] वे आदिदेश में उपद्रव करते थे।[९६३] युयुत्सु म्लेच्छों की वेषभूषा एवं स्वभाव का उल्लेख इस प्रकार हुआ है:—वे चापासिचक्रबहुल, कृतसंघातपंक्ति, रक्तवस्त्रशिरस्त्राण, बर्बर-धारी, असिधेनुकर, क्रूर, नानावर्णांगधारी, भिन्नांजनच्छाय, शुष्कपत्रत्विष, कटि-सूत्रमणिप्राय, पत्रचीवरधारी, नानाधातुविलिप्तांग, मजरीकृतशेखर, वराटकाभ-दशन, विशालपिठरोदर, भीषणायुधपाणि, पीनजघाभुजस्कन्ध, निर्दय, पशुमांस-भक्षी, प्राणिवधोद्यत, सहसारम्भकारी, वराहमहिषव्याघ्रवृककंकारिकेतु,नानायान-च्छदच्छत्र होते थे।[९६४] अर्धवर्बरक दुष्ट म्लेच्छों के द्वारा धन, धान्य, गौ, भैंस, एवं रत्नादिपूर्ण नगरी का लुण्ठन, प्रजापीडन एवं धर्मध्वंस का भी संकेत मिलता है।[९६५] युद्ध के समय धन और रत्नादि के साथ स्त्रियों को लूटना नैतिकता की दृष्टि से नहीं देखा जाता था।[९६६]

लंका के उपद्रव के समय यक्षेन्द्रों का सुग्रीव की खुशामद एवं स्वर्ण से अर्घ-दान प्राप्त कर प्रसन्न होना और उपद्रव करने की अनुमति देना इस बात का द्योतक है कि कुछ राज्याधिकारी इस प्रकार चाटुकारिता एवं उत्कोच के लोभ से विद्रोहियों की सहायता भी कर देते होंगे।[९६७]

समाज-व्यवस्था एवं रहन-सहन का भी पद्मपुराण पर्याप्त परिचय देता है पद्मपुराण में चार वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—का उल्लेख आता

---

९५८. वही, ७५।१-४
९५९. वही, ८।४४७, ४५३, ४४९
९६०. वही, ६३।२८-३९
९६१. वही, २७।८६
९६२. वही, २७।१०-११
९६३. वही, २७।१२-२२
९६४. वही, २७।६७-७३
९६५. वही, २७।१२७-१२८
९६६. वही, ११।७०-९१
९६७. वही, पर्व ७०।

है। क्षत्रियों का कार्य क्षतत्राण था, वाणिज्य कृषि-गोरक्षा आदि करना वैश्यों का कार्य था और नीचकर्म करना शूद्रों का कार्य था।[९६८] जैनी लोग ब्राह्मणों के विरोधी थे, सम्भवतः इसीलिए उनकी निन्दा करते थे। उनके यज्ञादि कर्म जैनमतावलम्बियों के लिए गर्हित थे।[९६९] प्रतीत होता है कि ब्राह्मणों का फिर भी समाज में बोल-बाला था और प्रजा प्रायः उनकी अनुगामिनी थी। इससे जैनियों को बड़ी कुढ़न थी।[९७०] जैन धर्मानुयायियों के अनुसार ये ब्राह्मण पाखण्डी माने जाते थे। उनके लिए ये मदोद्धत, प्राणिहिंसक, महाकषायसंयुक्त, पापक्रियोद्यत, हिंसाभाषण-तत्पर वेदसंज्ञक कुग्रन्थ को अकर्तृक बताकर प्रजा को बरगलाने वाले, महारम्भ-संसक्त, प्रतिग्रहपरायण, जिनभाषित शासन की निन्दा करने वाले, निर्ग्रन्थमुनि को आगे देखकर क्रोध करने वाले तथा लोक के उपद्रव के लिए विषवृक्षांकुर-से थे।[९७१] ब्राह्मण राजाओं के पुरोहित होते थे।[९७२] हितकर वैश्य की कथा से पुरोहितों के छिप कर अकार्य करने का संकेत भी मिलता है।[९७३] ब्राह्मण चोरी आदि भी कर लेते होंगे। चोर ब्राह्मण को तिरस्कृत कर नगर से बाहर निकाल दिया जाता था। श्रीवर्द्धन ने वह्निशिख द्विज को नियमदत्त के धन की चोरी करने पर खलीकारपूर्वक नगर से निर्वासित किया था। जैनियों की खिल्ली भी खूब उड़ा दी जाती थी। अन्तिक ग्राम से गुजरते हुए चतुर्विध सघ की एक कुम्भकार को छोड़कर सभी ने मजाक बनाई थी।[९७४] कुछ ब्राह्मण अत्यन्त क्रोधी और स्वयं को उत्कृष्ट मानने वाले होते थे। वे हाथ में कमण्डलु, सिर पर बड़ी चोटी, लम्बी चौड़ी दाढ़ी और कन्धे पर यज्ञोपवीत धारण करते थे। उनके उंछवृत्ति से जीविकायापन करने की भी चर्चा हुई है।[९७५] क्षत्रिय राजा होते थे तथा सैनिक होते थे। धन कमाने की इच्छा से वणिकों की पोत द्वारा देशान्तर की यात्रा का उल्लेख हुआ है।[९७६] वणिक् नख-श्मश्रु और जटा रखते थे।[९७७] समाज में दासवृत्ति भी विद्यमान थी।[९७८] दासों को जिनमन्दिरों में भी नियुक्त किया जा सकता था।[९७९] सैरिक (हलवाहक) का काम भी ये करते थे।[९८०] म्लेच्छ लोग बैल का

---

९६८. वही, ३।२५६-९५८
९६९. वही, ४।११६-१२०
९७०. वही, ४।२१९-२२०
९७१. वही, ४।२१९
९७२. वही, ४।३९
९७३. वही, ४।३९-४०
९७४. वही, ४।२८६-२८७
९७५. वही, ३५।११-१५
९७६. वही, ४।९६-९९
९७७. वही, ४।१०६
९७८. वही, ४।१२२
९७९. वही, ४।१२३
९८०. वही, ४।१२५।

मांस भी खाते थे।[९८१] म्लेच्छ लोग अत्यन्तबर्बर और दारुणकर्मा होते थे। स्त्रियों पर अत्याचार करने में वे परम पटु थे।[९८२] समाज में अनेक जातियाँ थी।

विवाह के विषय में, पद्मपुराण हमें बताता है कि विवाह के लिए वर के उत्तम अभिजन, सम्पन्नता एवं सौरूप्य को देखा जाता था।[९८३] वित्तवान् विनयोपेत, कान्त तथा सर्वकलान्वित वर प्रशस्य समझा जाता था।[९८४] यदि स्वयं कन्या ही किसी वर को पसन्द कर लेती थी तो उसके बीच में रोड़ा अटकाना ठीक नहीं समझा जाता था।[९८५] विवाह की वेदी के पास चित्र रचना होती थी। अमरप्रभ के विवाह में विवाह-वेदी के पास अनेक चित्र बनाये गये थे।[९८६] मामा-फूफी के लड़के-लड़कियों में परस्पर विवाह की प्रथा का भी उल्लेख है।[९८७] विवाह में दान-दहेज खूब दिया जाता था।[९८८]

जहाँ तक यौन-नैतिकता का प्रश्न है—समाज मे वासना बड़ी प्रचण्ड-सी प्रतीत होती है। सम्भोग करने के लिए नर-नारी अधिक बन्धनों को स्वीकार नहीं करते थे। वेश्या-सेवन, द्यूत और सुरापान समाज मे प्रचलित थे।[९८९] स्त्रियों का हरण आम बात थी।[९९०] नैतिक दृष्टि से परपुरुष और परनारी का परिहार ही श्लाघ्य था।[९९१] दूसरे की स्त्री के स्तनों का स्पर्श अत्यन्त खतरनाक समझा जाता था।[९९२] अज्ञात रूप से गर्भ-धारण करने पर स्त्री को परिवार के सदस्य घर मे नही रखना चाहते थे। ऐसी स्त्री के निर्वासित होने के उदाहरण मिलते हैं।[९९३] अंजना के सास-श्वसुर ने उसे अज्ञात रूप से गर्भवती जानकर घर से बाहर निकाल दिया था।[९९४] इसी से यह भी व्यक्त होता है कि घर में सास-श्वसुर की उपस्थिति में बहू के साथ उसका पति सम्भोग करने के लिए स्वतंत्र नही था। वह चोरी से अवसर पाकर उसके साथ सम्भोग कर लेता था और इस सम्भोग को प्रकाशित करने में लज्जा का अनुभव करता होगा। इसी गोपन का यह परिणाम होता था कि वधू को कलंकित मानकर निराकृत कर दिया जाता था। ऐसी विवश वधुएँ पिता के घर की राह लेती थी किन्तु समाज के भय से अपना कुलाभिमान के कारण उनके पिता भी प्रायः उन्हें दुत्कार देते थे। अंजना को इसी प्रकार दुत्कार दिया गया था। राजघरानों मे धार्मिक सन्यासियों के गुप्त

---

९८१. वही, ५।११९
९८२. वही, ७।२९१-२०३
९८३. वही, ६।११
९८४. वही, ६।४१
९८५. वही, ६।७०, ६६।९१-७४
९८६. वही, ६।१९३-११६
९८७. वही, ८।३७३, ६५।३१
९८८. वही, ३८।९-१०
९८९. वही, ५।९०-१०१
९९०. वही, ८७।२७२
९९१. वपी, ५३।१४६-१४७
९९२. वही, ४५।१७
९९३. वही, ४८।४५

यौन-सम्बन्ध के भी उदाहरण मिलते हैं।[९९५] मित्र की पत्नी में आसक्ति के भी उल्लेख हैं।[९९६] एक ही कन्या के एकाधिक प्रेमियों के कलह के भी उदाहरण कम नहीं हैं।[९९७] परपुरुषों से छिप कर मिलना भी प्रचलित था।[९९८] तपोवन की नारियाँ भी कामावेग में आ जाती थीं।[९९९] स्त्रियों के कारण कामुक बड़े से बड़ा साहस कर सकते थे।[१०००] कन्याओं का हरण होता तो खूब था किन्तु माना जाता था यह अपराध ही।[१००१]

समाज में नारी का स्थान उदात्त और निकृष्ट दोनों ही प्रकार का मान्य था। कुछ लोग उसे ऊँचा स्थान देते थे और दूसरे उसे नरक का द्वार मानते थे।[१००२]

पद्मपुराण से धर्म एवं धार्मिक सम्प्रदायों का भी परिचय मिल जाता है।[१००३] ब्राह्मण, जैन एवं बुद्ध मत पद्मपुराणकालीन प्रधान धर्म थे।[१००४] ब्राह्मण-जैन-विरोध पर्याप्त मात्रा में था।[१००५] ब्राह्मण यज्ञ पर बल देते थे और जैनी उसका विरोध करते थे।[१००६] जनमतानुयायी जिनबिम्बनमस्कार, विविधव्रतों का धारण तथा फाल्गुन शुक्लपक्ष एवं आषाढ़ शुक्लपक्ष में आष्टाह्निक उत्सव आदि का समारोह करते थे।

पद्मपुराण में ये पौराणिक उल्लेख आये हैं—हरि का वृषाघात, पिनाकी का दक्ष-वर्ग-ताप, इन्द्र का गोत्र-भेद, भरत की कथा, सगर की कथा आदि।[१००७] इनसे यह सिद्ध होता है कि ये कथाएँ समाज में प्रसिद्ध थीं।

'पद्मपुराण में जैन पर्वों एवं उत्सवों का भी उल्लेख हुआ है। आषाढ़ शुक्ल अष्टमी से आष्टाह्निक महापर्व एवं फाल्गुन मास के शुक्लपक्ष की अष्टमी से लेकर पौर्णमासी तक नन्दीश्वर आष्टाह्निक महोत्सव का उल्लेख हुआ है। इन पर्वों को जैन समाज में बड़ी भक्ति से मनाया जाता था।[१००८] इन उत्सवों पर कोई मण्डल बनाने के लिए बड़े आदर से पाँच रंग के चूर्ण पीसता था, कोई माला गूँथता था,

---

९९५. वही, ४१।७२-७६
९९६. वही, ३९।८८-९४
९९७ वही ३९।१५३-१७४
९९८ वही, ३२।३-१२
९९९ वही, ३३।१५-१७
१०००. वही, ३३।१४८-१४९
१००१ वही, ३०।३५-४५
१००२. वही, ९६।६१-६४
१००३. पद्मपुराण के आदर्श धर्म पर अष्टम अध्याय में विस्तृत विचार किया जा चुका है।
१००४. पद्म०, ५।२८६ २।६४
१००५. दे० प्रस्तुत शोधप्रबन्ध के षष्ठ अध्याय के अन्तर्गत 'विचारतत्त्व'।
१००६ दे० 'पद्मपुराण' का ११ वाँ पर्व तथा ४।८७
१००७. दे० 'पद्मपुराण' २।६१-६४, ५।२६९, ५।१४७-२९५
१००८. वही, २९।१-६, ६८।१-२२

कोई जल को सुगंधित करता था, कोई सींचता था, कोई नाना प्रकार के उत्कृष्ट सुगंधित पदार्थ पीसता था, कोई अत्यन्त सुन्दर वस्त्रों से जिन-मन्दिर के द्वार की शोभा करता था और कोई नाना धातुओं के रस से दीवालों को अलंकृत करता था। जिनेन्द्र-बिम्ब का अभिषेक बड़ी धूमधाम से किया जाता था।

समाज में सामिष और निरामिष दोनों प्रकार का भोजन प्रचलित था किन्तु निरामिष को जैनी दृष्टिकोण से प्रशस्त माना जाता था। एकपात्र में भोजन करना परम मित्रता का उपलक्षक था।[१००९]

स्त्री-पुरुषों की वेशभूषा के भी पर्याप्त संकेत 'पद्मपुराण' में मिलते हैं। उत्तरीय और अधोवस्त्र पुरुषों के प्रधान वस्त्र थे।[१०१०] स्त्रियां कंचुकी धारण करती थी।[१०११] उच्चवर्ग के पुरुष और स्त्री दोनो ही आभूषण धारण करते थे। पुरुषों की वेशभूषा में शुक्लवस्त्र का बड़ा महत्त्व था। रावण ने स्नान करने के अनन्तर शुक्लवस्त्र धारण किये थे। मौलि पर भी वस्त्र बाँधा जाता था।[१०१२] वस्त्रों के अतिरिक्त वक्षःस्थल पर हार, शरीर पर अंगराग का अनुलेपन, कानों में कुण्डल, शिर पर माणिक्य-शकल तथा अन्यान्य अंगों पर अन्यान्य अलंकार धारण किये जाते थे।[१०१३] सामन्त केयूर, प्रवरांशुक, मौलिमालावतंस तथा कटक धारण करते थे।[१०१४] राजकुमारों के कानों को सूची से बींधकर उनमें कुण्डल पहनाये जाते थे।[१०१५] चूड़ा पर मणि धारण की जाती थी।[१०१६] चन्दन से अर्धचन्द्राकार ललाटिका बनायी जाती थी।[१०१७] बाहुमूलों पर केयूर पहनाये जाते थे।[१०१८] स्त्रियों के मस्तक पर नीलोत्पलदाम,[१०१९] भालान्त पर तमालदल,[१०२०] कानों में रत्नकनककुण्डल,[१०२१] शरीर पर सुगंधित चूर्ण,[१०२२] पैरों में नूपुर,[१०२३] कुचों पर हार,[१०२४] धारण किये जाने का उल्लेख है। जल के समान स्वच्छ और पारदर्शक वस्त्रों का भी उल्लेख है।[१०२५]

समाज में प्रस्थानकालिक मंगलों के विषय में भी विश्वास था। व्यक्ति के प्रदेश जाते समय कुलवृद्धाएँ उसका मंगलाचार करती थी।[१०२६] अपने इष्टदेव को

१००९. वही, ९९।४२
१०१०. वही, ४५।६७
१०११. वही, २।३८
१०१२. वही, ७।२६२
१०१३. वही, ७३।४, ४५।६७, ४४।५६
१०१४. वही, २।२-४
१०१५. वही, ३।१८८
१०१६. वही, ३।१८९
१०१७. वही, ३।१९०
१०१८. वही, ३।९०
१०१९. वही, ३।१००
१०२०. वही, ३।१०१
१०२१. वही, ३।१०२
१०२२. वही, ३।१०४
१०२३. वही, ३।११०
१०२४. वही, ३।१०८, ८१।४२-४३
१०२५. वही, ३६।३५
१०२६. वही, १६।७९

प्रणाम करके व्यक्ति परदेश के लिए चलता था।[१०२७] आशीर्वाद देते हुए माता-पिता उसका मस्तक चूमते थे। यियासु व्यक्ति सभी बान्धवों से अनुमति लेता था, बड़ों का अभिवादन करता था, प्रणत लोगों से प्रेम पूर्वक संभाषण करता था।[१०२८] पहले दाहिने पैर को उठाना अच्छा समझा जाता था।[१०२९] जाने वाले व्यक्ति के मंगल के लिए सपल्लवमुख पूर्णकुम्भ सामने रखा जाता था। दक्षिण-भुजा का फड़कना कार्यसिद्धि का द्योतक।[१०३०] पवनंजय के रावण के पास प्रस्थान करते समय इन सभी की चर्चा हुई है।

शकुन-अपशकुनों के विषय में भी समाज में विश्वास था। प्रयाणकालिक शुभ शकुन ये माने जाते थे—निर्धूम अग्नि की ज्वाला का दक्षिणावर्त से प्रज्वलित होना, मयूर का रम्य स्वर से बोलना, अलकृत नारी का साक्षात्कार, सुगन्ध फैलाने वाली वायु का बहना, निर्ग्रंथ मुनिराज का सामने से आना, छत्र दिखना, घोड़ों की गभीर हिनहिनाहट, प्रिय घण्टानाद, दधिपूर्ण कलश, बायीं ओर नवीन गोबर को बार-बार बिखेरते हुए तथा पंखों को फैलाते हुए कौए का मधुर शब्द करना, भेरी-शंखों का शब्द होना, 'सिद्ध हो,' 'जय हो,' 'समृद्धिमान हो' तथा 'निर्विघ्न प्रस्थान करो'—आदि मंगलशब्दों का होना।[१०३१]

प्रयाणकालिक अपशकुन ये माने जाते थे—सूखे वृक्ष के अग्रभाग पर बैठकर एक पैर सकुचित कर कौए का पंख फड़फड़ाना एवं व्याकुल मन से सूखा काठ चोंच मे दबाकर क्रूर शब्द करना,[१०३२] दाहिने हाथ पर रोमांच धारण कर श्रृगाली का घोर शब्द करना,[१०३३] सूर्यबिम्ब के परिवेष में कबन्ध का दिखाई देना।[१०३४] पर्वत-कम्पी निर्घातो का पतन,[१०३५] मुक्तकेशी वनिताओ का नभस्तल मे दिखाई देना,[१०३६] दाहिनी ओर गधे का मुँह ऊपर उठाकर बोलना तथा पृथ्वी को खुरों से खोदना,[१०३७] महाभयंकर शब्द करते भालुओं का मण्डल बाँधकर दक्षिण दिशा मे दिखाई देना[१०३८] पंखों से गाढ़ अधकार करते एव विकृत स्वर करते गृद्धों का आकाश में उड़ना,[१०३९] अनेक भौम तथा वैहायस पक्षियों (शकुनों) का क्रन्दन करना,[१०४०] पीछे की ओर क्षुत (छींक) होना,[१०४१] महानाग के द्वारा मार्ग काट दिया जाना,[१०४२] वातूल से

१०२७ वही, १६।९९
१०२८. वही, १६।८०-८१
१०२९. वही, १६।८२
१०३०. वही, १६।८२-८३
१०३१. वही, ५४।४८-५३
१०३२ वही, ७।४३-४४
१०३३ वही, ७।४५
१०३४ वही, ७।४६
१०३५. वही, ७।४७
१०३६. वही, ७।४७
१०३७. वही, ७।४८
१०३८ वही, ७७।६९
१०३९ वही, ५७।७०
१०४०. वही, ५७।७१
१०४१. वही, ७३।१९
१०४२. वही, ७६।१८

प्रेरित होकर ध्वज का भग्न हो जाना,[१०४४] उत्तरीय वस्त्र का नीचे गिर जाना,[१०४४] कौए का दक्षिण दिशा में रटना[१०४५] और सामने महाशोकसन्तप्त बाल फैलाये हुए नारी का परिदेवन तथा रुदन करना।[१०४६]

समाज में टोने आदि का भी प्रचलन था। बच्चों के सिर पर रक्षार्थ सरसों के दाने डाले जाते थे, गोरोचना का लेप होता था और व्याघ्रनख का भी उपयोग होता था।[१०४७]

इसके अतिरिक्त सामाजिक रहन-सहन सम्बन्धी ये सूचनाएँ मिलती हैं:—प्रतिज्ञा करने के लिए 'चूडाविमोक्षण' कर दिया जाता था।[१०४८] स्वप्नोंके विषय में विश्वास था। रात्रि के चरम याम मे देखे स्वप्न अमोघ माने जाते थे।[१०४९] कन्याएँ गुरुजनों के घर शिक्षा ग्रहण करती थीं और इसी के फलस्वरूप यौनचेतना के जागृत होने से विद्याग्रहण में हानि होती थी।[१०५०] युवावस्था मे सर्वसाधनसम्पन्न सुन्दरी स्त्री का तपश्चरण अच्छा नही समझा जाता था, जीवन का अन्तिम पक्ष ही इसके लिए उपयुक्त समझा जाता था।[१०५१] सदाचारी तथा सात्त्विक गुरु के प्रभाव से व्यक्ति दीक्षा धारण कर लेते थे। गृहत्याग वैराग्य का प्रमाण था।[१०५२] भाई और बहिन का स्नेह परम श्लाघ्य माना जाता था।[१०५३] समाज के एक कोने में गरीबी भी थी। गरीबी और अमीरी को पाप-पुण्य का प्रभाव कहकर सन्तोष कर लिया जाता था।[१०५४] अतिथि-सत्कार की भावना प्रायः समाज मे प्राप्त थी।[१०५५] बहू जेठ-जेठानी के सामने लज्जा करती थी तथा अपने को वस्त्रावृत रखती थी।[१०५६] देवर और भाभी में मजाक चलती थी। यह भाई के सामने भी चल सकती थी।[१०५७] यौन अनैतिकता मुनियों में भी सम्भव थी।[१०५८] धनी लोग निर्धनों की अवज्ञा करते थे।[१०५९] द्वीपान्तर में मरण अच्छा नहीं माना जाता था।[१०६०] अनेक बहिनों का एक वर से विवाह सम्भव था।[१०६१] शुभ अवसरों पर अश्रुपात अपशकुन समझा जाता था।[१०६२] मिष्टान्न-पक्वान्न उत्तम भोजन थे।[१०६३] भूमि मे तलगृह (तहखाने) होते थे जहाँ रत्न और मणिभाण्ड छिपाये जा सकते थे।[१०६४] धन बाह्य प्राण माना जाता

१०४३. वही, ७३।१९
१०४४. वही, ७३।१९
१०४५. वही, ७३।१९, ९७।७५
१०४६. वही, ७९।७६
१०४७. वही, १००।२२-२७
१०४८. वही, ६।५४७
१०४९. वही, ७।१७९-१९७
१०५०. वही, २६।५-१८
१०५१. वही, २६।२६
१०५२. वही, २६।४२
१०५३. वही, ३०।१३८-१३९
१०५४. वही, ३०।६६-७६
१०५५. वही, ३३।१९९-२००
१०५६. वही, ३६।५५-५६
१०५७. वही, ३९।२१
१०५८. वही, ४१।१३५-१३६
१०५९. वही, ४७।६१
१०६०. वही, ४८।७९
१०६१. वही, ५१।४८-४९
१०६२. वही, ५७।३४
१०६३. वही, ६२।४३
१०६४. वही, ६५।१७-१८

था।[१०६५] पति के मरण पर नारियाँ चूड़ियाँ तोड़ लेती थीं।[१०६६] मुनि किसी भी राजा की उपेक्षा कर सकते थे।[१०६७] समाज में रोग-दुःख फैलने पर व्यक्ति अपने ग्राम नगर को छोड़कर भाग जाते थे।[१०६८] उरोघात, महादाहज्वर, लालापरिस्राव, दन्तपथ्रु, स्फोटक, अरुचि, छर्दि और सर्वशूल फैलने वाले रोग थे।[१०६९] भयभीत, ब्राह्मण, मुनि, निहत्थे व्यक्ति, स्त्री, बालक, पशु और दूत अवध्य समझे जाते थे।[१०७०] राजा के अधिकार में बड़े-बड़े सेठ होते थे जो गाँवों और शहरों के मालिक होते थे और मन्दिर आदि का निर्माण कराते थे।[१०७१] मंत्र आदि में विश्वास था, डाकिनी मन्त्रभीत मानी जाती थी।[१०७२] चन्दन-पुष्प-फल आदि सत्कार के साधन थे।[१०७३] प्रसन्नता का समाचार देने वालों का माला-पान-सुगन्ध से समादर होता था।[१०७४] प्रसन्नता के अवसर पर दान दिया जाता था।[१०७५] खाद्य-पदार्थों में लड्डू, मांडे, पूरियाँ, शालि (धान) का भात, दाल, घृत, पुए, घनबन्ध (घेवर), नाना प्रकार के व्यंजन, दूध, दही, अनेक प्रकार के पानक, खांड के लड्डू और शष्कुली (कचौरी), आदि थे।[१०७६] स्त्रियाँ पुरुष-वेष में भी घूमती थीं।[१०७७] भुजा ऊपर उठाकर छाती पीटना और चिल्लाना हृदय के अत्यन्त दुःख का सूचक था।[१०७८] भूत वायु आदि की बीमारी में भी विश्वास था।[१०७९]

पद्मपुराण में आर्थिक जीवन और व्यवसाय के भी संकेत मिलते हैं। धन कमाने की इच्छा से वणिकों की पोतों से जलयात्रा की कई जगह चर्चा आई है।[१०८०] गौओं का व्यापार किया जाता था।[१०८१] कुछ ब्राह्मण गणितशास्त्री (सांख्यिक) होते थे।[१०८२] कुम्भकार मिट्टी के पात्र बनाकर अपनी जीविका चलाते थे।[१०८३] पुस्तकर्म (मिट्टी के खिलौने आदि बनाना) भी एक प्रसिद्ध व्यवसाय था।[१०८४] भस्त्रा-निर्माण करना भी जीविकोपार्जन का साधन था। भस्त्रा (धौंकनी या मशक) गीदड़ आदि की खाल से बनायी जाती थी।[१०८५] व्यापार के लिए सार्थ बांधकर यात्रा भी की जाती थी।[१०८६] 'अतो यथात्र सूत्रार्थं कश्चित्संचूर्णयेन्मणीन्'

१०६५. वही, ७०।८३　　　　१०६६. वही, ७८।६
१०६७. वही, ७८।६५-६६　　　　१०६८ वही, ८०।१५९
१०६९ वही, ६४।३५　　　　१०७०. वही, ६६।९०
१०७१. वही, ६७।११　　　　१०७२. वही, ७४।५१
१०७३ वही, ८०।८५　　　　१०७४. वही, ८१।१००
१०७५. वही, ८१।१०८-१०९　　　　१०७६. वही, ८७।५, २४।१३-१४
१०७७. वही, पर्व ३४　　　　१०७८ वही, १०९।१२०
१०७९. वही, ११३।२-३　　　　१०८०. वही, ५।९६-९९, ४८।६९, ४८।८४
१०८१. वही, ५।११७　　　　१०८२. वही, ५।११४
१०८३. वही, ५।२८७　　　　१०८४ वही, ७।२८३
१०८५. वही, ४८।४६　　　　१०८६ वही, १४।२२६

से यह भी प्रतीत होता है कि उस समय मणि पीसकर पक्का माँझा तैयार किया जाता था।[१०८७]

'पद्मपुराण' के काल तक भवन, मन्दिर और मूर्तियों के निर्माण की कला पूर्ण उत्कर्ष को प्राप्त हो चुकी थी।

नगरों के वर्णनों में ऊँचे-ऊँचे मकानों का उल्लेख है।[१०८८] भवनों की भित्तियों पर सालभंजिकाएँ (पुतलियाँ) उकेरी जाती थीं।[१०८९] राजमहलों के द्वार पर विविध प्रकार के बेल-बूटे (भक्तिकर्म) बने रहते थे।[१०९०] ऊँचे-ऊँचे तोरण होते थे।[१०९१] अनेक कक्ष होते थे। सोपान होते थे।[१०९२] कुछ महलों में स्फटिक और शीशे का बहुत प्रयोग होता था।[१०९३] ग्रीवक (बरांडे) और कपोतपालिका भी होती थीं।[१०९४] द्वारपाल भी बने होते थे।[१०९५] नौमंजिले महलों का भी उल्लेख है।[१०९६] नानाकुट्टिमभूभाग, चारुनिर्व्यूहसंगत, सर्वोपकरणान्वित, स्नानादिविधि-सम्पत्तियोग्यनिर्मलभूमि एवं कल्पप्रासादसन्निभ महलों के वर्णन से तत्कालीन महल-निर्माण-कला की उन्नति द्योतित होती है।[१०९७]

जिन-मन्दिरों की पर्याप्त चर्चा है।[१०९८] मन्दिरों के गवाक्षों में मोतियों की झालरें लटकती थीं और उनके खम्भे रत्नजटित एवं स्वर्ण-निर्मित होते थे।[१०९९] मन्दिरों में रत्न जड़े रहते थे, अनेक प्रकार का मणि-भक्ति-कर्म (मणियों के बेल-बूटों का काम) रहता था, हेमपीठ होते थे, मनोहारी तोरणों पर मालाएँ लटकती रहती थीं, भूमियों पर विस्तृत वेदिकाएँ बनी होती थीं, वैदूर्यमणि-निर्मित दीवारों पर सिंह-हाथी आदि के चित्र बने होते थे और संगीत करने वाली स्त्रियों के लिए कुक्षियाँ होती थीं। इनकी ऊँचाई बहुत होती थी तथा इनमें भव्य जिन-प्रतिमाएँ स्थापित रहती थीं।[११००] कुछ मन्दिरों के तीन द्वार होते थे।[११०१] गोपुर, प्राकार, तोरण, वलभियाँ, हर्म्य, शालाएँ तथा परिखाएँ उन्हें सौन्दर्य और सुरक्षा प्रदान

१०८७. वही, १४।२२६
१०८८ वही, ७।३३७
१०८९ वही, १६।८५
१०९०. वही, ३८।८३
१०९१ वही, ३८।८३
१०९२. वही, ७१।२७
१०९३ वही, ७१।२४-३८
१०९४. वही, ६।१२४-१२५
१०९५. वही, ७१।३५
१०९६. वही, १००।३९
१०९७ वही, ११०।६४-६५
१०९८. वही, ७।३३८, २८।८८-९६, ३१।२२८-२३०, ४०।२७-३२, ६७।११-२०, ८०।७-१०, ८०।७०-७५, ११२।२५-४८
१०९९. 'जैन-स्थापत्य में स्तम्भों के निर्माण की विशेषता रही है।'—डा० रामजी उपाध्याय : प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका, पृ० १०६३।
११००. पद्म० २३।१२-१९
११०१. वही, ३१।२२४

करती थीं।[1102] मन्दिरों पर पताकाएँ फहराती थीं तथा विविध वाद्यादि के शब्द होते थे।[1103] छोटी-छोटी किंकिणियाँ, पट्टलम्बूष (फन्नूस), प्रकीर्णक (चमर), बुद्बुदादर्श (गोल शीशे) आदि मन्दिरों में होते थे।[1104]

मूर्ति-निर्माण बड़ी उच्च कोटि का था। जिनेन्द्र-प्रतिमाओं के वर्णन से ज्ञात होता है कि धातुओं को मिलाकर पंचवर्ण की मूर्तियाँ बनती थीं।[1105]

पद्मपुराण में कलाओं का भी पर्याप्त उल्लेख मिलता है।[1106] पद्मपुराण के अनुसार नृत्त के तीन भेद होते हैं—अंगहाराश्रय, अभिनयाश्रय तथा व्यायामिक, फिर इनके और भी प्रभेद होते हैं। इसका ज्ञान 'नृत्तकला' है।[1107] संगीत कण्ठ, सिर और उरःस्थल से अभिव्यक्त होता है तथा षड्ज ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद—इस सात स्वरों में विभक्त रहता है। वह द्रुत-मध्य-विलम्बित नामक लयों से सहित होता है, अस्र और चतुरस्र तालकी इन दो योनियों को धारण करता है एवं स्थायी-संचारी-आरोही-अवरोही-नामक चार वर्णों के कारण चार प्रकार का माना गया है।[1108] संगीत में प्रातिपदिक, तिङन्त, उपसर्ग और निपातों से संस्कार को प्राप्त हुई संस्कृत, प्राकृत और शौरसेनी भाषा प्रयुक्त होती है।[1109] संगीत की आठ या दस जातियाँ एवं तेरह अलकार मान्य हैं। आठ जातियाँ ये हैं—धैवती, आर्षभी, षड्ज-षड्जा, उदीच्या, निषादिनी, गान्धारी, षड्जकैकशी और षड्जमध्यमा।[1110] दश जातियाँ ये हैं—गान्धारोदीच्या, मध्यमपचमी, गान्धारपंचमी, रक्तगान्धारी, मध्यमा, आन्ध्री, मध्यमोदीच्या, कर्मारवी, नन्दिनी और कैशिकी।[1111] तेरह अलंकार ये हैं—प्रसन्नादि, प्रसन्नान्त, मध्यप्रसाद और प्रसन्नाद्यवसान ये चार स्थायी पद के अलकार हैं।[1112] निर्वृत्त, प्रस्थित, बिन्दु, प्रेंखोलित, तार और प्रसन्नमन्द्र—ये छः संचारी पद के अलंकार हैं।[1113] आरोही पद का प्रसन्नान्त नामक एक ही अलकार है।[1114] अवरोही पद के प्रसन्नान्त एवं कुहर नामक दो अलकार हैं। इन सभी लक्षणों से अन्वित संगीत का ज्ञान 'संगीतकला' कहलाती है।[1115] वाद्य के इन चार भेदों का उल्लेख है—तन्त्री से उत्पन्न तत, मृदंग से उत्पन्न अनवद्य, बंशी से उत्पन्न सुषिर

११०२. वही, ४०।२७-२९, ११२।४६
११०३. वही, ४०।२९-३९
११०४. वही, १११।४५-४६
११०५ वही, ४०।३२
११०६. वही, २४वाँ पर्व
११०७ वही, २४।६
११०८. वही, २४।६-१०
११०९. वही, २४।११
१११०. वही, २४।१२
११११. वही, २४।१३-१४
१११२. वही, २४।१६
१११३. वही, २४।१७
१११४. वही, २४।१८।
१११५. वही, २४।१९

एवं ताल से उत्पन्न घन। फिर इस वाद्य के अनेक अवान्तर भेद हो सकते हैं।[१११६] इसके ज्ञान का नाम ही 'वाद्यकला' है। नृत्त, गीत और वाद्य का एकीकरण नाट्य कहा जाता था जिसमें शृंगार, हास्य, करुण, वीर, अद्भुत, भयानक, रौद्र, बीभत्स और शान्त नामक नौ रस होते थे। नाट्य का ज्ञान 'नाट्यकला' है।[१११७]

लिपियों का ज्ञान भी एक कला है। जो लिपि अपने देश में सामान्यतः चलती थी उसे 'अनुवृत्त' कहा गया है, लोग अपने-अपने संकेतानुसार जिसकी कल्पना कर लेते थे उसे 'विकृत' कहा गया है, प्रत्यंग आदि वर्णों में जिसका प्रयोग होता था उसे 'सामयिक' कहा गया है एवं वर्णों के बदले पुष्पादि द्रव्य रखकर जो लिपि का ज्ञान किया जाता था उसे नैमित्तिक' कहा गया है। इस लिपि के प्राच्य, मध्यम, यौधेय और समाद्र आदि देशों की अपेक्षा अनेक अवान्तर भेद स्वीकार किये गये हैं।[१११८]

'पद्मपुराण' के अनुसार 'उक्तिकौशल' नामक भी एक कला स्वीकार की गयी है।[१११९] इसके स्थान आदि अनेक भेदों का उल्लेख है यथा स्थान, स्वर, सस्कार, विन्यास, काकु, समुदाय, विराम, सामान्याभिहित, समानार्थता, भाषा और जातियाँ।[११२०] उरःस्थल, कण्ठ और मूर्द्धा के भेद से 'स्थान' तीन प्रकार का है। 'स्वर' षड्आदि के भेद से सात प्रकार का है। लक्षण और उद्देश अथवा लक्षण और अभिधा की अपेक्षा 'सस्कार' दो प्रकार का है। पदवाक्य और महावाक्य आदि के विभाग सहित कथन 'विन्यास' कहलाता है। 'काकु' के दो भेद हैं—सापेक्ष और निरपेक्ष। गद्य, पद्य, और मिश्र (चम्पू) की अपेक्षा 'समुदाय' तीन प्रकार का है। संक्षिप्तता को 'विराम कहते हैं। एकार्थक शब्दों का प्रयोग 'सामान्याभिहित' कहा गया है। एक शब्द के द्वारा बहुत अर्थ का प्रतिपादन करना 'समानार्थता' है। आर्य, लक्षण और म्लेच्छ के नियम से 'भाषा' तीन प्रकार की कही गयी है। पत्रव्यवहार-रूप लेख तथा व्यक्तवाक्-लोकवाक्-मार्गव्यवहारादि-रूप मातृकाएँ जातियाँ हैं। उक्तिकौशल के इन भेदों के और भी भेद हो सकते हैं।[११२१]

चित्र के ज्ञान को 'चित्रकला' कहा गया है। चित्र दो प्रकार का माना गया है—शुष्कचित्र और आर्द्रचित्र। शुष्कचित्र के भी दो भेद हैं—नानाशुष्क और वर्जित। चन्दनादि के द्रव से उत्पन्न होने वाला आर्द्रचित्र नाना प्रकार का है। कृत्रिम और अकृत्रिम रंगों के द्वारा पृथ्वी, जल तथा वस्त्र आदि के ऊपर इसकी

१११६. वही, २४.२०-२१

१११७. वही, २४।२२-२३

१११८. वही, २४।२४-२६

१११९. वही, २४।२७

११२०. वही, २४।२७-२८

११२१. वही, २४।२९-३५

रचना होती है। यह अनेक रंगों के सम्बन्ध से संयुक्त होता है।[११२२]

'पुस्तकर्म' एक दुर्लभ कला है। क्षय, उपचय और संक्रम के भेद से पुस्तकर्म तीन प्रकार का कहा गया है। लकड़ी आदि को छील-छालकर (तक्षण करके) खिलौने आदि बनाना क्षयजन्य पुस्तकर्म है, ऊपर से मिट्टी आदि लगाकर खिलौने आदि बनाना उपचयजन्य पुस्तकर्म है एवं प्रतिबिम्ब अर्थात् साँचे आदि गढ़ाकर खिलौने आदि बनाना संक्रमजन्य पुस्तकर्म है।[१०२३] यह पुस्तकर्म यन्त्र, निर्यन्त्र, सच्छिद्र तथा निश्छिद्र आदि भेदों वाला है अर्थात् कोई खिलौना यन्त्रचालित होता है तो कोई बिना यंत्र के ही एवं कोई छिद्रसहित होता है तो कोई छिद्ररहित।[१०२४] दशरथ का पुतला समुद्रहृदय मन्त्री ने बनवाया था। इसे 'लेप्यं वपुः' कहा गया है।[१०२५] इसके भीतर लाक्षादि का रस भर कर रुधिर की रचना हुई थी और स्वाभाविक शरीर जैसी कोमलता भी इसमें उत्पादित की गयी थी।[१०२६] इसे 'लेप्यकार' ने बनाया था।[१०२७]

'पत्रच्छेद्य' की कला भी महत्वपूर्ण कही गयी है। 'पद्मपुराण' के अनुसार उसके तीन भेद हैं—बुष्किम, छिन्न और अच्छिन्न। सुई अथवा दन्त आदि के द्वारा जो बनाया जाता है उसे 'बुष्किम' कहते हैं। जो कर्तरी (कैंची) से काटकर बनाया जाता है तथा जो अन्य अवयवों के सम्बन्ध से युक्त होता है उसे 'छिन्न' कहते हैं। जो कैंची आदि से काट कर बनाया जाता है तथा अन्य अवयवों के सम्बन्ध से रहित होता है उसे 'अच्छिन्न' कहते हैं। यह पत्रच्छेद्यक्रिया पत्र, वस्त्र तथा सुवर्णादि के ऊपर की जाती है तथा स्थिर और चंचल दोनों प्रकार की

११२२. वही, २४।३६-३७। ११२३ वही, २४।३८-३९। ११२४ वही, २४।४०। ११२५. वही, २४।४१। ११२६. वही २४।४२।

११२७. रविषेण के समकालीन बाण के 'हर्षचरित' में भी पुस्तकर्म का उल्लेख आया है—पुस्तकर्मणा पार्थिवविग्रहाः। 'बाण की मित्रमण्डली में कुमारदत्त पुस्तकर्म में उस्ताद था। पुस्त का शब्दार्थ लेप्य था और ज्ञात होता है कि पुस्तकार ही लेप्यकार भी कहा जाता था, जैसा राज्यश्री के विवाह के अवसर पर मिट्टी की मछली, कछुए, मगर, फल, वृक्ष आदि बनाने के लिये 'लेप्यकार' बुलाये गये थे (लेप्यकारक्रियमाणमृण्मयमीनकूर्ममकरनारिकेल-कदलीपूगवृक्षकम्)। गुप्त-युग में मृण्मय कला के द्वारा ही सौंदर्य की अनुभूति समाज के सभी स्तरों में इतनी व्यापक बनाई जा सकी थी। मिट्टी के खिलौने घर-घर में भर गये थे और फूल-पत्तों की सजवाली ईंटों से ही भीतों की चुनाई होने लगी थी। गुप्त-युग की यह सामग्री इतनी अधिक मिली है कि उसे मृण्मय प्रतिमाओं का युग ही कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। अतएव पुस्तक-व्यापार (पुस्त एवं पुस्तक व्यापारकर्म) या पुस्तककार्य संभ्रान्त कुलपुत्रों की शिक्षा का आवश्यक अंग समझा जाता हो इसमें कोई आश्चर्य नहीं।' डा० वासुदेवशरण अग्रवाल कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ८६।

होती है।[१०२८]

आर्द्र, शुष्क, तदुन्मुक्त और मिश्र के भेद से 'माल्यनिर्माण' की कला चार प्रकार की कही गयी है। इनमें से गीले अर्थात् ताजे पुष्पादि से जो माला बनायी जाती है उसे आर्द्र कहते हैं, सूखे पत्रादि से जो बनाई जाती है उसे शुष्क कहते हैं। चावलों के सिक्थक (सीथ अथवा जवा) आदि से जो बनायी जाती है उसे 'तदुज्झित' कहते हैं और जो उक्त तीनों चीजों के मेल से बनायी जाती है उसे 'मिश्र' कहते हैं।[११२९] यह माल्यकर्म रणप्रबोधन, व्यूहसंयोग आदि भेदों से सहित होता है।[११३०]

पद्मपुराण के अनुसार योनिद्रव्य, अधिष्ठान, रस, वीर्य, कल्पना, परिकर्म, गुणदोषविज्ञान तथा कौशल—ये गन्धयोजना अर्थात् 'सुगन्धितपदार्थ-निर्माण-कला' के अंग हैं। जिनसे सुगन्धित पदार्थों का निर्माण होता है, ऐसे तगर आदि 'योनिद्रव्य' हैं। जो धूपबत्ती आदि का आश्रय है उसे 'अधिष्ठान' कहते हैं। कषाय, मधुर, तिक्त, कटु, अम्ल,—पाँच प्रकार का 'रस' कहा गया है जिसका सुगन्धित द्रव्य में विशेषतः निश्चय करना पड़ता है। पदार्थों की जो शीतता अथवा उष्णता है वह दो प्रकार का 'वीर्य' है। अनुकूल तथा प्रतिकूल पदार्थों का मिलाना कल्पना है। तैल आदि पदार्थों का शोधना तथा धोना आदि 'परिकर्म' कहलाता है। गुण अथवा दोष को जान लेना 'गुणदोष-विज्ञान' है। परकीय तथा स्वकीय वस्तु की विशिष्टता जानना कौशल है। इस गन्धयोजना की कला के स्वतन्त्र और अनुगत भेद होते हैं।[१०३१]

स्वादिष्ट पदार्थ तैयार करने की कला का नाम 'आस्वाद्यविज्ञान' है। इसमें भक्ष्य, भोज्य, पेय, लेह्य और चूष्य—इन भोजन सम्बन्धी पदार्थों के निर्माण का ज्ञान आता है। इनमें से जो स्वाद के लिए खाया जाता है उसे 'भक्ष्य' कहते हैं, इसके कृत्रिम तथा अनुकृत्रिम दो भेद हैं। जो क्षुधा की निवृत्ति के लिए खाया जाता है उसे 'भोज्य' कहते है इसके भी दो भेद है—मुख्य और साधक। ओदन-रोटी आदि मुख्य भोज्य हैं और यवागू (लपसी) दाल-शाक आदि साधक भोज्य हैं। 'पेय' के तीन भेद हैं—शीतयोग (शर्बत), जल और मद्य। 'लेह्य' के भी तीन भेद हैं—राग, खाण्डव और लेह्य। 'चूष्य' के दो भेद हैं—कृत्रिम और अकृत्रिम। इन सब का ज्ञानस्वरूप 'आस्वाद्यविज्ञान' पाचन, छेदन, उष्णत्वकरण तथा शीतत्व-

११२८. बाण ने सम्भवतः 'पत्रभंग' शब्द का इसी अर्थ में प्रयोग किया है यथा—पत्रभंग-मकरिका', पत्रभंगमुखिका, उत्किरता पत्रभंगान् आदि। डा० अग्रवाल ने पत्रभंग का अर्थ 'पत्रलता का अलंकरण' किया है।—वही, पृष्ठ ३९१।

११२९. पद्म०, २४।४४-४५। ११३०. वही, २४।४६। ११३१. वही, २४।४७-५२।

करणादि भेदों से युक्त है।[११३२]

वज्र (हीरा), मौक्तिक, वैडूर्य, सुवर्ण, रजतायुध तथा वस्त्र-शंख आदि रत्नों का सलक्षण ज्ञान भी एक कला है।[११३३]

'पद्मपुराण' के अनुसार वस्त्र पर धागे से कढ़ाई का काम करना (तन्तु-सन्तानसंयोग) तथा वस्त्र को अनेक रंगों में रँगना (बहुवर्णक-रागाकाम) भी एक कला है।[११३४] इनके अतिरिक्त और भी अनेक कलाएँ उल्लखित हैं, यथा—लोहा, दन्त, लाख, क्षार, पत्थर तथा सूत आदि से बनने वाले नाना उपकरणों का बनाना।[११३५] मेय-देश-तुला-काल-मान का ज्ञान भी एक कला है। 'प्रस्थ आदि' जिस के अनेक भेद हैं उसे मेय कहते हैं, वितस्ति आदि देशमान हैं, पल आदि तुलामान हैं और समय (घड़ी, घण्टा) आदि कालमान हैं। यह मान, आरोह, परीणाह, तिर्यग्गौरव और क्रिया से उत्पन्न होता है।[११३६] मूर्तिकर्म. अर्थात् बेल-बूटा खींचना,[११३७] निधिज्ञान अर्थात् गड़े हुए धन का ज्ञान होना,[११३८] रूपज्ञान,[११३९] वणिग्विधि अर्थात् व्यापारकला,[११४०] जीव-विज्ञान,[११४१], मनुष्य-हाथी-गो-अश्व आदि की चिकित्सा का निदानादि के साथ ज्ञान,[११४२] मायाकृत, पीड़ा या इन्द्रजालकृत एवं मन्त्रौषधादिकृत विमोहन का ज्ञान,[११४३] सांख्य आदि मतों का, उनमें वर्णित चारित्र तथा नाना प्रकार के पदार्थों के साथ ज्ञान[११४४] आदि।

११३२. वही, २४।५३-५६	११३३. वही, २४।५७
११३४. वही, २४।५८	११३५ वही, २४।५९
११३६. वही, २४।६०-६२	११३७. वही, २४।६३
११३८. वही, २४।६३	११३९. वही, २४।६३
११४०. वही, २४।६५	११४१. वही, २४।६३
११४२. वही, २४।६४	११४३. वही, २४।६५
११४४. वही, २४।६६	

"समयं च समीक्ष्यादि पाखण्डपरिकल्पितम्। चारित्रेण पदार्थैश्च विवेद विविधैर्युतम्॥" कहकर रविषेण ने केकया की जैनमत के अतिरिक्त ब्राह्मण दर्शनों एवं मतों की पारगामिता घोषित की है। सातवीं शताब्दी की यह प्रवृत्ति थी कि अपने दर्शन से अतिरिक्त दर्शनों का भी अध्ययन किया जाता था। बाण ने भी 'हर्षचरित' में 'शमितसमस्तशास्त्रान्तरसंशीति' और 'उद्घाटितसमग्रग्रन्थार्थसन्धयः' शब्दों से इस प्रवृत्ति का परिचय दिया है। इस विषय पर डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का वक्तव्य अवलोकनीय है—'बाण ने तत्कालीन ज्ञान साधन की दो विशेषताओं की ओर भी यहाँ इशारा किया है। अपने दर्शन के अतिरिक्त अन्य दर्शनों में भी जो शंकाएँ उठाई जाती थीं उनका समाधान भी वे (बाण की बिरादरी के ब्राह्मण) जानते थे: शमितसमस्तशास्त्रान्तरसंशीति। गुप्तकाल से बाण के समय तक के युग में बौद्ध, ब्राह्मण तथा जैन दार्शनिक अनेक दृष्टिकोणों से तत्त्वचिन्तन करते रहते थे। उस समय के दार्शनिक समाज की यह शैली थी कि वे विद्वान् एक-दूसरे से उद्भावित नयी-नयी युक्तियों और कोटियों से अपने

'पद्मपुराण' के अनुसार चेष्टा, उपकरण, वाणी तथा कला-व्यसन भेद से क्रीडा चार प्रकार की है। शरीर से उत्पन्न होने वाली क्रीडा 'चेष्टा' है, कन्दुक आदि की क्रीडा 'उपकरण' है, नाना प्रकार के सुभाषित कहना 'वाणी-क्रीडा' है और जुआ (दुरोदर) आदि खेलना 'कलाव्यसन' है।[1145]

'पद्मपुराण' में 'लोक का ज्ञान' भी कला के रूप में स्वीकृत है। आश्रित और आश्रय भेद से लोक दो प्रकार है। जीव और अजीव तो आश्रित हैं और पृथ्वी आदि उनके आश्रय हैं। इसी लोक में जीव की नाना पर्यायों में उत्पत्ति हुई है और इसी में उसकी नश्वरता है—यह सब जानना लोकज्ञता है। इस लोकज्ञता का प्राप्त होना अत्यन्त कठिन है। पूर्वापर पर्वत, पृथ्वी द्वीप, देश आदि भेदों में यह लोक स्वभाव से ही अवस्थित है।[1146]

'संवाहन-कला' दो प्रकार की है—कर्मसंश्रया और शय्योपचारिका। त्वचा, मांस, अस्थि और मन—इन चार को सुख पहुँचाने के कारण कर्मसंश्रया के चार भेद हैं अर्थात् किसी संवाहन से केवल त्वचा को सुख मिलता है, किसी से त्वचा और मांस को, किसी से त्वचा, मांस और हड्डी को एवं किसी से त्वचा, मांस, हड्डियों और मन को। इसके अतिरिक्त इस कला के संस्पृष्ट गृहीत, भुक्तित, चलित, आहत, भंगित, विद्ध, पीडित और भिन्न पीडित—ये भेद भी हैं। फिर

आपको परिचित रखते और अपने ग्रन्थों में उनका विचार और समाधान करते थे। प्रमुख आचार्य अन्य मतों में प्रवृद्ध रुचि रखते थे, उपेक्षा का भाव न था। इस प्रकार की जागरूकता के वातावरण में ही वसुबन्धु, धर्मकीर्ति, सिद्धसेन दिवाकर, उद्योतकर, कुमारिल और शंकर जैसे अनेक प्रचण्ड मस्तिष्कों ने एक-दूसरे से टकरा-टकराकर दार्शनिक क्षेत्र में अभूतपूर्व तेज उत्पन्न किया। इस पृष्ठभूमि में बाण का 'शमितसमस्तशास्त्रान्तरमकीर्ति' विशेषण साभिप्राय है और ज्ञान-साधन की तत्कालीन प्रवृत्ति का परिचय देता है। इस प्रसंग में दूसरी बात यह कही गयी है कि वे विद्वान् समग्र ग्रन्थों में जो अर्थ की ग्रन्थियाँ थीं, उनको उद्घाटित करते थे: 'उद्घाटित-समग्रग्रन्थार्थग्रन्थय.।' इसमें भी तत्कालीन विद्यासाधन की झलक है। समग्र ग्रन्थों से तात्पर्य भिन्न-भिन्न दर्शनों, जैसे—न्यायवैशेषिक, सांख्ययोग, वेदान्त, मीमांसा, पाशुपत-बौद्ध, आर्हत आदि के ग्रन्थों से है। उस समय के पठन-पाठन में ऐसी प्रथा थी कि लोग केवल अपने ही दार्शनिक ग्रन्थों के अध्ययन से सन्तुष्ट न रहकर दूसरे सम्प्रदायों के ग्रन्थों का भी अध्ययन करते थे और उनमें जो अर्थ की कठिनाइयाँ थीं, उन्हें स्पष्ट करते थे। इसी प्रणाली के कारण नालन्दा के बौद्ध विश्वविद्यालय में वेद-शास्त्र आदि ब्राह्मणों के ग्रन्थों का पठन-पाठन भी खूब चलता था जैसा कि ह्वेन-चुआंग् ने लिखा है। अध्ययन, अध्यापन और ग्रन्थ-प्रणयन, तीनों क्षेत्रों में ही सकल शास्त्रों में रुचि उस युग के विद्वानों की विशेषता थी। स्वयं बाण ने दिवाकर-मित्र के आश्रम का वर्णन करते हुए इस प्रवृत्ति का आँखों देखा सच्चा चित्र खींचा है।'

—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, 'हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन', पृ० २५।२६।

११४५. पद्म०, २४।६७-६९ ११४६. वही, २४।७०-७२

इसके मृदु, मध्य और प्रकृष्ट के भेद से तीन भेद और भी होते हैं। जिस संवाहन से केवल त्वचा को सुख होता है वह मृदु अथवा सुकुमार कहा जाता है। जो त्वचा और मांस को सुख पहुँचाता है वह मध्यम कहा जाता है एवं जो त्वचा, मांस तथा हड्डी को सुख देता है वह प्रकृष्ट कहलाता है। संवाहन के साथ जब कोमल संगीत भी होता है तब वह मनः सुख-संवाहन कहलाता है। इस संवाहन कला के ये दोष होते हैं—शरीर के रोमों का उल्टा उद्वर्तन करना, जिस स्थान में मांस नहीं है वहाँ अधिक दबाना, केशाकर्षण, भ्रष्टप्राप्त, अमार्गप्रयात, अतिभुग्नक, अदेशाहत, अत्यर्थ और अवसुप्त प्रतीचक। जो इन दोषों से निर्मुक्त है,योग्यदेश में प्रयुक्त है और अभिप्राय को जानकर किया गया है, ऐसा संवाहन अत्यन्त शोभास्पद होता है। जो संवाहन-क्रिया अनेक कारण अर्थात् आसनों से की जाती है वह चित्त को सुख देने वाली शय्योपचारिका नाम की क्रिया जाननी चाहिए। यह संवाहन-कला अंग-प्रत्यंगो से सम्बन्ध रखने वाली है।[११४७]

इसके अतिरिक्त शरीर-वेष-संस्कार-कौशल, स्नान करना, सिर के बाल गूँथना तथा उन्हें सुगंधित करना भी कलाओं में परिगणित है।[११४८]

यन्त्र—विज्ञान के भी पद्मपुराण में संकेत मिलते हैं। एक स्थान पर किले में लगे ऐसे यन्त्रोंका वर्णन है जो कि गगनांगण मे विहार करते विमानस्थ प्राणियों को खींच लेते थे।[११४९] यदि आजकल के लोग इसे कोरी कल्पना ही समझें तो भी कम से कम इतना तो मानना चाहिए कि राडार और एण्टी एयरक्राफट गनों जैसे यन्त्रों की कल्पना उस युग मे हो चुकी थी। विमानों का पर्याप्त उल्लेख हुआ है।[११५०] युद्ध के समय महाघोर यन्त्रों के प्रसारण की भी चर्चा हुई है।[११५१] यन्त्र नगर की रक्षा के साधन समझे जाते थे।[११५२] वैज्ञानिक यन्त्रों के सहारे बहुत बड़ी सेना को रोका जा सकता था।[११५३] जलयन्त्रों से पानी छोड़ा और रोका जा सकता था।

'पद्मपुराण' में भौगोलिक उल्लेख भी पर्याप्त मात्रा में हुए हैं। नदियों, पर्वतों नगरों, ग्रामों, राष्ट्रों, द्वीपों तथा वन आदि के अनेक वर्णन और संकेत 'पद्मपुराण' में आये हैं। यद्यपि नगर आदि के बहुत से नाम रविषेण के कल्पना—वैभव का ही प्रदर्शन करते हैं तथापि बहुतसे नगर आदि के नाम वास्तविक भी हैं। यहाँ हम इनकी

११४७. वही, २४।७३-८१
११४८ वही, २४।८२
११४९. वही, ६।५४१
११५०. वही, ४७।७८ आदि
११५१. वही, ४६।२१५, २३०
११५२. वही, ४८।२४५
११५३. वही, ५२।२-५

एक सूची प्रस्तुत कर रहे हैं[1154]—

नदी-समुद्र : कर्णकुण्डल (५३), कर्णरवा (४०, ४१), कौंचरवा (४३), गंगा (२, ४६ १०१), नर्मदा (१०, ३४), पुण्यभागा (८६), यमुना (५५), रेवा (३५), लवणसमुद्र (८२), वैतरणी (८), शर्करी (२२), हंसावली (१३), ।

पर्वत : अष्टापद (८), अंजनगिरि (३७), उदय (३), कुशाग्र (१), कैलास (१, ६, २०, ८४), किष्कु (६), किष्किन्धागिरि (६, ८८), कर्ण (६), कलिन्द (२७), गन्धमादन (१३), गिरिनार (२०), जलवीचि (१६), त्रिकूट (५, ६, ४३), सुमेरु (३३), दक्षिण श्रेणी (८), दन्ती (१५), दण्डक (४२), दुर्गगिरि (८५), धरणीमौलि (६), नारद (११), नन्दी (२७), निकुंज (२७), नगोत्तर, बलाहक (८, ३०), भूत (१), मधु, (१, ६), मेरु (४, २६, ३१) मानुषोत्तर (६), मेघरव (८), मणिकान्त (६), महेन्द्र (१५), मलयाचल (८), मन्दर (८२), रथावर्त (१३), रामगिरि (४०), विपुल (१, २७), विजयार्द्ध (१, ६, २७), विन्ध्य (१०), वंशधर (३६, ४०), वंशगिरि (४०), वंशस्थविल (६१), सुमेरु (१, ३, ६, ७२, ११२), सन्ध्यावर्त (८), सम्मेद (८, ६, २०), सस्थली (८), संध्याभ्र (१८), श्रीशैल (४६), हिमालय (२, १०२),

वन : चारणप्रिय (४६) जनानन्द (४६), तिलक (६१), दण्डक (४०, ४२, ५६), देवारण्य (४६), नन्दन (६, ३३), निकुज (१०६), निर्जल (१८), निबोध (४६), प्रमद (६, ४६), परियात्रा (३२), पाण्डुक (६, ११२), पृथ्वी कर्णतटाटवी (६), प्रकीर्णक (४६), भद्रशालिवन (६), भीमवन (८), मन्दारुण (८), मन्दारण्य (३१), महावन (१७, ४१), महेन्द्रोदय वन (८५), मेखला (८), विन्ध्याटवी (३४), श्वापद (६३, ६४), सौमनसवन (६, ४२), सुखसेव्य (४६), समुच्चय (४६), महस्राभ (१०६) ।

नगर, ग्राम, राष्ट्र, देश, द्वीप और राज्यों के नाम[1155] : अरुण (१), अमल (६), अमुर (७), अलका (५८), अम्बष्ठ (३८), अग (३८), अर्धबर्बर (२७), अलक्षपुर (२०), अब्वपुर (५५), अमृतपुर (५५), अक्षपुर (७७), अपराजित (२०), अम्भोद (५), अयोध्या (३, २०, २१, २२, २५, ३७ आदि), अलंकारपुर (६, ७, १६, ४५ आदि), असुरसगीत (८), अलकारोदय (८, ६,

---

११५४. कोष्ठक में पर्वसंख्या है। कोष्ठांकित संख्या के अतिरिक्त भी उपर्युक्त नामों का उल्लेख हुआ है।

११५५. इस सूची में पद्मपुराण में समागत स्थलों के नाम भी आ गये हैं जो पद्मपुराण का भौगोलिक अध्ययन करने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

४३), अरिंजयपुर (१३), अरिष्टपुर (२०, २६), अन्तिक (५), अर्धस्वर्गोत्कृष्ट (६), असितासमुद्रद्वीप (६), आवर्त (५, ६), आवली (५), आदित्यपुर (६, १५), आलोक (११, ८५), आरण (२०), आनत (२०), आन्ध्र (१०१), ईशावती (२०), उत्तरकुरु (३, १०८), उत्कट (५), ऊर्ध्वग्रैवेयक (२०), उज्जयिनी (३३), उशीनर (१०१), ऐरावत (३), कर्णकुण्डल (६, १६, ४१, ११२), कनकाभ (६), कनकपुर (१५), कमलसंकुल (२२), कम्बर (४१), कलिंग (३७, १०१), कंपनपुर (५५), कक्ष (१०१), कांचन (५, ६, ११०), कान्त (६), काम्पिल्यनगर (८), कापिष्ठ (२०), काकन्दी (२०, १०८), कालंजर (५६), काश्मीर (१०१), काल (१०१), काशीपुर (१०८), किन्नरगीत (५, १६), किष्किन्धापुर (१, ४, ५, १६, ४७), किष्कुपुर (६, ७, १६, ४६), किन्नर (७), किंकुलनगर (८), किष्कुप्रमोद (६), किन्नरगीतपुर (५५), कुमुदावली (५), कुम्भपुर (८), कुशाग्रनगर (२०, २१, ६८), कुण्डपुर (२०, २८), कुरुक्षेत्र (३१), कुसुमपुर (४८), कुशस्थल (५६) कूर्मपुर (४८), केलीकिल (५५), केरल (१०१), कौबेर (१०१), कोसल (१०१), कौतुकमंगल (७, २४), कौशाम्बी (२०, २१ ३४, ७८), कौमुदी (३६), क्रौंचपुर (४८), क्षेम (६, १०६), क्षेमा (२०), क्षेमांजलिपुर (३८), गन्धर्वगीत (५), गवीधुपद (२८), गन्धवती (४१), गगनतिलक (५५), गगनवल्लभपुर (५५), गजपुर (६३), गन्धर्वगीतपुर (५५), गान्धारी (३१), गान्धार (६४), ग्रैवेयक (२०), गोपुर (३३), गोशील (१०१), घोष (२१), चक्रवाल (५), चक्रपुर (२०, २६, ५५, ६४), चन्द्रपुर (५, ६), चम्पानगरी (८, २०, ६८), चन्द्रादित्य (८५), चारु (१०१), छत्राकारपुर (२०), ज्योतिपुर (१०, ६४), ज्योतिप्रभ (८), ज्योतिर्दण्डपुर (५५), जम्बूद्वीप (५, १७, ४३), जलधिध्वान (६), जाम्बूनद (४८), तट (५), ताम्रचूड़पुर (१३२), तिलकपुर (६४), तोम (५), तोयावली (६), त्रिपुर (२, ५५), त्रिजट (१०१), त्रिशिर (१०१), दरी (१०१), दधिमुख (५१, ५५), दशांगपुर (३३), दशारण्यपुर (३३), दर्भस्थल (२२), दारु (३०) द्वारिका (१०६), द्वापुरी (२०), दुर्ग्रह (५), दुर्लंघ्यपुर (१२), देवकुरु (३, ५३, १२३), देवोपगीत (४८, ८८), देवगीतपुर (६६), धान्यपुर (२०), नन्दन (३७), नभस्तिलक (६), नन्दीश्वर द्वीप (६), नन्द्यावर्तपुर (३७), नभोभानु (६), नाग (८५), नागपुर (२०), नित्यालोक (६), नैपाल (१०१), नैमिक (५५), नृत्यगीतपुर (५५), पद्मक (५), पद्मिनी (३६), पराजयपुर (५५), परिक्षोदरपुर (५५), पंचसंगम (७);

पाण्डुक (१२), पांचाल (३७), पुण्डरीक (१९, ६३), पुष्पोत्तर (२०), पुण्डरीकिणी (२०, २३), पुष्पान्तक (१, ७), पुष्कलावती (५, ३७), पृथुस्थान (४८), पृथ्वीपुर (५, २०), पोदनपुर (४, २०, २६, ८९), पौण्ड्र (३७), प्रतिष्ठपुर (६३, ६४), प्राणत (५, २०), प्रीतिकूर्मपुर (६), बंग (३७, १०१), बहुरव (९४), बहुनादपुर (५५), भरत (३, ७), भद्रिका (२०, ९८), भीरु (१०१), भूतरव (१८), मथुरा (१, २०, ८९), मगध (२, २८, ३७, ४३), मनोह्लाद (५, ६), मनोहर (५, ३०, ५५), मन्दरकुंज (६), मन्दर (१७), महेन्द्रनगर (१७), महापुरी (२०), महाशुक्र (२०), महार्घलपुर (५५), महेन्द्रोदय (६६), मलय (९४), मलयानन्दपुर (५५), महाविदेह (१३), मध्यमलोक (२८), मध्यमग्रैवेयक (२०), मयूरमाल (२७), माहिष्मती (९, २२), माहेन्द्र (२०), मालव (१०१), मार्तण्डाभपुर (५५), मिथिला (२०, २१, २३, २८, ३७), मुनिभद्र (३७), मृगांकनगर (१७), मृत्तिकावती (४८), मृणालकुण्डल (१०६), मेघपुर (६, ७), मेखल (१०१), यवन (१०१), यक्षपुर (७, ९४), यक्षगीत (७), यक्षस्थान (३९), योध (५), योधन (६), रम्यक (३), रजोवली (५), रथनूपुर (१, ६, ७, १९, २८, ८८, ९४), रत्नपुर (६, १३, ५५, ९३), रत्नद्वीप (५, ६, ५५), रत्नसंचय (५, १३), रत्नस्थलपुर (१२३), रन्ध्रपुर (२८), रामपुरी (१), राजगृह (२, २०, २५, ८९) राजपुर (११), राक्षस द्वीप (४३), रिपुंजयपुर (५५), रोधन (६), लंका (५, ६, ७, १०, २०, ४३), लक्ष्मीगीतपुर (५५), लान्तक (२०), वत्सनगरी (२०), बर्बर (१०१), वसततिलक (३९), वज्र-पजर (६), वाह्लिक (१०१), वाराणसी (२०, ४१, ९८), विजय (२०), विजयनगर (३७), विजयावती (१२३), विदेह (३, ५, २३), विघट (५, ६), विश्रवस (७), विशाखापद (१३), विनीता (२०, ८५), विदग्ध (२६, ३०), विशालपुर (५५), वीतशोका (२०), वेणुतट (४८), वेलन्धर (५४), वेघ (१०१), वैजयन्त (२०), वैजयन्तपुर (३९), वंशस्थपुर (४०), वंशस्थद्युति (३९), वंशस्थविलपुर (४०), शकट (५), शतार (५), शर्बर (१०१), शक (१०१), शतद्वार (१२), शशिपुर (३१), शशिस्थानपुर (५५), शतमन्यु (१२३), शशांक (८५), शशिच्छाय (९४), शाल्मली (१०८), शिवमन्दिरपुर (५५), शूरसेन (१०१), शोभापुर (५५), स्फुटतट (६), स्वयंप्रभ (७, ८), सर (६), समुद्र (५), सन्ध्या (५५), सन्ध्याकार सहस्रार (२०), सनत्कुमार (२०), सर्वारिपुर (३०), सर्वार्थसिद्धि (२०), साकेत (२०, ८३), साधुभद्र (३७), सांकाश्यपुर (२८), सिन्धुनद (८),

सिंहपुर (२०, ३१, ५५, ६४), सिद्धार्थ (३६), सद्‌ऋतु (५), सुवेल (५, ६), सुसीमा (२०), सुमाद्रिका (२०), सुमहानगर (२०), सुरपुर (२८), सुभद्र (३७), सुवीर (३७), सूर्योदय (८, ५५), सूर्यपुर (२०), सूर्याभपुर (५५) सुखपुर (५५), सौधर्म (२०), हरि (३, ५, ६), हरिक्षेम (१२३), हरिपुर (२०, २१, ५६), हनुरुह द्वीप (१, १७), हस्तिनापुर(४, २०, २१, ३१, ८६), हिडिम्ब (१०१), हैहय(५५), हेमपुर (६, १५, ५६), हैमवत (३) हिरण्यवृत (३), हंसद्वीप (५, ६), श्रावस्ती (६, २०, ९२), श्रीगृह (६४), श्रीगुप्तपुर (५५), श्रीपुर (४६, ८८), श्रीमन्तपुर (५५), श्रीमनोहरपुर (५५), श्रीविजयपुर (६४), श्रेयस्कर (६४)।

इन नगर-जनपद-ग्राम राष्ट्रों मे बहुतों का अस्तित्व इतिहास-सिद्ध है--यथा--माहिष्मती, मथुरा आदि।[११५६]

●

११५६. उपर्युक्त नदियों, पर्वतो और नगरादि के परिचय के लिए देखें--बलदेव उपाध्याय . 'पुराण-विमर्श' और डा० राजबली पाण्डेय : पुराण-विषयानुक्रमणी, प्रथम भाग।

दशम अध्याय

पद्मपुराण का जैन-रामकाव्य-परम्परा में स्थान

जैन रामकथा-परम्परा की चर्चा पहले की जा चुकी है। उसमें जैनाचार्य रविषेण के 'पद्मचरित' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। साहित्यिक सौंदर्य, धर्मप्रचार, दार्शनिक पृष्ठभूमि एवं सांस्कृतिक परिचय आदि सभी दृष्टियों से इसे महनीय ग्रन्थ माना जा सकता है। यह एक सफल पौराणिक-चरित-महाकाव्य है।

पद्मपुराण को देखकर इसके रचयिता के अगाध-पाण्डित्य, उर्वर मस्तिष्क और मर्मस्पर्शी चिन्तन के प्रति बरबस आश्चर्यान्वित हो जाना पड़ता है। भाषा पर कवि का अद्भुत अधिकार है। वेगवती धारा की भाँति अजस्र गति से वह पाठक को अपने साथ बहाए ले चलती है। उसमें पौराणिक आख्यान-रूपी आवर्त है, वक्रोक्ति-रूपी तरंग है, दीर्घसमास-रूपी नक्र हैं और सबसे बढ़कर हैं भावरूपी चटुल शफरों का नर्तन। शब्द और अर्थ की इतनी सुन्दर योजना भाग्यशाली कवियों की कृतियों में ही सम्भव है।

भाषा के साथ उसको गति देने वाला छन्दोविधान भी कम रमणीय नहीं हैं। विविध छन्दों को कवि ने चुना है और सफलता पूर्वक उनका प्रयोग किया है।

अलंकारों के प्रयोग में तो कवि सिद्ध-हस्त ही हैं। श्लेष, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक समासोक्ति, विरोधाभास आदि अलंकार 'अपृथग्यत्ननिर्वर्त्य,' रूप में इस महनीय कृति मे विराजमान है। 'अयोनि' और 'अन्यच्छायायोनि' उत्प्रेक्षाएँ, सांग-रूपक और उपमाएँ शताधिक संख्या में सहृदयों का मन मोह लेती हैं। भाव यह है कि कलापक्ष के अन्तर्गत आने वाले सभी तत्त्वों का पूर्ण पारिपाक इस कृति में दिखलाई देता है।

पद्मपुराण की रस-भाव-योजना भी बड़ी हृद्य है। अंगी होते हुए भी शान्त-रस शृंगार, वीर, रौद्र तथा अन्य रसों से पुष्ट होता हुआ सहृदयों के हृदयों को आवर्जित करता है। सम्वादों की गतिशीलता, प्रत्युत्पन्नमतिता, मार्मिकता, विषयसम्बद्धता, सुरुचिपूर्णता आदि विशेषताएँ इस ग्रन्थ को और भी रोचक बना देती हैं। प्रकृति-वर्णन बड़ी मनोरमता के साथ इस ग्रन्थ मे हुआ है। यों प्रकृति का

वर्णन उद्दीपन रूप में ही अधिक है परन्तु जहाँ कहीं कवि ने तल्लीन होकर वर्णन किया है वहाँ उसका आलम्बन रूप भी बड़ी मनोहरता से व्यक्त हुआ है।

पद्मपुराण के कवि की वर्णना-शक्ति बड़ी अद्भुत है। अप्रतिहत गति से उसकी प्रतिभा सभी वर्णनीय विषयों को वास्तविक रूप में प्रकाशित करती चली गयी है। एक बात को अनेक ढग से कहने का जितना बडा कौशल इस कवि को प्राप्त है उतना बहुत कम कवियों में देखने को मिलता है। ढाई सौ से अधिक वर्णन पद्मपुराण के सौन्दर्य को और भी कलान्वित किये हुए हैं।

पद्मपुराण का जैन धर्म के तत्त्वों के निरूपण एवं जैनधर्म के प्रचार के दृष्टि-कोण से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। दिगम्बर जैन सम्प्रदाय का यह धर्मग्रंथ है। भगवत्कुन्दकुन्द, उमास्वाति यतिवृषभ आदि जितने भी रविषेण के पूर्ववर्ती आचार्य हुए हैं उन सभी के ग्रन्थों का उपयोग करते हुए कृति ने जैनधर्म के सिद्धान्तों को विविध प्रसंगों में प्रस्तुत किया है।

पद्मपुराण में जैन-धर्म का दार्शनिक पक्ष भी उजागर हुआ है। इस ग्रन्थ की दार्शनिक पृष्ठभूमि पर एक स्वतन्त्र ग्रन्थ अपेक्षित है। एकादश पर्व के शास्त्रार्थ को समझने के लिए समग्र जैन-दर्शन का मनन अपेक्षित हो जाता है।

पद्मपुराण में हमें बौद्धिक दृष्टिकोण सर्वत्र दिखाई पड़ता है। सभी असभव या अतिमानुष घटनाओं की बौद्धिक व्याख्या इसमें प्रस्तुत की गयी है। रावण के कण्ठहार में उसके मुख का प्रतिबिम्ब पड़ने से उसका दशाननत्व, लागूल नामक हनूमान् का शस्त्र होना एवं राक्षस-वानरों का राक्षस एवं बन्दर न होकर विद्या-धरवशी राजा होना आदि कवि के तर्कसगत व्याख्या-दृष्टिकोण का परिचय प्रस्तुत करते हैं।

पद्मपुराण का तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से भी बहुत महत्व है। जैन एवं जैनेतर ग्रन्थो के सिद्धान्तो के प्रतिपादन में कवि ने किस प्रकार अन्यान्य ग्रन्थ-कारो को अपनी भाषा में प्रस्तुत किया है यह तुलना का एक रोचक एवं महत्त्व-पूर्ण विषय है।[११५७]

सुभाषितों और सूक्तियों का तो यह पुराण मानो भण्डार ही है। कवि का ज्ञान कितना व्यापक था, उसका अनुभव कितना विशाल था और उस अनुभव को अभिव्यक्त करने का उसका सामर्थ्य कितना अलोकसामान्य था यह योग्य है। परिशिष्ट (अ) मे हम रविषेण की सूक्तियों की एक सूची देंगे।

'पद्मपुराण' का सर्वाधिक महत्त्व उसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि मे सन्निहित है।

११५७. देखिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय मे 'रविषेण का लोकशास्त्र काव्या-वलोकन।'

तत्कालीन समाज, रीति-नीति, आचार-विचार, परम्पराओं और दृष्टिकोण को समझने के लिए यह पुराण जिस विपुल सांस्कृतिक अध्ययन की सामग्री को प्रस्तुत करता है वह इसकी महत्त्वपूर्ण देन है। इस सामग्री का उपयोग करने की आवश्यकता है। जिस प्रकार बाण की कादम्बरी और हर्षचरित सांस्कृतिक अध्ययन की दृष्टि से अध्ययन की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं उसी प्रकार रविषेण का 'पद्मपुराण' भी।

'पद्मपुराण' के अन्धकारपक्ष को भी प्रकाशित कर देना अनुचित न होगा। जहाँ धार्मिक उपदेशों एवं साम्प्रदायिक प्रचार की अति हो गयी है वहाँ सहृदय ऊबने लगता है। ऐसे स्थलों को साहित्यिक दृष्टि से अच्छा नहीं कहा जा सकता। अस्तु।

संक्षेप में पद्मपुराण का जैन-रामकथा-साहित्य में वही स्थान है जो ब्राह्मण-संस्कृत-साहित्य में वाल्मीकि-रामायण का और हिन्दी-वैष्णव-रामकथा-साहित्य में तुलसीकृत 'रामचरित मानस' का।

●

एकादश अध्याय

पद्मपुराण और रामचरितमानस

आचार्य रविषेणकृत पद्मपुराण या पद्मचरित और गोस्वामी तुलसीदासकृत रामचरितमानस **'महाकाव्य के पौराणिक चरितकाव्य'** भेद के उदाहरण है। पद्मपुराण और उसके कर्त्ता के विषय में विगत दस अध्यायों में लिखा जा चुका है। प्रस्तुत अध्याय में तुलसी के रामचरितमानस के साथ पद्मपुराण की विविध दृष्टियों से तुलना करने का प्रयत्न होगा। तुलसीदास के वैयक्तिक परिचय—जिसमें उनकी जन्म तिथि, जन्मस्थान, माता-पिता, जाति-पाँति, बाल्यकाल, गुरु, वैवाहिक जीवन तथा वैराग्य और देह-त्याग आदि का विवेचन हो—हमारी दृष्टि से प्रस्तुत तुलना में अनपेक्षित है। तुलसी की रचनाओं का परिचयात्मक विवरण देना भी सुधी पाठकों का उपहास करना है। नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज रिपोर्ट (१६०३, १६०४, १६०६, १६०७, १६०८, १६०६, १६१०, १६-११, १६१७, १६१८, १६२०, १६२१ तथा १६२२) तथा कुछ और प्रमाणो से तुलसी की अनेक रचनाओ का उल्लेख मिलने पर भी उनके प्रमाणिक ग्रन्थ १२ ही माने जाते हैं जिनका नामग्राह इस प्रकार किया जा सकता है–(क) **प्रारम्भिक रचनाएँ** (स० १६१६-२५) १ रामललानहछू, २. रामाज्ञा प्रश्न, (ख) **मध्य-कालीन रचनाएँ** (स० १६२६-१६४५) ३. जानकीमंगल, ४. रामचरितमानस, ५. पार्वतीमगल, (ग) **उत्तरकालीन रचनाएँ** (सं० १६४६-६०) ६. गीतावली, ७. विनयपत्रिका, ८ कृष्णगीतावली (घ) **अन्तिम और अपूर्ण रचनाएँ** (१६६१-८०) ६. बरवै, १०. सतसई दोहावली, ११. कवितावली एव १२. बाहुक। इन सभी रचनाओं में **'रामचरितमानस'** बहुचर्चित एवं महत्वपूर्ण है जो तुलसी की काव्य-प्रतिभा और लोकनायकता का चिरस्थायी कीर्तिस्तम्भ है।

तुलसीदास के पूर्व सस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओं में पर्याप्त राम-साहित्य लिखा जा चुका था। वाल्मीकि ने जिस राम-कथा का प्रणयन किया था उसमें कुछ परिवर्तन-परिवर्धन करके अनेक कवियों ने संस्कृत तथा अन्य भाषाओं

में काव्य, नाटक, चम्पू तथा गद्यकाव्य आदि की रचना की। इन रचनाओं का परिचय डा० कामिल बुल्के ने अपने शोध ग्रन्थ 'रामकथा' में दिया है। इसके अतिरिक्त बौद्धों और जैनों ने भी रामकथा-सम्बन्धी कृतियां भारतीय साहित्य को समर्पित की हैं। जैन-रामकाव्य-परम्परा का परिचय प्रस्तुत ग्रन्थ के द्वितीय अध्याय में दे दिया गया है।[११५८] बौद्धों ने ईस्वी सन् के कई शताब्दियों पूर्व राम को बोधिसत्त्व मानकर 'दशरथ जातकम्', 'अनामकं जातकम्', तथा 'दशरथकथानकम्' आदि की रचना की। किन्तु तुलसी पर बौद्ध एवं जैन रामकाव्य-परम्परा का प्रभाव नही के बराबर पड़ा। वाल्मीकि की परम्परा ने ही उन्हें प्रधानतया प्रभावित किया है। इस परम्परा में कालिदास कृत रघुवंश प्रवरसेन द्वारा महाराष्ट्री प्राकृत में लिखित 'रावणवह' अथवा ''सेतुबन्ध', भट्टि द्वारा रचित 'रावणवध' अथवा 'भट्टिकाव्य', कुमारदासकृत 'जानकीहरण' अभिनन्द कृत 'रामचरित', क्षेमेन्द्रकृत 'रामायणमंजरी' साकल्यमल्ल द्वारा रचित 'उदारराघव' आदि महाकाव्य, भासकृत 'प्रतिमानाटक' और 'अभिषेकनाटक', भवभूतिकृत 'महावीरचरित' और 'उत्तररामचरित', दिङ्नागकृत 'कुन्दमाला', मुरारिकृत 'अनर्घराघव', राजशेखरकृत 'बालरामायण', मधुसूदन अथवा दामोदर मिश्र से सम्बद्ध 'महानाटक', मायुराजकृत 'उदात्तराघव', शक्तिभद्र कृत 'आश्चर्यचूडामणि', जयदेवकृत 'प्रसन्नराघव', हस्तिमल्लकृत 'मैथिली-कल्याण', सोमेश्वरकृत 'उल्लास राघव', सुभट्टकृत 'दूतांगद', एवं भास्कर-भट्टरचित 'उन्मत्तराघव' आदि नाटक, सन्ध्याकरनन्दिकृत 'रामचरित', धनञ्जयकृत 'राघव पाण्डवीय', माधवभट्टकृत 'राघवपाण्डवीय' तथा हरदत्त सूरिकृत 'राघवनैषधीय' आदि श्लेषकाव्य, सूर्यदेवकृत 'रामकृष्णविलोमकाव्य' एवं इसके अनन्तर रचे गये दो 'यादवराघवीय' आदि विलोमकाव्य, कृष्णमोहनकृत 'रामलीलामृत', तथा वेंकटेशकृत 'चित्रबन्धरामायण' आदि चित्रकाव्य, वेंकटेश कृत 'हंससन्देश' अथवा 'हंसदूत', रुद्रवाचस्पतिकृत 'भ्रमरदूत', वासुदेवकृत 'भ्रमरसन्देश', आदि दूतकाव्य तथा गीतगोविन्द के अनुकरण पर रचित 'गीत-राघव', 'जानकीगीता' एवं 'संगीत-रघुनन्दन' आदि शृंगारिक खण्डकाव्य एवं इनके अतिरिक्त और अनेक रचनाएँ आती हैं जो साहित्यिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कही जा सकती हैं। द्रविड भाषाओं में भी तुलसी से पूर्व रामकथा सम्बन्धी काव्य रचे जा चुके थे जिनमें कम्बनकृत 'तमिलरामायण', (तमिल) 'रंगनाथरामायण', 'भास्कररामायण', (तेलुगु), 'रामचरित' (मलयालम), आदि प्रमुख हैं। आधु-

११५८. देखिये प्रस्तुत ग्रन्थ, पृ० ५३-५८।

निक आर्य भाषाओं में भी तुलसी से पूर्व कुछ राम काव्यों की रचना हो चुकी थी जिनमें कृत्तिवास की 'रामायण', (बंगला) माधवकन्दलीकृत वाल्मीकि रामायण का पद्यानुवाद (असमिया) एवं भालण का 'सीतास्वयंवर' अथवा 'राम-विवाह', एकनाथ कृत 'भावार्थरामायण', (मराठी) आदि महत्त्वपूर्ण हैं। विदेशों में भी तुलसी से पूर्व राम-कथा से सम्बद्ध कुछ कृतियां रची जा चुकी थीं।

भाव यह है कि आदिकवि वाल्मीकि की रामायण का प्रभाव न केवल संस्कृत की रचनाओं पर अपितु संस्कृतेतर भारतीय भाषाओं की रचनाओं पर भी पड़ा एवं अनेक ग्रन्थ-रत्नों की रचना होती रही जो तुलसी से पूर्व भी हुई एवं तुलसी के बाद भी। तुलसी के बाद के हिन्दी रामकाव्य का परिचय देना हमारे लिए प्रासंगिक नहीं है। हिन्दी में तुलसी से पूर्व रामकाव्य अधिक समृद्ध नहीं है। चन्दवरदाई कृत 'पृथ्वीराजरासो' के दूसरे 'समय' में दशावतार-कथा के अन्तर्गत रामकथा विषयक लगभग सौ छन्द, सम्वत् १३४२ में भूपति द्वारा लिखित 'रामचरितरामायण', सम्वत् १३७५ के लगभग स्वामी रामानन्द द्वारा रचित 'रामार्चनपद्धति', सम्वत् १५३५ में उत्पन्न सूरदास द्वारा रचित 'सूरसागर' के नवम स्कन्ध में आये रामकथा-विषयक लगभग १५० पद आदि इस हिन्दी रामसाहित्य के अन्तर्गत आते हैं।

तुलसी ने यथासम्भव उपलब्ध राम-साहित्य का अध्ययन-मनन करके उसमें अपनी प्रतिभा का योगदान करते हुए रामचरितमानस की रचना की। रामचरितमानस की दशाधिक प्राचीन प्रतियों की चर्चा लेखकों ने की है।

इन प्राचीन प्रतियों में लिखावट भेद और पाठभेद बराबर मिलते हैं। गोस्वामी जी ने अपनी मृत्यु से ४९ वर्ष पूर्व 'मानस' की रचना कर डाली थी। सम्भव है कि उन्होंने अपने जीवनकाल में ही इस ग्रन्थ में कुछ परिवर्तन या संशोधन किये हों। यद्यपि इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता फिर भी मानस की ऐसी प्रतियां भी उपलब्ध हैं जिनके विषय में हमें मौलिकता का विश्वास करना चाहिए। उन प्रतियों में नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा सम्पादित प्रति, रामदास गौड़ द्वारा सम्पादित प्रति, पं० विजयानन्द त्रिपाठी और डा० माताप्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित प्रतियाँ अधिक विश्वसनीय कही जा सकती हैं। गीता प्रेस, गोरखपुर ने भी मानस की लाखों प्रतियाँ मुद्रित की हैं। हमने गीता प्रेस के पाठ को ही अध्ययन का आधार बनाया है।

इससे पूर्व कि रविषेण और तुलसी के काल की परिस्थितियों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाय और 'पद्मपुराण' और 'रामचरितमानस' विषयवस्तु, पात्र तथा चरित्र-चित्रण, भावसम्पदा, कला-कौशल, धर्म और संस्कृति की दृष्टि से

तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुत की जाय, रामचरितमानस का संक्षिप्त परिचय देना प्रासंगिक समझा जा रहा है।

रामचरितमानस : संक्षिप्त विवेचन

रामकाव्य-परम्परा में तुलसी के रामचरितमानस का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। 'मानस' की गम्भीरता के अनुसार ही गोस्वामी जी ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में उसकी विशद भूमिका बाँधी है। इस रचना के उपक्रम में सती-मोह है और उपसंहार में गरुड़-मोह है। पार्वती और गरुड़ की शंकाओं का समाधान ही एक प्रकार से इस ग्रन्थ का प्रतिपाद्य है। शिव और काकभुशुण्डि—दोनों ही क्रमशः पार्वती और गरुड़ के समक्ष नरावतार में राम की ब्रह्मता का प्रतिपादन करते हैं और दोनों ही ज्ञान के आचार्य होकर भी भक्ति का प्रतिपादन करते हैं।

कथा कहने से पूर्व कवि ने अनेक प्रकार की वन्दनाओं का क्रम बाँधा है। वाणी-विनायक, भवानी-शंकर, कवीश्वर-कपीश्वर और सीता-राम की वन्दना के बाद गणेश, विष्णु, शिव और गुरु की वन्दना है। फिर ब्राह्मणों, वैष्णवों तथा खलों की भी वन्दना की है। इसके पश्चात् देव, दनुज, नर, नाग, खग, प्रेत, पितर, गन्धर्व, किन्नर और रजनीचरों की वन्दना है। साथ ही ८४ लाख योनियों के जीवों की भी वन्दना की है। इस विस्तृत वन्दना का कारण बताते हुए कवि कहता है—'निज बुधि बल भरोस मोहिं नाहीं। तातें विनय करहुँ सब पाहीं॥'[११५१] इसी प्रसंग में कवि ने राम-चरित का विशदता और अपनी बुद्धि की क्षुद्रता की ओर भी संकेत किया है। फिर रामकाव्य के कवियों को प्रणाम किया है। साथ ही वाल्मीकि, देव, ब्रह्मा, विबुध विप्र, बुध, ग्रह, शारदा, सुरसरिता, महेश-भवानी, अवधपुरी के नर-नारी, कौशल्या, दशरथ, परिजनसहित विदेह, राम-भरत, लक्ष्मण-शत्रुघ्न, हनुमान् जी तथा बन्दर-समाज आदि सभी को प्रणाम किया है। फिर राम-नाम की महिमा का वर्णन है।

राम-कथा के अनेक वक्ता-श्रोताओं में गोस्वामी जी ने अपने पूर्व के तीन वक्ता-श्रोताओं का उल्लेख किया है—शिव-पार्वती, काकभुशुण्डि-गरुड, याज्ञवल्य-भरद्वाज। ये ही वक्ता-श्रोता पूर्व में रहे है। चौथे वक्ता गोस्वामी जी स्वयं हैं और श्रोता सन्त लोग। रामावतार के प्रसंग के लिए ही उन्होंने जय-विजय कथा तथा नारद-शाप की कथा प्रस्तुत की है। प्रतापभानु-प्रसंग भी रामावतार का एक हेतु ही है। दानवों के अत्याचार और देवों की उत्पत्ति के साथ ही कवि राम

११५१. मानस, बालकाण्ड

जन्म पर आ जाता है।

मानस का कथासार : 'रामचरितमानस' में वर्णित **रामकथा का अत्यन्त संक्षिप्त सार** इस प्रकार है—"अयोध्यापति महाराज दशरथ की तीन रानियाँ थी किन्तु किसी भी रानी से कोई सन्तान न थी। वृद्धावस्था में कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी-रानियों से राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न नामक चार पुत्र हुए। राम ज्येष्ठ पुत्र थे। उनका विवाह विदेहराज जनक की पुत्री सीता से हुआ था। कुछ समय पश्चात् राजा दशरथ ने अयोध्या के राजसिंहासन पर राम को अभिषिक्त करना चाहा परन्तु ठीक समय पर कैकेयी ने वरदान माँगकर विघ्न कर दिया। राम वन को चले गये। सीता और लक्ष्मण भी उनके साथ ही अयोध्या छोड़कर चल पड़े। कैकेयी राम के स्थान पर भरत का अभिषेक करना चाहती थी परन्तु भरत ने ही यह बात स्वीकार नहीं की। कुछ समय बाद राम द्वारा समझाये जाने पर भरत ने राज्य-कार्य सँभाल लिया। दुर्भाग्यवश लंका का राजा रावण वन से सीता को चुराकर ले गया। राम-लक्ष्मण उसकी खोज करने निकले। इसी बीच सुग्रीव और हनुमान आदि से उनका परिचय हुआ। इन्हीं की सहायता लेकर राम ने लंका पर चढ़ाई कर दी। अन्त मे राम ने राक्षसों का संहार करके सीता को प्राप्त किया। अन्त में अयोध्या लौटकर राम सिंहासन पर अभिषेक हुए और प्रजा की रक्षा करते हुए शासन कार्य करने लगे।

सात सोपान . कवि ने उपर्युक्त कथा को **सात सोपानों** द्वारा प्रस्तुत किया है। मानस-रूपक का वर्णन करते हुए कवि ने **'सप्त प्रबंध सुभग सोपाना'** कहा है। **'आदिरामायण'** मे 'सोपान' न होकर **'काण्ड'** ही हैं। सम्भव है प्रारम्भ में ये 'काण्ड' भी न रहे हों एवं बाद मे राम के अयन (पर्यटन) के स्थानों को आधार मानकर इनकी कल्पना की गयी हो। पहले तो स्थानपरक ये पाँच ही 'काण्ड' बने—अयोध्या-काण्ड, अरण्य-काण्ड, किष्किन्धाकाण्ड और लंकाकाण्ड। बाद मे सम्पूर्ण चरित को ही काण्डान्तर्गत विभक्त करने के हेतु 'बालकाण्ड' नामक दो काण्ड और जोड दिये गये। आजकल तो ये सात काण्ड सर्वमान्य बन गये हैं। नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा सम्पादित रामचरितमानस में प्रथम दो सोपानों का कोई नाम नही लिखा गया है; तृतीय सोपान का नाम **'विमल-वैराग्य-सम्पादन'**, चतुर्थ का **'विशुद्ध-संतोष-सम्पादन'**, पाँचवें का **'ज्ञान-सम्पादन'**, छठे का **'विमल-विज्ञान-सम्पादन'** और सातवें का **'अविरल-हरिभक्ति-सम्पादन'** नाम लिखा गया है। श्री रामदास गौड़ द्वारा सम्पादित प्रति में प्रथम सोपान को **विमल-संतोष-सम्पादन'** और द्वितीय को **'विमल-विज्ञान-वैराग्य-सम्पादन'** नाम दिये गये हैं। इन्हीं सात सोपानों में कवि ने रामकथा का सम्पूर्ण रूप प्रस्तुत किया है। इन

सोपानों में आध्यात्मिक दृष्टि से कथाक्रम के साथ भगवान् राम के चरणों तक पहुँचने का एक क्रम भी बराबर चलता दिखाई देता है।

कथारोहण: प्रथम सोपान में, कवि ने विविध विनतियों के बाद याज्ञवल्क्य-भरद्वाज-संवाद से राम-जन्म की ओर संकेत कराया है। रावण के जन्म के साथ ही उसके लंकाधिपति होने का वर्णन किया है। यथासमय राज कुमारों के नाम-करण, चूड़ाकरण, उपनयन और विद्यारंभ आदि संस्कारों का वर्णन किया है। फिर विश्वामित्र आगमन, ताड़का-वध, धनुष-यज्ञ और चारों भाइयों के विवाह का वर्णन किया है। अन्त में उनके अयोध्या लौटकर आनन्दपूर्वक रहने के वर्णन के साथ ही प्रथम सोपान की समाप्ति होती है।

द्वितीय सोपान का आरंभ राम के राज्याभिषेक की धूमधाम से होता है। कैकेयी के वर माँगने पर राम के राज्याभिषेक में विघ्न होता है। राम वनगमन अत्यन्त मार्मिक रूप से चित्रित किया गया है। इसके पश्चात् भरत का ननिहाल से आगमन होता है। वे सिंहासन को अस्वीकृत कर राम से चित्रकूट में मिलने जाते हैं। राम वापिस आने को तैयार नहीं होते। तब भरत नन्दिग्राम में राम के एक प्रतिनिधि के रूप में राजकार्य का संचालन करते हैं तथा अपना मन राम के चरणों में अर्पित किये रहते हैं।

तृतीय सोपान में—राम शरभंग के आश्रम में जाते है। विराध का वध होता है। ऋषि-अस्थियों को देखकर राम 'निसिचर हीन करौं महि'—आदि प्रतिज्ञा करते हैं। पर्णकुटी-निर्माण, जटायु-मिलन, शूर्पनखा की आसक्ति, एव विरूपी-करण, खरदूषण-वध, रावण द्वारा राम से विरोध का निश्चय, सीताहरण, मारीच-वध, जटायु-संस्कार आदि इसी सोपान के अन्तर्गत आते है। राम के पम्पा सरोवर पहुँचने पर वह सोपान समाप्त हो जाता है।

चतुर्थ सोपान में, पम्पा सरोवर से राम ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँच जाते हैं। हनुमान के माध्यम से सुग्रीव से उनकी मित्रता होती है। बालि-सुग्रीव का युद्ध, बालि-वध, सुग्रीव का राज्याभिषेक, प्रवर्षणगिरि पर वर्षाकाल में निवास, शरदा-गम पर हनुमान आदि द्वारा सीतान्वेषण-प्रस्थान, सम्पाति द्वारा सीता के लंका में होने की सूचना आदि वर्णनो के साथ आगे बढ़ता हुआ यह सोपान जाम्बवान् द्वारा प्रेरणा प्राप्त करके लंका जाने को प्रस्तुत हनुमान को जाम्बवान के परामर्श के साथ समाप्त हो जाता है।

पंचम सोपान में, हनुमान सुरसा का आशीः प्राप्त करते और सिन्धुवासिनी निशिचरी (सिंहिका) का वध करते हुए लंका में प्रविष्ट होते हैं। उनकी विभीषण से भेंट होती है। उसी की बतायी हुई युक्ति से उन्हें सीता का दर्शन होता है।

हनुमान द्वारा वृक्ष पर बैठकर रावण की धमकियाँ देखना, त्रिजटा द्वारा सीता का आश्वासन, हनुमान द्वारा मुद्रिका गिराना, राम का सन्देश देना, वन उजाड़ना, अक्षकुमार का वध करना, बन्दी होना, रावण द्वारा पूँछ में आग लगवा देना, हनुमान द्वारा लंका-दहन एवंसीता की चूड़ामणि लेकर राम को सन्देश देना, राम की लंका पर चढ़ाई, विभीषण-राम-मिलन, राम द्वारा विभीषण को 'लंकेश' कह-कर उसका अभिषेक करना, समुद्र द्वारा मार्ग-दान आदि विस्तृत एवं मार्मिक प्रसंगों के वर्णन के साथ यह सोपान समाप्त हो जाता है।

षष्ठ सोपान में, राम सेतु से अपनी सेना उस पार लंका में उतार देते हैं। रावण को क्षणिक भय होता है। मन्दोदरी और प्रहस्त आदि उसे समझाते हैं। राम सुवेल-शिखर पर शिविर लगा देते हैं। रावण के छत्र और मन्दोदरी के ताटंकों को वे अपने बाण से वही बैठे-बैठे गिरा देते है। फिर अंगद का दौत्य, रावण-अपमान, राम-रावण-सेनाओं में युद्ध, लक्ष्मण-मूर्च्छा, सुषेण वैद्य द्वारा उपचार, कुम्भकर्ण-वध, मेघनाद-वध, रावण-वध, सीता-मिलन, अमृत-वर्षा और मृत वानर-भालुओं का जीवित होना, विभीषण का राज-तिलक होना, पुष्पक विमान द्वारा राम-लक्ष्मण और सीता का अयोध्या लौटना, हनुमान के द्वारा भरत को उनके आगमन की सूचना आदि के साथ यह सोपान समाप्त हो जाता है।

सप्तम और अन्तिम सोपान में, अयोध्या की जनता राम-लक्ष्मण और सीता आदि का स्वागत करनी है। राम का राज्याभिषेक होता है। कुछ दिनों के पश्चात् राम अन्य सेवकों को विदा करके हनुमान को अपने पास रहने देते हैं। फिर राम-राज्य का वर्णन है। इसके पश्चात् कवि ने शिव के द्वारा पार्वती को, काक भुशुण्डि और गरुड़ का प्रसंग कहलाया है। इसी प्रसंग में कलि-धर्म-निरूपण, ज्ञान भक्ति का अन्तर और समन्वय एवं बाद में सभी सवादों का उपसंहार है। गरुड़ ने काक-भुशुण्डि को और पार्वती ने शिव को अपने राम-सम्बन्धी सन्देहनाश की सूचना दी है। फिर कवि के मानसिक विश्राम का उल्लेख है। अन्त में कवि ने राम से अज्ञान-शान्ति की प्रार्थना की है और संस्कृत के दो श्लोकों में रामचरितमानस मे भक्तिपूर्वक अवगाहन करने का फल बताया है। इस प्रकार रामचरित की पूर्ति पर सप्तम सोपान समाप्त हो जाता है।

मानस का आधार : रामकथा का आधार लेकर केवल भारत में ही नही, अपितु विश्व-भर में विपुल साहित्य की सृष्टि हुई है, परन्तु सम्पूर्ण राम-साहित्य में गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरितमानस' का स्थान सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। इस ग्रंथ में वर्णित विषय के प्रधान रूप से दो ही ग्रन्थ आधार माने जाते हैं:— 'वाल्मीकिरामायण' और 'अध्यात्मरामायण'। कवि ने ग्रन्थारम्भ में ही अपने

ग्रंथ के आधार की सूचना निम्नलिखित श्लोक के द्वारा दे दी है:—

"नानापुराणनिगमागमसम्मतं य—

रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।

स्वांतः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा—

भाषानिबन्धमतिमंजुलमातनोति॥"[१२६०]

यहाँ **'क्वचिदन्यतोऽपि'** ध्यान देने योग्य है। नाना-पुराण, निगम, आगम, रामायण आदि तो इसके आधार हैं ही, साथ ही कुछ और भी—अनेक काव्यादि-इसके आधार रूप में अवस्थित है। 'मानस' के कुछ प्रकरणों को सामने रखकर यह आधार देखा जा सकता है, यथा :—

'शिव ने अपने मानस में रामकथा को रचकर रख छोडा और समय पाकर पार्वती को सुनाया—यह कथा **'महारामायण'** और **'रामायणमाला'**, के समान है। शील निधि राजा के यहाँ स्वयम्वर की कथा **'रामायणचम्पू'** के समान, नारद-मोह-वर्णन **'शिवमहापुराण'** के सृष्टि-खण्ड (अध्याय ३-४) के समान, रावण-कुम्भकर्ण-अवतार' **'भागवतमहापुराण'**, **'शिवमहापुराण'**, और **'आनन्दरामायण'** के समान उल्लिखित है। प्रतापभानु, अरिमर्दन और धर्मरुचि के रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण होने की कथा **'अगस्त्यरामायण'** और **'मंजुलरामायण'** के अनुसार वर्णित है। मनु-शतरूपा की तपस्या, पूर्णब्रह्म से पुत्र रूप में अवतरित होने का वरदान **'संवृतरामायण'** के अनुसार, पुत्रेष्टि यज्ञ, देवताओं की विष्णु से अवतार की प्रार्थना, पायस प्राप्तकर रानियों को वितरण, देवताओं का वानर आदि योनियों मे जन्म, राम का अपनी माता को विराट् रूप दिखलाना तथा उनकी बाल-लीला का कुछ वर्णन, विश्वामित्र-आगमन तथा राम-लक्ष्मण की यज्ञ रक्षा के लिए याचना का वर्णन, **'अध्यात्मरामायण'** के अनुसार गोस्वामी जी ने किया है। अहल्योद्धार वर्णन, **'नृसिंहपुराण,' 'स्कन्दपुराण,' 'पद्मपुराण'**, **'आनन्दरामायण'** और **'रघुवंश'** के अनुसार, गिरिजा-पूजन, सीताराम के पारस्परिक आकर्षण का वर्णन, जानकी विवाह और जानकीहरण **'स्वयंभू रामायण'** के अनुसार, परशुराम-प्रकरण **'महावीरचरित'**, **'बालरामायण'**, **'प्रसन्नराघव'** और महानाटक के अनुसार वर्णित है। रामराज्याभिषेक की तैयारी, वसिष्ठराम-वार्तालाप, राज्याभिषेक के विघ्न आदि और राम-वन-गमन **'अध्यात्मरामायण'** के अनुसार, कैकेयी का दोष सरस्वती के के ऊपर होने का वर्णन, **'आनन्दरामायण'** के अनुसार, रामवनगमन के प्रसंग में केवट-संवाद **'आनन्दरामायण'**, **'अध्यात्मरामायण'** और **'आनन्दरामायण'** के अनुसार, राम के चरण धोने का वर्णन **'सूरसागर'** के अनुसार, प्रयाग-माहात्म्य, भर-

१२६०. मानस, बालकाण्ड, मंगलाचरण, ७।

द्वाज-पहुनाई '**सुब्रह्मरामायण**' के अनुसार, ग्रामवधूटियों का स्नेह-कथन और उनका पश्चात्ताप-वर्णन '**सौपद्मरामायण**' के अनुसार, वाल्मीकि-मिलन और चित्रकूट-निवास-वर्णन '**रामायणमणिरत्न**' और '**अध्यात्मरामायण**' के अनुसार, सुमंत्र के अयोध्या लौटने का वर्णन उनका विलाप एवं दशरथ-मरण, **अध्यात्मरामायण**' के अनुसार, भरत-शपथ, भरत-विलाप, राम को लौटाने की तत्परता, निषाद-रोष, निषाद-भरत-संवाद और लक्ष्मण-रोष, आदि कथाएँ '**दुरन्तरामायण**' के अनुसार हैं। भरत-चित्रकूट-यात्रा' '**अध्यात्मरामायण**' के अनुसार, जनक-चित्रकूट-आगमन '**श्रवणरामायण**' के अनुसार, जयन्त की कथा '**देवरामायण**' के अनुसार, अत्रि-राम-मिलन, अनसूया-सीता-संवाद एवं नारी-धर्म-निरूपण, '**रामायणमणिरत्न**' के अनुसार, विराधवध, शरभंग का शरीरत्याग, सुतीक्ष्ण का प्रेम एवं राम-अगस्त्य-मिलन, **अध्यात्मरामायण**' के अनुसार, दण्डकारण्य पवित्र करते हुए राम के पंचवटी आगमन और निवास की कथा '**वाल्मीकिरामायण**' के अनुसार, गृध्रराज जटायु की मित्रता, लक्ष्मण को उपदेश, शूपनखा को दण्ड, खरदूषण-वध, शूर्पनखा का रावण के पास आगमन, राम का मर्म समझना, रावण-मारीच-सम्वाद, सीता का अग्नि-प्रवेश, मायामयी सीता की रचना, रावण द्वारा सीता-हरण और मारीच-वध, '**अध्यात्मरामायण**' के अनुसार है। सीता-विलाप, जटायु-महायता, उसकी मुक्ति का वर्णन, कबन्ध-वध, रामशबरी-भेंट, नवधा-भक्ति-वर्णन, '**मृदुलरामायण**' के अनुसार, शबरी की मुक्ति और पम्पासर-गमन की कथा '**अध्यात्मरामायण**' के अनुसार, राम-नारद-संवाद, '**सौपद्मरामायण**' के अनुसार, राम-हनुमान-मिलन, सुग्रीव-मैत्री, बालि-वध, सुग्रीव-राज्याभिषेक, राम-लक्ष्मण का प्रवर्षण-निवास, सुग्रीव द्वारा वानरों को सीता की खोज के लिये भेजा जाना, विवर-प्रवेश और सम्पाति-मिलन, '**अध्यात्मरामायण**' के अनुसार, समुद्र-तीर पर अंगद-विलाप एवं वानरों का सम्भाषण, '**दुरन्तरामायण**' के अनुसार, समुद्र-सन्तरण, लंका-प्रवेश, सीता-धैर्य-प्रदान, वन उजाड़ना, लंका-विध्वंस एवं वहाँ से वापस लौटकर सीता-संदेश का राम से कथन, '**अध्यात्मरामायण**' के अनुसार, सेना सहित राम का समुद्र के किनारे आगमन, सेतु-बन्धन, विभीषण-मिलन, और उसका अभिषेक '**अध्यात्मरामायण**' के अनुसार, मन्दोदरी का समझाना, '**सुवर्चसरामायण**' के अनुसार अंगद का दूतकार्य '**वाल्मीकिरामायण**' के अनुसार, राक्षस-वानर-संग्राम, कुम्भकर्ण-वध मेघनाद-लक्ष्मण-युद्ध, लक्ष्मण का शक्ति-निहत होना, हनुमान द्वारा संजीवनी लाना, उपचार से लक्ष्मण का स्वस्थ होना, '**अध्यात्मरामायण**' और '**सुवर्चसरामायण**', के अनुसार, मेघनाद-वध, रावण-यज्ञ-विध्वंस, राम-रावण-युद्ध, रावण के नाभि-प्रदेश में अमृत, रावण-वध, विभीषण का राज्याभिषेक,

सीता की अग्नि-परीक्षा, '**अध्यात्मरामायण**' के अनुसार, वेद-शिव-इन्द्र-ब्रह्मा द्वारा राम की स्तुति, '**रामायणमणिरत्न**' के अनुसार, पुष्पकारूढ़ राम का लक्ष्मण-सीता सहित, प्रमुख वानरों के साथ अयोध्यागमन, राज्याभिषेक, अनेक प्रकार नृपनीति का वर्णन, '**अध्यात्मरामायण**' के अनुसार, काकभुशुण्डि-कथा, '**भुशुण्डि-चरित**', '**भुशुण्डिरामायण**' और '**सत्योपाख्यान**' के अनुसार एव शिव के मराल वेश में नीलगिरि पर रामकथाश्रवण का वृतान्त '**रामायणमहामाला**' के अनुसार वर्णित हैं।'

कथावस्तु योजना में कवि-कौशल : उपर्युक्त विवेचन से गोस्वामीजी की मधुकरी वृत्ति और गम्भीर अध्ययन का एक साथ परिचय मिलता है। घटनाओं क्रमबद्ध सजाने और उन्हे मौलिक रूप प्रदान करने की गोस्वामी जी में अद्भुत क्षमता दिखाई देती है।' '**अध्यात्मरामायण**' और '**आदिरामायण**' आदि ग्रन्थो से कथासूत्र लेकर भी उन्होंने यथासमय उसमें परिवर्तन किया है और इस प्रकार कथाक्रम में एक आकर्षक विशेषता आ जाती है। कुछ घटनाओ के हेर-फेर से आने वाली नवीनता का संकेत इस प्रकार किया जा सकता है:—

(१) कवि ने रामसीता का साक्षात्कार विवाह से पूर्व पुष्पवाटिका में ही कराया है। यह उन्होने 'प्रसन्नराघव' के अनुसार ही किया है। इससे कवि को पूर्वानुराग चित्रण करने का पर्याप्त अवसर मिल गया है। इस मिलन में गोस्वामी जी ने मर्यादा का कितना ध्यान रखा है कि मिलन एकान्त में न दिखाकर सखियो के साथ रखा हैं। राम के साथ लक्ष्मण भी है। इसका भी कवि ने ध्यान रखा है। यहाँ प्रेम अंकुरित हुआ है, छलका नही है।

(२) धनुर्भंग की घटना भी कवि ने राजसभा में ही दिखाई है। इससे नाटकीयता का वातावरण उत्पन्न करने में पर्याप्त सहायता मिली है। वन्दीजनो द्वारा जनक की प्रतिज्ञा की घोषणा, राजाओं की असफलता, जनक की निराशा, लक्ष्मण का आवेश और धनुर्भंग से पूर्व उनके द्वारा शेष तथा कच्छप को सावधान करने में नाटकीय आनन्द आ जाता है। इससे कवि को वातावरण की सृष्टि और उसका वर्णन करने का अवकाश मिल सका है।

(३) परशुराम को धनुर्भंग के पश्चात् राजसभा मे ही बुलाया है, लौटती बार बीच मार्ग में नही। इससे राम-परशुराम-सवाद और विशेषरूपेण लक्ष्मण-परशुराम-संवाद को अवकाश मिल गया है। इस घटना से कवि ने एक ओर तो मनोविज्ञान के चित्रण का अवसर ढूँढ निकाला है। दूसरी और लक्ष्मण और परशुराम के संवाद द्वारा एक दर्पपूर्ण ऋषि को विजित दिखाकर उपस्थित राजाओं को लक्ष्मण-राम के प्रति विशिष्ट भावना बनाने के लिए विवश भी किया है।

(४) भरत के राम से मिलने के लिए चित्रकूट जाते हुए निषादराज के भिड़ जाने की तैयारी का वर्णन तो तुलसीदास का एकदम मौलिक प्रकरण है। अवसर की अनुकूलता तथा मनोविज्ञान—दोनों ही इस घटना की स्वाभाविकता का प्रमाण देते हैं। इस घटना का निर्वाह अत्यन्त कुशलता से किया गया है।

(५) राम के चित्रकूट में निवास के समय कवि ने वहाँ जनक को भी पहुँचाया है। भला राम और सीता वनवास का कष्ट भोगें और पिता जनक पर इसका कुछ भी प्रभाव न हो—यह कैसे सम्भव था? कवि ने इसका अवसर निकाल कर जनक को चित्रकूट के सारे कार्यक्रम में उपस्थित दिखाया है। इससे जनक के मन में पुत्री सीता के चरित्र की एक सन्तोषजनक तस्वीर खिंचती है। यह गृहस्थ-जीवन का एक मार्मिक चित्र है।

(६) पम्पासर पर नारद को राम के समीप पहुँचाकर कवि ने ग्रन्थारम्भ में वर्णित नारद-मोह की कड़ी को जोड़ दिया है। यह कवि की प्रबन्ध-कुशलता ही है।

(७) लंका जाने पर हनुमान से विभीषण की भेंट का वर्णन करना भी विभीषण की रामभक्ति के परिचय के लिए अत्यन्त आवश्यक था। कवि ने भविष्य की योजनाओं का श्रीगणेश हनुमान्-विभीषण-मिलन के द्वारा कर दिखाया है।

(८) हनुमान के समक्ष सीता-त्रिजटा-संवाद कराकर कवि ने सीता की प्रेम-विह्वलता का सुन्दर परिचय कराया है। हनुमान को इस परिस्थिति का पूर्ण परिचय देने के लिए यह बुद्धिमत्तापूर्ण आयोजन कहा जा सकता है।

(९) मनोवैज्ञानिक आधार पर कवि ने युद्ध से पूर्व सुवेल-शिखर, चन्द्रोदय, रावण के अखाड़े आदि के मनमोहक चित्र उपस्थित किये है। ये विरोधी भावनाएँ भी हमारी कल्पना को आनन्द प्रदान किया करती हैं। साथ ही इनसे परिस्थितियों में गम्भीरता भी आ जाती है।

(१०) शिष्ट-परम्परा के अनुसार तथा राजनीति के नियमों के अनुसार अंगद को युद्ध से पूर्व दूत बनाकर रावण के पास भेजा गया है। यह भी एक महत्त्वपूर्ण आयोजन है। परन्तु अंगद के व्यवहार में कुछ मर्यादा का उल्लंघन दिखाई देता है। सम्भवत. इसका कारण कवि के मन की यह भावना है कि रावण राम का शत्रु था। फिर भी राज-दरबार की मर्यादा का ध्यान रखना आवश्यक था (जैसा कि केशव ने रखा है।)।

(११) कवि ने लक्ष्मण को रावण के प्रहार से मूर्च्छित न कराकर मेघनाद की शक्ति से मूर्च्छित दिखाया है। इस प्रकार कवि ने शक्ति और वीरता का एक प्रकार से बँटवारा दिखाया है। केवल रावण ही वीर नहीं था, मेघनाद और

कुम्भकर्ण आदि भी महाबली थे। साथ ही राम से रावण और लक्ष्मण से मेघनाद की वैर-भावना दिखाने के प्रकरण में आकर्षण आता है।

(१२) रावण द्वारा प्रेरित शक्ति—जिसे उसने विभीषण को मारने के लिये छोड़ा था—लक्ष्मण की छाती पर नहीं राम की छाती पर जाकर लगती है। उसे राम ने अपने भक्त की रक्षा के लिए अपने वक्ष पर झेला है। इससे कथा-नायक राम का चरित्र और भी ऊँचा उठ जाता है। उनकी शरणागतवत्सलता प्रकट हो जाती है।

(१३) राम को नागपाश में बन्दी दिखाकर कवि ने उत्तरकाण्ड के काकभुशुण्डि-गरुड़-संवाद के लिए कारण बना लिया है। उसी के सहारे ज्ञानभक्ति-विवेचन जैसे महत्वपूर्ण प्रकरण सामने आये हैं।

(१४) सीता-वनवास और लवकुश-जन्म आदि की कथा को कवि ने जान-बूझकर छोड़ दिया है। इससे काव्य सुखान्त बन सका है। भारतीय परम्परा का कवि ने खूब पालन किया है। अन्य ग्रन्थों में यह कथांश बराबर आता है परन्तु तुलसीदासजी ने उनके साथ कथा का उपसंहार करना उचित नहीं समझा है।

कवि की मौलिकता : कई नये मोड़ देकर और कुछ नवीन प्रसंगों की उद्भावना करके तुलसी ने युग-युगान्तर से चली आती रामकथा को अत्यन्त आकर्षक, मनोवैज्ञानिक एवं प्रभावपूर्ण बना दिया है। 'रामचरितमानस' के कथानक को सुव्यवस्थित, मर्यादित, गरिमापूर्ण और साहित्यिक रूप प्रदान करना गोस्वामी जी का प्रशंसनीय कार्य है। कुछ प्रसंग तो उन्होंने कथा को सर्वांगपूर्ण बनाने के लिए ही जोड़े हैं। दो-चार प्रसंगों का यहाँ उल्लेख किया जाता है—

(१) राम-लक्ष्मण के सीता-स्वयंवर के अवसर पर मिथिला जाने के समय वहाँ की स्त्रियाँ उनके रूप-सौन्दर्य को लेकर परस्पर खूब बातें करती हैं। यह स्त्रियों के स्वभावानुसार ही है। आजकल भी किसी वर को देखने के लिए स्त्रियाँ एकत्र हो जाती हैं। इस वार्तालाप के द्वारा भावी सीता-पति के लिए कवि ने एक अवसर की भी सृष्टि की है।

(२) वनगमन के समय ग्रामवधूटियों का समागम और सीता के साथ उनका वार्तालाप गोस्वामी जी की नयी उद्भावना है। इससे स्त्रियों के सहज स्वभाव और मर्यादित शृंगार के चित्रण को अवकाश मिला है। साथ ही मार्मिकता भी आती है। भोली स्त्रियाँ अयोध्या की राजवधू की दशा को देखकर पानी-पानी हो जाती हैं।

(३) प्रारंभ की विस्तृत वन्दना, मानस-रूपक और बालकाण्ड का अधिकांश भाग कवि की मौलिकता का ही परिचायक है। वन्दनाओं से एक साथ सांस्कृतिक

वातावरण और विनय-शीलता का प्रभाव प्रकट होते हैं।

(४) चार प्रसिद्ध संवादों की अवतारणा भी मौलिक ही है। इससे प्रबन्ध-सौष्ठव सम्पन्न होता है। साथ ही कवि की महाकाव्य लिखने की क्षमता का परिचय भी मिलता है।

(५) उत्तरकाण्ड का ज्ञान-भक्ति-विवेचन कवि की नयी देन ही कही जा सकती है। यह तत्कालीन धार्मिक परिस्थिति के फलस्वरूप लिखा गया है।

(६) अनेक स्थलों पर कथानक को गोस्वामीजी ने एकदम मौलिक रूप मे उपस्थित कर दिखाया है। उनकी कलात्मकता सचमुच प्रशसनीय है। उन्होने कथा के आधारभूत नये सिद्धान्त समक्ष रखे है। व्यापक रूप से सारे काव्य को राम-भक्ति में डुबोकर रख दिया है। यह भी नवीनता ही है।

(७) सभी चरित्र पूर्ववर्ती रामकथा के चरित्रों से विलक्षण बना दिये है।

(८) अयोध्याकाण्ड तो मौलिकता का प्रमुख उदाहरण माना जा सकता है। इसके पूर्वार्द्ध के प्रसगो में तुलसी की मौलिकता स्पष्ट है। भरत का आदर्श चरित्र तो एकदम गोस्वामी जी की लेखनी की ही देन है। उसकी भ्रातृवत्सलता अनुपम है। श्रीराम के प्रति वे अनन्य भक्ति-भावना से परिप्लुत हैं और अपनी माता तक को खरी-खरी सुनाते हैं।

'रामायण' और 'मानस' के कुछ प्रसंग. राम के चरित पर सर्व प्रथम लिखा गया काव्य आदिकवि वाल्मीकि का **'रामायण'** ही है। उसीके पीछे राम काव्यों की परम्परा चलती है। गोस्वामीजी ने जहां अनेक स्थलों पर रामकथा को ज्यों का त्यो रहने दिया है वहाँ अधिकांश स्थल ऐसे हैं जिनमें नवीनता के लिये आवश्यक परिवर्तन कर दिये हैं। इसका कारण यह है कि आदि कवि वाल्मीकि को तो केवल चरित-काव्य लिखना था, उनके नायक भी साधारण मनुष्य थे परन्तु गोस्वामी जी को तो रामभक्ति की स्थापना के लिये ग्रन्थ रचना करनी थी। इसी कारण उनके नायक परब्रह्म राम हैं। वे तो **'बिधि हरि संभु नचावनहारे'** हैं। इसके अतिरिक्त दोनों कवियों ने रामजन्म के प्रकरण का भी अपने ढग से ही वर्णन किया है। राम लक्ष्मण को लिवा जाने के लिए जब विश्वामित्र दशरथ के पास आते हैं तो वाल्मीकि के विश्वामित्र क्रोधित हो उठते है परन्तु तुलसी के विश्वामित्र यहाँ हर्षित होते है। रामायण में, आश्रम की ओर राम-लक्ष्मण के साथ जाते हुए कवि उन्हें अनेक कथा सुनाते हैं परन्तु तुलसी के 'मानस' में उस समय केवल गंगा की ही कथा का उल्लेख आता है। वाल्मीकि ने विश्वामित्र और राम-लक्ष्मण के जनक-पुरी-प्रवेश का वर्णन नहीं के बराबर ही किया है वे सीधे स्वम्बर में पहुँचा दिये गये हैं। गोस्वामीजी ने मनोवैज्ञानिक एवं मर्यादित ढंग से सभी मंत्रियों, पुरोहित और

श्रेष्ठ लोगों के सहित जनक द्वारा उनकी अगवानी कराई है। वाल्मीकि ने मन्थरा का विशद एवं सुन्दर वर्णन किया है; वहाँ मानस की भाँति केवल 'गई गिरा मति फेरि' कहकर ही प्रसंग समाप्त नहीं किया गया है। कैकेयी की धाय होने के कारण ही मन्थरा का भरत के राज्याभिषेक के प्रति पक्षपात दिखाया गया है। वह अधिक मनोवैज्ञानिक है। तुलसीकृत मानस के अरण्यकाण्ड की कितनी ही कथाएँ वाल्मीकिरामायण के अयोध्याकाण्ड में आ जाती हैं। कुछ कथाएँ वाल्मीकि में हैं किन्तु तुलसी में नहीं और कुछ तुलसी मे है पर वाल्मीकि में नहीं। कुलपति तपस्वियों के राक्षस-भय से आश्रम त्याग की कथा 'मानस' मे नही है, इधर इन्द्र पुत्र की कथा रामायण में नहीं है। वाल्मीकि ने अत्रि द्वारा राम की पूजा का प्रसंग भी नही दिया है। हाँ, अनसूया द्वारा सीता को उपदेश दोनों ही कवियों ने दिलाया है। शरभंग की कथा वाल्मीकि ने विस्तार से दी है जब कि तुलसी ने इस प्रसंग को अत्यन्त संक्षेप में ही कहकर समाप्त कर दिया है। वाल्मीकि में ऋषिगण राम को अस्थियों का ढेर दिखाते हैं। परन्तु तुलसी अपने राम को स्वयं ही अस्थि-कूट देखकर 'निसिचर हीन करौं' आदि प्रतिज्ञा करने का अवसर देते हैं। राम सुतीक्ष्ण-मिलन की कथा मानस मे जहाँ अत्यन्त भावपूर्ण है वहाँ रामायण में उसका उल्लेख भी नही है। मारीच-रावण-संलाप रामायण में विस्तृत है किन्तु मानस में इसका संकेतमात्र ही किया गया है। वाल्मीकि ने सीता द्वारा लक्ष्मण को अपशब्द कहलाये हैं परन्तु तुलसी ने केवल 'मरम बचन सीता तब बोला' कहकर ही इसका संकेत कर दिया है। इस प्रकार कथा के प्रायः सभी प्रसंगों पर दोनों कवियों के विचार और शैली अलग-अलग दिखाई देते हैं। पात्रों के चरित्रों में भी पर्याप्त अन्तर दिखाई देता है। राम का चरित्र तो स्पष्टतया अन्तरयुक्त है ही रामायण में लक्ष्मण अत्यन्त तेजस्वी, उग्र स्वभाव, भ्रातृ-सेवक और अनुपम योद्धा हैं, मानस में वे उक्त गुणों के अतिरिक्त विचारशील-भक्त और दार्शनिक रूप में भी उपस्थित होते हैं। भरत के चरित्र को तो मानसकार ने तराशकर एकदम चमकीला हीरा ही बना दिया है। वाल्मीकि के भरत भाई राम के चरित्र पर सन्देह करते हैं परन्तु तुलसी के भरत ऐसा स्वप्न में भी नहीं सोच सकते। वाल्मीकि के दशरथ स्पष्टतः कामी हैं परन्तु तुलसी के दशरथ पुत्र-वत्सल पिता हैं। रानियों के चरित्रों में भी इसी प्रकार अन्तर मिलता है। स्पष्ट है कि वाल्मीकि के कथानक से तुलसी का कथानक कहीं अधिक प्रभावशाली है।

मानस के प्रतीक : कुछ विद्वानों ने मानस की कथा और पात्रों को प्रतीक मानकर इसके अन्य अर्थ भी प्रस्तुत किये हैं। डा० बलदेव प्रसाद मिश्र ने अपने '**भारतीय संस्कृति**' नामक ग्रन्थ में सीता को समृद्धि और राम तथा रावण को

क्रमशः रमणीयता और भयानकता का प्रतीक माना है। समृद्धि तो रमणीयता के साथ ही कल्याणकारिणी हो सकती है। उसका भयानक प्रकृति से सम्बन्ध क्षणिक हो सकता है, स्थायी नहीं। इस प्रकार सीताहरण की कथा को उन्होंने संस्कृति और सभ्यता के संघर्ष का प्रतीक माना है।

इसके अतिरिक्त यह कथा अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि का भी प्रतीक है क्योंकि कथा दो मुनियों के संकेतों पर केन्द्रित है। एक तो विश्वामित्र के और एक अगस्त्य के। विश्वामित्र यदि अभ्युदय के प्रतीक हैं तो अगस्त्य निःश्रेयस के क्योंकि इन्हीं के आदर्शों से राम ने क्रमशः सीता को प्राप्त किया और विश्वकल्याण के लिए राक्षसों का संहार किया है।

ताडका, मन्थरा और शूर्पणखा के चारों ओर घूमने के कारण यह कथा एक प्रकार से क्रोध (ताडका), लोभ (मन्थरा) और काम (शूर्पणखा) आदि की ही कथा है। गीता में कहा भी गया है—

'त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥'

इस प्रकार कथा स्पष्ट रूप से क्रोध, लोभ और काम पर विजय प्राप्त करने की साधना की प्रतीक बन जाती है।

पौराणिक-चरित-महाकाव्यत्व : 'रामचरितमानस' हिन्दी का अत्यन्त गरिमापूर्ण अनुपम, **पौराणिक-चरित-महाकाव्य** है। प्रथम अध्याय में उक्त महाकाव्य चरितकाव्य एवं पौराणिक काव्य के समस्त उदात्त लक्षणों का इसमें दर्शन किया जा सकता है।

आचार्य दण्डी के काव्यलक्षण का हम पीछे उल्लेख कर चुके हैं।[११६१] वहीं हमने यह भी बताया है कि साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ प्रायः उनके मत के ही अनुयायी है। उन्होंने कुछ और नवीन बातों का उल्लेख कर दिया है, यथा—**'सर्गा अष्टाधिका इह'** आदि। यदि सर्गों की संख्या वाली बात को उपेक्षित कर दिया जाय तो मानस हिन्दी का ही नहीं भारतीय साहित्य का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य ठहरता है। यह सर्गबद्ध रचना है, इसके प्रारम्भ में लम्बा मंगलाचरण है, इतिहास प्रसिद्ध रामकथा का उसमें अपने दृष्टिकोण से प्रतिपादन है, चतुर्वर्ग की प्राप्ति-विशेषतः मोक्ष के साधन भक्ति की सिद्धि उससे होती है, इसके नायक मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् राम परम उदात्त हैं, नगर आदि के समुचित कथानकोपयोगी वर्णन है, इसमें अलंकारों का सुन्दर गुम्फन है, विस्तृत कथानक हैं, सर्गान्त में छन्द बदले हुए हैं।

११६१. द० प्रस्तुत ग्रन्थ पृ० ४७

जहाँ तक आधुनिक आलोचकों द्वारा मान्य महाकाव्य के लक्षणों का प्रश्न है[११६२] वे भी समुचित रूप में 'मानस' में घटित होते हैं। उसका उद्देश्य महान् है, एक आदर्श राम-राज्य की स्थापना उसका लक्ष्य है; उसकी प्रेरणा अधर्म पर धर्म की विजय है; उसकी कलापूर्णता असन्दिग्ध है जिसका हम आगे संकेत देंगे। उसका गुरुत्व, गाम्भीर्य और महत्त्व अनेक मनीषियों द्वारा मौलिमालाओं से लालित है। युग-जीवन का समग्र चित्रण उसके 'कलिधर्म-निरूपण' आदि में प्राप्त होता है। उसका कथानक सुसम्बद्ध, व्यापक एवं संजीवनी शक्ति से परिपूर्ण है। यह काव्य आज भी भारत को चेतन बनाने वाला है। इसके नायक महत्त्वपूर्ण तथा आदर्श हैं, अन्य पात्र भी महाकाव्योचित गरिमा से परिपूर्ण हैं। इसकी शैली बेजोड़ तथा रसव्यंजना मार्मिक है।

यह महाकाव्य के **'पौराणिक चरितकाव्य'** भेद का प्रतिनिधित्व करता है। मानस के अतिरिक्त हिन्दी में दूसरा पौराणिक चरितमहाकाव्य नहीं दिखाई देता। प्रथम अध्यायोक्त लक्षणों के अनुसार पौराणिक काव्य के लक्षण मानस में पूर्णतया मिलते है। इसमें काव्यात्मकता और धार्मिकता का सामंजस्य है। जहाँ एक ओर वैष्णवभक्ति का प्रचार है (यथा **'नाथ भगति अति सुखदायनी' 'भक्ति प्रयच्छ रघुपुंगव! निर्भरां मे** आदि) वहाँ दूसरी ओर काव्यप्रतिभा का प्रदर्शन भी। **'वर्णानामर्थसङ्घानां रसानां छन्दसामपि। मंगलानां च कर्तारौ वन्दे वाणी-विनायकौ।'** –कहने वाले भक्त कवि की काव्य-प्रतिभा असंदिग्ध मानी जानी चाहिए। इसमें चार वक्ता-श्रोताओं की सुसंबद्ध योजना है। शिव-पार्वती, काकभुशुंडि-गरुड, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज तथा तुलसी-सन्तगण इसके चार वक्ता-श्रोता हैं। इसका प्रधान रस शान्त (या भक्ति) है, शेष रस अंग है। इसकी आधिकारिक कथा मे अवतार मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम का चरित्र निबद्ध है, साथ ही समयानुसार अनेक उपाख्यान भी संक्षिप्त रूप में निबद्ध हैं यथा—सुतीक्ष्णादि के उपाख्यान। समुद्र-लंघनादि अलौकिक, अतिप्राकृत और अतिमानवीय शक्तियों, कार्यों तथा घटनाओं का समावेश है क्योंकि राम तो **'बिधि हरि संभु नचावनहारे'** है। हनुमान के शब्दों में उनकी सर्वसाधकता का कथन इस प्रकार किया गया है:—

"ता कहँ प्रभु कछु अगम नहिं जा पर तुम अनुकूल।
प्रभु प्रताप बड़वानलहिं जारि सकै खलु तूल॥"(सुन्दरकाण्ड)

अपने धर्म की प्रशंसा उत्तरकाण्ड तथा अन्य स्थलों पर भी देखी जा सकती है। सूक्तियों का भी प्राचुर्य है। काव्य का माहात्म्य-कथन है। वंशोत्पत्ति, वंशावलि और

११६२. दे० हिन्दी-साहित्य-कोश, भाग--१, पृ० ६२७

स्तुति आदि की योजना है। संक्षेपतः यह सफल पौराणिक चरित-महाकाव्य है।

रामचरितमानस का महत्त्व : 'रामचरितमानस' जहाँ तुलसी की सबसे बड़ी रचना[११६३] एवं हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है[११६४] वहाँ समूची राम-काव्य-परम्परा में अप्रतिम संजीवनदायक एक सुदृढ़ ग्रन्थ है। यही कारण है कि उसके अनेक अनुवाद और अनेक टीकाएँ अब तक हो चुकी हैं और देश-विदेश में उस पर अनेक आलोचनाएँ लिखी गयी एवं लिखी जा रही है।[११६५] उसका महत्त्व अनेक दृष्टियों से है। वह उच्चकोटि का काव्यग्रन्थ है, आदर्श संस्कृति का सदेशदाता है, दार्शनिक मनन-चिन्तन का स्रोत है, मर्यादा का परम प्रतीक है, लोकमगल की भावना का आगार है, मर्यादा और समन्वय का अभूतपूर्व निदर्शन है तथा भारतीय धर्मप्राण जनता का कण्ठहार है।

'रामचरितमानस' तुलसी की मधुकरी वृत्ति का परिणाम है। वह **'छहो शास्त्र सब ग्रन्थन को रस'** है। तुलसीदास ने नाना स्रोतों से कथा के जीवन-कणों को एकत्र करके उन्हे अपने अगाध व्यक्तित्व के सागर में मिलाकर एकरस कर दिया। जीवन-कण अपनी लघु सीमा अथवा निश्चित परिधि का अतिक्रमण करके सागर

११६३. रामनरेश त्रिपाठी : तुलसी और उनका काव्य, पृ० १०६।

११६४. डा० शंभुनाथसिंह हिन्दी-महाकाव्य का स्वरूप-विकास।

११६५ डा० रामनरेश त्रिपाठी ने 'तुलसी और उनका काव्य' के पृ० १६१ से १६४ तक 'रामचरितमानस' के इन अनुवादों का उल्लेख किया है :—संस्कृत अनुवाद (बलभद्रप्रसाद शुक्ल द्वारा सम्पादित, स० १९६८, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ), गोविन्दगावनेल्नी-कृत गोविन्द-रामायण एव खरियार के राजा वीर विक्रमसिंह, बाबू रामप्रसाद बोहिदार और पंडित स्वप्नेश्वर दास के द्वारा किये गये उड़िया अनुवाद, श्री मदनमोहन चौधरी द्वारा 'त्रिपदी' छन्द में किया गया एव श्री सतीशचन्द्र दास गुप्त द्वारा किया गया बगला अनुवाद, प० छोटालाल चन्द्रशकर शास्त्री का गुजराती अनुवाद एव एफ० एस० ग्राउज का अंग्रेजी अनुवाद। अनेक टीकाओ के परिचय के लिए देखिए, वही पृ० १६४।१६९। इन टीकाओ का नामोल्लेख मात्र किया जा रहा है—ज्ञानी सतसिंह (पंजाबी, श्री दरबार साहब, अमृतसर) की टीका मानस-भाव-प्रकाश, बैजनाथजी कूर्मवंशी की टीका, प० शिवलाल पाठक की टीका, श्रीदेवतीर्थ (काष्ठजिह्वा) स्वामी की टीका, श्रीमन्महाराज द्विजराज काशीराज ईश्वरीप्रसादनारायणसिंह बहादुर, जी० सी० आई० की टीका, परमहंस प्रशसमान हंसवशावतंस श्रीजानकीरमणचरण-सरोरुहराजहंस श्रीसीतारामाय हरिहरप्रसादजी की टीका, मुन्शी शुकदेवलाल (मैनपुर निवासी की टीका, महन्त श्रीरामचरणदासजी (अयोध्या-निवासी) की टीका, प० रामेश्वर भट्ट की टीका, श्रीरामप्रसादशरण (कनक-भवन, अयोध्या) की टीका, प० विनायकराव (जबलपुर) की टीका, स्व० बाबू श्यामसुन्दरदास, बी० ए० की टीका, प० महावीरप्रसाद मालवीय की टीका, श्रीजनकसुताशरण शीतलासहाय सावन्त की टीका। इनके अतिरिक्त मोतीलाल बनारसीदास के यहाँ से विजयानन्द त्रिपाठी की टीका भी निकली है।

की असीम गरिमा में पर्यवसित हो गये। नाना पुष्पों से गृहीत रस मधुमक्खी के प्रभाव से मधु बन गया।[११६६] डा० राजपति दीक्षित के शब्दों में 'तुलसी ने अपनी भक्ति को उत्तरोत्तर दृढ़ करने तथा रामचरित का मर्म समझने के लिए अधिक से अधिक प्राचीन राम-साहित्य-रूप रत्नाकर का भावपूर्वक शोध किया और अपनी सद्ग्राहिता के अनुसार मनोवांछित सारभूत रचनोपकरण-रत्नों को ग्रहण किया और उन्हें अपने दिव्य प्रकाश और मौलिकता की शान पर चढ़ाकर विशेष सुसंस्कृत रूप देकर अपने नूतन राम-साहित्य में सन्निविष्ट किया।[११६७] 'मानस' तुलसी के गम्भीर अध्ययन का परिणाम है। 'वाल्मीकि-रामायण', 'अध्यात्मरामायण', 'श्रीमद्भागवत', 'प्रसन्नराघव' और 'हनुमन्नाटक' के अतिरिक्त संस्कृत के दो सौ से अधिक ग्रन्थों के श्लोकों को भी चुन-चुनकर उन्होंने उनका रूपान्तर करके 'मानस' में रख दिया है।[११६८] ऐसे स्थानों पर तो तुलसीदास के मस्तिष्क की महिमा देखते ही बनती है, मानो संस्कृत के दो-ढाई सौ ग्रन्थों के लाखों श्लोकों पर उनका एकच्छत्र सम्राट् की तरह अधिकार था और वे जिसे जहाँ चाहते थे, उसे वहीं बुला लेते थे।[११६९]

'मानस' का काव्य-शिल्प भी उच्चकोटि का है। क्या कथानक, क्या चरित्र, क्या रस-भाव और क्या कलापक्ष, सभी में एक विचित्र संतुलन और मौलिक संयोजन है। 'रामचरितमानस' बृहदाकार रचना ही नहीं, वह सुचिन्तित एवं सुनियोजित रचना भी है।... मन्दिर-निर्माण-कला में जिस प्रकार तोरण-द्वार, अर्द्धमण्डप, मण्डप, अन्तराल और गर्भगृह की योजना होती है और गर्भगृह के देवपीठ के ठीक ऊपर आमलक पर कलश की स्थापना रहती है, उसी प्रकार का सुयोजित वास्तु-वैभव में मानस में मिलेगा।[११७०] 'मानस' में तुलसी की सन्दर्भण-कला चरमकोटि की है। डा० राजपति दीक्षित के शब्दों में—"वे (तुलसी) ऐसे शिरमौर कविरूप

११६६. श्रीधरसिंह : मानस का कथाशिल्प, पृ० २२७।

११६७ डा० राजपति दीक्षित : तुलसीदास और उनका युग, पृ० ३४६।

११६८ कुछ उदाहरण 'तुलसी और उनका काव्य' के पृ० १२४-१४९ पर श्रीरामनरेश त्रिपाठी ने दिये हैं। पृ० १४९ पर ग्रन्थों के कुछ नाम भी दिये हैं यथा—अग्निपुराण, अद्भुत रामायण, अभिज्ञानशाकुन्तल, आनन्द-वृन्दावन, कथा-सरित्सागर, कामन्दकीय-नीतिसार, किरातार्जुनीय, गीतगोविन्द, चाणक्य-नीति, नलचम्पू, नाटक-पञ्चरत्न, नैषध, पाराशर-स्मृति, पुरुष-सूक्त, वाराह-पुराण, वसिष्ठ-संहिता, ब्रह्माण्डपुराण, बालरामायण, विदग्धमुखमण्डन, मत्स्यपुराण महानिर्वाणतन्त्र, महावीरचरित, महिम्नस्तोत्र, याज्ञवल्क्यस्मृति, रुद्रयामल, वामनपुराण, शिव-पुराण, शिशुपालवध, स्कन्दपुराण, श्रुतबोध, हरिवंशपुराण, हारीतस्मृति आदि।

११६९. रामनरेश त्रिपाठी : तुलसी और उनका काव्य, पृ० १२४।

११७०. डा० रामरतन भटनागर : मध्ययुगीन वैष्णव संस्कृति और तुलसीदास, पृ० १२९।

पटहार हैं जिन्होंने अपने कौशल से विविध कथास्वरूप मौक्तिकों का ऐसा अनूठा संग्रन्थन किया है किया है कि उनके अपूर्व संयोग से अनर्घ 'मानस' रूप हार निर्मित हो गया।[११७१] मानस के उपक्रम में नवीनता और प्रौढ़ि है जिसके कारण राम-साहित्य में इसका अत्यन्त मौलिक योगदान है। इसके उपक्रम के विषय में डा० राजपति दीक्षित के शब्द द्रष्टव्य है—'यद्यपि प्राचीन रामायणों का प्रभाव 'मानस' पर किसी न किसी प्रकार अवश्य पड़ा है तथापि 'मानस' के उपक्रम की विशेषता किसी रामायण या अन्य आर्ष ग्रन्थ में नहीं मिलती। इसकी प्रमुख नवीनता इस बात में है कि इसमें महाकाव्योचित उपक्रम के विधान के साथ भक्ति-तत्त्वों का ऐसा कलात्मक संग्रन्थन किया गया है कि उपक्रम की समाप्ति के पश्चात् पाठक अनायास ही अपने समक्ष महाकाव्य एवं भक्ति दोनों का एक ही द्वार उद्घाटित देखता है।'[११७२] इसके अतिरिक्त वर्ण-अर्थ-रस-छन्द आदि का सौष्ठव तो दर्शनीय है ही।

'रामचरितमानस' के सदृश आदर्श भारतीय संस्कृति का संदेश देने वाला और कोई ग्रन्थ राम-काव्य-परम्परा में नहीं दिखाई देता। मैक्फी के अनुसार 'हिन्दुओं के धार्मिक सिद्धान्तों और उनकी संस्कृति का सर्वोच्च सुन्दर चित्र जैसा रामायण में मिलता है वैसा शायद अन्यत्र किसी ग्रन्थ में न होगा।' प्रत्येक चरित्र आदर्श प्रस्तुत करता दिखाई देता है। एक अव्यवस्थित और कुनीतिपूर्ण समाज में उत्पन्न होकर तुलसी ने उसे सुव्यवस्थित और सुनीतिपूर्ण बनाने के लिये मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्र के चरित्र का गुणगान किया एवं रामराज्य की कल्पना करके समाज के समक्ष एक उदात्त आदर्श प्रस्तुत किया। यदि कोई व्यक्ति भारतीय संस्कृति के आदर्श रूप का एक ही स्थान पर अध्ययन करना चाहता है तो उसे 'मानस' का मनन कर लेना चाहिए।

'मानस' का महत्त्व इस दृष्टि से भी है कि यह लोक-हृदय का काव्य है। इसमें लोक की भाषा है, लोक की संस्कृति है और लोक-मंगल की भावना है। डा० रामनरेश त्रिपाठी के शब्दों में—'रामचरितमानस आदि से अन्त तक माधुर्य से ओतप्रोत है। हर एक प्रकार की सुरुचि रखने वालों के लिए उसमें यथेष्ट सामग्री है। एक लम्बे मार्ग में कोई ऐसा स्थान नहीं है जहाँ पथिक को दूर तक शान्ति की छाया न मिले, प्यास से व्याकुल होना पड़े। रास्ते भर मधुर सोते प्रवाहित हैं, सद्विचारों की शीतल छाया वर्तमान है। 'मानस' को बार-बार पढ़ने से भी जी नहीं ऊबता। जिस प्रकार हम चन्द्रमा को लाखों बरसों से देखते आ

११७१. तुलसीदास और उनका युग, पृ० ३४७

११७२. वही, पृ० ३४७-३४८।

रहे हैं, पर जब उसे देखते हैं तभी वह नवीन लगता है और कभी बासी नहीं लगता इसी प्रकार 'मानस' को चाहे जितनी बार पढ़िए, उसमे जी नहीं उचटता। उसका कारण यह है कि तुलसीदास ने जो कुछ लिखा है, उसमे हमारे नित्य-नैमित्तिक जीवन का प्रतिबिम्ब है। इससे हम उसे अपना समझ कर पढ़ते है और बार-बार उसका रस लेकर भी तृप्त नहीं होते।[११७३] उत्तर प्रदेश और बिहार मे 'मानस' इतना लोकप्रिय काव्य है कि उसकी बहुत-सी चौपाइयाँ और दोहे कहावतों में स्थान पा चुके हैं शिक्षित और अशिक्षित नागरिक और ग्रामीण सभी श्रेणियो के लोग बिना किसी प्रयास के उनका प्रयोग साधारण बोलचाल में किया करते हैं।[११७४] इस प्रकार की लोक-हृदय रञ्जिनी कुछ सूक्तियाँ प्रस्तुत है :

'परहित सरिस धरम नहिं भाई। पर पीडा सम नहिं अधमाई।।,'
'जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना। जहाँ कुमति तहँ विपति निदाना।।,'
'बिनु संतोष न काम नसाही। काम अछत सुख सपनेहुँ नाही।।,'
'निज सुख बिन मन होइ कि थीरा। परस कि होई बिहीन समीरा।।,'
'परद्रोही कि होई निहसंका। कामी पुनि कि रहइ अकलंका।।,'
'वायस पालिय अति अनुरागा। होइ निरामिष कबहुँ कि कागा।।,''
'साधु चरित सुभ सरिस कपासू। निरस बिसद गुनमय फल जासू।।,'
'को न कुसंगति पाइ नसाई। रहइ न नीच मते चतुराई।।,'
'बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देहिं बिधाता।।,''

'राकापति षोडश उअहि, तारागन समुदाय।
सकल गिरिन्ह दव लाइये, रवि बिन राति न जाय।।' आदि

'रामचरितमानस' का महत्त्व उसके लोकविश्रुत समन्वय की दृष्टि से भी बहुत है। पारस्परिक वैमनस्य के युग मे लड़खड़ाते हुए हिन्दू-जीवन को समन्वय भावना के द्वारा स्थायित्व प्रदान करने के हेतु तुलसी ने जो प्रयत्न किया है वह वस्तुत: अविस्मरणीय है। उनकी इस समन्वय-बुद्धि के विषय मे डा० हजारी-प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं:—'तुलसीदास के काव्य की सफलता का एक और रहस्य उनकी अपूर्व समन्वय-शक्ति मे है। उन्हे लोक और शास्त्र दोनों का बहुत व्यापक ज्ञान प्राप्त था। उनके काव्य-ग्रन्थों में जहा लोक-विधियों के सूक्ष्म अध्ययन का प्रमाण मिलता है, वहीं शास्त्रों के गम्भीर अध्ययन का भी परिचय मिलता है लोक और शास्त्र के इस व्यापक ज्ञान ने उन्हे अभूतपूर्व सफलता दी। उसमे केवल लोक और शास्त्र का समन्वय ही नहीं है, वैराग्य और गार्हस्थ्य का, भक्ति

११७३. तुलसी और उनका काव्य, पृ० १४९।
११७४. तुलसी और उनका काव्य, पृ० १५८।

और ज्ञान का, भाषा और संस्कृत का, निर्गुण और सगुण का, पुराण और काव्य का, भावावेग और अनासक्त चिन्तन का, ब्राह्मण और चाण्डाल का, पण्डित और अपण्डित का समन्वय 'रामचरितमानस' के आदि से अन्त तक दो छोरों पर जाने वाली परा-कोटियों को मिलाने का प्रयत्न है।[११७५] हिन्दी-साहित्य कोश में मानस का महत्त्व निर्धारण करते हुए अन्वर्थ ही लिखा गया है:–" 'रामचरितमानस' की अद्वितीय लोकप्रियता तथा चिरस्थायी प्रभाव को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तर भारत के सांस्कृतिक तथा धार्मिक इतिहास में विक्रम संवत् की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना 'रामचरितमानस' की रचना ही है। इतना तो निश्चित है कि किसी भी देश में ऐसा कोई भी काव्यग्रन्थ नहीं मिलता जो 'रामचरितमानस' की भाँति शताब्दियों तक जनता का जीवन अनुप्राणित करने में समर्थ हुआ हो। इस सामर्थ्य का रहस्य यह है कि तुलसीदास की प्रतिभा ने 'रामचरितमानस' में काव्य-सौन्दर्य, भक्ति तथा लोक-संग्रह का अपूर्व समन्वय किया है। मानव-हृदय को मोहित करने की शक्ति रामकथामात्र में पहले से ही विद्यमान थी, तुलसीदास ने इस कथानक को इस कौशल से प्रस्तुत किया है कि कथा-प्रवाह, मार्मिक स्थलों की पहचान, मर्यादित शृंगार, पात्रानुकूल भाषा एवं चरित्र-चित्रण की दृष्टि से 'रामचरितमानस' हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ काव्य ग्रन्थ माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त इसमें दास्यभक्ति का दिव्य रूप प्रतिपादित किया गया है। उपास्य राम का शील, सकोच और सहृदयता मनुष्यमात्र को आकर्षित करने में समर्थ है, किन्तु तुलसी ऐश्वर्यबोध इस प्रकार बनाये रखते हैं कि भक्तों में श्रद्धा का भाव प्रधान ही रह जाता है। साथ-साथ लोक-संग्रह का ध्यान रखकर तुलसी समस्त मानव जीवन का आदर्श प्रस्तुत करते हुए पारिवारिक तथा सामाजिक कर्त्तव्यों का इतना प्रभावशाली चित्रण प्रस्तुत करते हैं कि 'रामचरितमानस' उत्तर भारत का नैतिक मेरुदण्ड सिद्ध हुआ है।"[११७६]

पद्मपुराण और रामचरितमानस

पद्मपुराण और रामचरितमानस––दोनों ही अनादि काल से प्रवाहित होने वाली रामकथा-मन्दाकिनी के दो सुन्दर तीर्थों के रूप में हमारे सम्मुख प्रस्तुत होते हैं। यदि एक जैन धर्मावलम्बियों के लिए आदरणीय धर्म-ग्रन्थ है तो दूसरा प्रत्येक

११७५. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी : "सफलता का रहस्य"। राधाकृष्ण-मूल्याकन-ग्रन्थ-माला में, डा० उदयभानुसिंह द्वारा सम्पादित 'तुलसीदास' के पृष्ठ २१७ पर।

११७६. हिन्दी-साहित्य-कोश, भाग १, पृ० ६७५।

भक्तिमार्गी के लिए माननीय भक्ति-ग्रन्थ; यदि एक जैन धर्म का सर्वाधिक महत्व-पूर्ण संस्कृत काव्य-ग्रन्थ है तो दूसरा हिन्दू-धर्म का सर्वप्रधान हिन्दी-काव्य-ग्रन्थ। दोनों अपने युग की परिस्थितियों की उपज हैं। रविषेण ने पद्मपुराण की रचना जिन परिस्थितियों में की थी उनका उल्लेख प्रस्तुत ग्रन्थ के तृतीय अध्याय मे किया जा चुका है। यहाँ तुलसी के समय की परिस्थितियो का उल्लेख करके दोनों की परिस्थितियों का तुलनात्मक विवेचन किया जा रहा है।

तुलसीकालीन राजनीतिक परिस्थिति अच्छी नही थी। गोस्वामी तुलसी-दास जी का प्रादुर्भाव-काल १५वी श० ई० का अन्त अथवा १६वी श० ई० का प्रारम्भ था। भारतीय इतिहास के अनुसार उस समय पठानो (लोदीवंश) के पैर लडखड़ा चुके थे और मुगलों का भारतीय शासन-क्षेत्र मे पदार्पण हो चुका था। मुगल साम्राज्य के बीजारोपण के समय दिल्ली का साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो चुका था; बड़े-बड़े सूबो में पृथक्-पृथक् राजा थे; छोटे-छोटे जिले—यहाँ तक कि प्रत्येक शहर या किले का स्वामित्व किसी बड़े सरदार या घराने के हाथों में था। उनके ऊपर कोई अधिकारी नही था। यह छोटे-छोटे राजाओं, मुल्क-अतवैफ या कार्य-कारी अधिकारियों (फक्शन किंग्ज) का समय था।[११७७] १५२६ ई० मे बाबर ने इब्राहीम लोदी को परास्त किया।[११७८] और पर्याप्त संघर्ष के फलस्वरूप १५३० ई० तक दिल्ली पर शासन किया। उसके बाद हुमायूँ का और सन् १५५६ से १६०५ तक अकबर का राज्यकाल रहा। हुमायूँ को राजपूतो से कड़ा लोहा लेना पड़ा, फिर भी उसे शान्ति न मिली। वस्तुत. मुगल-साम्राज्य का स्वर्णयुग अकबर का शासन-काल ही था। अकबर को ही मुगल-साम्राज्य का वास्तविक सस्थापक एवं सघटनकर्त्ता कहा जा सकता है। उसके विषय मे भी यह नही भूलना चाहिए कि उसे भी हिन्दुस्तान को अपने आधिपत्य में लाने के लिए बीस वर्ष तक भीषण सघर्ष करना पड़ा। फिर भी यह नही कहा जा सकता कि उसकी मृत्यु के समय तक उसका प्रयास सब प्रकार से पूर्ण हो चुका था।[११७९] उसका अधिकाश जीवन पठानों, राजपूतो, मरहटो, दक्षिण के तेलगू और कन्नड नायको, गोंडो तथा बंगालियो से युद्ध करते हुए व्यतीत हुआ। किन्तु अकबर का प्रयास अधिकाश सफल रहा। कितने ही राजाओं ने उसका आधिपत्य स्वीकार कर लिया था। सन् १५६२ में ही आमेर के राजा बिहारीमल ने नवीन सम्राट् के दरबार में पधारकर अत्यन्त हर्ष प्रकट करते हुए अपनी भेंट उपस्थित की

११७७. डा० स्टेनली लेनपूल : मिडीवल इण्डिया अण्डर मुहमडेन रूल', पृ० १८९।

११७८. स्मिथ : अकबर—दी ग्रेट मुगल, पृ० ११।

११७९. स्टेनली लेनपूल : पृ० २३८।

थी। सम्राट् ने उनका कन्यारत्न सहर्ष ग्रहण किया।[११८०] इसके पूर्व भी अकबर रुक्मा तथा सलीमा से विवाह कर चुका था। ये दोनों भी राजपूत ललनाएँ थीं।[११८१] अकबर का हरम और भी कितनी ही हिन्दू नारियों से भरा था।[११८२] अकबर के ही नही, जहाँगीर के हरम में भी राजा उदयसिंह, बीकानेर के राजा, राय रायसिंह, राजा मानसिंह के ज्येष्ठ पुत्र, जगतसिंह और रामचन्द्र बुन्देला आदि की बेटियाँ पहुँच गयी थीं।[११८३] इससे स्पष्ट है कि हिन्दुओं की विवशता उस समय परिस्थितियों के कैसे चक्र में पड़ी हुई थी। राजाओं मे अपवाद-स्वरूप महाराणा प्रताप जैसे देश-धर्म पर मर मिटने वाले विरल ही थे।

राजाओं का क्षत्रियत्व विलुप्त होने लगा था एवं हिन्दू-राजाओं तथा प्रजा का पतन होने लगा था। अनुकरण और व्यक्तिगत सुख-विलास को ही सब कुछ मान लेने वाले अथवा शक्तिहीन होकर पराधीनता स्वीकार कर लेने वाले हिन्दू शासकों मे आत्माभिमान के स्थान पर विलासिता ने घर कर लिया था। प्राचीन हिन्दू राजाओं की प्रजावत्सलता उनके आचार-विचार, उनकी धर्मनिष्ठा आदि के उदात्त सिद्धान्त लुप्त हो चले थे।

राजकीय परिवर्तनो के इस काल मे अधिकार-लिप्सा तथा प्राप्त शक्ति के दुरुपयोग के फलस्वरूप न कोई नियम रह गया था, न मान-मर्यादा का कोई मूल्य ही था। शासन को प्राप्त करने के लिए परस्पर लड़ाई-झगड़े उस युग की विशेषता थी। क्या राजा, क्या प्रजा—सभी का जीवन स्थिरता और सुरक्षा से हीन था। उस समय कुछ भी स्थायी न था।[११८४] ऐसी अधिकार लिप्सा और मार-काट की स्थिति में जन-कल्याण की बात भला किसे सूझती? स्वय मुगलों का शासन सैनिक-शासन के रूप में चल रहा था। वह प्रजा के प्रति किसी प्रकार का नैतिक उत्तरदायित्व स्वीकार नहीं करता था। शासन का लक्ष्य सकीर्ण और भौतिक था। स्मिथ और मूरलैण्ड जैसे इतिहासकारों ने यह स्वीकार किया है कि पठानों और जहाँगीर के काल में लोगों को कठोर दण्ड दिया जाता था और उनका सिर उतार लेना, उन्हे फाँसी चढ़ा देना या उनकी खाल खिचवाकर उन्हें मरवा देना प्रायः साधारण बात हो गयी थी।

डा० भगीरथ मिश्र के शब्दों मे तत्कालीन 'राजनीतिक परिस्थिति की

११८०. वही, पृ० २५१।
११८१. वही, पृ० २५१।
११८२. राजपति दीक्षित : तुलसीदास और उनका युग, पृ० २।
११८३. प्रो० बेनीप्रसाद : 'हिस्ट्री ऑव् जहाँगीर', पृ० ३०।
११८४. मूरलैण्ड : 'जहाँगीर्स इण्डिया', पृ० ५६।

विशेषताओं का संक्षिप्त निर्देश इस प्रकार से किया जा सकता है—

(१) राजकीय परिवर्तन बड़ी शीघ्रता से चल रहे थे।

(२) इस राज्य परिवर्तन में अधिकांश अधिकारलिप्सा और शक्ति ही प्रेरक थी। कोई नियम मर्यादा या आदर्श विद्यमान न थे। भतीजा चचा का, पिता पुत्र का और भाई भाई का वध कर या बन्दी कर राज्य पर अपना अधिकार जमा लेता था।

(३) राजा और शासक प्रायः अशिक्षित, अहम्मन्य विलासी और क्रूर थे। शासन को अपने अधिकार में रखने की ओर वे अधिक सचेत थे, जन-कल्याण की ओर नहीं।

(४) अकबर के पूर्ववर्ती राजाओं के अस्त-व्यस्त और अव्यवस्थित शासनकाल में कोई भी सामाजिक और सांस्कृतिक उन्नति न हुई थी।'[११८५]

उपर्युक्त बातों का तुलसी के 'मानस' पर गहरा प्रभाव पड़ा। उनके मन में प्रतिक्रियास्वरूप भारतीय रघुवंशी राजाओं—जो अत्यन्त प्रजावत्सल, त्यागी, वीर और गुणसम्पन्न थे—का आदर्श शासन जागृत हुआ। अतः इन परस्पर लड़ते-झगड़ते और अपने सगे-सम्बन्धियों का रक्त बहाते राजाओं के सम्मुख उन्होंने राम के परिवार का आदर्श रखा, जहाँ पिता की आज्ञा-वश एक राज्य का अधिकारी पुत्र वनवास ग्रहण करता है और उसी का दूसरा भाई वंश-मर्यादा और भ्रातृप्रेम का पालन करता हुआ राज्य को ठुकरा देता है और बड़े भाई के आने तक केवल उसे धरोहर रूप में रखता है। इस आदर्श को सामने रखकर उन्होंने अपने युग में रामराज्य की स्थापना करनी चाही। रामराज्य की उच्च धारणा रखने वाले तुलसी को तत्कालीन राजाओं की अशिक्षा और क्रूरता कितनी खटकती थी, यह उनके खीझ भरे शब्दों से प्रकट है—

"नृप पाप परायण धर्म नहीं। करि दण्ड बिडम्ब प्रजा नित ही॥"

अथवा

"गोंड, गँवार नृपाल कलि, यवन महा महिपाल।
साम न दाम न भेद कलि, केवल दण्ड कराल॥" (मानस)

रविषेण और तुलसी के समय की राजनीतिक परिस्थितियों का अध्ययन करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि दोनों कवि ऐसे काल में हुए हैं जिसके पहले और बाद में अन्धकार रहा। हर्ष से पहले कोई ऐसा प्रतापी राजा रविषेण के काल में नहीं था और अकबर से पहले तुलसी के काल में। हर्ष के बाद भारत में

११८५. डा० भगीरथ मिश्र : तुलसी रसायन, पृ० २१।

एक अराजकता सी फैल गयी और अकबर के बाद भी मुगल-साम्राज्य की नींव हिलने लगी। रविषेण और तुलसी दोनों ही कवियों के काल में प्रतापी राजा हुए। हर्ष के बाद सम्राट्-पद की योग्यता धारण करने वाला अकबर ही कहा जा सकता है।

किन्तु रविषेण का काल तुलसी के काल से कहीं अधिक सम्पन्न था। उनके समय में भारतीय राजा शासक थे जब कि तुलसी के समय में विदेशी राजा भारत के शासक थे। रविषेण के समय में भारतीय राजा स्वतन्त्र थे किन्तु तुलसी के समय में प्रायः विवश और परतन्त्र। रविषेण के काल में अत्याचार और अव्यवस्था उतनी नही थी जितनी तुलसी के काल में। यही कारण है कि जहाँ रविषेण पर तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियो का यथार्थ प्रभाव अधिक पड़ा है वहाँ तुलसी पर पड़ा प्रभाव आदर्श को जन्म देता है।

तुलसी के काल की सामाजिक स्थिति मुगल काल की सामाजिक परिस्थिति ही है। मुगल-काल में हमारे देश में एक महान परिवर्तन हुआ था। फलस्वरूप देश की सभी परिस्थितियाँ एकदम बदल गयी थी। उस समय समाज का ढाँचा कुछ और था तथा व्यावहारिक स्थिति कुछ भिन्न थी। वर्ण-व्यवस्था तो तुलसी के युग में थी परन्तु प्रत्येक वर्ण अपने कर्त्तव्य भूल चुका था। ऊँच-नीच का भेद-भाव खूब चलता था। यद्यपि आश्रमो की व्यवस्था नही थी फिर भी साधु-सन्यासियों और योगियों का आदर होता था। ब्राह्मणो ने अपने मुख्य कर्त्तव्यों के अतिरिक्त अन्य पेशे मुख्य रूप से अपना लिये थे। वे पाखण्ड तक करने लगे थे। नित्य-कर्म तक नही करते थे। क्षत्रियो का भी यही हाल था। उनमें जाति-अभिमान और वीरता शेष नही थी। राजा होकर भी वे प्रजा को चूसते थे। वैश्य लोभी हो गये थे। उन्हे अपने धन के सामने देश तथा धर्म की भी चिन्ता नही रह गयी थी। शूद्रों का तो अभिमान इतना प्रबल हो चला था कि वे अकारण ब्राह्मणो की निन्दा करने लगे थे। इस प्रकार चारो वर्णो की दशा शोचनीय थी।

पारिवारिक जीवन मे भी केवल दिखावे के लिए ही मर्यादा रह गयी थी। स्त्रियो के लिए परिवार में अनेक बन्धन थे, स्वतन्त्रता उन्हे बिल्कुल नही थी। वे पुरुष के आश्रित रहती थी। मुगलों और पठानों की कामुकता एवं सौंदर्यपिपासा ने स्त्रियो को एक वासनात्मक आकर्षण एव विलासात्मक महत्त्व दे रखा था। जनसाधारण में तो नही परन्तु अभिजात वर्गों में बहुपत्नी की प्रथा भी थी। अकबर और जहाँगीर के हरमों में तो सैकड़ों और हजारों की संख्या में सुन्दरियाँ थी। अन्य अधिकारी वर्ग भी अनेक स्त्रियाँ रखने में गौरव का अनुभव करते थे। इससे विलासिता का ही अनुमान होता है। जब शासक ही विलासी और धनप्रिय हो

तो प्रजा का क्या हाल रहा होगा ? यह सोचना कठिन नहीं है।

समाज में ऐसे व्यक्ति कम थे जो सुखपूर्वक अपना निर्वाह करते थे। उनमे केवल राजाओं या बादशाहों के कुछ कृपापात्र ही कहे जा सकते है। शेष जनता निर्धन और उत्साहहीन थी। प्रायः प्रत्येक मनुष्य का परिश्रम राजाओं अथवा अधिकारीवर्ग के विलास की सामग्री जुटाने में ही लगता था। साधारण मनुष्य का जीवन सदैव आतंक, दुर्दशा और धन के अभाव में ही बीतता था। कृषि के साधनों की कमी थी। इसी कारण उर्वरा होते हुए भी भूमि से उपज कम होती थी। मूरलैण्ड ने 'जहाँगीर्स इण्डिया' के अनुवाद में लिखा है कि किसानों को यदि सिंचाई आदि के साधन मिल जाते तो उस समय उनकी पैदावार लगभग दुगुनी हो सकती थी। वास्तविकता यह थी कि उन दिनों बादशाहों को लूट–खसोट और बेगार आदि लेने की अधिक लालसा रहती थी। वे किसानों की दशा की ओर कम ध्यान देते थे। उधर धनिक-वर्ग भी अपना जीवन प्रमोद में बिताता था। किसान और दूसरे साधारण मनुष्य के लिए तो केवल दुःख और अभाव ही रह गये थे, इसी कारण समाज मे दरिद्रता, आचरणहीनता, आत्मविश्वास का अभाव, जीवन के प्रति वैराग्य और अतिशय ईश्वरोन्मुखता आदि आ गये थे।

यद्यपि पूर्ववर्ती शासन से अपेक्षाकृत अकबर का शासन अच्छा था फिर भी वह सन्तोषजनक नहीं था उस समय कई बार दुर्भिक्ष पड़े थे। देश में हाहाकार मच गया था। सन् १५५६ और १५७३-७४ मे जो भयानक अकाल पड़े थे उनकी स्मृति से भी हृदय कांपने लगता है।[११८६] इस समय मनुष्य-मनुष्य तक को खाने लगा था।[११८७] चारो ओर सूना ही सूना दिखाई देता था। शासकों को क्या पड़ी थी कि वे ऐसे अकाल या महामारी के समय अपनी प्रजा की रक्षा करते। अबुल-

---

११८६. दे० इलियट एण्ड डौसन ; हिस्ट्री आफ इण्डिया एज टोल्ड बाइ इट्स ओन हिस्टोरियन्स भाग ५ में पृ० २८६ पर उद्धृत 'तबकात'।

इसी प्रकार १५९८ में ३-४ साल तक एक अकाल पड़ा जिसका उल्लेख अबुल-फजल ने अपनी फारसी की पुस्तक 'अकबरनामा' में पृ० ६९५ पर म किया है।

(डा० एस० एस० कुलश्रेष्ठ डेवलपमेण्ट आफ ट्रेड एण्ड इण्डस्ट्री अण्डर दी मुगल्स १५२६-१७०७ से उद्धृत)

११८७. दे० रैंकिंग : बदायूँनी का अंगरेजी अनुवाद पृ० ५४०-५५१। इलियट, वाल्यूम ५, पृ० ४९०-४९१।

डा० एस० एस० कुलश्रेष्ठ : डेवलपमेण्ट आफ ट्रेड एण्ड इण्डस्ट्री अण्डर दी मुगल्स (१५२६-१७०७ ई०) पृ० ३२।

फजल ने 'आइने-अकबरी[११८८] में इन दुर्भिक्षों का संक्षेप में वर्णन कर दिया है। इन विपत्तियों को तो दैविक कहकर ही शासक लोग बात टाल देते थे।

समाज की मर्यादा भी एक-दम छिन्न-भिन्न हो चुकी थी। कोई किसी की नहीं सुनता था। किसान को खेती के साधन प्राप्त नहीं थे तो भिखारी को भीख नहीं मिलती थी। वणिक् के लिए व्यापार नहीं थे तो नौकर को नौकरी नहीं थी। सभी लोग अपनी-अपनी जीविका के लिए चिन्तित थे। एक दूसरे से यही कहते थे कि क्या करें कहाँ जाएँ ? दरिद्रता-रूपी रावण ने सभी को दबा रखा था। कुछ लोग शाही नौकरी की तलाश करने लगे थे। इस प्रकार दास-वृत्ति धीरे-धीरे अपना प्रभाव दिखाने लगी थी।

१७ वें शतक के उत्तरार्द्ध में मुंशीगिरि में हिन्दुओं की संख्या खूब बढ़ी। टोडरमल ने ऐलान किया था कि सभी सरकारी काम फारसी में किया जाय। फलस्वरूप सभी हिन्दू कर्मचारियों को फारसी सीखनी पडी। १७ वें शतक में कितने ही सामन्त और राजा अपने फारसी पत्र लिखवाने के लिए हिन्दू मुंशियो को रखते थे और इस प्रकार उनकी संख्या उत्तरोत्तर बढती ही गयी।[११८९] हरकरन इतवारखानी (सन् १६२४ के बाद) प्रसिद्ध मुंशी, जिनका उपनाम चन्द्रभान था, जाति के ब्राह्मण थे।[११९०] फारसी इन दिनो जीविकोपार्जन का उसी प्रकार साधन थी जिस प्रकार अंग्रेजो के शासन काल में अंग्रेजी।

प्रत्येक सामन्त की मृत्यु पर उसकी सम्पत्ति हड़प लेने की प्रथा के कारण न जाने कितने हिन्दुओं का उच्छेद हो रहा था। सरदार के मरते ही उसकी भूमि शासक की हो जाती थी और उसका फल यह होता था कि अनेकानेक परिवार अनाथ हो जाते थे। उन्हें भीख माँगने के अतिरिक्त और कोई मार्ग न सूझता था।[११९१] सरदार के जीवनकाल में भी भूमि-अपहरण प्रणाली का समाज-घातक परिणाम होता था। सरदार लोग गुलछर्रे उड़ाते और नैतिक पतन के गर्त में गिरते थे। वे यही सोचते थे कि हमारे बाद जब हमारे परिवार को कुछ मिलना ही नहीं है तो उसे हम ही क्यो न उड़ा लें। इसी धारणा के कारण इस प्रथा ने देश के अनेक परिवारो को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

११८८ डा० एस० एम० कुलश्रेष्ठ ने अपने शोध-प्रबन्ध 'डवलपमेण्ट आफ ट्रेड एण्ड इण्डस्ट्री अण्डर दी मुगल्स (१५२६-१७०७ ई०)' के पृ० ३२ पर 'आइने अकबरी' का मूल पाठ अंगरेजी अनुवाद के साथ दिया है।

११८९. सर यदुनाथ सरकार : मुगल एडमिनिस्ट्रेशन, पृ० २२७।

११९०. वही, पृ० २२८।

११९१. वही, पृ० १६५।

किसानों से लगान वसूल करने वाले कर्मचारी उन्हें लूटा करते थे। कितने ही अन्यायपूर्ण कर लगाये गये थे जिन्हें देते-देते किसान तंग आ गये थे। उधर अकाल और महामारी भी थे। फलस्वरूप कितने ही लोग अन्न के बिना तड़प कर मर जाते थे।[११९२] जहाँगीर के काल में सन् १६१६ से १६२४ तक महामारी का भयानक प्रकोप रहा था।[११९३] यह लाहौर से चली थी और सरहिन्द, दिल्ली आदि होती हुई अन्तर्वेद तक पहुँची थी।

इस प्रकार तुलसी के युग की सामाजिक परिस्थिति अत्यन्त भयानक एव निराशापूर्ण थी, यद्यपि बाद में कुछ सुधार होने लगा था। हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के त्यौहारों को आनन्दपूर्वक मनाने लगे थे।[११९४] भारतीय भाषाओं ने अरबी-फारसी के शब्द भी अपना लिये थे। मुगल-साम्राज्य की स्थापना के पश्चात् समाज को कुछ शान्ति अवश्य मिली थी परन्तु तुलसी तो राम-राज्य चाहते थे। उसकी वहाँ झलक भी कहाँ थी?

बहिःसाक्ष्य के आधार पर रविषेण और तुलसी के समय की सामाजिक परिस्थितियों का उपर्युक्त विवेचन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि रविषेण के समय सामाजिक स्थिति अपेक्षाकृत कहीं अच्छी थी। न तो इस समय भारतीय समाज विदेशियों से शासित था और न यहाँ भुखमरी आदि आपत्तियाँ थीं। रविषेण के काल में चारों वर्ण ठीक काम कर रहे थे जबकि तुलसी के काल में चारों संकट में थे। पहले के काल में स्त्रियों का सम्मान था, दूसरे के काल में वे विवश और परवश थीं। पहले का युग समृद्धि का युग था, दूसरे का सकट का। इसीलिए पहले ने सम्पन्न समाज को देखकर एक प्रौढ साहित्यिक ग्रन्थ की रचना की और दूसरे ने विपन्न समाज को देखकर लोक-रक्षक भगवान् का चरित गाया।

तुलसीकालीन धार्मिक परिस्थिति का परिचय प्राप्त करने के लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि हम उससे पूर्ववर्ती परिस्थितियों को भली-भाँति समझ लें क्योंकि मुगलकालीन धार्मिक परिस्थितियों का मूल बहुत पूर्व का ठहरता है। गोस्वामी जी से पूर्व, देश के उत्तरी एवं दक्षिणी भागों की धार्मिक परिस्थितियाँ भिन्न थीं। इसका कारण कुछ राजनीतिक हलचलों को माना जा सकता है। दक्षिण भाग एक तो विदेशियों के आक्रमणों से मुक्त रहा है, दूसरे उस भाग की जनता को एक धार्मिक परम्परा सहज ही प्राप्त हो गयी है।

११९२. हिस्ट्री ऑव् जहाँगीर, पृ० १२३।

११९३. वही, पृ० २१५। स्मिथ: अकबर दी ग्रेट मुगल, पृ० ३९।

११९४. हिस्ट्री ऑव् जहाँगीर, पृ० १००।

वैदिक ज्ञान, उपासना और कर्मकाण्ड आदि मे ही वाद की सब धार्मिक परम्पराएँ चली थी। उपनिषद् और वेदान्त ज्ञान और चिन्तन की उत्कृष्ट अवस्था के ही द्योतक हैं। इसका वास्तविक रूप हम शंकराचार्य के भाष्य में देखते हैं। यज्ञो के बलि-विधान के विरुद्ध ही बौद्ध और जैन आदि धर्म खडे हुए थे। वर्णाश्रम-व्यवस्था के कारण अभिजात वर्ग के लोग निम्न जातियों से घृणा करने लगे थे। इसी कारण बौद्ध आदि धर्मों की ओर नीची श्रेणी के लोग अधिक आकृष्ट हुए। मनुष्य मात्र की समता का सिद्धान्त सबको अच्छा लगता ही था। इसी का प्रतिपादन शंकराचार्य के वेदान्त में भी मिलता है, परन्तु उनके इस मायावाद या अद्वैतवाद में जन साधारण के लिए भक्ति या उपासना को अवकाश नही था। दक्षिण में उपासना पर ही अधिक बल दिया जाता था। फलस्वरूप दक्षिण में शकराचार्य के सिद्धान्त का विरोध खड़ा हुआ। शंकर के अद्वैतवाद को वहाँ नागार्जुन का शून्यवाद ही बताया गया और उन्हे एक प्रकार से 'प्रच्छन्न बौद्ध' बताया गया। यद्यपि चिन्तन के क्षेत्र मे अद्वैतवाद सर्वोपरि माना गया परन्तु भाव-क्षेत्र के लिए वह कोई सामग्री न दे सका। उसमें व्यावहारिकता और दैनिक उपयोगिता की कमी थी। अतः उसकी प्रतिक्रियास्वरूप वेदान्त-सूत्रों की व्याख्याएँ अनेक विद्वानो ने कीं। रामानुजाचार्य, विष्णुस्वामी, निम्बार्काचार्य, मध्वाचार्य और वल्लभाचार्य आदि दार्शनिक लोक-भक्तो ने लोक-जीवन के उपयुक्त उनकी व्याख्याएँ प्रस्तुत की जिनमे यथासम्भव प्रचलित लोक-व्यवस्था से पूरा-पूरा मेल-जोल बैठाया गया। इस प्रकार भक्ति की एक सुदृढ दार्शनिक पृष्ठभूमि बन गयी थी। दक्षिण की इस भक्ति का प्रचार आगे चलकर उत्तर भारत मे भी हुआ। उत्तर भारत के भक्ति-प्रचारकों में तुलसीदास भी एक थे।

उत्तर भारत की धार्मिक परम्पराएँ दक्षिण से कुछ भिन्न थी। दक्षिण में न तो बौद्धधर्म का प्रभाव था और न इस्लाम की ही पहुँच थी। इस कारण वहाँ की परम्पराओं के अनुसार धर्म प्रगति कर रहा था, परन्तु उत्तर भारत मे बौद्ध-धर्म और इस्लाम की अड़चनें विद्यमान थी। बौद्ध-धर्म के साथ ही जैन-धर्म भी अनेक शाखाओ में बँट गया था। दोनों में ही साधना और सदाचार की कमियाँ आ चुकी थी। फिर भी इन दोनो में समता का भाव एक आकर्षण की वस्तु थी। फलस्वरूप योगमार्गी साधको ने इनकी कुछ बाते लेकर अपने नये-नये सम्प्रदाय खडे कर दिये। कोई सिद्ध कहलाये और कोई नाथ। सभी ने निरंजन ब्रह्म-ज्योति-दर्शन, अलख, अनहद-नाद-श्रवण, कुण्डलिनी-जागरण तथा समाधि आदि को अपनाया। इस प्रकार पतंजलि द्वारा पूर्वकाल में चलाया गया योग-मार्ग कई रूप धारण करके सामने आया। पहले तो इस मार्ग में ज्ञान की प्रधानता थी परन्तु

धीरे-धीरे साधना और क्रिया को महत्त्व दिया जाने लगा। कुछ ने तो बिलकुल तान्त्रिक रूप ही ले लिया। इस प्रकार हीनयान, महायान, श्वेताम्बर, दिगम्बर आदि के अतिरिक्त अनेक उपभेद भी बन गये।

इनके ही समान सिर्गुण सन्त मत भी था। इसके प्रवर्त्तक कबीर माने जाते है। कबीर का सन्त-मत प्रायः कुछ विभिन्न मतों का सम्मिश्रण ही है जिसमें सिद्ध-नाथ-सम्प्रदाय, रामानन्द का भक्ति-सम्प्रदाय, सूफीमत और इस्लामी-मत आदि सभी मिल गये हैं। तुलसी और कबीर यद्यपि दोनो ही रामानन्दजी के शिष्यों मे माने जाते हैं परन्तु इनमें से एक ने सगुण मार्ग अपनाया तो दूसरे ने निर्गुण का प्रचार किया। तुलसी और कबीर में एक यह भी अन्तर था कि कबीर की नीति खडनात्मक थी जब कि तुलसी की नीति प्राय मडनात्मक ही मिलती है। कबीर ने तो रूढ़ियो का खण्डन और ज्योति-दर्शन की बात बिलकुल नाथ-सम्प्रदाय और सिद्धो की भाँति कही है। साथ ही कबीर ने रामानन्द की भक्ति-पद्धति और राम नाम को प्रमुख आधार माना है। भक्ति को उन्होने सर्वोपरि स्थान दिया है। कबीर की इस भक्ति मे सूफी प्रेम-साधना के भी दर्शन होते हैं। वास्तव मे कबीर सूफी थे। जायसी और कबीर मे यह था अन्तर कि जायसी 'बाशरा सूफी' थे और कबीर 'बेशरा सूफी'। प्रेम की मस्ती का जो वर्णन कबीर ने किया है वह सूफी प्रभाव ही है। इस प्रकार कबीर ने मिली-जुली भक्ति-पद्धति को ही अपनी उपासना का आधार बनाया था। आगे चलकर कबीर-पंथ की दो शाखाएँ हो गयी—(१) सूरत-गोपाली और (२) धरमगोपाली। अधिकाश कबीरपंथी दूसरी के ही अनुयायी थे। धरमगोपाली शाखा के प्रवर्त्तक धर्मदास थे। इन शाखाओ के अतिरिक्त अन्य गौण शाखाएँ बन गयी थी यथा—ज्ञानीपथ, ताकसारी पथ, सत्य-कबीर, नाम-कबीर, दान-कबीर, मगल-कबीर, हंस-कबीर और उदासिका कबीर आदि।[११९५]

तुलसी के समकालीन दादूदयाल ने दादू-पथ चलाया था। अकबर इनसे बडा प्रभावित हुआ था। फलस्वरूप अकबर ने सिक्के पर से अपना नाम हटवाकर उसकी जगह एक ओर तो 'जल्ले जलालहू' और दूसरी ओर 'अल्ला हो अकबर' लिखाया था।[११९६] दादू के भी अनेक शिष्य थे—सुन्दरदास (बीकानेर नरेश), सुन्दरदास (कवि एवं साधक) जगजीवनदास और रज्जब आदि। १७वी शती में मलूकदासी पथ भी विद्यमान था।[११९७] नानक-पथ, साधो-पथ आदि

११९५. मिडिल मिस्टीसिज्म आफ इण्डिया, पृष्ठ ११६।
११९६. वही, पृष्ठ १११।
११९७. वही, पृष्ठ १५४।

अन्य अनेक पंथ भी विद्यमान थे।

कबीर आदि के समान ही सूफी लोग भी अपना प्रचार करते थे। पहले-पहल सूफियों का प्रभाव पंजाब और सिन्ध पर पड़ा था।[११९७(अ)] ११वें शतक में लाहौर में सूफी-धर्म का खूब प्रचार हुआ था। फिर चिश्तीवंश के सूफियों का भारत में बहुत प्रभाव बढ़ा। मुईउद्दीन चिश्ती का नाम सूफीमत के प्रचारकों में विशेष रूप से लिया जाता है। पुष्कर इनका केन्द्र था। वहाँ तो आज तक भी कुछ ब्राह्मण ऐसे हैं जो अपने को 'हुसैनी' कहते हैं। इसी परम्परा में शकरगंज का भी नाम आता है। इन्होंने 'इमामशाही पंथ' चलाया था। इसके अतिरिक्त 'सुहरावर्दी-पंथ' का भी कम प्रभाव नहीं था। चिश्तीवंश की 'कादिरी शाखा' भी उल्लेखनीय थी। दाराशिकोह इसी का अनुयायी था। १६वीं और १७वीं शती में इस शाखा का उल्लेखनीय प्रभाव पड़ा था। अकबर के दरबार में भी सूफीमत का आदर होता था। सूफीमत का इतना प्रचार हो चला था कि १७ वें शतक के मध्य भाग में मुहम्मद शहदुल्ला नामक सूफी प्रचारक को कुछ लोग विष्णु का अवतार मानकर पूजने को प्रस्तुत थे।[११९८] निर्गुण की इस उपासना पद्धति के अतिरिक्त, दूसरी ओर सगुण शाखा भी चल रही थी।

स्वामी वल्लभाचार्य द्वारा प्रवर्तित सगुण भक्ति की कृष्ण-भक्ति-शाखा में अनेक पुष्टिमार्गी भक्त सामने आते हैं जिनमें सूरदास अग्रगण्य थे। इनके अन्य साथी भक्तों के अतिरिक्त मीरा का नाम भी उल्लेखनीय है। उधर रामानन्द द्वारा प्रवर्तित सगुण-मार्ग में कृष्णदास पनहारी और अनन्तानन्द आदि सामने आये। इसी परम्परा में अग्रदास और तुलसीदास का नाम भी आता है। कबीर ने निर्गुण पथ का आश्रय इस कारण लिया था कि मुसलमान शासकों द्वारा मन्दिरों और मूर्तियों को तोड डालने के कारण जनसाधारण मे मूर्तियों के प्रति आस्था नहीं रह गयी थी। साथ ही अवतारवाद की भावना के लिए भी गुंजाइश नहीं थी। क्योंकि जो भगवान् अपने भक्तों के लिए अवतार लेते हैं वे अपनी दुर्दशा देखकर भी अवतार न ले सके! इससे जनता की धारणा निराशामय बन चुकी थी। फिर विक्षुब्ध वातावरण को शांत करने के लिए हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य की आवश्यकता थी। फलस्वरूप कबीर ने इस्लाम वालों की भाँति मूर्ति और अवतार का विरोध तो किया परन्तु ईश्वर की सत्ता स्वीकार की। उसने हिन्दुओं की मूर्तियों का ही नहीं, अपितु मुसलमानों के रोज़े, नमाज़ और मस्जिदों तक का खण्डन किया। इसी कारण कबीर-पंथ उच्च श्रेणी के लोगों को कभी स्वीकार्य नहीं हो सका।

११९७(अ). वही, पृष्ठ ११।

११९८. मिडिल मिस्टीसिज्म ऑफ इण्डिया पृ० ३२।

उसमें तो केवल निम्न श्रेणी के लोग ही पहुँचे। तुलसी के युग तक आते-आते कबीर की प्रतिमा क्षीण हो चुकी थी, साथ ही उसका पंथ भी अनेक शाखा-उपशाखाओं में बँट चुका था।

उपर्युक्त विवरण से यह ज्ञात होता है कि तुलसी के समय में अनेक पंथ चल पड़े थे। उन्होंने कहा भी है : '**दंभिन्ह निज मति कल्पि कर प्रकट कीन्ह बहु पंथ।**'

मन्दिरों की भी काफी दुर्दशा हो चुकी थी। कुछ तो मुसलमान शासकों ने तोड़ गिराये थे, जो शेष थे उनमें अनाचार का बोलबाला था। तीर्थों की भी इसी प्रकार दुर्दशा थी। शाहजहाँ के शासनकाल में बर्नियर ने भारत की यात्रा की थी। उसने जगन्नाथपुरी के मन्दिर और मेले का जो वर्णन किया है उसका वर्णन **कांस्टेबल एवं स्मिथ की 'बर्नियर्स ट्रेवल्स इन दी मुगल इण्डिया'** के पृष्ठ ३०४ पर देखा जा सकता है। इस पुस्तक के अन्य स्थलों पर भी जगन्नाथपुरी के अन्ध-विश्वास, ढोंग और व्यभिचार के नग्न चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। बर्नियर ने योगियोंका भी बड़ा नग्न वर्णन किया है। वह लिखता है—"विचित्र मुद्रा में आसीन, नग्न और काले लम्बी जटा और विशालनाखूनधारी योगी को देखकर जैसा भय लगता है वैसा कदाचित् नरक को भी देखकर न लगेगा।" लेखक ने ऐसे ही अन्ध अनेक योगियों का वर्णन किया है। १३ वीं और १४ वी शती के ऐसे ही योगियों का उल्लेख मार्कोपोलो ने भी किया है। ये खड़े निष्ठुर और पाखण्डी होते थे, नग्न ही इधर उधर घूमा करते थे, शरीर पर भस्म लगाते थे। इब्नबतूता के वर्णन से जान पड़ता है कि लोग इन्हे सिद्ध समझते थे। इस प्रकार तुलसीकालीन विभिन्न मत और सम्प्रदाय पाखण्ड और अनाचार तक फैलाने लगे थे।

तुलसी का मार्ग न तो इन सबके खण्डन के लिए था और न किसी दार्शनिक सिद्धांत के प्रतिपादन के लिए ही। उन्होने तो उदासीन और निराशापूर्ण वातावरण मे आशा और आकर्षण की आवश्यकता का अनुभव किया था। इस आकर्षण को वे धार्मिक चेतना के रूप मे उत्पन्न करना चाहते थे। फलस्वरूप वे अपने इष्ट राम का ऐसा चरित्र लेकर सामने आये जिसमें लोक-जीवन को प्रेरित करने की सारी शक्ति और विशेषताएँ विद्यमान थी। उन्होंने हमें लोकधर्मयुक्त दर्शन दिया। इस प्रकार धार्मिक पृष्ठभूमि तुलसी के दृष्टिकोण का निर्माण करती हुई एक आवश्यकता की पूर्ति करने को उन्हें प्रेरित करती है। इन परिस्थितियों के बीच रखकर ही हम तुलसी की रचनाओं का ठीक-ठीक महत्त्व आँकने में समर्थ हो सकते हैं। उन्होंने अपने 'रामचरितमानस' में अपने समय की सभी कमियों की पूर्ति की चेष्टा की, विभिन्न प्रश्नों के सही उत्तर दिये और पथभ्रष्ट लोगों को सुमार्ग दिखाया।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जहाँ रविषेण के काल में ब्राह्मण धर्म, जैन धर्म और बौद्धधर्म ही प्रधान रूप से भारत में व्याप्त थे वहाँ तुलसी के काल में इनके अतिरिक्त विविध सम्प्रदायों और धर्मों का भी अस्तित्व था। जहाँ रविषेण का युग हिन्दू-धर्म के चरमोत्कर्ष को धारण करने वाला था वहाँ तुलसी का युग हिन्दू-धर्म की अवनति देखकर व्याकुल था। रविषेण के काल में भारतभूमि में उत्पन्न धर्म ही राजधर्म थे जबकि तुलसी के काल में विदेशी धर्म भी भारत के राजधर्म थे। तुलसी के काल मे भारत मे बाहरी धर्म भी अपना प्रचार करने लगे थे एवं इससे देश को पर्याप्त धक्का लगा क्योंकि धार्मिक विद्वेष का पर्याप्त सूत्रपात होने लगा था। हाँ, इतना अवश्य है कि तुलसी के युग मे भक्ति-आन्दोलन खूब चला जिसका धार्मिक परिस्थितियों के निर्माण में अद्भुत योगदान रहा। भाव यह है कि रविषेण के काल की धार्मिक परिस्थितियों की अपेक्षा तुलसीकालीन धार्मिक परिस्थितियाँ पर्याप्त बिगड़ी हुई और चुनौती देने वाली थी।

तुलसीकालीन साहित्यिक परिस्थिति का विवेचन करते समय हमें ज्ञात होता है कि तुलसी से पूर्व अनेक कवि 'प्राकृतजन-गुणगान' कर चुके थे। वीरगाथाकाल के कवियो ने प्रेम और वीरता से पूर्ण रचनाएँ की थी। चन्द, नरपतिनाल्ह और जगनिक आदि कवि अपने आश्रयदाताओं की प्रशसा करके ही रह गये। जनसाधारणके लिए उनका इतना उपयोग न था। उन ग्रन्थों की अत्युक्तियाँ एवं अतिशयोक्तियाँ भी उन्हें अस्वाभाविकता की ओर अधिक ले जाती दिखाई देती हैं। 'रासो' नामक ग्रन्थों की घटनाएँ प्रायः इतिहास से मेल नहीं खाती। उनमें तो केवल तत्कालीन राजाओ के पारस्परिक युद्ध और शौर्य-प्रदर्शन या किसी कुमारी के अपरण का ही वर्णन मिलता है।

इन ग्रन्थो के अतिरिक्त कुछ ऐसी भी रचनाएँ होती थी जिनका उद्देश्य केवल कामुकता को जगाना ही होता था। ऐसी रचनाएँ प्रायः बादशाहों और नवाबो के दरबारों में ही चलती थी। विजय, बधाई, विवाह, राज्यतिलक और जन्म-दिवस सम्बन्धी रचनाएँ भी दरबारों मे पढ़ी जाती थी। इन रचनाओं पर कवियों को इनाम मिलते थे। किसी ने चार पंक्तियों की कविता पढ़कर हाथी प्राप्त कर लिया था तो किसी ने गाँव। एक कविता पर दस हजार रुपये के इनाम के मिलने का उल्लेख मिलता है जिसमें केवल यही बात कही गयी है कि जहाँगीर के सामने सिखाये गये तेंदुवे ने किस प्रकार जंगली भैंसे पर प्रहार किया।[११९९]

इस्लाम के प्रचार के लिए कुछ मुसलमान सूफी भक्त प्रेम-कहानियाँ लिख

११९९. मुगल एडमिनिस्ट्रेशन पृ० १६२-१६३

रहे थे। उनमें मलिक मुहम्मद जायसी, कुतुबन, मझन और उसमान आदि उल्लेखनीय हैं। इनके पात्र साधारण राजा-रानी होते थे परन्तु उनके माध्यम से वे ईश्वर की ओर संकेत किया करते थे। पद्मावत, मृगावती, मधुमालती और चित्रावली आदि रचनाओं में इन कवियों ने इसी प्रकार की प्रेमकथाएँ लिखी हैं। इन सभी में विरह को प्रधानता दी गयी है। कहानी के बीच-बीच में ये कवि इस्लाम धर्म-सम्बन्धी बातें भी कहते चलते है। हिन्दू-मुस्लिम-एकता भी इन कवियों का एक उद्देश्य था।

इसी के साथ निर्गुण पंथ भी चल रहा था। इसमे कबीर, दादू, सुन्दर, मलूक, नानक और रैदास आदि सन्तकवि पदों की रचना कर रहे थे। ये सभी जाति-पाँति के विरुद्ध थे। नीति सभी की खण्डनात्मक थी। कबीर की रचनाएँ 'बीजक' नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें सबद, रमैनी और साखी—तीनो का सग्रह है। निर्गुण-साहित्य निराकार ब्रह्म का मार्ग प्रशस्त कर रहा था और हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए प्रयत्नशील था। बाह्य आडम्बरो को इन सभी निर्गुणपंथियों ने फटकारें सुनायी हैं। इन लोगो में साहित्यिक ज्ञान की कमी थी। केवल एक सुन्दरदास ही पढ़े-लिखे व्यक्ति थे। शेष सब सन्त ही थे। उन्होने सत्सग से जो भी सुना या पाया, उसे ही वे कह गये।

तत्कालीन मुगल-शासन की ओर से भी साहित्यिक प्रगति में सहयोग दिया जा रहा था। अबुल फजल और फैजी अकबर के समय के उत्कृष्ट विद्वानों में से थे। अबुल फजल-कृत **'आइने-अकबरी'** और **'अकबरनामा'** सदृश फारसी के श्रेष्ठ ग्रन्थ भी इसी युग की रचनाएँ हैं। फैजी फारसी का मर्मज्ञ कवि और संस्कृत का अच्छा ज्ञाता था। निजामुद्दीन अहमद ने **'तबकाते-अकबरी'** और 'अब्दुल बदायूंनी' ने **'मुंतखबुत्तवारीख'** की रचना भी इसी समय की थी।[१२००] बादशाह ने अथर्ववेद, महाभारत, रामायण, पचतन्त्र आदि अनेक सस्कृत ग्रन्थो का फारसी में अनुवाद कराया था।[१२०१] एक विशाल पुस्तकालय की भी स्थापना की गयी थी, जिसमें २४ हजार हस्तलिखित ग्रन्थ विद्यमान थे। फारसी के अतिरिक्त हिन्दी में भी बहुत कुछ लिखा जा रहा था। अकबर स्वयं ब्रजभाषा की कविता का प्रेमी था। वह स्वयं ब्रजभाषा में कविता भी लिखता था। अब्दुर्रहीम खान-खाना जैसे उसके कुछ अधिकारी भी काव्यरचना करते थे। अन्य दरबारी कवियों में महापात्र, नरहरि बन्दीजन, महाराजा टोडरमल, महाराज बीरबल,

---

१२००. भारतवर्ष का इतिहास, पृ० २५७-५८।

१२०१ वही, पृ० २५८।

गंग, मनोहर कवि, केशवदास, होलराय और पुहकर कवि आदि उल्लेखनीय है।[१२०२] ये कवि प्रायः शृंगार और नीति या कभी-कभी वीर रस की कविता लिखा करते थे। सैयद मुबारक अली ने तो नायिका के अलक और तिल पर भी **'अलक-शतक'** और **'तिल-शतक'** तैयार कर डाले थे। इस समय की वीरता की कविताओं में केवल अपने आश्रयदाता की चाटुकारिता ही मिलती है। रहीम के अतिरिक्त सभी कवियों की नीति की रचनाएँ विशेष महत्वपूर्ण नहीं कही जा सकतीं। इस प्रकार अकबर के दरबारी कवियों ने प्रायः मुक्तक रचनाएँ ही लिखी। कुछ लोगों ने प्रबन्ध-काव्य भी लिखे। केशवदास ने **'वीरसिंह देवचरित'**, **'जहाँगीर-जसचंद्रिका'** और **'रामचन्द्रिका'** की रचना की थी। पुहकर कवि ने 'रसरतन' लिखा था।[१२०३]

इस प्रकार तुलसी के युग में अनेक प्रकार की रचनाएँ लिखी जा रही थीं। तुलसी ने अपने युग की प्रचलित सभी शैलियों में साहित्य रचना की है। तुलसी के युग में प्रचलित शैलियाँ इस प्रकार थीं--(१) **कवित्त-छप्पय-पद्धति**--इस पद्धति को वीरगाथा-काल के कवियों ने अपनाया था। उन्होंने अपने आश्रयदाताओं की वीरता की प्रशंसा इन्हीं छन्दों में की थी। तुलसी ने अपने राम की वीरता आदि के प्रसंगों में इन्हीं छन्दों को अपनाया है। इनके उदाहरण उनकी कवितावली में देखे जा सकते हैं। (२) **सिद्ध, नाथ और सन्त कवियों की साखी-पद्धति**--यह उपदेश प्रधान है और इसमें दोहे लिखे गये हैं। तुलसी की 'वैराग्य-सन्दीपनी', 'रामाज्ञा-प्रश्न' तथा 'दोहावली' में यही शैली अपनायी गयी है। (३) **सूफी कवियों की दोहा-चौपाई-पद्धति**--इसका प्रयोग जायसी, कुतुबन और मंझन आदि प्रेममार्गी कवियों ने किया है। इसी पद्धति का प्रयोग तुलसी ने अपने 'रामचरितमानस' में किया है। (४) **कवित्त-सवैया-पद्धति**--गंग और नरहरि आदि कवियों ने इस पद्धति में ही लिखा है। तुलसी की कवितावली में इस पद्धति का भी दर्शन होता है। (५) **पद-पद्धति**--पदों का प्रयोग कृष्ण-भक्त कवियों सूर और अष्टछाप के अन्य कवियों ने किया था। तुलसी ने इस पद्धति का प्रयोग गीतावली, कृष्णगीतावली और विनयपत्रिका में किया है। इन पदों में भाव-गाम्भीर्य और काव्य-सौन्दर्य दोनों का मणि-कांचन-संयोग दिखाई देता है। (६) **लोकगीत-पद्धति**--लोक में प्रचलित अनेक गीतों ने भी तुलसी को प्रभावित किया था। ये गीत मांगलिक उत्सवों पर गाये जाते थे। उन्होंने पार्वती-मंगल, जानकी

१२०२. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३२३।
१२०३ वही, पृ० ३२३

मंगल, रामलला नहछू और कहीं कवितावली तथा गीतावली तक में इन लोक-गीतों को अपनाया है। पुत्रोत्सव का सोहर 'नहछू' के समय गाया गया है। कवितावली में कहीं-कहीं 'भूलना' नामक लोक-छन्द का भी प्रयोग किया गया है।

इन प्रचलित पद्धतियों के अतिरिक्त तुलसी ने प्रबन्ध और मुक्तक दोनों प्रकार के काव्यों की रचना की है। विनयपत्रिका जैसी गीतिकाव्य की रचना एक आश्चर्यजनक कृति है। वास्तव में जन-रुचि का ध्यान रखकर ही तुलसी ने इन विविध शैलियों में राम का चरित्र प्रस्तुत किया है।

रविषेणकालीन और तुलसीकालीन साहित्यिक परिस्थितियों में कुछ साम्य और कुछ अन्तर है। साम्य इतना है कि दोनों के काल में संस्कृत और हिन्दी के अनुपम काव्य रचे गये। यदि एक ओर संस्कृत में दण्डी, बाण, सुबन्धु आदि ने अपनी रचनाओं के रूप में अनन्वय अलंकार के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं तो दूसरी ओर तुलसी ने भी। दोनों कवियों के समय में कलापक्ष का उन्नयन हुआ। किन्तु रविषेण के काल में स्वच्छन्द साहित्यिक परम्परा का जैसा वृहण हुआ वैसा तुलसी के काल में नहीं। रविषेण के काल में प्रौढ़ि अभिनन्दनीय थी किन्तु तुलसी के काल में 'भाषा-निबन्ध' की आवश्यकता पड़ने लगी थी। रविषेण के काल में हम अपनी भाषा पढ़ने के लिए लालायित रहते थे किन्तु तुलसी के काल में दूसरे देश की भाषा पढ़ने को विवश। रविषेण के काल में महाकाव्यों के प्रणयन और मनन का पर्याप्त अवसर था, तुलसी के काल में प्रायः मुक्तकों की रचना एवं श्रवण का अवकाश। भाव यह है कि रविषेणकालीन साहित्यिक परिस्थितियाँ अधिक स्वस्थ थी।

उपर्युक्त परिस्थितियों में दोनों कवियों ने अपने-अपने ग्रन्थों का प्रणयन किया है। निश्चय ही अपने समय की परिस्थितियों ने उनकी रचनाओं को पर्याप्त प्रभावित किया है।

रविषेण और तुलसी के समय की परिस्थितियों का तुलनात्मक परिचय देने के अनन्तर हम 'पद्मपुराण' और 'रामचरितमानस' की विविध दृष्टियों से तुलना करना औपयिक समझते है। पद्मपुराण के विविध पक्षों पर यथासम्भव विस्तार के साथ प्रस्तुत ग्रन्थ के दशम अध्याय तक लिखा जा चुका है। एकादश अध्याय के प्रारम्भ में तुलसी से पूर्व रामकाव्य-परम्परा की संक्षिप्त चर्चा के साथ राम-चरितमानस का प्रकृतोपयोगी संक्षिप्त परिचय दिया जा चुका है। आगे हम पद्म-पुराण और मानस की विषयवस्तु, पात्र एवं चरित्र-चित्रण, भावपक्ष, कलापक्ष, धर्म और संस्कृति की दृष्टि से तुलनात्मक समीक्षा करेंगे।

पद्मपुराण और मानस की विषयवस्तु : पद्मपुराण और मानस दोनों में ही राम की कथा कही गयी है। अतः स्वाभाविक है कि दोनों के कथानक में कुछ

साम्य भी दृष्टिगत हो। किन्तु कथा कहने वाले दोनों कवियों का दृष्टिकोण एव परम्परा पृथक्-पृथक् है, अतः दोनो के ग्रन्थों की विषयवस्तु में वैषम्य भी पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है, जिसका परिचय वक्ष्यमाण सामग्री के माध्यम से दिया जा रहा है।

साम्य : आचार्य रविषेण और गोस्वामी जी ने अपने-अपने ग्रन्थों को प्राय समान रूप से ही प्रारम्भ किया है। दोनों ने धूमधाम से लम्बा मंगलाचरण सज्जन-गुणकीर्तन, अभिधा अथवा व्यंजना से दुर्जन-निन्दा एव आत्म-विनय का प्रदर्शन किया है।

दोनों ने रामचरित के माहात्म्य का व्याख्यान किया है। दोनों के लिए राम-कथाकार नमस्य हैं। दोनों की ही रामकथाओं का उपस्थापन प्रश्न या शंका के उत्तर मे हुआ है। वक्ता या श्रोता का संवाद अनवरत चलता रहता है।

दोनो ग्रन्थों में रावण के दो भाई (भानुकर्ण या कुम्भकर्ण एवं विभीषण) एव एक बहिन (शूर्पनखा या चन्द्रनखा) हे। दोनों में रावण का वीरत्व और दशाननत्व सिद्ध है। सिद्धि-प्राप्ति के हेतु रावण, कुम्भकर्ण एवं विभीषण की तपस्या का वर्णन है जिसके फलस्वरूप उन्हें सिद्धि या वरदान प्राप्त होते है। मयसुता मन्दोदरी से रावण का विवाह, युद्ध द्वारा रावण की लंका-विजय, रावण का पुष्पक-लाभ, रावण-मारीच-सम्बन्ध, इन्द्र, वरुण आदि अनेक प्रतापी पात्रों और अन्य राजाओं पर रावण की विजय एवं उसका भक्त रूप दोनों ग्रन्थो में वर्णित है। सहस्रकिरण (सहस्रार्जुन) की जल-क्रीडा, उससे रावण को क्रोध एवं उससे युद्ध का दोनों मे उल्लेख है। अनेक राजाओं से रावण के युद्ध एवं उन्हें जीतने का दोनो मे वर्णन है।

दोनों काव्यो मे, दशरथ अयोध्याधिपति है। उनके राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न--ये चार पुत्र हैं। राम कौशल्या के, लक्ष्मण सुमित्रा के एव भरत कैकेयी के पुत्र है। जनक मिथिला के राजा है; उनकी पुत्री सीता से राम का विवाह होता है; इसके लिए धनुष-सम्बन्धी शर्त है जिसे अनेक राजाओं एव राजकुमारो मे केवल राम ही पूरा कर पाते है। सीता-सहित राम के अयोध्या लौटने पर आमोद-प्रमोद होता है, नगरी की सज्जा होती है। दशरथ अपने वार्द्धक्य--आगमन पर राम का अभिषेक करना चाहते हैं किन्तु कैकेयी (केकया) इस समय राजा द्वारा पूर्वकाल मे प्रतिश्रुत वर माँग कर भरत को राज्य दिलाती है एवं राम-लक्ष्मण-सीता वन को जाते है। भरत अपनी माता के इस कृत्य का विरोध करता है। लक्ष्मण भी इस काण्ड पर क्षुब्ध दिखाई देते हैं। वनगमन--वेला में राम का माता से विदा माँगना एवं उसे प्रवोध देना, रामरहित अयोध्या की उदासी एवं नागरिकों

की पीड़ा सजीव रूप में वर्णित है। राम का लक्ष्मण एवं सीता के साथ वनगमन एवं भरत का राम-माता के पास आकर परिदेवन दोनों काव्यों में उपनिबद्ध है।

दोनों काव्यों में, भरत वनवासी राम को लौटाने के निमित्त जाते हैं। भरत की माता भी इस समय उनके साथ होती है। राम किसी भी प्रकार लौटना स्वीकार नहीं करते एवं भरत को ही शासन-संचालन के लिए कहते हैं। वन-भ्रमण करते हुए राम-लक्ष्मण-सीता चित्रकूट पर जा पहुँचते है, अनेक मुनियों के दर्शन करते है, दण्डक-वन में प्रवेश करते हैं। दोनो ग्रन्थों में, रावण की बहिन राम-लक्ष्मण पर मुग्ध होकर उन्हें मोहित करना चाहती है, राम अपने को विवाहित कह कर छुटकारा पा लेते हैं और उसे लक्ष्मण के पास भेजते है जिस पर लक्ष्मण उसका निरस्कार करते हैं, वह भयंकर रूप धारण कर उनको त्रस्त करने का प्रयास करती है जो निष्फल होता है। रावण-भगिनी अपने निरस्कार से खर-दूषण को परिचित करानी है जिससे क्रुद्ध खर-दूषण का राम-लक्ष्मण से युद्ध होता है एव राम-लक्ष्मण विजयी होते है। रावण की बहिन अपने अपने भाई (रावण) को राम-लक्ष्मण के अविनय का परिचय देकर उनके विरुद्ध उसे भड़काती है एव सीता सुन्दरी का परिचय देती है। रावण सीता को चुरा लेना चाहता है। दोनो में—एक भाई सीता की रक्षा के निमित्त उसके पास रहता है और दूसरे भाई के सकेत पर उसकी सहायता के लिए जाता है। इधर एकाकिनी सीता को पाकर रावण उसका हरण कर लेता है एवं राम-लक्ष्मण एक दूसरे को देखकर सीता के विपत्ति-ग्रस्त होने की आशका करते है।

दोनों ग्रंथों मे, रावण सीता को विमान पर चढ़ाकर लका ले जाता है, मार्ग में सीता को बचाने के निमित्त जटायु रावण से संघर्ष करता है किन्तु पराजित होता है और सीता विलाप करती जाती है। लका के उपवन मे सीता को अशोक वृक्ष के नीचे स्थान दिया जाता है, जहाँ वह रावण के प्रेम-प्रस्ताव को ठुकरा देती है।

दोनों ग्रंथो में, राम-लक्ष्मण के लौटने पर उनकी व्याकुलता एव वन की शून्यता के साथ भयंकरता का वर्णन है। जटायु द्वारा सीता-हरण की सूचना, जटायु की मृत्यु, राम का मार्मिक एव विस्तृत विलाप, जगल-जंगल भटकना एवं प्रकृति से सीता की सुधि पूछना-दोनों ग्रथो में निबद्ध है।

रावण का सीता के प्रति बारम्बार प्रेम-प्रस्ताव, लोभ-भय-दर्शन एव बल-वैभव में राम लक्ष्मण का अपनी अपेक्षा लघुत्व-प्रतिपादन दोनों ग्रथो में है। इसी प्रकार सीता की रावण को बार-बार फटकार, तिनके की ओट में उसे धिक्कारना मन्दोदरी का रावण को समझाना एवं सीता को ससम्मान लौटाने की राय देना,

रावण का क्षणभर के लिए हाँ में हाँ मिला कर फिर अपनी पर आ जाना, सीता को अपने प्रेमपाश में बाँधने के लिए उसका विविधि यत्न करना एवं सीता की अपने व्रत से अडिगता उभयत्र है।

दोनों ग्रंथों में, किष्किन्धपुरवासी सुग्रीव बालि का भाई है। सुग्रीव के साथ युद्ध करके उसका प्रतिद्वन्द्वी उसका राज्य और पत्नी छीन लेता है। निराश सुग्रीव राम की शरण लेता है। उसके साथ हनुमान, अगद आदि अनेक पात्र राम के निकट आते है। पत्नीहरण-रूप समान विपत्ति से ग्रस्त राम-सुग्रीव की मैत्री होती हे जिसमे दोनों के द्वारा परस्पर सहायता की प्रतिज्ञा होती है। राम-सुग्रीव की विपत्ति दूर करने का वचन देते हैं और सुग्रीव सीता की खोज कराने का। सुग्रीव का अपने प्रतिद्वन्द्वी से युद्ध होता है एव उसे चोट लगती है। राम उन दोनो में पहले यह नही पहचान पाते कि कौन असली सुग्रीव है और कौन प्रतिद्वन्द्वी? बाद में किसी प्रकार से पहचानकर अपने बाण से सुग्रीव के प्रतिद्वन्द्वी को मार देते हैं। निस्सपत्न सुग्रीव राज्य और पत्नी का लाभ कर विलासग्रस्त हो जाता है एव सीता-खोज के प्रति प्रमादी हो जाता है। इस पर उसे प्रबुद्ध करने के लिए राम लक्ष्मण को भेजते है। लक्ष्मण सुग्रीव को डाँटते है जिस पर वह उनकी खुशामद करके क्षमा याचना करता है एव उनके आदेशानुसार सीता-न्वेषण के लिए वानर-वीरो को चर्तुदिक् प्रस्थापित करता हे। अनुचरों द्वारा सीता की लंका में स्थिति जानकर हनुमान को लंका भेजा जाता है, परिचय के लिए राम उन्हे अपनी अँगूठी देते है। समुद्र-तट पर एक पात्र (विद्याधर या सम्पाति) उन्हें सीता-विषयक परिचय देता है।

समुद्र पार कर हनुमान का लंका-प्रवेश, लंकिनी या लकासुन्दरी से भेंट एवं उससे युद्ध, उसका हनुमान का शुभचिंतक बनना, हनुमान का विभीषण-गृह-गमन एव उससे आतिथ्य-लाभ, उसके द्वारा अशोकवृक्षतलस्थित सीता का ज्ञान प्राप्त कर उसका उपवन-गमन, विरहिणी सीता की दशा देखकर हनुमान का दुःखी होना एव अंगूठी गिराना, अँगूठी देखकर सीता का हर्ष-विषाद, सीता-हनुमान-परिचय, सीता के राम-लक्ष्मण की कुशल पूछने पर हनुमान द्वारा राम के वियोग का मार्मिक वर्णन, सीता द्वारा अपनी व्यथा का वर्णन एवं राम-लक्ष्मण के प्रति अपनी विपत्ति दूर करने का सदेह, हनुमान द्वारा उपवन-विध्वस, रक्षक-मर्दन, अनेक योद्धाओं का सहार, हनुमान के निग्रहार्थ इन्द्रजित का उपवन में आगमन, दोनों का भयंकर युद्ध, इन्द्रजित् द्वारा पाश फेंकना और हनुमान का जान बूझकर उसमें फँसना, पाशबद्ध हनुमान का रावण की सभा में उपस्थापन, हनुमान-रावण-संवाद, जिसमें रावण को सन्मार्ग पर चलने की सलाह दी गयी, सीता को लौटाने को

कहा गया तथा राम के पराक्रम का परिचय दिया गया, क्षुब्ध रावण का हनुमान को मारने एवं अपमानित कर नगर में घुमाने का आदेश और हनुमान का सबको डराकर एवं लंका में त्राहि-त्राहि मचाकर सीता की चूडामणि लेकर लौटना उभयत्र वर्णित है।

लंका-निवृत्त हनुमान (अथवा हनूमान) का राम-लक्ष्मण-सुग्रीव आदि द्वारा सत्कार, उससे सीता की व्यथा-कथा एवं संदेह सुनकर राम की भावविभोरता एवं उसे गले लगाना, राम-सुग्रीव आदि के द्वारा मिलकर सीता को लौटाने के हेतु लंका पर चढ़ाई, वानर-सेना-प्रस्थान पर शुभ शकुन एवं मार्ग में नल द्वारा समुद्र की समस्या का हल होना—ये विषय दोनों ग्रंथों में हैं।

विभीषण द्वारा बारम्बार प्रबुद्ध किये जाने पर भी रावण का न मानना, उसका राम के पक्षपाती विभीषण पर क्रोध एवं उसका लंकानिर्वासन, विभीषण का राम की सेना में उपस्थित होना, प्रथम साक्षात्कार में ही राम का विभीषण को परम सम्मान-दान एवं उसके लंकाधिपतित्व का विचार, युद्ध का प्रारम्भ, कई दिन युद्ध चलना, सायंकाल को युद्ध-विराम, हनुमान-मेघनाद-युद्ध, कुम्भकर्ण का शरीर देखकर वानर-सेना का भयभीत होना, विभीषण-रावण-युद्ध, रावण द्वारा विभीषण पर शक्ति-प्रहार एवं राम द्वारा उसका बचाव, इन्द्रजित-लक्ष्मण-युद्ध, लक्ष्मण का शक्ति प्रहार से मूर्च्छित होना, मूर्च्छित लक्ष्मण के चिकित्सक द्वारा रात-रात में ही औषध-प्रबन्ध की अनिवार्यता का प्रतिपादन अन्यथा लक्ष्मण के जीवन की संदिग्धता का कथन, शक्ति-मूर्च्छित भाई की दशा देखकर रामद्वारा अत्यन्त मार्मिक करुण विलाप, व्याकुल राम की विभीषण-विषयक चिन्ता, हनुमान द्वारा औषध लाना, हनुमान-भरत का अयोध्या मे साक्षात्कार, औषध आ जाने पर लक्ष्मण का प्रकृतिस्थ होना एवं युद्धार्थ सन्नद्ध होना—ये विषय भी उभयत्र है।

युद्ध-विराम होने पर रावण की सिद्धि-साधना, अंगद द्वारा उसमें अनेक प्रकार से विघ्नोपस्थापन, रावण का पुनः क्रोध, उसका सीता के पास जाकर एक बार फिर प्रेम-प्रस्ताव, सीता द्वारा उसका पूर्ण प्रत्याख्यान, राम-लक्ष्मण के साथ रावण का भीषण युद्ध, रावण के लिए अपशकुन तथापि उसका मायायुद्धादि करना एवं अन्त में युद्धस्थल में मारा जाना, उसकी मृत्यु पर मन्दोदरी का करुण मार्मिक विलाप, मृत रावण का क्रिया-कर्म, लंका के सिंहासन पर विभीषण का अभिषेक, सीता-राम-मिलन, विभीषण द्वारा राम-लक्ष्मण को लंकागमन का निमंत्रण तथा उनके प्रति कृतज्ञता—ये विषय उभयत्र निबद्ध हैं।

इसी प्रकार राम का सीता-लक्ष्मण सहित अयोध्या के लिए प्रस्थान, उनका

मार्ग में सीता को अनेक स्थान दिखाना, उनके साथ हनुमान-सुग्रीवादि का भी आना, आकाश से ही उन्हें अयोध्या की सजावट का दिखाई देना, अयोध्यावासियों को दूत द्वारा रामागमन की सूचना, नगर से बाहर ही राम का विमान से उतारना, भरत आदि द्वारा उनकी अगवानी, राम-लक्ष्मण-सीता का सबसे मिलन (विशेषतया माताओं से), अयोध्या के वैभव-समृद्धि का वर्णन, राम का अभिषेक एवं राम का हनुमान सुग्रीव आदि सहायकों को ससम्मान विदा करना, राम-राज्य-वर्णन एव प्रजा जनों की सुसम्पन्नता दोनों ग्रथों के विषय हैं।

साथ ही सीता की अग्नि-परीक्षा का भी दोनों ग्रन्थों में वर्णन है।

किंतु 'पद्मपुराण' और 'मानस' की विषयवस्तु में साम्य की अपेक्षा वैषम्य अधिक दृष्टिगत होता है। श्रमण-सस्कृति और वर्णाश्रम-व्यवस्था के विश्वासी रविषेण और तुलसीदास ने अपने-अपने ग्रंथों में अपनी-अपनी परम्पराओं में अपनी बुद्धि और प्रतिभा के अनुसार कुछ जोड़ा है एव कुछ घटाया है पद्मपुराण की कथा यद्यपि वाल्मीकि-रामायण से पर्याप्त प्रभावित है और तुलसी भी आदि-कवि के ऋणी हैं तथापि यह नही कहा जा सकता कि दोनो की कथा एक ही है। दोनों कवियो का दर्शन एक दूसरे का विरोधी है। एक वेदनिंदक है तो दूसरा वेदविश्वासी; एक राम को महापुरुष, और अपने कर्म के द्वारा मोक्ष प्राप्त करने वाला 'भव्य' प्राणी मानता है तो दूसरा उन्हें मर्यादापुरुषोत्तम के साथ भगवान् भी मानता है जिसने धर्म के हेतु अवतार ग्रहण किया है। राम के इस चरित्र को निबद्ध करते समय दोनों कवियों के दृष्टिकोण ही 'पद्मपुराण' और 'मानस' की विषयवस्तु के वैषम्य के हेतु है।

'पद्मपुराण' की विषयवस्तु का विस्तृत विवेचन पीछे किया जा चुका है[१२०४] जिसके साथ 'मानस' की विषयवस्तु का मिलान करने पर दोनों में पुष्कल वैषम्य की प्रतीति होती है। 'पद्मपुराण' मे सर्वप्रथम महावीर-वदना है तो 'मानस' मे वाणी-विनायक की।[१२०५] इसके बाद 'पद्मपुराण' मे कुलकरो तथा तीर्थंकरों की वदना है तो मानस में भवानी-शकर, गुरु, कवीश्वर, कपीश्वर-उद्भवस्थिति-सहारकारिणी क्लेशहारिणी, सर्वश्रेयस्करी, रामवल्लभा,[१२०६] सीता आदि की। यद्यपि आरभ में ही यह प्रतिभासित होने लगता है कि दोनों कवि किसी महा-काव्य के प्रणयन की तैयारी कर रहे हैं फिर भी मानस के मंगलाचरण का जो

१२०४. प्रस्तुत ग्रन्थ का चतुर्थ अध्याय।

१२०५. वर्णानामर्थसंघाना रसाना छन्दसामपि।
मगलाना च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ ॥ (मानस, बाल,० श्लोक १)

१२०६. मानस, बालकाण्ड, श्लोक २-५।

प्रभाव पड़ता है वह पद्मपुराण के मंगलाचरण का नहीं। मानस के आरम्भ में पर्याप्त विस्तार के साथ विभिन्न देवी-देवताओं, महात्माओं, ऋषि-मुनियों, संतों, असंतों, राम-नाम, सगुण और निर्गुण आदि की वंदना के साथ अन्त में 'सीय-राममय' जान कर समस्त जग को करबद्ध प्रणाम किया गया है जिसका पाठक पर व्यापक और गंभीर प्रभाव पड़ता है। 'पद्मपुराण' के मंगलाचरण मे शाब्दिक चमत्कार के साक्षात्कार होते हैं तो मानस के मंगलाचरण में कवि की लोक-व्यापी दृष्टि के। इसके बाद 'पद्मपुराण' में राम-कथा की भूमिका के रूप में उपस्थापित राजा 'श्रेणिक' का महावीर के समवरण में जाकर धर्मोपदेश सुनना तथा रात्रि को वानर-राक्षसों के विषय में संदिग्धचित्त होकर अगले दिन प्रातःकाल गौतम गणधर से राम कथा सुनना आदि मानस मे नही है। 'मानस' में याज्ञवल्क्य-भारद्वाज, शिव-पार्वती और काक भुशुंडि-गरुड़ के वार्तालाप-प्रसंग से रामकथा कहलायी गयी है। 'मानस' के नारद-मोह, शिव-पार्वती-विवाह एवं मनु-शतरूपा के उपाख्यान 'पद्मपुराण' मे नही है। 'पद्मपुराण' मे प्रदत्त राक्षस वंश और वानर-वंश का विस्तृत परिचय मानस में नहीं है। 'मानस' में रावण, कुंभकर्ण, सूर्पनखा तथा विभीषण के जन्म से ही राक्षस-वंश का परिचय मिलता है। वहाँ इनके पूर्वजन्म की कथा कही गयी है जिसके अनुसार प्रतापभानु रावण बनता है, अरिमर्दन कुंभकर्ण और धर्मरुचि विभीषण। 'मानस' मे विभीषण रावण का सौतेला भाई है, सगा नहीं। 'मानस' के वानरवंशी हनुमान, सुग्रीव, आदि बंदर ही हैं, विद्याधर नही। पद्मपुराण में रावण के मुख का हार में प्रतिबिम्ब पड़ने के कारण उसका नाम 'दशानन' पड़ता है किंतु 'मानस' में रावण के दस मुख ही बताये गये है। 'पद्मपुराण' में वर्णित दशानन आदि भाइयों की विद्या-सिद्धि एवं अनेक स्त्रियों की प्राप्ति, रावण के प्रति उपरम्भा की आसक्ति तथा रावण की अपने ऊपर अननुरक्त परकीया नारी के अनुपभोग की प्रतिज्ञा आदि का 'मानस' मे कोई संकेत नहीं है। 'मानस' में खर और दूषण दो पात्र है जबकि पद्मपुराण मे खर-दूषण एक ही व्यक्ति का नाम है।

'मानस' के खरदूषण का सुग्रीव से कोई संबंध नहीं है जबकि 'पद्मपुराण' का खरदूषण सुग्रीव का 'पटाक जीजा' निकलता है। 'पद्मपुराण' में समागत अंजना-पवनंजय-प्रसंग और हनूमान् की उत्पत्ति की कथा 'मानस' मे नहीं आयी है, वहाँ तो हनुमान केवल पवनसुत के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं जो अखंड बाल ब्रह्मचारी रहकर श्रीराम की सेवा को अपना कर्त्तव्य समझते है।

पद्मपुराण का **'दशरथ-जनक-काल-निर्वर्तन'** वृत्तांत मानस में नही है। पद्मपुराण में दशरथ की चार रानियों का उल्लेख है जबकि मानस में तीन का।

मानस में **'पुत्रेष्टियज्ञोत्थ पायस'** के प्रभाव से दशरथ को संतान प्राप्ति होती है जबकि पद्मपुराण में ऐसा कुछ नही है। भामंडल का वृत्तांत मानस में नही है। वहाँ सीता के किसी भाई की चर्चा नहीं है। राम-सीता का विवाह शिवधनुष की प्रत्यंचा चढ़ाने पर होता है, म्लेच्छ-दमन के कारण नही। पद्मपुराणमें सीता-राम के विवाह के साथ लक्ष्मण और भरत का विवाह वर्णित है जबकि मानस में श्रीराम के तीनों भाइयों के विवाहों का उल्लेख है। 'मानस' में भरत के शोक का प्रसग नहीं आया है। इसी प्रकार मानस में वर्णित सीता-राम-विवाह से पूर्व की घटनाएँ—यथा राम-लक्ष्मण का विश्वामित्र के साथ जाना, ताडका-सुबाहु को मारना, अहल्या का उद्धार करना, मिथिला के स्वयवर मे तमाशा देखने जाना, वाटिका में पुष्प-चयन करते हुए सीता-साक्षात्कार करना, लक्ष्मण-परशुराम-संवाद, बारात-आगमन तथा रामविवाहोत्सव आदि पद्मपुराण में नहीं है।

पद्मपुराण मे दशरथ के वैराग्य के कारणरूप मे उपस्थित बृद्ध कचुकी का प्रसंग मानस मे नही आया है। कैकेयी के वरयाचन के प्रसग में भी अतर है। 'मानस' में यह प्रसंग विस्तृत भूमिका के साथ आया है। देवसभा मे सरस्वती को राम-वन-गमन संपादन के लिए भेजा जाता है। वह मथरा की बुद्धि बदल देती है—**"गई गिरा मति फेरि।"** मथरा कैकेयी को भरती है। कैकेयी कोप-भवन में जाकर पड़ जाती है। दशरथ उसे मनाते हैं। उस समय वह दो वर माँगती है; एक में वह भरत का राज्याभिषेक और दूसरे मे वह राम का वन-गमन माँगती है। दशरथ राम-वन-गमन का वर देने में हिचकिचाते हैं। पद्मपुराण मे एक ही वर माँगा गया है। पद्मपुराण में कैकेयी'वन-वास' का वर नही माँगती, केवल भरत के लिए राज्य माँगती है। पद्मपुराण मे दशरथ भरत को राम-वन-गमन से पूर्व ही राज्य दे देते हैं। राम वन जाने से पूर्व भरत से राज्य करने का अनुरोध करते हैं और उसे अपनी ओर से निश्चिन्त भी करते हैं—'**न करोमि पृथिव्यां ते कांचित् पीड़ां गुणालय**' किंतु मानस मे भरत के ननिहाल से लौटने पर उन्हें अभिषेक समर्पित किया जाता है। पद्मपुराण मे, जब सीता भी राम के साथ चलने का अनुरोध करती हैं तो राम कहते है कि मै दूसरे नगर को (वन को नही) जा रहा हूँ, तुम यही रहो **प्रिये त्वं तिष्ठ चात्रैव गच्छाम्यहं पुरान्तरम्**—किंतु मानस मे वे स्पष्ट बताते है कि मैं वन जा रहा हूँ और तुम हंसगामिनी होने के नाते वन जाने के योग्य नहीं हो। पद्मपुराण मे दशरथ खभे से टिके हुए मूर्च्छित हो जाते हैं जिससे उन्हे कोई मूर्च्छित नहीं जान पाता, मानस में उनकी मूर्च्छा का सब को पता है। **वन-प्रस्थान का वृत्तांत** भी दोनों ग्रंथों में अंतरयुक्त है। पद्मपुराण' में अपने पीछे आने वाले प्रजाजनों को धोखा देने के लिए सायं समय वनगामी

राम-लक्ष्मण-सीता जिन-मंदिर में टिक कर रात में मंदिर के पश्चिम द्वार से दक्षिण दिशा की ओर चल पड़ते हैं, तथा शर्वरी नदी को पार कर जाते हैं, किंतु प्रजाजन उसे पार नहीं कर पाते और उनमें से अनेक तो लौट जाते हैं एवं अनेक दीक्षित हो जाते है। मानस में ऐसा नहीं है। यहाँ तो पहले तमसा के तट पर राम-लक्ष्मण-सीता विश्राम करते हैं फिर गंगा को केवट की नाव से पार करते हैं। यहाँ केवट-प्रसग और ग्राम-वधुओं के मार्मिक प्रसंग से कथानक में अत्यन्त चारुत्व आ गया है।[१२०७] यहाँ सुमन्त्र जब लौटकर अयोध्या आता है और राम को न ला सकने का वर्णन करता है तो दशरथ प्राण ही छोड़ देते हैं। मानस में भरत-मिलाप-प्रसंग मे लक्ष्मण एवं निषादराज भरत के साथ युद्ध करने के लिए उद्यत हो जाते हैं परन्तु बाद में भरत का सद्भाव देखकर उससे सौहार्दपूर्वक मिलते हैं। पद्म-पुराण में ऐसा नहीं हुआ है।

पद्मपुराण में समागत वज्रकर्ण और सिंहोदर का वृत्तान्त, कल्याणमाला का प्रसंग, कपिल ब्राह्मण की कथा, वनमाला-लक्ष्मण-विवाह-प्रसंग, अतिवीर्य का वृत्तान्त, देशभूषण-कुलभूषण के उपसर्ग का राम-लक्ष्मण द्वारा दूरीकरण आदि वृत्तान्त मानस मे नही है, और मानस के कुछ प्रसंग—यथा जनक का सपरिवार चित्रकूट में आगमन, भरत का पादुका लाना, जयन्त की दुष्टता और सीता के चरण मे चोंच मारना, अनसूया द्वारा सीता को पातिव्रत्यधर्मोपदेश, शरभंगऋषि-प्रसंग, वन्य ऋषियों की अस्थियों को देखकर राम की प्रतिज्ञा—'**निसिचरहीन करौं महि भुज उठाइ प्रन कीन**, पद्मपुराण में नहीं है। पद्मपुराण में सीताहरण का हेतु शंबूक-वध है जबकि मानस में शूर्पनखा का नाक-कान काटना। पद्मपुराण का रत्नजटी और विराधित का प्रसंग भी 'मानस' में नहीं हैं और मानस का शबरी-मिलन, कबंध उद्धार, विराध-वध और पम्पासरोवर-गमन पद्मपुराण में नहीं है। पद्मपुराण मे रावण की वियोगजन्य दुरवस्था को देखकर विवश होकर मन्दोदरी सीता के पास रावण का दौत्य सम्पादन करती है और उसे रावण के प्रति अनुरक्त करने की चेष्टा करती है किन्तु मानस में मन्दोदरी सीताकामी रावण को धिक्कारती है तथा सीता को लौटा देने के लिए उससे कहती है। मानस मे राम का सुग्रीव से परिचय हनुमान कराते हैं, वे ही पहले विप्ररूप में राम-लक्ष्मण का परिचय प्राप्त करते हैं और फिर सुग्रीव के पास उन्हे ले आते हैं। सुग्रीव राम को सीता के चिह्न देता है और राम अपनी प्रतिज्ञानुसार बालि को मारते हैं। पद्म-

---

१२०७ पद्मपुराण में तपोवन की स्त्रियाँ राम-लक्ष्मण को देखकर मतवाली हो जाती हैं जबकि 'मानस' की ग्राम-वधुएँ सात्त्विकता से मुग्ध।

पुराण में राम साहसगति विद्याधर का वध करते हैं, वहाँ बालि-वध की चर्चा नहीं है। पद्मपुराण में वर्णित कोटिशिला का लक्ष्मण के द्वारा उठाया जाना, हनूमान् द्वारा अपने नाना को परास्त करना, राम को गन्धर्वकन्याओं की प्राप्ति, लंकासुंदरी और हनूमान् का विवाह आदि प्रसंग मानस में नहीं है। मानस का हनूमान् समुद्र को लाँघकर लंका जाता है, विमान में बैठकर नहीं। बीच में सुरसा उसकी परीक्षा लेकर उसे आशीर्वाद देती है। मार्ग में वह समुद्रवासिनी छायाग्राहिणी निशिचरी (सिंहिका) का वध करता है और मैनाक का स्पर्श करता है। यहाँ लंकासुंदरी से हनूमान् के युद्ध और बाद में दोनों के विवाह की चर्चा नहीं है अपितु लंकिनी नामक निशिचरी का हनूमान् के मुष्टि-प्रहार से वध होता है। मानस में मशक-समान रूप धारण कर हनूमान् का लंका-प्रवेश होता है, पद्मपुराण में असली रूप में। पद्मपुराण में सीता को हनूमान् के द्वारा अँगूठी दिये जाने पर मन्दोदरी उपस्थित है जिसे हनूमान् फटकार लगाता है किन्तु मानस में इस अवसर पर त्रिजटा ही प्रधानतः उपस्थित है, मन्दोदरी अशोक-वन में नहीं आती। पद्मपुराण में हनुमान् लंका का ध्वंस करता है, जबकि मानस में वानर होने के कारण राक्षसों द्वारा जलायी गयी अपनी पूँछ से लंका का दहन करता है। पद्मपुराण में रावण को समझाते हुए विभीषण को इन्द्रजित् सापमान टोकता है, और विभीषण को फटकारता है जिस पर रावण उसे खड्ग से मारने को तत्पर हो जाता है और विभीषण भी एक खभा उखाड़कर युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाता है, बाद में मंत्रियों द्वारा बीच-बचाव किये जाने पर वह तीस अक्षौहिणी सेना के साथ राम से जा मिलता है किन्तु मानस में न तो इन्द्रजित् उसे टोकता है न ही विभीषण सेना के साथ राम से मिलता है। मानस में रावण को जब विभीषण समझाता है और सीता को राम के पास लौटाने का निवेदन करता है—**मोरे कहे जानकी दीजै** तब रावण **मम पुर बसि तपसिन्ह के प्रीती** कहकर चरण प्रहार से उसे अपमानित करता है और विभीषण सचिव को संग लेकर नभ-पथ से जाकर राम से मिलता है जहाँ कि राम उसे 'लंकेश' कहकर उसका अभिषेक करते हैं—**जो संपति सिव रावनहिं दीन्हि दिये दस माथ। सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ॥** मानस का विभीषण चरण-प्रहार का प्रतिशोध नहीं लेता, बस इतना भर कहता है—"**तुम पितु सरिस भले मोहि मारा। राम भजें हित नाथ तुम्हारा।**" मानस में समुद्र (सागर) को नल-नील बाँधते हैं जबकि पद्मपुराण में नल वेलन्धरपुर के स्वामी समुद्र नामक राजा को परास्त करता है। पद्मपुराण में रावण की सभा में अंगद के द्वारा चरण रोपने का प्रसंग नहीं है। मानस में अंगद राम का दौत्य संपादन करने के लिए रावण के पास जाता है और उसकी सभा में "**मैं तव दसन तोरिबे**

लायक।" आदि कहकर उसका अपमान करता है; वह रावण को चुनौती देता है कि कोई भी योद्धा उसका पैर उठा दे किन्तु सब हार मानते हैं। वह रावण के मुकुट उठाकर आकाश में फेंक देता है और अपने पैर उठाने वाले रावण को श्री राम के पैर पकड़ने की सलाह भी देता है। मानस में अंगद द्वारा भानुकर्ण (कुम्भकर्ण) के अधोवस्त्र खोलने की घटना भी नहीं आयी है। पद्मपुराण में उल्लिखित राम-लक्ष्मण को सिंहवाहिनी-गरुड़वाहिनी विद्याओं की प्राप्ति, रावण द्वारा लक्ष्मण पर शक्ति का प्रहार, शक्तिनिहत लक्ष्मण को देखने के लिए रावण का राम को अनुमति दे देना आदि प्रसंग मानस में नहीं है। मानस में मेघनाद के द्वारा लक्ष्मण को शक्ति लगती है, रावण के द्वारा नहीं। पद्मपुराण में वर्णित विशल्या का वृत्तान्त, लक्ष्मणसंबंधी समाचार प्राप्त कर भरत द्वारा राक्षसों के विरुद्ध साकेत में युद्ध की तैयारी आदि के वृत्तान्त 'मानस' में नहीं हैं। यहां तो लक्ष्मण-मूर्च्छा पर हनुमान सुषेण नामक वैद्य को पकड़ लाते है। सुषेण लक्ष्मण को देखकर द्रोणगिरि से सजीवनी बूटी लाकर देने पर ही लक्ष्मण के प्राण बचने की बात कहता है। हनुमान द्रोणपर्वत से संजीवनी लेने जाते हैं। बीच मे रावण की प्रेरणा से राक्षस कालनेमि हनुमान को रोकने का व्यर्थ प्रयास करता है और मारा जाता है। हनुमान पर्वत पर जाकर संजीवनी बूटी को नहीं पहचान पाते और पर्वत को ही उखाड़कर तेजी से उड़ चलते है। जब वे अयोध्या के ऊपर से उड़कर जाते हैं तो भरत आशंकावश उनके पैर में बिना फलक का बाण मार देते हैं। हनुमान 'राम' कहते हुए नीचे आ जाते हैं और भरत के पूछने पर सारा वृत्तान्त सुनाते है। भरत उन्हे अपने बाण पर बिठाकर शीघ्र ही लका भेजने का प्रस्ताव रखते है किन्तु वे स्वय उड़कर सूर्योदय से पूर्व लंका मे आ जाते हैं। लक्ष्मण की चिकित्सा के उपरान्त हनुमान सुषेण को उसके घर पहुँचा देते हैं। मानस में कुम्भकर्ण रावण के प्रयत्नो से जागता है और उसकी सीताहरण के लिए भर्त्सना करता है और सीता को लौटाने के लिए रावण को सलाह देता है। उसकी दृष्टि में विभीषण अधिक प्रिय है क्योंकि उसने राम की शरण ले ली है परन्तु मदिरापान और मांस-भक्षण करके वह आपे से बाहर हो जाता है और वानर-सेना पर टूट पड़ता है। वानर उसके भूधराकार शरीर मे घुस-घुसकर नाक-कान से बाहर निकलते हुए दिखाई देते हैं। पद्मपुराण में कुम्भकर्ण (भानुकर्ण) मदिरापानादि नहीं करता और राम का विरोधी है। वह रावणविमुख विभीषण को प्यार भी नहीं करता। पद्मपुराण में समागत मृगांक आदि मंत्रियों के द्वारा रावण को समझाया जाना तथा रावण का दूत को इशारे से राम के पास भेजना और दूत का वहाँ रावण के पक्ष का समर्थन एवं भामंडल का क्रुद्ध होकर उसे मारने को उद्यत हो जाना आदि मानस

में नहीं है। बहुरूपिणी-विद्या-साधक रावण की माला का अंगद के द्वारा तोड़ दिया जाना एवं उसकी स्त्रियों की दुर्दशा किया जाना आदि भी मानस में कुछ अन्तर के साथ वर्णित हैं। मानस का रावण यज्ञ करता है, जिसे लक्ष्मण, हनुमान आदि भंग करते हैं। मानस मे इन्द्रजित् (मेघनाद) भी यज्ञ करता है किन्तु उसका भी यज्ञ भग कर दिया जाता है और भग्नयज्ञ मेघनाद का आगे चलकर लक्ष्मण के हाथों वध हो जाता है। इसी प्रसंग में राम-लक्ष्मण नागपाश से भी बाँधे जाते हैं, जिन्हे गरुड छुडाता है। पद्मपुराण में रावण अपने किये को बुरा स्वीकारता है तथा पश्चात्ताप करता है। वह अपने को धिक्कारता है तथा एक बार राम-लक्ष्मण को जीवित पकड़कर अपने सम्मान को अक्षुण्ण रखते हुए सीता को उन्हें लौटा देने की भी सोचता है किन्तु मानस में वह सीता को लौटाने की नहीं सोचता, न ही वह अपने किये पर पश्चात्ताप करता है। पद्मपुराण मे रावण का लक्ष्मण के हाथों वध होता है जबकि मानस में विभीषण के द्वारा रावण की नाभि में अमृत कुण्ड होने के रहस्य को उदघाटित किये जाने पर राम रावण की नाभि पर अग्नि बाण चलाकर उसका वध करते हैं। पद्मपुराण में इन्द्रजित् मेघवाहन और कुम्भकर्ण छोड़ दिये जाते हैं और वे दीक्षा ले लेते है। मन्दोदरी चन्द्रनखा आदि भी आर्यिका बन जाती हैं। किन्तु मानस में इन्द्रजित् और कुंभकर्ण का वध होता है। पद्मपुराण मे रावण-वध के अनन्तर राम लका मे प्रवेश करते है, सीता का आलिगन करते हैं तथा कई दिनो तक विभीषण का आतिथ्य स्वीकार करके लंका में आनन्द मनाते है किन्तु मानस मे राम लका मे प्रवेश ही नही करते, आनन्द मनाने की तो बात ही दूसरी है। वे सुग्रीवादि को भेजकर विभीषण का राजतिलक करा देते है और सीता को लाने के लिए विभीषण एव हनुमान को ही भेजते हैं, स्वय नही जाते। विभीषण एव हनुमान सीता को पालकी में लाना चाहते हैं किन्तु सीता की वानरदर्शनोत्सुकता देखकर राम उन्हें सीता को पैदल ही लाने को कहते है। सीता की अग्नि-परीक्षा होती है। अग्नि स्वय सीता को राम तक पहुँचाता है। पद्मपुराण में नारद के मुख से अपनी माता की दयनीय दशा को सुनकर राम अयोध्या जाने के लिए उत्सुक होते है किन्तु विभीषण की विनम्र प्रार्थना पर १६ दिन लका में और रुक जाते है, किन्तु मानस में राम भरत की दशा पर विचार करते हुए तुरन्त अयोध्या के लिए लौट पड़ते हैं। हनुमान उनके आने की सूचना भरत को अयोध्या मे देते हैं। मानस की विषयवस्तु राम के अयोध्या-प्रत्यवर्त्तन राम-राज्य-वर्णन तथा भक्ति-ज्ञानादि के विवेचन के साथ ही समाप्त हो जाती है; इसमें वाल्मीकि रामायण के सदृश आगे की कथा नहीं चलती; अतः पद्मपुराण और मानस की इससे आगे की विषयवस्तु की तुलना

का अवकाश ही नहीं रह जाता।

इस विवेचन से 'पद्मपुराण' और 'मानस' की विषयवस्तु का साम्य-वैषम्य स्पष्ट हो चुका है जिसका कारण दोनों कवियों का दृष्टिकोण ही है। यदि अष्टम बलभद्र राम के चरित्र को वर्णित करके रविषेण जैनधर्म की भावनाओं को पाठकों तक पहुँचाने का प्रयत्न करते हैं तो तुलसी **'बिधि हरि संभु नचावनहारे'** ब्रह्मरूप राम का चरित्र वर्णित करके राम-भक्ति का प्रचार करने का प्रयत्न करते हैं। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए दोनों कवियों ने अपने ढग से वस्तु-योजना की है।

अब हम दोनों रचनाओं की प्रबन्धात्मकता पर किञ्चित् विचार करेंगे।

'पद्मपुराण' की विषयवस्तु का **आरंभ** पौराणिक ढग के आख्यानों को लेकर हुआ है। आधिकारिक कथा– राम की कथा–तो बहुत बाद में आती है। राक्षस-वंश एवं वानर-वंश के परिचय, अनेक राजाओं की वंशावलियों एवं क्षेत्र-काल आदि के वर्णनों के कारण मुख्य कथा तक पहुँचने में कुछ अड़चन का सामना करना पड़ता है। किन्तु मानस का प्रारंभ हमें सीधे राम-कथा पर ले जाता है। नारद-मोह, शिव पार्वती, भानुप्रताप आदि के प्रसंगों के कुछ देर बाद ही रामावतार हो जाता है और मुख्य कथा तेज़ी से चल देती है। इस प्रकार जहाँ 'पद्मपुराण' में मुख्य कथा से 'टेलीफोन' मिलाने मे पाठक को कई एक्सचेंजो से लाइन जोड़नी पड़ती है, वहाँ 'मानस' में 'डाइरेक्ट सिस्टम' से ही काम चल जाता है।

कथानक की गति का जहाँ तक प्रश्न है 'मानस' अधिक सफल है। इसका यह तात्पर्य कदापि नही कि 'पद्मपुराण' में कथानक गतिशील नही है। है अवश्य, किन्तु मानस जितना नहीं। मार्मिक प्रसंगो की पहिचान दोनों कवियों को है। यदि तुलसी ने राम-लक्ष्मण का जनकपुरी-दर्शन, राम-सीता-साक्षात्कार, धनुष-यज्ञ, राम-विवाह, राम-वन-गमन, ग्राम-वधू-प्रसंग, भरत-राम-मिलन, सीताहरण के समय राम-विलाप, लक्ष्मण-शक्ति, राम-रावण-युद्ध और राम-राज्य आदि मार्मिक प्रसंगों को पहिचाना है तो रविषेण ने भी अपनी कथा के अनुसार धनु-षोत्सव, अनेक स्थलों पर तरुणो को देखकर नारियो के भावालाप, राम-विलाप, अंजना-पवञ्जय-वियोग, राम-लक्ष्मण-प्रेम, लवणाकुश-युद्ध आदि अनेक मार्मिक प्रसंगों को दृष्टि में रखा है। अन्तर इतना है कि तुलसी ने मार्मिक प्रसंग भावुकता के साथ कथानक में घुला मिला रखे हैं जबकि रविषेण उनके आगे-पीछे जैनधर्म का स्पष्ट या मूक सन्देश देने लगते हैं।

चलते वर्णनों में 'मानस' बहुत आगे है। 'पद्मपुराण' एक विशालकाय ग्रंथ होने के कारण प्रत्येक बात का सांगोपांग वर्णन देता है, 'मानस' थोड़े में बहुत

कहता है। यद्यपि रविषेण ने भी कहीं-कहीं एक-दो पंक्तियों से ही काम चला लिया है, यथा--"तौ विश्राय यथायोग्यमुपचार ससीतयोः। रामलक्ष्मणयोर्यातौ माता-पुत्री यथागतम्।"[१२०८] तथापि अधिकांश उसने लम्बे वर्णन ही किये हैं। रविषेण को किसी बात के वर्णन का अवसर मिलने पर उनकी लेखनी से सांगोपांग वर्णनों की झड़ी लग जाती है। तुलसी तो रावण-विजय पर राम को तुरन्त ही लौटा देते है; किन्तु रविषेण उन्हें पूर्ण विलास का आनन्द देकर ६ वर्ष बाद लौटाते है। भला राम-लक्ष्मण को अपनी माताएँ बिलकुल ही याद नहीं रहीं! मानस में मार्मिक प्रसंगों के अतिरिक्त शेष सभी वर्णन चलते हुए है यथा---**आगे चले बहुरि रघुराया। ऋष्यमूक परबत नियराया॥** रविषेण यदि इस बात को कहते तो पहले रघुराज के विशेषण आते, फिर ऋष्यमूक पर्वत के और फिर निकटता के।

अरोचक वर्णनों के त्याग में प्राय: दोनों कवि जागरूक हैं। उन वर्णनों को प्राय उन्होंने नहीं किया है जिनमे पाठक की उत्सुकता नष्ट हो। इसीलिए वर्णनों के आरोह विस्तृत है और अवरोह अत्यन्त संक्षिप्त। यथा—रावण की अनेक राजाओं पर विस्तृत चढ़ाई एवं संक्षिप्त प्रत्यावर्तन (पद्म०) राम की विशद बारात तथा संकेतात्मक जनकपुरी-स्वागत (मानस)।

मर्यादावादी होने के नाते तुलसी ने **अप्रिय प्रसंगों की स्थिति** अपने काव्य में अभिधा से नहीं होने दी; यहाँ केवल संकेत ही दिये गये है यथा—'**मरम बचन जब सीता बोला**' किन्तु 'पद्मपुराण' की व्यास शैली में सब कुछ कहा गया है; यथा—लक्ष्मण का भरत का दशरथ को धिक्कारना आदि।

निरर्थक आवृत्ति से बचाव 'मानस में अधिक है। 'पद्मपुराण' मे दो-तीन बार तो 'रामकथा' का विवरणात्मक परिचय है; यथा-हनूमान् द्वारा सीता के समक्ष एवं नारद द्वारा लव-कुश के समक्ष किन्तु तुलसी ऐसे प्रसगो का 'आदिहु ते सब कथा सुनाई' आदि कहकर संकेतात्मक परिचय ही देते हैं।

प्रासंगिक कथाओं की संगति दोनों ग्रंथों में हुई है। 'पद्मपुराण' और 'मानस' में सुग्रीव और हनूमान् की कथा प्रासंगिक मानी जा सकती है। यह कथा दोनों ग्रथों मे अधिकारिक कथा के साथ अन्त तक चलती है 'पद्मपुराण' और 'मानस' मे सुग्रीव और हनूमान् अन्त तक राम के मित्र, सेवक और सहायक बने रहते हैं। सुग्रीव को राज्य-प्राप्ति और स्त्री-प्राप्ति होती है और हनूमान् को 'पद्मपुराण' में पत्नी-राज्य-सम्मान-प्राप्ति और 'मानस' में रामभक्ति-प्राप्ति होती है।

१२०८ पद्म० ३२,१३५

जहाँ तक उपाख्यानों का सम्बन्ध है—दोनों ग्रंथों में अनेक उपाख्यान आये हैं। पद्मपुराण के उपाख्यानों की चर्चा पीछे की जा चुकी है।[१२०९] मानस के *प्रमुख उपाख्यान ये हैं:—*

नारद-मोह, प्रतापभानु-कथा, मनु-शतरूपा-उपाख्यान, शिव-पार्वती-विवाह-कथा, याज्ञवल्क्य-भरद्वाजोपाख्यान, गुह-निषाद-कथा, कालनेमि-कथा, जटायु-उपाख्यान, मारीच-कथा और बालि-कथा, काकभुशुण्डि-उपाख्यान, केवट-प्रसंग तथा शबरी-कथा। इनके अतिरिक्त कुछ उपाख्यानों का केवल नामनिर्देश ही किया गया है। इनमें सुवेलपर्वत, शिवि, दधीचि, हरिश्चन्द्र, नहुष, ययाति, सगर, रन्तिदेव, पृथुराज, अजामिल, सुतीक्ष्ण, वाल्मीकि, जाम्बवान्, नल, नील, लोमश, जय-विजय, कश्यप-अदिति, जलंधर-बाणासुर, अगस्त्य, अम्बरीष, अन्धतापस, कद्रू, गज, कैकेयी, गणिका, अजामिल, व्याध, गीध, गरुड़, गंगावतरण, चित्रकेतु, चन्द्रमा, तपस्विनी, ताड़का, त्रिशंकु, दण्डक, दुदुभि, दुर्वासा, परशुराम, प्रह्लाद, बलि, वेन, ययाति, रावण, राहु, विराध, विश्वामित्र, शृंगी, सहस्रबाहु, सीता को नारद का आशीर्वाद, सुरनाथ इन्द्र और हिरण्यकशिपु आदि के उपाख्यान आते हैं। उत्तरकाण्ड में 'शूद्रभक्त' के उपाख्यान का भी संकेत कवि ने किया है।

इन उपाख्यानों पर दृष्टिपात करने पर सहज ही ज्ञात हो जाता है कि पद्म-पुराण के उपाख्यान मानस के उपाख्यानों से कहीं अधिक हैं। पद्मपुराण के उपाख्यान कहीं-कहीं मुख्य कथा की गति में बाधा डालते हैं किन्तु मानस के उपाख्यान आधिकारिक कथा से बिलकुल सम्बद्ध हैं। वे ऐसे नहीं है कि उन्हें मुख्य कथा में बाहर की वस्तु माना जाय। या तो वे कथा की पुष्टि करते हैं या किसी पात्र के चरित्र-निर्माण में सहयोग देते हैं; या तो रामावतार की भूमिका में सहायक होते हैं या भक्ति का महत्त्व प्रतिपादन करते हैं। साथ ही इनकी संक्षिप्तता भी इन्हें सरस और रोचक बना देती है। 'पद्मपुराण' के उपाख्यानों के समान इनकी *'अति' नहीं है।*

जहाँ तक कथानक के **उपसंहार** का प्रश्न है—दोनों कवियों ने अपने दृष्टि-कोण से विषयवस्तु का निर्वहण करने की चेष्टा की है। रविषेण ने 'पद्मपुराण' की विषयवस्तु का निर्वाह 'भवोक्ति' और 'परिनिर्वृति' नामक अधिकार में किया है।

'मानस' के कथानक का उपसंहार 'उत्तरकाण्ड' में देखा जा सकता है। पार्वती की सन्देह-निवृत्ति के साथ मानस का कथानक समाप्त होता है—**'नाथ कृपा मम गत संदेहा**। इस काण्ड में कवि ने राम द्वारा पुष्पक को कुबेर के पास भेजना,

१२०९. द० प्रस्तुत ग्रन्थ, पृ० १३०-१३१।

लक्ष्मण का कैकेयी से बार-बार मिलना, राम-राज्याभिषेक, सुग्रीव-विभीषण आदि की बिदा, राम-राज्य वर्णन, सन्त-असन्त के लक्षण नीति-उपदेश, शिव-पार्वती-संवाद, काक-भुशुण्डि-कथा, राम-महिमा-वर्णन, कलि-वर्णन, शूद्रभक्त-कथा, ब्राह्मण-महिमा, काक-भुशुण्डि के काक होने की कथा, ज्ञानभक्ति-विवेचन, मानस के अधिकारी तथा पाठ-माहात्म्य का वर्णन और पार्वती की सन्देह निवृत्ति का वर्णन किया है। 'मानस' की विषय-वस्तु का आरम्भ सन्देह या शका से ही होता है। पार्वती को राम के ब्रह्मत्व मे सन्देह होता है जिसका दूरीकरण शिव करते है। उधर गरुड को राम की सर्वशक्तिमत्ता पर शका होती है जिसका समाधान काक-भुशुण्डि करते हैं---'राम ब्रह्म व्यापक जग माही।' कवि का मुख्य उद्देश्य राम की ब्रह्मता प्रतिपादन करना एव दूसरा उद्देश्य भक्ति की महत्ता प्रतिपादन करना ही था। इन उद्देश्यो का पूर्णतया निर्वाह मानस की समाप्ति तक हो जाता है। किन्तु कथानक---केवल कथानक---की दृष्टि से हम विचार करते है तो इसके कथानक को पूर्णतया 'पूर्ण' कहते हुए सकोच सा होता है। राम-राज्य के पश्चात् क्या हुआ ? लक्ष्मण, सीता, सुग्रीव, विभीषण, हनुमान, अगद, शत्रुघ्न, भरत, जनक, कैकेयी और स्वय राम का क्या हुआ ? उनका अन्त कैसे कब और कहाँ हुआ ? ये प्रश्न लटकते ही रह जाते है। वस्तुतः मानस मे विषयवस्तु की अपेक्षा उद्देश्य का ही निर्वाह है। हमें यह कहना ही पड़ता है कि विषयवस्तु के उपसहार की दृष्टि से 'पद्मपुराण' 'मानस' से आगे है।

निष्कर्ष : 'पद्मपुराण' और 'मानस' की विषयवस्तु में साम्य भी है, वैषम्य भी। दोनों में अनेक उपाख्यान तथा प्रासङ्गिक कथाएँ हैं किन्तु 'पद्मपुराण' के उपाख्यान कही-कही पाठक को मुख्य कथा से दूर कर देते है। मार्मिक प्रसगो की दोनों कवियों को पहिचान है किन्तु मानस मे इनकी अधिक भावपूर्ण योजना है। 'मानस' की विषयवस्तु छोटी होने के कारण अधिक संगठित है, 'पद्मपुराण' की विषय-वस्तु कहीं-कहीं उपदेश दान आदि से बिखर सी गयी है। हाँ, विषय-वस्तु-सम्बन्धी पूर्णता 'पद्मपुराण' मे शत प्रतिशत है, 'मानस' इस दृष्टि से शिथिल है। 'पद्मपुराण' की प्रतिनायक-सम्बन्धी विषयवस्तु अधिक प्रभावशाली है। 'मानस' में 'राम की कथा' की गरिमा अधिक है, 'पद्मपुराण' मे उतनी उदात्त भावना उनके प्रति नही उत्पन्न होती। पद-पद पर सीता के स्तनो का वर्णन, उनकी कामोद्दीपकता एव राम-लक्ष्मण के अनेक स्त्रियो से 'थोक' में विवाहों के वर्णनो को देखकर उनके प्रति भारतीय दृष्टिकोण वाले पुरुषों की श्रद्धा जैसी भावना वैसे रूप में नहीं उठती जैसी 'मानस' के श्रीराम के चरित्र को पढ़कर उनके प्रति। फिर भी अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार दोनों कवियों ने अपने ग्रन्थों की विषयवस्तु को सफल बनाने

की चेष्टा की है और वे सफल हुए भी हैं।

पद्मपुराण और रामचरितमानस के पात्र तथा चरित्र-चित्रण : पद्मपुराण और मानस के पात्रों की तुलना करते समय हमें ज्ञात होता है कि यद्यपि मानस में पात्रों की संख्या पद्मपुराण से अर्धांश भी नही है तथापि मुख्य कथानक के पात्र प्रायः उसके समान ही हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 'मानस' के पात्रों का वर्गीकरण करते हुए इनके तीन वर्ग बनाते हैं—**सात्त्विक, राजस, एवं तामस**। तीनों प्रवृत्तियो के अनुसार चरित्र विधान करने से दो प्रकार के चित्रण हम गोस्वामी जी में पाते हैं **आदर्श और सामान्य**। आदर्श चित्रण के भीतर सात्त्विक और तामस दोनों आते है। राजस को सामान्य चित्रण के भीतर लिया जा सकता है। इस दृष्टि से सीता, राम, भरत, हनुमान और रावण आदर्श चित्रण के भीतर आयेंगे तथा दशरथ, लक्ष्मण, विभीषण, सुग्रीव और कैकेयी सामान्य चित्रण के भीतर। आदर्श चित्रण में हम या तो यहाँ से वहाँ तक सात्त्विक वृत्ति का निर्वाह पायेंगे या तामस का। प्रकृति भेद सूचक अनेकरूपता उसमें न मिलेगी। सीता, राम, भरत और हनुमान सात्त्विक आदर्श हैं, रावण तामस आदर्श है।[१२१०]

स्पष्टता की दृष्टि से पद्मपुराण के पात्रो के सदृश मानस के पात्रों को भी सात भागो मे विभक्त किया जा सकता है—

१. **राम-पक्ष के पुरुष पात्र**—दशरथ, राम, भरत, शत्रुघ्न और लव-कुश।

२. **राम-पक्ष के स्त्री पात्र**—कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी, सीता मन्थरा, शबरी और अनसूया।

३. **रावण-पक्ष के पुरुष पात्र**—रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण मेघनाद और अक्षकुमार।

४. **रावण-पक्ष के स्त्री पात्र**—मन्दोदरी और त्रिजटा।

५. **प्रासंगिक कथाओं के पुरुष पात्र**—नारद, जटायु, हनुमान, बालि, सुग्रीव अंगद, सम्पाति और जनक।

६. **प्रासंगिक कथाओं के स्त्री पात्र** – तारा, सुलोचना।

७. **पौराणिक महापुरुष**—वसिष्ठ, विश्वामित्र, परशुराम, काक-भुशुंडि आदि।

यदि पुरुष और स्त्री का भेद हटा दिया जाय तो इन पात्रो को अग्रलिखित तीन वर्गों में रखा जा सकता है—**१. राम-पक्ष के पात्र २. रावण-पक्ष के पात्र** एवं **३. प्रासंगिक कथाओं के पात्र**। इसके अतिरिक्त और भी कुछ गौण पात्रों का मानस में उल्लेख है। यह स्पष्ट है कि पद्मपुराण और मानस मे अनेक सामान्य

१२१०. तुलसी-ग्रंथावली प्रस्तावना पृष्ठ ११३

पात्र है। कुछ पात्रों के नामों में अन्तर है। पद्मपुराण में अनंगलवण और मदनांकुश जिन्हें मिलाकर लवणांकुश कहा गया है, मानस में लव और कुश हैं। पद्मपुराण में राम की माता का नाम अपराजिता है जब कि मानस में कौशल्या। पद्मपुराण में रावण की बहिन का नाम चन्द्रनखा है, मानस में सूर्पनखा (शूर्पनखा)। पद्मपुराण में लकासुन्दरी एक राजकुमारी है और मानस में लकिनी एक राक्षसी है।

'पद्मपुराण' और 'मानस' के दशरथ के चरित्र में पर्याप्त अन्तर है। पद्मपुराण के दशरथ हमारे सामने नवयौवन से भूषित वपु के साथ प्रस्तुत होते है जबकि मानस के दशरथ हमारे सामने वृद्ध राजा के रूप में आते हैं। पद्मपुराण के दशरथ का श्रवणकुमार के वध से कोई संबंध नहीं है जबकि मानस के दशरथ के साथ श्रवणकुमार के वध की कथा जुड़ी हुई है। पद्मपुराण के दशरथ वृद्ध कंचुकी की अवस्था को देखकर वैराग्य धारण करते है जबकि मानस में अपने चौथेपन को देखकर वे राज्य का भार राम को देना चाहते है। मानस के दशरथ सच्चे रघुवंशी है जिनका नियम है—'प्रान जाइ पर बचन न जाई।' वे कैकेयी को वर दे देते है और राम-वियोग में उनके प्राण शरीर छोड़ देते हैं। मानस के दशरथ राम-भक्त है, पद्मपुराण के दशरथ जिन-भक्त। पद्मपुराण के दशरथ केकया के वर माँगने पर संज्ञाशून्य नहीं होते, वे परम धैर्यशाली और विवेकशील है। वे स्वयं भरत को शासन संभालने को कहते है। किन्तु मानस के दशरथ में मोह की मात्रा अधिक है और वे सोकबस उतरु नहीं दे सकते। पद्मपुराण में वे दीक्षा ले लेते हैं जबकि मानस में राम-विरह में प्राण ही त्याग देते है। जहाँ पद्मपुराण में दशरथ का चरित्र आदर्शवादी है वहाँ मानस में मनोवैज्ञानिक।

पद्मपुराण और मानस दोनों में ही राम नायक है। पद्मपुराण में उनका नाम 'पद्म' भी है जबकि मानस में नाम एक ही है—राम जिसके विशेषण अनेक हो सकते हैं। पद्मपुराण के राम ८००० रानियों के स्वामी, विलासी तथा मोह से युक्त हैं किन्तु मानस के राम एकपत्नीव्रत, तपस्वी तथा मोहघ्न हैं। मानस के राम का चरित्र बहुत ही आदर्श है। डॉ० माताप्रसाद गुप्त के शब्दों में 'किसी भी भाँति की काव्य प्रतिभा ने कभी भी जिन उदात्त गुणों की कल्पना की होगी, कदाचित् उन सबका एक आदर्शतम रूप हमें राम के चरित्र में समाहित मिलता है। उन्हें एक अत्यन्त भव्य शरीर गठन प्राप्त है। किन्तु इससे कहीं अधिक प्रभावोत्पादक है उनकी दृढ़ता, उनकी क्षोभहीनता, उनकी कृतज्ञता, उनकी निष्कलुषहृदयता, उनका दृढ़ निश्चय, उनका अदम्य उत्साह, उनकी अन्तःकरण की पवित्रता, उनकी सुशीलता और सबसे अधिक उनका निष्ठावान व्यक्तित्व। अव्यवस्था अनैतिकता, अधार्मिकता और नास्तिकता के स्थान पर व्यवस्था, नैतिकता और

आस्तिकता का संस्थापन करने के लिए एक ऐसे ही पूर्ण चरित्र की ईश्वर के रूप में दिव्य कल्पना कीजिये और यही तुलसीदास के पूर्ववर्ती भारतीय साहित्य के राम हैं। इसी पूर्ण चरित्र में—जैसे और भी पूर्णता भरने में उनकी प्रतिभा लीन होती है।"[१२११] पद्मपुराण के राम के समान ही मानस के राम का व्यक्तित्व भी बहुत आकर्षक है। उनका सौन्दर्य वर्णनातीत है। करोड़ों कामदेवों को लजानेवाले राम की शक्ति भी अतुल है और उनका शील भी। पद्मपुराण में भी राम अपरिमित शक्ति के पुंज और शील के भंडार हैं। पद्मपुराण में वज्रावर्त धनुष को चढ़ाकर एवं मानस में शिव-धनुष को तोड़कर राम अपनी शक्ति का परिचय देते हैं तथा पिता की आज्ञा मानकर वे वन के लिए प्रस्थान कर देते है। पद्मपुराण के राम की शक्ति का प्रमाण म्लेच्छों को परास्त करने में तथा अनेक युद्धों में पराक्रम का प्रदर्शन करने में मिलता है तो मानस के राम की शक्ति का अलौकिक प्रताप यह है कि 'भृकुटि विलास सृष्टि लय होई।' राम तेज बल बुधि की बिपुलाई को सेस सहस सत भी नही गा सकते हैं। वे दुर्द्धर्ष रावण के सहर्ता हैं। बचपन से ही ताड़का और मारीच जैसे दुष्टों का दमन करने वाले है। पद्मपुराण के राम रावण का वध नही करते। रावण का वध वहाँ लक्ष्मण के हाथों होता है। इसका कारण जैनों की यह मान्यता है कि नारायण के हाथों प्रतिनारायण का वध होता है, बलदेव के हाथों नही। राम बलदेव है, लक्ष्मण नारायण और रावण प्रतिनारायण। पद्मपुराण के राम का चरित्र लक्ष्मण के चरित्र के सामने दब सा गया है जबकि मानस के राम के चरित्र की व्याप्ति समस्त कथानक में है। पद्मपुराण के राम में यद्यपि शरणागतवत्सलता, कलापारगतता, पत्नी-प्रेम, मातृ-भक्ति आदि गुण हैं, किन्तु उनमें मानस के राम जैसी मर्यादा और लोकरक्षकता नहीं है। मानस के राम मर्यादापुरुषोत्तम होने पर भी भगवान् है। यही कारण है कि पद्मपुराण के राम जहाँ जैनियों के कर्म-सिद्धान्त के आधार पर स्वयं तपस्या करके अन्त में कैवल्य प्राप्त करते हैं और अनेक सासारिक स्थितियों से गुजरते हुए मोक्ष सिद्धि करते है वहाँ मानस के राम अपनी लीला दिखाने के लिए सासारिक कृत्यों को करते हैं जिन का लक्ष्य है—धर्म की रक्षा। उनके दशरथ-पुत्र होने में संदेह नही, किन्तु उनके पूर्ण ब्रह्म होने में भी प्रश्नवाचक चिह्न नहीं लगता। वे **'ब्रह्म अनामय अज भगवंता, व्यापक, अजित, अनादि अनंता'** है; वे **'सज्जन, पीरा'** हरण करने वाले हैं; वे **'गो द्विज धनु देव हितकारी'** तथा **'मानुष तनु धारी' 'कृपासिंधु'** हैं; वे खल-व्रात के भंजक तथा जनरंजक हैं, वे वेद-धर्म रक्षक

१२११. तुलसीदास, पृ० २८७।

हैं; वे धर्मतरु के मूल हैं, विवेक जलधि के पूर्णेन्दु हैं, वैराग्याम्बुज के भास्कर हैं, अघघनध्वांत और मोह के नाशक हैं; शरणागतवत्सलता, कृतज्ञता, गुणज्ञता, समचित्तता, सत्यसंधता, दीनोद्धारकता तथा एक आदर्श आराध्य मे सम्भावित समस्त सद्गुणों के वे आस्पद हैं। वे ब्रह्माशभुफणीन्द्रसेव्य, वेदान्तवेद्य, विभु और जगदीश्वर हैं।

यद्यपि तुलसीदास की दृष्टि से अनेक कवियों द्वारा आलोचित शूर्पनखा की नाक काटना, बालि को छिपकर मारना आदि राम के कार्यकलाप लोककल्याण के लिए उचित बैठते हैं तथापि पहले मानना पड़ेगा कि मानस के राम इन विवादास्पद कार्यों से बचाये नहीं जा सके जब कि पद्मपुराण के राम इन प्रसंगो से साफ बचे हुए है। पद्मपुराण में राम अयोध्या मे सीता की कड़ी अग्नि परीक्षा लेते है तथा लोकापवाद से भयभीत होकर अपने मन मे उसकी शुद्धता जानते हुए भी उसे छोड़ देते है किन्तु मानस में तुलसी इस प्रसंग तक अपनी कथा बढ़ने ही नही देते। 'पद्मपुराण' के राम अन्त में केवली होते है, जबकि 'मानस' के राम का अन्त चित्रित ही नही हुआ है।

जहाँ तक लक्ष्मण का प्रश्न है, दोनो ही ग्रन्थो मे वे विशिष्ट पात्रों मे परिगणित है। पद्मपुराण मे वे अष्टम नारायण है और मानस में वे शेषावतार किन्तु पद्मपुराण में उनकी महत्ता राम से भी अधिक है। पद्मपुराण में वे श्यामलवर्ण है जब कि मानस में गौरवर्ण। पद्मपुराण मे वे ही रावण का वध करते है तथा अधिक क्रियाशील है जब कि मानस मे व राम के अनुचर के रूप मे ही चित्रित है। उनका स्वतन्त्र अस्तित्व मानस मे उभरकर नही आता। मानस के लक्ष्मण दृढ़, निर्भय, उत्साही, निष्कपट, तेजस्वी और शक्तिशाली है; वे 'शिवधनु' को उठाकर तोड़ने की क्षमता रखते हैं; व ब्रह्माण्ड को कच्चे घड़े सदेश फोड़ सकते हे, किन्तु ये सारे काम वे अपने अग्रज श्रीरामचन्द्रजी की प्रतिष्ठा की रक्षा करने के लिए ही करना चाहते हे, अपने लिए वे स्वतन्त्र रूप से कुछ नही करते मानो उन्होंने अपना जीवन श्रीराम के चरणकमलों मे समर्पित कर दिया हे। 'मानस' के लक्ष्मण की उग्रता और असहिष्णुता और कभी-कभी कुछ खटकने वाली निर्मर्यादता भी, जिसका प्रमाण परशुराम-संवाद और भरत-मिलाप-प्रसग मे मिलता है, उनके अनन्य राम प्रेम से दब जाती है। वे वन मे रहकर परम सयमी ब्रह्मचारी का जीवन बिताते हुए राम की सेवा करते है। किन्तु पद्मपुराण के लक्ष्मण का अस्तित्व राम के चरित्र का पुच्छभूत नही है, उनका अस्तित्व राम के समानातर चलने वाला स्वतन्त्र अस्तित्व है। पद्मपुराण के लक्ष्मण परमविलासी और अनेक रानियों के स्वामी हैं, वे चंचलचित्त युवक हैं, जिसका प्रमाण राम के द्वारा चन्द्र-

नखा को लौटाये जाने पर उसके विषय में उनकी उत्सुकता से मिलता है। पद्म-पुराण के लक्ष्मण एक वीर सामंत योद्धा के रूप में अनेक राजाओं को विजित करते हैं किन्तु मानस में ऐसा कोई प्रसंग नहीं आता। पद्मपुराण मे लक्ष्मण सागरा-वर्त धनुष को चढ़ाते है जब कि मानस में वे धनुष नहीं चढ़ाते है। यहाँ तो राम-चन्द्र के रहते वे धनुष तोड़ना पसंद नहीं करते। मानस के लक्ष्मण की सन्तान की कोई चर्चा नही है जब कि पद्मपुराण में उनके दो सौ पचास पुत्र[१२१२] है। पद्म-पुराण के लक्ष्मण मरकर नरक जाते हैं, जबकि मानस में उनके नरक-गमन की कोई चर्चा नही है।

भरत का चरित्र पद्मपुराण और मानस दोनो में ही आदर्श रूप में चित्रित हैं। भ्रातृप्रेम भरत के चरित्र का बहुचर्चित बिन्दु हैं, किन्तु पद्मपुराण में भरत का चरित्र इतना मार्मिक नही है जितना मानस में। पद्मपुराण मे भरत के ये गिने-चुने काम हैं—दीक्षा का विचार, राम के समझाने पर राज्यग्रहण, भामंडल आदि से लक्ष्मण-शक्ति का समाचार सुनकर अयोध्या में रण-सज्जा और अन्त में दीक्षा धारण करना। 'मानस' के भरत सदा राम के ध्यान मे मग्न हैं और उनके चरित्र से जुड़े हुए प्रधान कार्य हैं —गुह-मिलन, चित्रकूट-यात्रा श्रीराम की चरणपादु-काओं को राज्यसिंहासन पर स्थापित कर उनके प्रतिनिधि के रूप में शासनकार्य देखना तथा सजीवनी बूटी ले जाते हुए हनुमान को बाण मारकर गिराना तथा वस्तुस्थिति का ज्ञान होने पर उन्हे अपने बाण पर बिठाकर लंका भेजने की बात कहना आदि। माता को धिक्कारना और कटु शब्द कहना भी मानस के भरत के राम-प्रेम को ही व्यक्त करते है। पद्मपुराण के भरत राम के अयोध्या से चलने के समय अयोध्या में ही उपस्थित है जबकि मानस के भरत ननिहाल में। मानस के भरत यदि राम-वन-गमन के समय अयोध्या होते तो शायद वे राज्य ही न सँभा-लते, भले ही लक्ष्मण की तरह वन को चल पड़ते, अस्तु। पद्मपुराण के भरत की तरह मानस के भरत एक सौ पचास स्त्रियों के स्वामी नही है। सीता के साथ भरत की क्रीडा की तो तुलसीदास कल्पना भी नही कर सकते जब कि रविषेण ने बड़े मनोयोगपूर्वक भरत की अपनी भाभियों के साथ जल क्रीड़ा का चित्रण किया है। कुल मिलाकर देखने पर दोनों ही ग्रथों मे भरत को एक विवेकी पुरुष के रूप में चित्रित किया गया है किन्तु तुलसी के भरत के चरित्र मे किसी प्रकार की कमी नही है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों मे "उनके चरित्र में कई अमूल्य सद्भावनाओ का योग मिलता है। भरत के हृदय का विश्लेषण करने पर उनमें

१२१२. पद्म० ९४।२७

लोकमीरुता स्नेहार्दता व्यक्ति और धर्मप्रवणता का मेल पाते हैं।"[१२१३]

शत्रुघ्न का व्यक्तित्व दोनों ग्रन्थों में किसी विशिष्ट स्थान का अधिकारी नही है। पद्मपुराण मे वे दशरथ की सुप्रभा रानी से उत्पन्न हैं और मानस में सुमित्रा से। मानस में वे कैकेयी की करतूतों से क्षुब्ध होकर मथरा के कूबर पर लात मारते हैं किन्तु भरत के कहने से छोड़ देते हैं। इस काड से उनके राम-प्रेम और अन्याय का विरोध करने की प्रवृत्ति की व्यञ्जना मानी जा सकती है। पद्मपुराण में मंथरा का प्रसंग है ही नही। पद्मपुराण में मधुसुन्दर के साथ युद्ध करने से उसकी वीरता की सिद्धि की जा सकती है। मानस के शत्रुघ्न क्रोधी प्रकृति के है, जब कि पद्मपुराण के शत्रुघ्न प्रायः शात प्रकृति के जैन, जो अन्त मे संसार के आकर्षण से विमुख होकर श्रमण हो जाते है।

जहाँ तक लव और कुश का सम्बन्ध है, मानस मे उनके नाम का संकेत मात्र है और उन्हें विजयी बिनयी और गुणों का भडार कहा गया है।[१२१३ (अ)] किंतु पद्मपुराण में उनके (लवणांकुश के) चरित्र का विकास भी दिखलाया गया है। पद्मपुराण की मुख्य कथा के वे सक्रिय पात्र है जबकि मानस की कथा में वे केवल संकेतित पात्र है।

पद्मपुराण और मानस दोनो मे राम की माता पुत्रवत्सला है। पद्म-पुराण मे उसका नाम अपराजिता है और मानस मे कौशल्या है। मानस की कौशल्या अपने औरस पुत्र राम के साथ अन्य रानियो से उत्पन्न तीनो पुत्रो को भी परम स्नेह करती हैं। वनगमन के समय वह एक विचित्र स्थिति में है क्योंकि एक ओर तो उसके सम्मुख पति के सत्य वचन की रक्षा का प्रश्न है दूसरी ओर पुत्र-वियोग। राम के लिए उसका आदेश उसकी बुद्धिमत्ता, शिष्टता और मर्यादा का द्योतक है। वह कहती है "यदि पिता ने वनवास दिया है तो माता की आज्ञा प्रधान मानकर तू वन मत जा; यदि पिता और माता दोनों ने कहा है तो चला जा, तेरे लिए वन भी सौ अयोध्याओ के समान हो।" मानस की कौशल्या के चरित्र का उसकी सादगी, ऋजुता, शिष्टता एव मर्यादा मे अधिक प्रभाव पड़ता है। पद्पुराण की अपराजिता तो पहले एक स्वार्थी स्त्री सी लगती है; वह इसलिए राम के साथ जाना चाहती है क्योंकि—

"पिता नाथोऽथवा पुत्रः कुलस्त्रीणाममी गति.।
पितातिक्रांतकान्तो मे नाथो दीक्षासमुत्सुकः।।

१२१३(अ) दुइसुत सुन्दर सीता जाए। लव कुस वेद पुरानन गाए॥ दोउ बिजयी विनयी गुन मन्दिर। हरि प्रतिबिंब मानहुँ अति सुन्दर॥ मानस उत्तर कांड २४।

जीवितस्य त्वमेवैकः साम्प्रतं मेऽवलम्बनम्।
त्वयापि रहिता साहं वद गच्छामि कां गतिम्॥"[१२१४]

पद्मपुराण की सुमित्रा सुबन्धुतिलक की मित्रा रानी से उत्पन्न पुत्री और दशरथ की रानी है। इसका नाम 'केकयी' है और चेष्टाओं के कारण सुमित्रा भी।[१२१५] लक्ष्मण इसके पुत्र हैं। मानस में सुमित्रा लक्ष्मण और शत्रुघ्न की माता है एव दशरथ की कनिष्ठ रानी है। वह गम्भीर, तेजस्विनी एव भक्त है। लक्ष्मण को राम के साथ वन भेजते समयउन का सिद्धांत यही है—"पुत्रवती जुवती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुत होई॥[१२१६]

भरत की माता का नाम पद्मपुराण में केकया है और मानस कैकेयी। पद्मपुराण में वह निखिल-कला-पारगत, वीरागंना, बुद्धिमती एव मनोविज्ञान की पारखी है। मानस मे भी वह अपूर्वसौन्दर्यशालिनी है। पद्मपुराण मे वह भरत के दीक्षा लेने के इरादे को बदलने के लिए दशरथ से उसके लिए राज्य माँगती है, वह राम को वन भेजने के प्रति अभिनिवेशिनी नहीं है और वह राम को लौटाने भी जाती है किन्तु मानस की कैकेयी मथरा के द्वारा बहकायी जाने पर कुटिल हो जाती है एव दो वरों को माँगकर भरत के लिए राज्य और राम के लिए वनगमन दुखी राजा से स्वीकार करा लेती है। वह स्वाधीनभर्तृका एव स्वार्थ से प्रेरित एक कुटिल नारी के रूप में हमारे सामने उपस्थित होती है। पद्मपुराण में वह अपने किये पर पश्चात्ताप करती है और राम को बहुत मनाती है किन्तु तुलसी ने उसे अपने अपराध-प्रकाशन का समय भी नहीं दिया। कभी उसके ग्लानि से गलने की बात कही है और कभी अयोध्या प्रत्यावर्तन पर राम-लक्ष्मण के कैकेयी से बार-बार मिलने का सकेत करके कैकेयी को तुलसी ने अधिक्षिप्त किया है। भाव यह है कि पद्मपुराण की केकया के प्रति रविषेण का दृष्टिकोण प्रतिबद्ध और कटु नहीं है जैसा कि मानस की कैकेयी के प्रति तुलसी का है।

पद्मपुराण म शत्रुघ्न की माता सुप्रभा है किंतु 'मानस' मे सुप्रभा नाम की कोई रानी नहीं है। शत्रुघ्न और लक्ष्मण एक ही रानी के पुत्र है।

पद्मपुराण और मानस दोनों मे ही सीता जनक की पुत्री और राम की पत्नी हैं। वह अनिद्य सुंदरी एव पतिव्रता है। तुलसी ने एक आदर्श मर्यादित नारी के रूप मे उन्हे चित्रित किया है। सखियों के साथ पुष्प वाटिका मे श्रीराम को देखकर पुलकगात जल नयन से युक्त सीता का प्रेमाधिक्य, सौंदर्य एव लज्जाशीलता

१२१४. पद्म० ३१।१७७, १७८
१२१५. पद्म० २२।१७५
१२१६. मानस, अयोध्या ४७/१

साक्षात्कृत होती है। स्वयंवर के समय राम में मन ही मन अनुरक्त किंतु गुरुजन संकोच से आक्रांत सीता की शालीनता दृष्टिगोचर होती है। विदा के अवसर पर वे भारतीय कन्याओं की भाँति अपने माता-पिता एवं सखियों के गले लग-लगकर रोती है। वनवास के समय वे कैकेयी की आज्ञा से वनोचित वस्त्र धारण कर अपने पति का अनुगमन करती हैं। उस राजवधू को पति के साथ वन भी राज-महल प्रतीत होता है। चित्रकूट में वे अपनी सास तथा अन्य गुरुजनों की मन से सेवा करती हैं। वे आतिथेयता सत्कार का अनुपम उदाहरण हैं। रावण को भिक्षा देती हैं। अशोकवाटिका मे हम उनकी निर्भयता एवं पति-धर्मपरायणता का साक्षात्कार करते है। हनुमान से बातें करते हुए उनकी बुद्धिमत्ता और साव-धानता व्यक्त होती है। तुलसी ने उनमे दाम्पत्य-प्रेम और सेव्य-सेवक भाव की भक्ति का सुन्दर सामजस्य दिखाया है। भाव यह है कि मानस की सीता पुत्री, वधू, पुत्रवधू, भाभी आदि अनेक रूपों मे हमारे सम्मुख आदर्श उपस्थित करती है। एक स्थान पर सीता का चरित्र कुछ हल्का-सा दिखाई देता हैं जबकि वे लक्ष्मण को सदिग्ध दृष्टि से देखती हुई उससे **'मरम बचन'** बोलती है। किंतु यह स्थल सकेतात्मक ही है।

तुलसी की सीता उद्भवस्थितिसहारकारिणी जगज्जननी है और रविषेण की सीता एक भूमिगोचरी राजा की पुत्री। यही कारण है कि मानसकार ने उन्हे परम मर्यादित एव आदर्श रूप में देखा हैं जबकि पद्मपुराणकार ने उन्हे अधिक मनोवैज्ञानिक रूप में चित्रित किया है। मानस मे उनका रूप-वर्णन सकेतात्मकता के साथ किया गया है जबकि पद्मपुराण में उनके स्तनादि का अनेक स्थानो पर खुला वर्णन किया गया है। तुलसी की सीता रामभक्त है जबकि रविषेण की जिन-भक्त। अपने-अपने दृष्टिकोण से दोनों का ही सीता-चित्रण ज़ोर का है। साहित्यिक दृष्टि से रविषेण आगे हैं और मर्यादावादी सास्कृतिक दृष्टि से तुलसी।

पद्मपुराण मे **रावण** का चरित्र अत्यधिक उदात्त तथा उज्ज्वल रूप मे चित्रित किया गया है। वह अष्टम प्रतिनारायण है जिसके अपने सिद्धान्त है। मानस का रावण एक राक्षस है जिसका कार्य ससार को कष्ट देना है। पद्मपुराण में राम और रावण की लड़ाई सत्य और प्रतिसत्य की लड़ाई है जबकि मानस में सत्य और असत्य की। रविषेण ने रामकथा को रावणपक्षीय पात्रो की ओर से देखने का प्रयत्न किया है, जबकि वाल्मीकि और तुलसी ने राम-कथा को रामपक्षीय पात्रों की ओर से देखा है। तुलसी रावण के प्रति उदार नहीं हैं क्योंकि वह अधर्म का प्रतीक है, वह तपस्या करके भी यही वर माँगता है कि **'हम काहू के मारे न**

मारें'; वह कोई धर्म का आचरण नहीं करता। यद्यपि उसकी सुख-सम्पत्ति, सुत, सेना, सहायक, जय, प्रताप, बल, बुद्धि और बड़ाई नित्य नूतन बढ़ती जाती है किंतु वह "प्र.वमुपचितो मु.ह्यति खलः" के अनुसार ब्राह्.ण-भोजन-यज्ञ-हवन मे बाधा डलवाता है। उसकी यह आज्ञा है—**सुनहु सकल रजनीचर जूथा। हमरे बैरी बिबिध बरूथा॥ ते सनमुख नहिं करहिं लराई। देखि सकल रिपु जाहिं पराई॥ तिन्ह कर मरन एक बिधि होई। कहहुँ बुझाइ सुनहुँ अब सोई॥ द्विज भोजन, मख, होय सराधा। सबकै जाइ करहु तुम बाधा।**[१२१७]

वह अनेक राजाओं को अपने अधीन करता है तथा अनेक किन्नर, देव, यक्ष, गंधर्व, नर एवं नागों की कन्याओं से विवाह कर लेता है।[१२१८] गो-ब्राह्मणघ्न धर्म-ध्वंसी रावण के पापों का कोई ठिकाना नहीं है। वह निशाचर है, कपटवेश धारण करके सीता-हरण करता है तथा जटायु को घायल करके सीता को लका के अशोक-वन में छोड देता है जहाँ उसे वह अनेक भय दिखाता है। वह अपार अभिमानी है। राम की ब्रह्मता का आभास प्राप्त कर लेने पर भी तथा विभीषण और मदोदरी आदि के समझाने पर भी वह सीता को लौटाने के लिए उद्यत नहीं होता और अपनी हठधर्मिता पर अटल रहकर भगवान् राम के हाथों युद्ध में मारा जाता है। राम-भक्ति भी उसके मन के अन्दर देखी जा सकती है जबकि राम को भगवान् समझकर वह हठपूर्वक उनसे वैर करके मरना चाहता है। अपनी आद्या शक्ति सीता का ध्यान करने के कारण भगवान् उसे मरणोपरात अपना धाम देते है।

पद्मपुराण का रावण सुदर, रमणीयाकृति तथा मनोहर है जबकि मानस का भयंकर। पद्मपुराण के रावण के एक मुख तथा दो बाहु है, दशाननत्व तो उसे हार में प्रतिबिम्ब दिखाई देने से प्राप्त होता है जबकि मानस के रावण के दस मुख तथा बीस भुजाएँ है।

दोनो का रावण शूरवीर तथा विजेता हैं किन्तु पद्मपुराण का रावण अत्याचारी नही है; वह किसी गो-ब्राह्मण का हन्ता नही है जैसा कि मानस का रावण है। पद्मपुराण के रावण के रूप-शील-सौन्दर्य के वशीभूत होकर अनेक कन्याएँ उसे वरती है तथा वह भी राजी से अनेक कन्याओं से रमण करता है जबकि 'मानस' का रावण पराजित राजाओ की कन्याओं से विवाह करता है (जो कि विवशता का ही परिचायक है।)

१२१७. मानस, बाल कांड १८१।३-४
१२१८. मानस, बाल काड १८५।२(ख)।

पद्मपुराण का रावण विनयी, सहिष्णु, प्रजापालक, धर्माधर्मविवेकी, गम्भीर नीतिज्ञ तथा उदात्त है जबकि 'मानस' का अविनयी, असहिष्णु, प्रजोच्छेदक, अधर्मी अभिमानी तथा निकृष्ट। पद्मपुराण का रावण सच्चा मनोयोगी साधक है जो 'बहुरूपिणी' विद्या सिद्ध करके ही उठता है, चाहे वानर उसे कितना ही कष्ट दें किन्तु मानस का रावण यज्ञ-विध्वंस पर बौखला उठता है तथा सिद्धि नहीं कर पाता। पद्मपुराण के रावण द्वारा युद्धभूमि में शक्तिनिहत लक्ष्मण को देखने की राम को अनुमति देना तथा कुम्भकर्ण को वरुण की स्त्रियों को बन्दी बनाने पर फटकार देना—आदि कार्य ऐसे हैं जिनके समान किसी कार्य का 'मानस' के रावण में सद्भाव नहीं दिखाई देता।

संक्षेप में पद्मपुराण का रावण अधिक उदात्त है, वह अपने वंश का नाम करने वाला है तथा मानस का रावण पुलस्त्य ऋषि के वंश-रूपी चन्द्र का कलंक।

मानस का **कुम्भकर्ण** भूधराकार है। वह नगाड़े आदि बजाये जाने पर उठता है। उठते ही रावण को सीताहरण के लिए बुरा-भला कहता है और राम-भक्त विभीषण की प्रशंसा करता है किन्तु मदिरापान और मांस-भक्षण करके वह आपे से बाहर होकर गर्जना करता है। वह रणधीर है और वानर-सेना में त्राहि-त्राहि मचा देने वाला है। वह अपने मुष्टि-प्रहार से हनुमान को चक्कर खिला देता है। इसी प्रकार के अनेकों विकट काम करता हुआ वह राम के द्वारा मारा जाता है। किन्तु पद्पुराण में कुम्भकर्ण मारा नहीं जाता, वह केवल बन्दी बनाया जाता है। और मुक्त होने पर दीक्षा ले लेता है। पद्मपुराण में वह शीलवान् है और अनत-बल केवली की शरण में उसने नित्यप्रति जिनेन्द्र-वन्दना करने की प्रतिज्ञा की है।

विभीषण का चरित्र दोनों कवियों ने अपनी-अपनी व्याख्याओं से सँवारने का प्रयत्न किया है। घर के भेदी लंका ढहाने वाले विभीषण के देशद्रोह और भ्रातृ-द्रोह को 'मानस' में रामभक्ति का पुट देकर परिमार्जित कर लिया गया है किन्तु पद्मपुराण में कुछ काल के लिए वह इन दोषों से मुक्त नहीं होता। मानस में विभीषण के द्वारा दशरथ-जनक-हत्या का प्रयास, रावण के साथ खम्भा उखाड़ कर लड़ने की क्रोधभरी सज्जा तथा अयोध्या का नवनिर्माण आदि चित्रित नहीं है। हाँ, राम के द्वारा उसको 'लंकेश' कहा जाना दोनों ग्रन्थों में वर्णित है। राम के परामर्शदाता के रूप में वह दोनों ग्रन्थों में चित्रित है। रावण-वध के बाद वह दोनों ग्रन्थों में दुःखी होता है।

पद्मपुराण और मानस में रावण के इन पुत्रों का उल्लेख हुआ है—**मेघवाहन, इन्द्रजित् और अक्षकुमार**। पद्मपुराण में पहले दो आते हैं और मानस में बाद के दो। अक्षकुमार का तो हनुमानके द्वारा वध होताहै और मेघनाद हनुमान-बन्धन

और लक्ष्मण-शक्ति का कारण है। वह सच्चा वीर और पत्नीव्रत है। पद्मपुराण में मेघवाहन और इन्द्रजित् की चर्चा है। इन्द्रजित् हनूमान् को बाँधकर रावण के सामने लाता है। वह विभीषण को भी खरी-खोटी सुनाता है किन्तु युद्ध मे उसका लिहाज भी करता है।[१२१९] पद्मपुराण में इन्द्रजित् मारा नहीं जाता, बन्दी बनाया जाता है और अन्त मे दीक्षा ग्रहण करता है।

खर-दूषण दोनों ग्रन्थो मे छोटा-सा चरित्र है। पद्मपुराण में खरदूषण एक ही पात्र है जबकि मानस मे 'खर' और 'दूषण' नामधारी दो पात्र हैं। पद्मपुराण का खरदूषण रावण का बहनोई है। वह चन्द्रनखा का हरण करता है तथा लक्ष्मण से युद्ध करता हुआ मारा जाता है। मानस मे खर और दूषण रावण के भाई लगते है जिनका राम से युद्ध होता है इस युद्ध से उनका भगिनी-प्रेम स्पष्ट होता है।

मानस की **मंदोदरी** राम भक्त के रूप मे हमारे सामने आती है। वह सदैव रावण को समझाती हुई ही दिखाई देती है। वह बार-बार कहती है कि रावण को सीता राम के पास वापस भेज देनी चाहिए। जब राम के बाण से रावण का मुकुट और मन्दोदरी के ताटक गिरते हैं, तभी वह इसे अपशकुन समझकर रावण को समझाने लगती है। वह राम के विश्वरूप का भी वर्णन करती है। रावण-मरण पर किये गये विलाप मे भी वह राम को **'अग जगनाथ'**, **'हरि'** और **'निरामय ब्रह्म'** कहकर पुकारती है। इस पात्र के चरित्र मे एक और भी बात मिलती है और वह है उसकी रावण के प्रति भावना। मन्दोदरी कई बार रावण को **नीच** तक कह देती है। पद्मपुराण की मन्दोदरी का चरित्र मानस की मन्दोदरी से कहीं ऊँचा है। वह अपने पति को 'नीच' आदि नहीं कहती। राम-भक्ति के अनन्य पक्षपाती तुलसी रावण को उसके अभिन्न परिजनों से भी अनादृत कर असत् की सर्वत्र गर्हणा दिखाना चाहते थे किन्तु रविषेण ऐसा नहीं करता। 'मानस' की मन्दोदरी राम की ब्रह्मता में ही उलझकर रह जाती है किन्तु पद्मपुराण की मन्दोदरी का चरित्र चन्द्रनखा-हरण-प्रसग, मन्दोदरी-सीता-सवाद, रावण-मन्दोदरी-संवाद तथा दीक्षा-ग्रहण आदि के समय निखरता दिखाई देता है। जब रावण के लिए रविषेण की उदात्त भावना है तो मन्दोदरी के प्रति क्यों न होती ?

१२१९. वानर सेना का ध्वस करके इन्द्रजित् ने विभीषण को सामने आया देखकर इस प्रकार विचार किया है—

"तातस्याम्य च को भेदो न्यायो यदि निरीक्ष्यते।
ततोऽभिमुखमेतस्य नावस्थातुं प्रशस्यते ॥ (पद्म०, ६०।१२३)

रावण की बहिन का नाम पद्मपुराण में चन्द्रनखा है और मानस मे सूर्पनखा। पंचवटी में घूमती हुई वह राम लक्ष्मण से विवाह की प्रार्थना करती है। राम उसे लक्ष्मण के पास और लक्ष्मण राम के पास भेजते हैं। बाद में लक्ष्मण उसके नाक और कान काट देते है जिससे वह खरदूषण और रावण के पास शिकायत करती है। यद्यपि दोनों ग्रन्थों में ही उसे कुटिल दिखाया गया है तथापि उसका चरित्र पद्मपुराण में अधिक विस्तृत, मनोवैज्ञानिक एवं युक्तिपूर्ण है।

'मानस' में '**त्रिजटा** सीता से सहानुभूति रखने वाली राक्षसी के रूप में चित्रित है। पद्मपुराण में उसकी चर्चा नही है। पद्मपुराण की **लंकासुन्दरी** और मानस की **लंकिनी** मे पर्याप्त अन्तर है। पद्मपुराण की लंकासुन्दरी वीरांगना और भावुक बाला है जबकि मानस की लंकिनी एक निशिचरी है जिसका वध हनुमान करते है जिसे वह अपना अहोभाग्य समझती है क्योंकि रामदूत के मुष्टिप्रहार से उसकी गति हो जाती है। पद्मपुराण और मानस के हनुमान के चरित्र मे आकाश-पाताल का अन्तर है। पद्मपुराण में **हनुमान** विलासी है किंतु मानस मे वे अखंड ब्रह्मचारी रामभक्त। पद्मपुराण के हनुमान् खर-दूषण हंता राम के प्रति क्रुद्ध भी हो जाते है किन्तु मानस में ऐसी सम्भावना भी नही की जा सकती। पद्मपुराण के हनूमान् का रावण और सुग्रीव से सम्बन्ध है किन्तु मानस के हनुमान का उनसे कोई सम्बन्ध नहीं है। मानस के हनुमान परम रामभक्त, चतुर, वीर, शक्तिशाली, बन्दर, और विकट योद्धा है। वे सुरसा के मुख से निकलकर अपनी चतुरता का, समुद्रलघन, लका दहन, द्रोण गिरि-आहरण आदि से वीरता और शक्तिमत्ता का, अक्षकुमार, इन्द्रजित् और रावणादि के साथ युद्ध करने मे अपने योद्धृत्व का एव सीता और राम के साथ वार्तालाप से अपने विनय का परिचय देते हैं। वे निर्भीक, विवेकी, जितेन्द्रिय तथा धार्मिक है। विभीषण उनका स्वागत करता है। 'एक प्रकार से हनुमान का चरित्र दास्यभक्ति का प्रतीक है। राम की ओजस्विता और विवेक, भरत का वैराग्य और रामभक्ति, लक्ष्मण का शौर्य और रामसेवा, रावण का पौरुष और प्रचण्डता कुम्भकर्ण का धैर्य और घड़क और निज का बुद्धिचातुर्य, अतुल बल और मनोजव इन गुणो का समीकरण गोस्वामी जी के हनुमान हैं।'

बालि, दोनो ग्रन्थो में सुग्रीव का बड़ा भाई है। पद्मपुराण में वह मुनि हो जाता है। मानस का बालि मायावी दैत्य का वध करता है तथा बाद में वह सुग्रीव का शत्रु बन जाता है वह तारा के समझाने पर भी नहीं मानता और सुग्रीव से युद्ध करता है। अन्त मे वह राम द्वारा ताड़ वृक्ष की ओट से मारा जाता है और मरते-मरते अंगद को श्रीराम के हाथ सौंप जाता है। स्पष्ट है कि मानस

के बालि का चरित्र अधिक मार्मिक है।

सुग्रीव का चरित्र प्रायः दोनों ग्रंथों में एक सा ही है। वह बालि का अनुज है। पद्मपुराण में वह साहसगति विद्याधर के द्वारा उपद्रुत होता है एवं राम की सहायता लेता है जबकि मानस में वह बालि का विरोधी है एवं उससे भयभीत है। राम के द्वारा अपने विरोधी का वध कर दिये जाने पर वह प्रमाद कर बैठता है, किंतु लक्ष्मण के क्रोध से रास्ते पर आ जाता है और श्रीराम की सहायता करता है।

अंगद का उल्लेख उभयत्र हुआ है और चरित्र भी प्रायः समान ही है। उसका कार्य राम की सेवा करना और रावण को अपमानित करना है किन्तु पद्मपुराण में यह सुग्रीव का पुत्र है जबकि मानस में बाली का। पद्मपुराण में वह योद्धा, साहसी, सुन्दर, प्रभावक और रसिक है। वह रावण की स्त्रियो की दुर्दशा करता है किन्तु रावण के विद्या सिद्ध कर लेने पर भाग खडा होना है जिससे उसकी चतुरता भी सिद्ध होती है। सुग्रीव के दीक्षा लेने पर वह राजा होता है।

मानस का अंगद बलवान् है। वह उद्दण्ड भी है और रावण को बुरा भला कहता है। पैर जमाकर खडा होने से वह एक आतंककारी व्यक्तित्व का प्रकाशन करता है। मेघनाद का यज्ञ-भंग करने मे भी वह सबसे आगे है। रावण-वध के बाद राम का वह विशेष स्नेह-भाजन बन जाता है और उनके गले का हार प्राप्त करता है।

जनक दोनों ही ग्रन्थों में सीता के पिता और राम के श्वसुर है किन्तु इनके परिचय और चरित्र में पर्याप्त अन्तर है। पद्मपुराण के जनक के साथ विभीषण से आतंकित होकर दशरथ सहित कौतुकमंगल नगर में भाग जाने की कथा जुडी हुई है जबकि मानस में ऐसी कोई घटना जनक से सम्बद्ध नहीं है। मानस के जनक विदेहराज है और योगियो के भी योगी है। सीता-स्वयम्वर के समय वे शिव-धनुष को चढ़ाने की शर्त पर अपनी पुत्री सीता के विवाह की घोषणा करते हैं। राम के द्वारा धनुर्भंग किये जाने पर वे परम आनंदित है। वे अतिथि-सत्कार-कर्ता, विनीत और वात्सल्य के अवतार हैं। बारात के लिए अनेक सुविधाओं का प्रबन्ध करने, दशरथ के साथ प्रेम से मिलने, सीता की विदा के समय आँखों में आँसू भर लाने और तपस्वी वेष में पुत्री तथा जामाता को देखकर विह्वल हो जाने आदि से उपर्युक्त तथ्य पुष्ट होता है। वे राजर्षि है। इस प्रकार जनक संतानप्रेमी, आत्माभिमानी, सरल, विनयी, आदर्श मित्र, राजा, श्वसुर और पिता के रूप में उपस्थित हुए हैं। मानस के जनक अधिक विद्वान् और आध्यात्मिक हैं।

जाम्बवान् दोनो ग्रन्थों में हनूमान् को लंका जाने की राय देता है और एक

परामर्शदाता के रूप में चित्रित किया गया है।

जटायु दोनों ग्रन्थों में रावण का विरोधी, यथाशक्ति पराक्रमी एवं राम सीता का सहायक सिद्ध होता है। मानस मे उसका अधिक मार्मिक चित्रण हुआ है जब कि पद्मपुराण में उसके चरित्र को बुद्धिसंगत बनाने का ही प्रयत्न किया गया है। राम के द्वारा उसे दिव्य शरीर की प्राप्ति होती है।

पद्मपुराण में **सुतारा** सुग्रीव की पत्नी है किन्तु मानस की तारा बालि की पत्नी और अगद की माता है। वह बालि को राम के विरुद्ध न लड़ने का परामर्श देती है और बालि की मृत्यु पर विलाप करती है। राम उसे उपदेश देते हैं। मानस मे उसके चरित्र का अधिक विकास हुआ है।

पौराणिक महापुरुष पात्रों में **नारद** का नाम उल्लेखनीय है। दोनों ही ग्रन्थों में नारद का चरित्र महत्वपूर्ण है। पद्मपुराण का नारद कथा से संबंधित तथ्यों को इधर से उधर पहुँचाता है और मानस का नारद राम को अवतार के लिए विवश करता है। दोनों का अपना-अपना महत्त्व है।

मानस मे कुछ ऐसे पात्र है जो कि पद्मपुराण में नही आते जैसे **मंथरा, शबरी, अनसूया, संपाति, वसिष्ठ, विश्वामित्र, शिव, निषाद, काकभुशुंडि और सुलोचना** आदि। इनका कोई विशेष चरित्र-चित्रण नही हुआ है।

उपर्युक्त विवेचन से रविषेण और तुलसी के चरित्र-चित्रण-कौशल का परिचय हमें मिल जाता है। चरित्र-चित्रण के मूल मत्र मनोविज्ञान का ज्ञान दोनो को है। फिर भी अपने अपने दृष्टिकोण के अनुसार एक ने कुछ पात्रों को अधिक सुन्दरता के साथ चित्रित किया जाता है तो दूसरे ने अन्य पात्रों को। रविषेण ने लक्ष्मण, रावण, सीता, लवणांकुश, मन्दोदरी, लकासुन्दरी और हनूमान् आदि का चरित्र बडे मनोयोग और विस्तार के साथ चित्रित किया है। उसने रावण की तो कायापलट ही कर दी है जिसका परिचय पीछे दिया जा चुका है। मानस मे राम, दशरथ, भरत, कौसल्या, सुमित्रा, कुभकर्ण, इंद्रजित्, जनक और नारद उल्लेखनीय पात्र हैं जिनके चरित्र-चित्रण मे तुलसी ने पर्याप्त मनोवैज्ञानिक दक्षता से काम लिया है। सक्षेपत , राम-पक्ष के चरित्रों को तुलसी ने अधिक निखारा है और रावण-पक्ष के चरित्रों को रविषेण ने, जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि दोनो कवि पात्रों के चरित्र के सफल चितेरे हैं।

पद्मपुराण और रामचरितमानस का भावपक्ष : जहाँ तक **भावसम्पदा** का प्रश्न है दोनो कवि उसके धनी हैं किंतु तुलसी का मर्यादावादी दृष्टिकोण उन्हे बहुत कुछ सांकेतिक शैली के वर्णनों के लिए प्रेरित करता रहा है। पद्मपुराण का **संयोग शृंगार** स्वच्छद, उन्मुक्त एव विस्तृत है जब कि मानस का संयोग शृंगार पूर्ण मर्यादित एवं

सूक्ष्म, क्योंकि तुलसी मर्यादा पुरुषोत्तम की रति का अतिरंजित वर्णन करके **'इदं पित्रोः संभोगवर्णनमिवात्यंतमनुचितम्'** नहीं सुनना चाहते थे और न अपने इष्ट को इतरजनसाधारण बनाना चाहते थे जबकि रविषेण को इसकी कोई चिन्ता न करके एक उच्च कोटि का साहित्यिक तथा आकर्षक पौराणिक काव्य प्रस्तुत करना था। रविषेण अंजना और पवनंजय के सम्भोग का वर्णन करते समय दोनों के आलिंगन का, पवनंजय के द्वारा अंजना को निर्निमेष देखने एवं मुख-चुम्बन से पूर्व उसके चरण, कर, नाभि, स्तन, ठोडी, कनपटी एवं नेत्रों के चुम्बन करने का, अधर-पान का, अंजना के नीवीविमोचन का, सम्भोग के समय **'छोड़ो' 'ठहरो' 'पकड़ लो'** (निष्ठा मुच, गृहाण) आदि शब्दों का, अधरग्रहण पर अंजना के सीत्कार का, अंजना के जघनस्थल पर पवनंजय के द्वारा किये गये नखक्षतों का तथा अन्य अनेक चेष्टाओं का खुला वर्णन करते है जबकि तुलसी राम और सीता के पुष्प-वाटिका-मिलन का वर्णन करते समय बडी व्यंजनापूर्ण शैली में राम और सीता के पारम्परिक अनुराग का परम मर्यादित और मनोरम चित्रण करते हैं—

> कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन रामु हृदयँ गुनि ।।
> मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही ।।
> अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय मुख ससि भए नयन चकोरा ।।
> भए बिलोचन चारु अचंचल। मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल ।।
> देखि सीय सोभा सुखु पावा। हृदयँ सराहत बचनु न आवा ।।
> जनु बिरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कहँ प्रगटि देखाई ।।[1220]

यह प्रसंग शृंगार की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ है किन्तु इसमें सांकेतिता और सूक्ष्मता अधिक है जोकि पद्मपुराण के संभोग-वर्णन में नहीं है।

वियोग-वर्णन दोनों ग्रन्थों में समयानुसार हुए है। मानस के अरण्यकाण्ड में सीता के विरह में राम की दशा[1221] एवं सुन्दरकाण्ड में राम के विरह मे सीता

१२२० मानस, बालकाण्ड, २३०

१२२१ आश्रम देखि जानकी हीना। भए बिकल जस प्राकृत दीना ।।
हा गुनखानि जानकी सीता। रूप सील ब्रत नेम पुनीता ।।
लछिमन समुझाए बहु भाँती। पूछत चले लता तरु पाँती ।।
हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनैनी ।।
खंजन सुक कपोत मृग मीना। मधुप निकर कोकिला प्रबीना ।।
कुंद कली दाड़िम दामिनी। कमल सरद ससि अहिभामिनी ।।
बरुन पास मनोज धनु हंसा। गज केहरि निज सुनत प्रसंसा ।।
श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं। नेकु न संक सकुच मन माहीं ।।
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाइ जनु राजू ।।
किमि सहि जात अनख तोहि पाहीं। प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाहीं ।।
एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी। मनहुँ महा बिरही अति कामी ।।
—मानस, अरण्य०, २९।३-८

की दशा वियोग-वर्णन के उदाहरण के रूप में लिये जा सकते हैं। पद्मपुराण और मानस के वियोग-वर्णनों की तुलना करने पर कहा जा सकता है कि तुलसी ने "जानु प्रीतिरस एतनेहि माँही" जैसे व्यजनापूर्ण वाक्यो से वियोग की मार्मिक व्यजना करके अपनी भाषा की समासशक्ति का और कल्पना की समाहारशक्ति का परिचय दिया है जब कि रविषेण ने कविसमयख्यातियों तथा अन्य साहित्यिक मान्यताओ का उपयोग करते हुए अपने विस्तृत वर्णन-कौशल का परिचय दिया है।

यद्यपि पद्मपुराण के समान मानस में भी अन्य रसो की अपेक्षा **हास्य रस** की अभिव्यक्ति अत्यल्प हुई है, तथापि नारद-प्रसग, शिव-बारात, लक्ष्मण-परशुराम-सवाद, अगद-रावण-सवाद तथा विवाह के अवसर पर मर्यादित हास्य की अभिव्यक्ति हुई है। यद्यपि हास्य की अभिव्यक्ति की दृष्टि से तुलसी कुछ आगे है किन्तु इस रस के लिये रुझान दोनो कवियो का नहीं है।

पद्मपुराण और मानस के **करुण रस** के अभिव्यजन के विषय में भी वही निर्णय दिया जा सकता है जो वियोग के विषय मे। मानस में करुण रस का साक्षात्कार, राम-वन-गमन पर दशरथ की दशा,[१२२२] लक्ष्मण-मूर्च्छा पर राम-विलाप[१२२३] तथा कुछ अन्य वर्णनो में होता है। मानस के इन प्रसगो मे अनुभावादि के, थोडे मे बहुत कहने की शैली मे, कारुणिक दृश्य उपस्थित किये गये है जबकि पद्मपुराण के करुण रस के प्रसगों मे अनुभावादि को सागोपाग वर्णित किया गया है। जहाँ मानस में—"**करहिं विलाप अनेक प्रकारा। परहिं भूमि तल बारहिं बारा।।**" कहकर शोक की व्यजना कर दी गयी है वहाँ पद्मपुराण मे अनेक प्रकार के विलाप और भूमिपात आदि का वर्णन किया गया है।

रौद्र-रस की व्यजना दोनो ग्रन्थो मे अवसरानुसार हुई है। मानस के धनुष-यज्ञ मे, जनक के "**बीर बिहीन मही मै जानी**" कह देने पर तमके हुए लक्ष्मण की उक्ति[१२२४] मे रौद्र रस की अभिव्यजना हुई है। रौद्र रस के चित्र खीचने में रविषेण और तुलसी दोनो ही सफल हुए है किन्तु रविषेण विस्तारवादी प्रतीत होते है जबकि तुलसी संक्षेपवादी।

१२२२ आसन सयन विभूषन हीना। परेउ भूमितल निपट मलीना।।
लेइ उसासु सोच एहि भाँती। सुरपुर ते जनु खँसेउ जजाती।।
लेत सोच भरि छिनु-छिनु छाती। जनु जरि पख परेउ सपाती।।
राम-राम कह राम सनेही। पुनि कह राम लखन बैदेही।।
(मानस, अयोध्याकाण्ड, १४८)

१२२३ मानस, लङ्काकाण्ड, ६०-६१

१२२४ मानस, बालकाण्ड, २५३

वीर रस की अभिव्यक्ति में पद्मपुराण मानस से पर्याप्त आगे है। विविध युद्धों के दौरान रणबाँकुरे वीरों के उत्साह एवं उनकी वीरता की चेष्टाओं का वर्णन करते समय लगता है कि मानो रविषेण युद्धस्थल मे किसी मँचान पर बैठे हो और उस युद्ध को उन्होने फिल्मा लिया हो जिसका प्रदर्शन हमारे सामने हो रहा है। जब रविषेण हमारे सामने वीरो की उक्तियाँ प्रस्तुत करते है तब लगता है मानो रविषेण ने उन्हें टेप रिकार्ड कर लिया हो। इस कथन का यह तात्पर्य नही है कि मानस में वीर रस की सफल अभिव्यक्ति नही हुई। जटायु-रावण-युद्ध तथा किष्किन्धाकाण्ड-सुन्दरकाण्ड-लकाकाण्ड के अनेक प्रसंगों मे वीर रस का अच्छा परिपाक हुआ है। अयोध्याकाण्ड मे भरत को आते हुए देखकर शकित निषादराज की उक्ति मे उसका उत्साह देखते ही बनता है।[१२२५]

मानस मे भरत के अयोध्या-प्रवेश पर अयोध्या की भयानकता एवं युद्ध की भयानकता के वर्णन[१२२६] के अवसर पर **भयानक रस** की अभिव्यक्ति हुई है किन्तु पद्मपुराण मे रावण के द्वारा कैलाश के कम्पन के वर्णन मे हा-हा-हुं-ही-आदि शब्दों से जो साक्षात् भय की अभिव्यजना होती है वैसी अभिव्यक्ति मानस मे अपेक्षाकृत कम है। वस्तुत. कठोर रसों की अभिव्यजना में तुलसी रविषेण की समता नही कर सकते।

बीभत्स रस की अभिव्यक्ति के अवसर पद्मपुराण मे अधिक है। मानस के लकाकाण्ड में भी उसके अवसर आये है। युद्ध मे बहने वाली रुधिर की नदी, गीधो के द्वारा आँत खीचने, जोगिनियों के द्वारा खप्पर मे खून भरने एव गीदड़ों के द्वारा कट-कट करके हड्डी खाने आदि के वर्णन मे बीभत्स रस की व्यजना हुई है।[१२२७]

१२२५ होहु सँजोइल रोकहु घाटा। ठाटहु सकल मरै के ठाटा॥
सनमुख लोह भरत सन लेऊँ। जिअत न सुरसरि उतरन देऊँ॥
समर मरनु पुनि सुरसरि तीरा। राम काजु छनभगु सरीरा॥
भरत भाइ नृपु मै जन नीचू। बड़े भाग अस पाइय मीचू॥
स्वामि काज करिहउ रन रारी। जस धवलिहउ भुवन दस चारी॥
तजउँ प्रान रघुनाथ निहोरे। दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरे॥
(मानस, अयोध्याकाण्ड, १९०-१९१)

१२२६ देखिए, मानस, लङ्काकाण्ड ८७

१२२७. मज्जहि भूत पिसाच बेताला। प्रमथ महा झोटिग कराला॥
काक कंक लै भुजा उड़ाही। एक ते छीनि एक लै खाही॥

× × ×

अद्भुत रस के अवसर मानस में अनेक आये हैं। **अशेषकारणपर** राम तो **'कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथाकर्त्तुं समर्थ'** हैं, फिर भला उनके चरित्र से सम्बद्ध कथानक मे अद्भुतता क्यों न होती ! बचपन मे राम का विराट् रूप-दर्शन (बाल० २०१-२०२), देवताओं की उपस्थिति (उत्तर० ७८-८०), पुष्पवर्षा, प्रकृति पर राम का अनुशासन, हनुमान के समुद्रलंघनादि लोकोत्तर कृत्य, शिवधनुर्भंग आदि अनेक प्रसंग इसके उदाहरण हैं। श्रीराम का विराट्-रूप-दर्शन-प्रसग उदाहरणार्थ प्रस्तुत है---

देखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखड।
रोम-रोम प्रति लागे कोटि-कोटि ब्रह्मंड॥
अगनित रबि ससि सिव चतुरानन। बहु गिरि सरित सिंधु महि कानन॥
काल कर्म गुन ग्यान सुभाऊ। सोउ देखा जो सुना न काऊ॥
देखी माया सब बिधि गाढी। अति सभीत जोरे कर ठाढ़ी॥
देखा जीव नचावइ जाही। देखी भगति जो छोरइ ताही॥
तन पुलकित मुख बचन न आवा। नयन मूदि चरननि सिरु नावा।
बिसमयवन देखि महतारी। भए बहुरि सिसुरूप खरारी॥[१२२८]

शांत रस की अभिव्यक्ति भरत की आत्मग्लानि, दशरथ की आत्मभर्त्सना, कैकेयी की आत्मग्लानि आदि प्रसगो मे हुई है। पद्मपुराण मे शांत रस की अभिव्यक्ति के स्थलो मे विशदता और वर्णनात्मकता अधिक दृष्टिगोचर होती है किन्तु मानस के शात रस के प्रसगो मे सक्षिप्तता अधिक है।

जिस प्रकार पद्मपुराण मे जिनेन्द्र की भक्ति के अनेक प्रसग **भक्ति रस** के उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत हुए है उसी प्रकार मानस मे भी रामभक्ति और शिव-भक्ति के सूचक स्थलों मे भक्ति रस का उन्मेष दिखायी पडता है। निर्भर भक्ति के प्रार्थी तुलसी ने अनेक पात्रो के द्वारा की गयी स्तुतियो मे तथा काडो के आरम्भ मे दिये गये श्लोकों मे भक्ति रस की कलकलनिनादिनी और शीतलतादायिनी धारा प्रवाहित की है। तुलसी की अहैतुकी भक्ति की जो मार्मिकता तथा सहज

खैंचहि गीध आँत तट भए। जनु बंसी खेलत चित दए॥
बहु भट बहहिं चढ़े खग जाहीं। जनु नावरि खेलहिं सरि माहीं॥
जोगिनि भरि-भरि खप्पर संचहि। भूत पिसाच बधू नभ नंचहि॥

× × ×

जंबुक निकर कटक्कट कट्टहि। सीस परे महि जय जय बोल्लहिं॥
(मानस, लङ्काकाण्ड, ८७।१-५)

१२२८ मानस, बालकाण्ड, २०१।१, २, ३।

भावुकता है वह पद्मपुराण की जिनपूजा-प्रचाराभिनिवेशिनी भक्ति में नहीं है। तुलसी ने हृदय खोलकर रख दिया है, जबकि रविषेण ने हृदय के साथ अपने मस्तिष्क को भी अपने लक्ष्य के प्रति जागरूक रखा है।

मानस में राम-लक्ष्मणादि की बालक्रीड़ा[१२२९] कौशल्या-भरत-भेंट तथा चित्रकूट में जनक-सीता-भेंट आदि प्रसंगों में **वात्सल्य रस** की अभिव्यक्ति हुई है। वियोग-वात्सल्य की अभिव्यक्ति, सीता के पितृगृह से विदा होने के प्रसंग में, हुई है।[१२३०]

जिस प्रकार पद्मपुराण में रसादि में परिगणित रसाभास आदि के उदाहरण मिलते है, उसी प्रकार मानस में भी उनके उदाहरण मिलते है।

मानस में तिर्यग्गत रति का संकेत वहाँ मिलता है जहाँ कि कामदेव की माया फैलने पर जलचर और थलचर पशु-पक्षी भी कामवश हो जाते है।[१२३१] प्रताप-भानु के प्रति अभिव्यक्त कपटमुनि के प्रेम को **भावाभास** के उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है।[१२३२] **भावोदय** और **भावशांति** की स्थिति वहाँ देखी जा सकती है जहाँ कि क्रोधी परशुराम का क्रोध शांत होता है एवं विस्मय उदित होता है। सीता द्वारा मुद्रिका देखने पर हर्ष और विषाद की एक साथ अनुभूति किये जाने पर **भाव-संधि** देखी जा सकती है। **भावशबलता** का उदाहरण राम के इस कथन में पाया जा सकता है—

१२२९. बाल चरित हरि बहु बिधि कीन्हा। अति अनंद दासन्ह कहँ दीन्हा।

० ० ०

भोजन करत बोल जब राजा। नहिं आवत तजि बाल समाजा॥
कौसल्या जब बोलन जाई। ठुमुकु-ठुमुकु प्रभु चलहिं पराई॥ आदि

मानस, बालकाण्ड, २०२-२०३

१२३०. पुनि पुनि मिलत सखिन्ह बिलगाई। बाल बच्छ जिमि धेनु लवाई।

० ० ०

बंधु समेत जनक तब आये। प्रेम उमगि लोचन जल छाये।
सीय बिलोकि धीरता भागी। रहे कहावत परम बिरागी॥
लीन्हि राय उर लाइ जानकी। मिटी महा मरजाद ग्यान की।

मानस, बालकाड, ३३६-३३७

१२३१. पसु पच्छी नभ जल थल चारी। भए काम बस समय बिसारी।
मदन अन्ध ब्याकुल सब लोका। निसि दिनु नहिं अवलोकहिं कोका॥

मानस, बालकांड, ८४।३

१२३२. सुनु महीस असि नीति जहँ तहँ नाम न कहहिं नृप।
मोहि तोहि पर अति प्रीति सोइ चतुरता बिचारि तव॥

मानस, बालकांड, १६३

"सकहु न दुखित देखि मोहि काऊ। बधु सदा तव मृदुल सुभाऊ।
मम हित लागि तजेहु पितु माता। सहेउ विपिन हिम आतप बाता॥"
(मानस ६।६०।२)

यहाँ लक्ष्मण के विषय मे राम के मति, शका, विषाद, निश्चय आदि भाव एक साथ प्रकट हुए है।

समस्त रस-व्यजना पर दृक्पात करने पर एक बात स्पष्ट सामने आती है कि रविषेण शास्त्रस्थितिसंपादन के शौकीन है, इसीलिए उनके रस-व्यजना के स्थल विस्तृत हैं और कही-कही उनमे कुछ बोझिलता भी आ गयी है जबकि मानस मे व्यजना से और साकेतिकता से रसाभिव्यक्ति हुई है। मानस के मगलाचरण मे **'रसानां'** का ध्यान मे रखने वाले तुलसी का रसाभिव्यजना भले ही विपुल विभावादि के सन्निवेश वाली न हो किन्तु है बडी मार्मिक।

कल्पना-वैभव के यद्यपि दोनो ही कवि धनी हैं तथापि रविषेण ने अपने कल्पना-वैभव का प्रदर्शन विशद रूप मे किया है और तुलसी ने पाठकों की कल्पना की परीक्षा लेने के लिए अपनी कारयित्री प्रतिभा को सूक्ष्म एव साकेतिक रूप मे ही प्रस्तुत किया है।

पद्मपुराण और मानस दोनों ही ग्रन्थो मे **विचारतत्त्व** अनुस्यूत है। पद्म-पुराण जिन-दीक्षा पर केन्द्रित है तो रामचरितमानस भक्ति के सिद्धात पर।

'नानापुराण निगमागमसम्मत रघुनाथगाथा-निबन्ध' तुलसी के व्यापक-गभीर अध्ययन एव निर्भर भक्ति का परिणाम है जिसका मूल विचार है श्रेय और प्रेय की सिद्धि के लिए आदर्श रामराज्य की स्थापना, जो समस्त प्रचलित मत-मतातरो के सद्गुणो का समन्वय करता दिखाई देता है। राम दैवी प्रवृत्ति के प्रतीक हैं और रावण अधर्म का। अधर्म के ऊपर धर्म की विजय दिखाकर ससार मे कल्याण का प्रसार करना ही मानस का दर्शन है। राम तुलसी के आराध्य हैं, वे परब्रह्म है; वे 'ब्रह्माशम्भुफणीन्द्रसेव्य वेदान्तवेद्य विभु जगदीश्वर' है, वे मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् है, जो अपनी आद्या शक्ति के साथ सर्वव्यापक है .—'व्यापक अजित अनादि अनन्ता' 'सीय राम मय सब जग जानी।' उनकी भक्ति 'सकल सुख-दायिनी' है, उसका ज्ञान स भी बढकर स्थान है। मायावश जीव को अज्ञाना-धकार-ध्वसनार्थ भक्ति-रूपी मणि ग्रहण करनी चाहिए।[१२३३]

तुलसी का विचार है कि ससार मे जब-जब धर्म की हानि होती है। एवं अभिमानी अधम असुर बढ़ते हैं, तब तब प्रभु शरीर धारण करके सज्जनों की

१२३३ मानस, उत्तर०, ११४-१२०

पीडा हरते हैं। वे पतितपावन, दीनोद्धारक, शरणागतवत्सल, मर्यादारक्षक, जग-रंजन, खल-भंजन तथा भक्त-प्रेमवश हैं।

इस प्रकार मानस का विचारतत्त्व पर्याप्त स्फीत हैं। बालकाण्ड का आदि और उत्तरकाण्ड का अन्त तो विचार-मणियो का आकर ही है; अतएव 'बाल का आदि उत्तर का अन्त। जो जाने सो पूरा सन्त'—आभाणक प्रचलित है। मानस मे ज्ञान-विज्ञान-दर्शन-व्याकरणादि शास्त्र का विचारतत्त्व के परिवर्द्धन में पर्याप्त योग है। अधिक क्या, वर्णाश्रम-धर्म के समस्त आदर्श विचारो की प्राप्ति मानस मे होती है जिसकी पूर्ण व्याख्या पर्याप्त स्थान-सापेक्ष है।

दोनो ग्रन्थो के विचारतत्त्व पर विचार करने के अनन्तर स्पष्ट प्रतीत होता है कि 'पद्मपुराण' का विचारतत्त्व अपनी पृथक् सत्ता रखता है, वह कथा पढते समय यदि छोड़ भी दिया जाय तो कोई हानि नही होती, जबकि 'मानस' का विचारतत्त्व कथा मे घुला-मिला है। दूसरे शब्दो मे 'पद्मपुराण' के विचार और भावना का 'तिलतण्डुल' सम्बन्ध है जबकि 'मानस' के उन दोनों का 'नीरक्षीर-सम्बन्ध' है। कभी-कभी तो लगता है कि रविषेण ने जैन-सम्प्रदाय के सिद्धान्तो का प्रचार करना मुख्य मान लिया है और राम-कथा कहना गौण, किन्तु मानसमे ऐसा नही है। वहाँ पद-पद पर दूसरे के मत का खण्डन या अपने धर्म की दुहाई नही दी गयी है। वहाँ तो सांकेतिक शैली मे सूक्ष्मता के साथ भाव-माला मे विचारमणि ग्रथित किये गये है। किसी भी धर्म या सम्प्रदाय को मानने वाला मानस को पढे, उसे आनन्द ही आएगा किन्तु 'पद्मपुराण' को यदि वैदिक धर्मानुयायी पढे तो उसे ऐसे श्लोक पढकर आनन्द नही आएगा जिनमे ऋषियों की निन्दा हो, यज्ञ को पातक की संज्ञा प्रदान की हो, वेद को कुग्रन्थ कहा हो तथा अहिंसावादियों के द्वारा ऐसी कठोर वाणी का प्रयोग किया गया हो—

"भृगुर्गङ्गिरा वह्नि. कपिलोऽत्रिर्विदस्तथा।
अन्ये च बहवोऽज्ञानाज्जाता वल्कलतापसा.॥
स्त्रिय दृष्ट्वा कुचित्तास्ते पुल्लिङ्ग प्राप्तविक्रियम्।
पिदधुर्मोहसछन्ना. कौपीनेन नराधमा.॥[१२३४]

एक नही, ऐसे अनेक उदाहरण पद-पद पर आते है, जिन्हें पढ़कर जैन-आचार्यों की इस घोर साम्प्रदायिकता पर हँसी भी आने लगती है। 'पद्मपुराण' के विचार-तत्त्व के स्थलो पर जब पारिभाषिक शब्दों की बाढ़ आती है, अनु-प्रेक्षाओं के वर्णन चलते है, स्वर्गो के नाम चलते है, 'अजैर्यष्टव्यम्'— आदि पर

१२३४. पद्म० ४।१२६-१२७

जटिल शास्त्रार्थ चलते हैं तो सहृदय पाठक एक बार तो त्राहि-त्राहि कर उठता है, किन्तु मानस में ऐसा नहीं है; वहाँ रसधारा विच्छिन्न नहीं होती। इसका कारण स्पष्ट है कि पद्मपुराण की रचना प्रतिक्रियात्मक तथा आर्य-परम्परा की खण्डयित्री है जबकि मानस की रचना समन्वयेच्छा एवं लोकनिर्माणेच्छा से प्रेरित भक्ति का फल।

पद्मपुराण और मानस का कलापक्ष : पद्मपुराण और मानस पौराणिक शैली के काव्य हैं। पद्मपुराण की शैली के विषय में सप्तम अध्याय में लिखा जा चुका है। जहाँ तक मानस की शैली का प्रश्न है, इसमें साहित्यिक अवधी के साथ-साथ ब्रजभाषा, छत्तीसगढ़ी, खड़ी बोली और अरबी-फारसी के भी कुछ शब्दों का प्रयोग हुआ है। यह एक अतिमंजुल भाषा-निबन्ध है। काण्डारम्भ के समय संस्कृत के छन्द प्रयुक्त हुए हैं। राम-कथा के अतिरिक्त अनेक प्रासंगिक कथाओं की कवि ने अच्छी संगति बैठायी है। कवि ने पाठक को भक्ति की ओर उन्मुख करने का सफल प्रयास किया है। मुख्य छन्द-दोहा-चौपाई है। अलंकार अत्यन्त स्वाभाविक हैं। डाक्टर माताप्रसाद गुप्त के शब्दों में—तुलसीदास की अनुपम शैली का सौन्दर्य उसकी ऋजुता, उसकी सुबोधता, उसकी सरलता, उसकी चारुता, उसकी रमणीयता, उसके लालित्य और उसके प्रवाह में है, और ये गुण 'रामचरितमानस' में चरम उत्कर्ष को प्राप्त होते हैं। 'रामचरितमानस' की शैली सरल तथा आडम्बरविहीन है। कवि उसे किसी ऐसी वस्तु से सजाने का प्रयास नहीं करता जो पाठक के ध्यान को काव्य की दृष्टि से हटा सके। यह स्वाभाविक तथा स्वतःप्रवर्तित है। शब्द बिना किसी सतर्क प्रयास के कवि के मस्तिष्क में अपने आप आते हुए प्रतीत होते हैं। उसमें एक अद्भुत प्रवाह है। कवि के विचारों का शृंखला का—जिनको वह प्रायः पूर्वापर क्रम से पाठक के सम्मुख रखता है—समझने में बहुधा कठिनाई नहीं होती है। उसकी वाक्य-रचना इतनी सीधी है कि उसको समझने के लिए किसी प्रकार के अन्वय की आवश्यकता नहीं पड़ती। उसकी शैली सुललित तथा सुचारु है। प्रत्येक शब्द अपने स्थान पर आवश्यक प्रतीत होता है। शब्द छोटे हैं और समास निर्माण की ओर कोई प्रयास परिलक्षित नहीं होता और ध्वनि-सकलन ऐसा है जो श्रोता के कानों को कहीं भी कर्कश प्रतीत नहीं होता होता। प्रधान रूप से 'मानस' की की शैली की विशेषता ये हैं।[१२३५]

पद्मपुराण और रामचरितमानस दोनों ही पौराणिक शैली के काव्य हैं

१२३५. तुलसीदास, पृ० ३६१

किन्तु दोनों की शैली में पर्याप्त अन्तर है। पहला संस्कृत भाषा में लिखित है तो दूसरा प्रधानतः अवधी में; पहले में अनुष्टुप् छन्द प्रधान है तो दूसरे में दोहा-चौपाई; पहले में धार्मिकता कविता पर हावी है तो दूसरे में वह उसमें घुली-मिली, पहले में अभिधा के द्वारा लम्बे वर्णन हुए हैं तो दूसरे में व्यंजना के द्वारा छोटे; पहले मे अलकारो का पूर्ण प्रकर्ष एव चमत्कार है तो दूसरे में स्वाभाविक सन्निवेश। मानस की शैली सरल है तथा पद्मपुराण की प्रौढ़; पहले के लिए सहृदय भक्त पाठक अपेक्षित है और दूसरे के लिए सहृदय विद्वान्।

पद्मपुराण और रामचरितमानस दोनों के ही कर्ताओं का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। पद्मपुराण की भाषा पर साहित्यिक दृष्टि से विचार सप्तम अध्याय में किया जा चुका है। जहाँ तक मानस की भाषा का प्रश्न है, यद्यपि उसमें यत्रक्वचित् बघेली, छत्तीसगढ़ी, भोजपुरी (तहवाँ, जहवाँ) बुंदेलखण्डी (जानब) राजस्थानी, (मेला), गुजराती (जूनधनु) मराठी, खडी बोली (तब किया) अरबी, फारसी (गरीबनिबराजू तथा साहिब) प्राकृत-अपभ्रंश (खप्परिन्ह, खग्ग, अल्लुज्झ जुज्झहि) के शब्दों का प्रयोग हो गया है तथापि उसमें प्रधानतः संस्कृत, ब्रजभाषा तथा अवधी ही प्रयुक्त हुई है। संस्कृत का प्रयोग, कविता के प्रारंभ[१२३६] और अन्त[१२३७] के लिए, काडों के आदि मे मगलाचरण[१२३८] के लिए तथा ब्राह्मणो[१२३९] और देवताओं के मुख से भगवान् की स्तुति के लिए हुआ है।

मानस की संस्कृत के विषय में एक बात कह देनी उचित है कि यह संस्कृत कहीं-कहीं हिन्दी का रूप धारण कर गयी है यथा—

१२३६. वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मंगलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ।
(मानस, बालकाण्ड आरम्भ १)

१२३७. पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं
मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम्।
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये
ते संसारपतंगघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः॥ (मानस, ७।१३०।२)

१२३८. मूलं धर्मतरोर्विवेकजलधेः पूर्णेन्दुमानन्ददं
वैराग्याम्बुजभास्करं ह्यघघनध्वान्तापहं तापहम्।
मोहाम्भोधरपूगपाटनविधौ स्वःसम्भवं शंकरं
वन्दे ब्रह्मकुलं कलंकशमनं श्रीरामभूपप्रियम्॥१॥ (अरण्यकाण्ड, आरंभ श्लोक १)

१२३९. नमामीशमीशाननिर्वाणरूपं विभुं व्यापकं ब्रह्मवेदस्वरूपम्
(ब्राह्मणकृत शिवस्तुति) (उत्तरकाण्ड, १०७।१-८)

'स्फुरन्मौलिकल्लोलिनी चारुगंगा।
लसद्भालबालेन्दु कण्ठे भुजंगा॥'

× × ×

चिदानन्दसन्दोह मोहापहारी,।
प्रसीद प्रसीद प्रभो! मन्मथारी॥[१२४०]

यहाँ शिवजी के विशेषण विशुद्ध संस्कृत के रूप नहीं हैं। इसी प्रकार अन्य अनेक उदाहरण लिये जा सकते हैं।

ब्रजभाषा का उपयोग कविता की गति के लिए नहीं हुआ है और न इसके द्वारा किसी तथ्य या घटना का प्रकाशन ही हुआ है। केवल पूर्ववर्ती वृत्तों में वर्णित कथावस्तु को भव्यता देने के लिए तथा उसकी भव्य पुनरावृत्ति के लिए ही ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है। विविध 'छन्द' इसके प्रमाण हैं। उदाहरण के लिए अवधी की चौपाइयों के बाद आये इस छन्द को लिया जा सकता है—

'केहरि नाद भालु कपि करहीं। डगमगाहि दिग्गज चिक्करहीं॥
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि गिरि लोल सागर खरभरे।
मन हरष सभ गंधर्ब सुर मुनि नाग किनर दुख टरे॥
कटकटहिं मर्कट बिकट भट बहु कोटि कोटिन्ह धावहीं।
जय राम प्रबल प्रताप कोसलनाथ गुनगन गावहीं॥[१२४१]

किन्तु मानस की ब्रजभाषा पूर्ण विशुद्ध नहीं है।

'मानस' की सर्वप्रधान भाषा अवधी है जिसमें समस्त कथानक कहा गया है। जिस अवधी के ग्रामीण रूप को अनेक सूफियों ने काव्यभाषा बनाया था, उसे ही तुलसी ने परिमार्जित साहित्यिक रूप दिया। मानस की भाषा के विषय में डा० गोविंदराम का कथन द्रष्टव्य है—'तुलसी की भाषा का सौन्दर्य उसकी सरलता, सुबोधता और लालित्य पर अवलम्बित है। मानस की भाषा प्रवाहमयी, परिष्कृत और आडम्बरहीन है। उसमें स्वाभाविकता और सजीवता है। वाक्य-रचना सीधी-सादी और सरल है। वाक्यों में शब्द यथास्थान जड़े हुए प्रतीत होते हैं। उनके अर्थ को समझने में कोई कठिनाई प्रतीत नहीं होती। भाषा और भाव दोनों में सुन्दर सामंजस्य दिखाई देता है। विषय के अनुसार मानस की भाषा कहीं सरल, कहीं मधुर और कहीं ओजस्विनी दिखाई देती है। विविध रसों और भावों को व्यक्त करने की उसमें पूर्ण क्षमता है। लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग भी मानस में यथास्थान हुआ है। इसके प्रयोग से भाषा में मर्यादा सजीवता और

१२४० मानस, उत्तर० १०७ दोहे के बाद।
१२४१ मानस, सुन्दर० ३४ के बाद।

व्यावहारिकता आ गयी है। मानस की भाषा साहित्यिक होकर भी सरल, सहज और जनसुलभ है। उसमें वह वेग और प्रवाह है जो कि एक जीवित भाषा में होना चाहिए। मानस की भाषा की इस सरसता और सुबोधता के कारण ही तुलसी भारतीय जनता के हृदय में स्थान बना सके हैं।'[१२४२] कोमल प्रसंगों मे तुलसी की भाषा जैसे नाचती चलती है यथा—

'कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन रामु हृदय गुनि ॥[१२४३]

परन्तु वही युद्ध आदि के कठोर प्रकरणों में कठोर हो जाता है :—

'बोल्लहिं जो जय जय मुंड रुंड प्रचंड सिर बिनु धावहीं।
खप्परिन्ह खग्ग अलुज्झि जुज्झहिं सुभट भटन्ह ढहावहीं ॥
बानर निसाचर निकर मर्दहिं रामबल दर्पित भए।
संग्राम अंगन सुभट सोवहिं राम सर निकरन्हि हए ॥[१२४४]

इस प्रकार तुलसी की भी भाषा को अवसरानुकूल साहित्यिक भाषा कहा जा सकता है जो कि एक महाकाव्य के लिए उपयुक्त होती है।

दोनों ग्रंथो की भाषा पर विचार करने पर हमें ज्ञात होता है कि दोनों ही कवियों का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। यदि रविषेण ने अवसरानुकूल, भावाभिव्यञ्जिका, गतिशील, आलंकारिक तथा मूर्तिविधायिनी विशुद्ध साहित्यिक संस्कृत भाषा का प्रयोग किया है तो तुलसी ने अपने देश-काल के अनुसार जन-मनोऽवगाहिनी, अवसरदर्शिनी, संस्कृत-ब्रज-सहिता, भावाभिव्यञ्जनक्षमा साहित्यिक अवधी का। तुलना करके उनके उत्कर्षापकर्ष का कथन करना ही कठिन है क्योंकि दोनों अपने-अपने क्षेत्र में पूर्ण प्रभु तथा अद्वितीय हैं।

पद्मपुराण की छन्दोयोजना पर सप्तम अध्याय में विचार किया जा चुका है। मानस के मंगलाचरण मे 'छन्दसामपि' कहने वाले तुलसी के छन्दोयोजना-कौशल में कोई शंका ही नही होनी चाहिए। प्रबन्धानुरूप छन्दोयोजना के धनी तुलसी ने यद्यपि पुरातनपरम्पराप्राप्त दोहा-चौपाई छन्दों को प्रधान रूप में अंगीकार किया है तथापि प्रसगानुकूल अन्य छन्द भी मानस में संयोजत किये हैं। इससे एक ओर प्रबंधकथा प्रवाह की मसृणता एव क्षिप्रता अक्षुण्ण बनी रही है और दूसरी ओर स्थान-स्थान पर अभिनव छन्द-सौष्ठव से प्रबन्ध कलेवर की सुन्दर संघटना का संपादन भी हो गया है। दोहा, चौपाई, सहित मानस में प्रयुक्त छन्द

१२४२ 'हिन्दी के आधुनिक काव्य' पृष्ठ ९५

१२४३ मानस, बाल २२९।१

१२४४. मानस, लं का. ८७ के बाद का छन्द

द्विविध हैं (अ) ग्यारह वर्णवृत्त एवं आठ मात्रावृत्त। वर्णवृत्तों में अनुष्टुप्[१२४५] इंद्रवज्रा[१२४६] तोटक[१२४७] नगस्वरूपिणी (प्रमाणिका)[१२४८] भुजंगप्रयात[१२४९] मालिनी [१२५०] रथोद्धता[१२५१] बसंतनिलका[१२५२] वंशस्थ[१२५३] शार्दूलविक्रीडित[१२५४] और स्रग्धरा[१२५५] एवं मात्रावृत्तों मे दोहा[१२५६] सोरठा[१२५७] चौपाई[१२५८] तोमर[१२५९] डिल्ला[१२६०] त्रिभंगी[१२६१] हरिगीतिका[१२६२] और चौपइया[१२६३] प्रयुक्त हुए हैं। कुल मिलाकर मानस मे १९ छन्द प्रयुक्त हुए हैं।

इनमे अनुष्टुप्, शार्दूलविक्रीडित वसन्ततिलका, इन्द्रवज्रा, मालिनी, वं.स्थ नगस्वरूपिणी, स्रग्धरा आदि छन्दों के द्वारा एक ओर तो महाकाव्य के प्रत्येक कांड के आदि में मंगलादि का विधान हुआ है दूसरी ओर इन तथा अन्य हरिगीतिकादि छन्दों के द्वारा 'अवसानेऽन्यवृत्तकै:' वाले नियम का परिपालन भी। 'अनुष्टुप्' का प्रयोग ग्रन्थारम्भ, कथाविस्तार, शान्ति-उपदेश और सर्वसाधारण-वृत्तान्त आदि के लिए किया जाता है। 'मानस' मे अनुष्टुप् ग्रन्थारम्भ के लिए प्रयुक्त है। कवि ने शार्दूलविक्रीडित मे प्राय: अपने अभीष्ट देव के शक्ति-शील-सौन्दर्य के चित्र खीचे हैं। मात्रिक छन्दों मे ही कवि ने क्रम रखा है। दोहा और सोरठा प्राय: कथा-प्रवाह में विश्राम देते है। कही वे नीति प्रकट करते है तो कही दार्शनिक तथ्यों का प्रकाशन करते हैं। प्राय. कथाप्रवाह का निर्वाह आठ चौपाइयों के अन्तर दोहे या सोरठे के क्रम से ही हुआ है (यद्यपि यत्र-क्वचित् इसके अपवाद भी है)। इससे कथाप्रवाह मे क्षिप्रता एवं गतिमत्ता बनी रही है। श्रुति, नाद और शैली की अनेक विशेषताओं को चौपाई में निविष्ट कर कवि ने विभिन्न वातावरणो

१२४५ मानस, बालकाड, मगलाचरण, श्लोक १
१२४६ वही, अयोध्याकाड, मगलाचरण, श्लोक ३
१२४७ वही, उत्तरकाड १००।१०२
१२४८ वही, अरण्यकाड ३।१-१२
१२४९ वही, उत्तरकाड १०७
१२५० सुन्दरकाड मगलाचरण, ३
१२५१ वही उत्तरकाड, मगलाचरण, २
१२५२ वही, सुन्दरकाड, मगल, २
१२५३ वही, अयोध्याकाड, मगल, २
१२५४ वही अयोध्याकाड, मगल १
१२५५ वही, उत्तरकाड मगल १
१२५६ वही, बालकाड १ तथा अन्य अनेक
१२५७ वही, बालकाड ५ तथा अन्य अनेक
१२५८ वही, बालकाड १-८ आदि अनेक स्थल
१२५९ वही, अरण्यकाड १९
१२६० वही, " (१९) ख के पश्चात् का छन्द
१२६१ वही, बालकाड, २१० के बाद का छन्द
१६६२ वही, बालकाड २३५ के बाद का छन्द
१२६३ वही, बालकाड, १८४. के साथ का छन्द

का साक्षात् अंकन कर दिखाया है। चौपाई के अनन्तर परिमाण के अनुसार 'हरिगीतिका' छन्द का प्रयोग है जिसमें किसी भाव, व्यापार, दृश्य या परिस्थिति को अधिक प्रभावोत्पादक बनाने का प्रयत्न हुआ है। प्रायः उल्लासमय वातावरण के वर्णन के लिए इसका प्रयोग हुआ है। स्तुतियों में तोटक एवं भुजंगप्रयात का सौन्दर्य निखरा है तो तोमर का उपयोगित्व युद्ध के वर्णनों में है।

'मानस' के छन्दोनिर्वाचन के वैशिष्ट्य का प्रकाशन श्री राजपति दीक्षित के शब्दों में इस प्रकार किया जा सकता है—"गोस्वामीजी की प्रबन्ध-धारा मानों उनके सम्कृत वर्णिकों के शुभ हिमशिलाखण्ड से प्रसृत होकर चौपाइयों की समभूमि में सहज स्वाभाविक गति से चलती है; मार्ग में दोहा–सोरठो के मोड पर विश्राम करती हुई, समय-समय पर प्रसंग एवं भावावेश रूप वायु के झकोरों से विलोडित होकर अपनी मनमोहक लहरों में सजीव चित्र दिखाने के लिए हरिगीतिका, चौपय्या, त्रिभंगी, प्रमाणिका, तोटक और तोमर आदि के क्षेत्र में अपनी इठलाहट दिखाती कल-कल नाद करती हुई उत्तरोत्तर रामसागर में लीन हो जाती है।"[१२६४]

जहाँ तक छंदों की संख्या का प्रश्न है, पद्मपुराण में मानस से दुगुने से भी अधिक छंद प्रयुक्त हुए है। तुलसी ने किसी छंद का स्वत. निर्माण नही किया है जबकि रविषेण ने कुछ छदों की कल्पना स्वतः भी की है। रविषेण ने ४२वें पर्व बहुत जल्दी-जल्दी छंद परिवर्तन किया है किन्तु तुलसी ने कही भी इतनी शीघ्रता से छंद नही बदले हैं।

अलंकारों के प्रयोग में रविषेण और तुलसी दोनों ही जागरूक हैं। दोनो ने ही प्रायः **अपृथग्यत्ननिर्वर्त्य** अलकारो का प्रयोग किया है, यद्यपि एकाध स्थल पर रविषेण सायास अलंकारों की योजना में भी तत्पर दिखायी देते हैं। यदि रविषेण **लक्षणालंकृती वाक्यं** कहकर अलंकारों के प्रति सचेष्टता को द्योतित करते हैं तो तुलसी **'आखर अरथ अलंकृति नाना'** के द्वारा अपने अलंकाराधिकार की व्यंजना करते हैं। पद्मपुराण के अलंकारों का सोदाहरण उल्लेख सप्तम अध्याय में किया जा चुका है। मानस मे अनेक अलंकार प्रयुक्त हुए हैं किन्तु रूपक, उपमा एवं उत्प्रेक्षा तुलसी के अत्यन्त प्रिय अलंकार हैं। मानस का तो नाम ही रूपक अलंकार का उदाहरण है। प्रसिद्ध विद्वान् बी० ए० स्मिथ ने तुलसीदास की उपमाओं को कालिदास की उपमाओं से चारुतर स्वीकार किया है। मानस मे प्रयुक्त मुख्य अलंकारों के नाम अधोलिखित हैं:—यमक, श्लेष, रूपक, अपह्नुति, दीपक, निदर्शना, व्यतिरेक, उपमा, उत्प्रेक्षा, विभावना, विषम, रूपकातिशयोक्ति, परिसंख्या,

१२६४. तुलसी और उनका युग, पृष्ठ ३७८

अर्थापत्ति, यथासंख्य, प्रत्यनीक, स्वभावोक्ति, अर्थान्तरन्यास, कारणमाला आदि जिनके उदाहरण तुलसी के काव्य का परिचय देने वाले ग्रन्थों के लेखकों ने अनेक स्थानों पर दिये हैं। यहाँ हम स्थानानुरोध से उनके उदाहरण नहीं दे रहे हैं। संसृष्टि और संकर के भी अनेक उदाहरण तुलसी के मानस में प्राप्त होते हैं।

पद्मपुराण और मानस में प्रयुक्त अलंकारों की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि यद्यपि दोनों ही अलंकारों का सौन्दर्य दर्शनीय है किन्तु ग्रन्थों की पृथक् भाषा तथा काव्य-पद्धति मे कुछ भेद होने के कारण अलंकार-योजना में भी अन्तर है। पद्मपुराण के कर्त्ता ने अपने ग्रन्थ को संस्कृत-साहित्य का एक प्रौढ तथा आकर्षक ग्रन्थ बनाने के लिए लालायित होकर जहाँ अलंकारों के विस्तृत उदाहरण प्रस्तुत किये हैं वहाँ मानस के लोकसंग्रही कवि ने जनमानस तक मानस को पहुँचाने के लिए अलंकारों का सरल और संक्षिप्त प्रयोग किया है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा मे दोनों ही कवि परम सफल हैं। किसी की भी अधरोत्तरता सिद्ध नहीं की जा सकती, क्योंकि दोनों की काव्यभाषा, काव्यप्रणाली, काव्य परिस्थिति एवं मनो-वृत्ति पृथक् है जिसके कारण अलंकार योजना में कहीं प्रौढि और कहीं सरलता का आश्रय लिया जा सकता है।

'पद्मपुराण' और 'मानस' दोनों ही पौराणिक काव्य है। पुराणों मे वक्ता और श्रोताओं की शृंखलाएँ जुड़ती चली जाती हैं। पद्मपुराण के सवादो की चर्चा सप्तम अध्याय मे की जा चुकी है जिनमें श्रेणिक-गणधर-सवाद आधारभूत है। ठीक इसी पद्धति पर मानस की प्रस्तावना में चार वक्ता-श्रोता दिखाई पड़ते हैं। 'मानस धर्मग्रन्थ भी है और काव्यग्रन्थ भी। इसीलिए उसमें धर्मग्रन्थ पुराणो की तरह शृंखलाबद्ध सवाद रखे गये है।'[१२६५]

इनके अतिरिक्त भक्ति, ज्ञान और धर्म आदि पर आधारित और भी अनेक संवाद चलते हैं। कुछ सवाद कथा के भाग भी हैं। कुछ मे सघर्ष और मनोविज्ञान सामने आता है तो कुछ परिस्थितिविशेष के चरित्रो एव घटनाओं को गति देते हैं। कुछ संवादो के केवल निर्देश ही मिलते हैं। कुछ लोगों का विचार है कि ये सवाद ज्ञान, कर्म और भक्ति आदि का निरूपण करने के लिए ही हैं क्योंकि काकभुशुण्डि भक्ति का, शिव ज्ञान का और याज्ञवल्क्य कर्मकाण्ड का प्रतिपादन करते हैं। परन्तु सवादो की योजना का उद्देश्य यह प्रतीत नहीं होता। वास्त-विकता यह है कि तुलसी ने अनेक श्रोता और वक्ताओ के माध्यम से नाना भाँति के तर्कों का समाधान कर दिखाया है। एक प्रकार के संवाद और भी मिलते हैं,

१२६५ 'मानस' के सवाद, 'कल्याण', भाग-१३, सं० २।

जैसे—'सीता-अनसूया-संवाद' तथा 'राम-नारद-संवाद'। इनमें कवि के अपने ही दृष्टिकोण सामने आते हैं।'

कथा भाग को गति देने वाले संवादों को पं० विश्वनाथ मिश्र ने दो भागों में विभक्त किया है—(१) सभा-संवाद और (२) गोष्ठी-संवाद। सभा-संवादों में लक्ष्मण-परशुराम-संवाद, भरत-राम-सभा-संवाद, जनक-सभा-संवाद, हनुमान-रावण-संवाद और अंगद-रावण-संवाद मुख्य हैं। गोष्ठी-संवादों में मिथिला की सखियों का संवाद, मन्थरा-कैकेयी-संवाद, राम-सीता-संवाद, केवट-राम-संवाद, रावण-मन्दोदरी-संवाद और शूर्पणखा-राम-लक्ष्मण-संवाद आदि आते हैं। इन सभी के उदाहरण मानस में देखे जा सकते हैं। इन संवादों में कहीं-कहीं, किसी आलोचक की दृष्टि से, मर्यादा का उल्लंघन हो गया है यथा—अंगद-रावण-संवाद में।

पद्मपुराण और मानस के संवादों पर तुलनात्मक दृष्टि डालने पर ज्ञात होता है कि यद्यपि दोनो के कर्ताओ ने संवादो की योजना की है किन्तु इस क्षेत्र में रविषेण तुलसी से आगे हैं क्योंकि इनके संवाद मनोवैज्ञानिक और आकर्षणपूर्ण अपेक्षाकृत अधिक हैं।

जहाँ तक प्रकृति-चित्रण का प्रश्न है दोनों ग्रन्थों में अवसरानुसार उसे स्थान मिला है। पद्मपुराण के प्रकृति चित्रण का परिचय दिया जा चुका है। मानस में प्रकृति उद्दीपन, अलकार और उपदेशदात्री के रूप में अधिक चित्रित हुई है। प्रकृति के स्वतन्त्र रूप को यहाँ अधिक स्थान नहीं मिला है। गोस्वामीजी ने प्रकृति-चित्रण करते समय प्रायः परम्परा का ही पालन किया है। संभवतः राम-भक्त तुलसी के पास प्रकृति का सूक्ष्म अन्वेषण करने का अधिक अवकाश नहीं था! तभी तो **'बूंद अघात सहहिं गिरि कैसे। खल के बचन संत सहिं जैसे'** आदि उपदेशदायक रूपो में प्रकृति का चित्रण अधिक हुआ है। शरद्-वर्णन, वर्षा-वर्णन तथा चित्रकूट-वर्णन आदि स्थल प्रकृति-चित्रण की दृष्टि से रमणीय हैं।

जहाँ तक विविध वर्णनों का प्रश्न है दोनों ग्रन्थों में विविध वर्णन, अनेक अवसरों पर, किये गये है। 'पद्मपुराण' के वर्णनों की विशद सूची हम सप्तम अध्याय में दे चुके हैं। मानस के वर्णनों में कवि का आत्म-परिचय, जनकपुरी, अयोध्या तथा लंका नगरी का वर्णन, वर्षा और शरद् ऋतु का वर्णन, सन्ध्या, सूर्य, इन्दु और रजनी आदि के अत्यन्त सूक्ष्म तथा संक्षिप्त वर्णन, पम्पा-सरोवर-वर्णन, सीता-सौन्दर्य-वर्णन, जनकपुरी के नर-नारियों के भावालापो का संक्षिप्त वर्णन, शिव-विवाह और राम-विवाह का वर्णन, राम-लक्ष्मण की शोभा का वर्णन, राम-भरत की यात्रा का वर्णन, निषाद की सेवा का वर्णन, अशोक-वाटिका-विध्वंस-वर्णन, खरदूषण-राम-युद्ध, इन्द्रजित्-लक्ष्मण-युद्ध, राम-कुम्भकर्ण-युद्ध एवं राम-

रावण-युद्ध का वर्णन, दशरथ-राम-मन्दोदरी-सुलोचना के विलाप-वर्णन तथा सुतीक्ष्ण मुनि आदि के संक्षिप्त वर्णन प्रमुख हैं। 'रामचरितमानस' के विशिष्ट वर्णनों में नगरी-वर्णन की दृष्टि से अयोध्या[१२६६] और लंका[१२६७] का वर्णन लिया जा सकता है। अयोध्या का वर्णन करते समय कवि ने ध्वजा, पताका, पट, चामर, विचित्र बाजार, कनक-कलश, तोरण, मणिजाल, हल्दी, दूब, दधि, अक्षत आदि मांगलिक द्रव्य, छिड़काव, चौक पूरना, षोडश शृंगार युक्त दामिनी की द्युति के समान भामिनियों, विधुवदनी, मृगशावकलोचनी एवं अपने स्वरूप से रति का मान भंग करने वाली पुरवनिताओ के द्वारा कोकिल को लजाने वाली वाणी के द्वारा मंगलगान, अनेक मांगलिक द्रव्यों से युक्त राजभवन, नगाड़े, बंदि-जनो के द्वारा विरुदावलि का गान, ब्राह्मणो के द्वारा वेद पाठ तथा दशरथ के भवन मे रामजन्म पर उत्साहातिरेक प्रभृति का परिगणनात्मक शैली में वर्णन किया है। लंका का वर्णन करते समय कवि ने लंका-दुर्ग, चारो दिशाओं में समुद्र की परिखा, कनक-कोट, हाट, वाथी, गज-वाजि-खच्चर, पदचर, रथ, निशाचरों, सैन्य, वन, बाग, उपवन, सर, कूप, वापी, नर, नाग, सुर एवं गंधर्वों की कन्याओं, शैलोपम देहधारी मल्लों के अखाड़ों में भिड़ने, कोटि यत्नो से नगर की रक्षा एव निशाचरों के द्वारा अनेक पशुओ के भोजन आदि का वर्णन किया है।

ऋतु-वर्णन की दृष्टि से रामचरितमानस का वर्षा-वर्णन[१२६८] एव शरद्-ऋतु-वर्णन[१२६९] द्रष्टव्य है। इन वर्णनों मे केवल वस्तु-परिगणन-प्रणाली का ही आश्रय न लेकर प्रकृति के उपदेशदायक रूप का विविध उपमाओं के माध्यम से चित्रण किया गया है। वर्षा ऋतु के एक-एक उपादान से किसी न किसी शिक्षात्मक तथ्य की संगति की गयी है। वारिद को देखकर मयूरों का नृत्य, घनो मे दामिनी का दमकना, बरसते बादलों का भूमि के निकट हो जाना, पर्वतों का वर्षा की बूँदों के आघात को सहना, क्षुद्र नदी का भरकर चलना, भूमि पर गिरते ही पानी का मलिन हो जाना, सिमिट-सिमिटकर जल का तालाब मे भर जाना, सरिता के जल का जलनिधि में पहुँचकर अचल हो जाना, हरित तृणो से संकुल भूमि मे पंथ का न सूझ पड़ना, चारों दिशाओं मे दादुरों की ध्वनि का फैलना, वृक्षों मे अनेक नये पल्लवो का उद्गम, आक और जवास का पत्रहीन हो जाना, खोजने पर भी कही धूलि का न मिलना, शस्य से सम्पन्न पृथ्वी की शोभा, रात

१२६६ मानस, बाल० २९६-२९७
१२६७. वही, सुन्दरकाड २-३
१२६८. देखिए, मानस, किष्किंधाकाण्ड १३-१५
१२६९. वही " " १६-१७

के घने अँधेरे में खद्योतों का चमकना, महावृष्टि से क्यारियों का फूट चलना, चतुर किसानों के द्वारा खेती का नलाना, चक्रवाक पक्षी का न दिखाई देना, ऊसर में वर्षा होने पर भी तृण का न जमना, पृथ्वी का विविध जन्तुओं से संकुल होना, जहाँ-तहाँ पथिकों का थककर रह जाना, कभी प्रबल मारुत के प्रवाह से मेघों का इधर-उधर विलीन हो जाना एवं कभी दिन में निबिड़ अंधकार का होना और कभी सूर्य का प्रकट होना आदि अपने समानधर्मा शिक्षा-तथ्य की प्रस्तुति करते हैं। यहाँ तुलसी की भाषा की समास-शक्ति और कल्पना की समाहार-शक्ति के साथ उनका व्यापक अनुभव मुखर हो उठा है। इसी प्रकार वर्षा के बीतने पर शरद् ऋतु के आगमन का वर्णन चेतन और अचेतन प्रकृति के साधर्म्य का द्योतन कराता है। इन वर्णनों में केवल वस्तुपरिगणन-प्रणाली का ही निर्वाह नहीं है, अपितु वस्तुओं के कार्य-कलाप का भी संश्लिष्ट वर्णन हुआ है।

जिस प्रकार पद्मपुराण में अनेक जलाशयों के वर्णन आये हैं उसी प्रकार मानस में भी जलाशयों के वर्णन आये हैं। उदाहरण के लिए मानस का पम्पा-सरोवर वर्णन[1270] लिया जा सकता है। यदि वर्षा और शरद का वर्णन करते समय तुलसी ने दृष्टान्त एवं उपमाओं के सहारे प्रकृति के लोक-शिक्षक रूप को व्यक्त किया है तो पम्पा-सरोवर के वर्णन में उसने उत्प्रेक्षाओं का सहारा लेकर इस कार्य की सिद्धि की है। पद्मपुराण के समान ही मानस भी सौन्दर्य-वर्णनों से युक्त है किन्तु इसके सौन्दर्य वर्णन सांकेतिक, व्यंजना से परिपूर्ण एवं मर्यादित हैं। उदाहरण के लिए मानस के सीता-सौन्दर्य-वर्णन को लिया जा सकता है जो अपनी ध्वनिपूर्णता के लिए प्रसिद्ध है—

सिय सोभा नहिं जाइ बखानी। जगदम्बिका रूप गुन खानी॥
उपमा सकल मोहि लघु लागी। प्राकृत नारि अंग अनुरागी॥
सिय बरनिअ तेइ उपमा देई। कुकबि कहाइ अजसु को लेई॥
जौं पटतरिअ तीय सम सीया। जग असि जुबति कहाँ कमनीया॥
गिरा मुखर तन अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी॥
बिष बारुनी बंधु प्रिय जेही। कहिअ रमा सम किमि बैदेही॥
जौं छबि-सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छपु सोई॥
सोभा रजु मंदरु सिंगारू। मथै पानि पंकज निज मारू॥
एहि बिधि उपजै लच्छि जब सुन्दरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत छबि कहहिं सीय सम तूल॥

१२७०. देखिये मानस, अरण्यकाण्ड, ३८-४०

चली संग लै सखी सयानी । गावत गीत मनोहर बानी ॥
सोह नवल तनु सुंदर सारी । जगत जननि अतुलित छबि भारी ॥
भूषन सकल सुदेस सुहाए । अंग अंग रचि सखिन्ह बनाए ॥
रंगभूमि जब सिय पगु धारी । देखि रूप मोहे नर नारी ॥
हरषि सुरन्ह दुंदुभी बजाई । बरषि प्रसून अपछरा गाई ॥
पानि सरोज सोह जयमाला । अवचट चितए सकल भुआला ॥
सीय चकित चित रामहि चाहा । भए मोहबस सब नरनाहा ॥
मुनि समीप देखे दोउ भाई । लगे ललकि लोचन निधि पाई ॥
गुरजन लाज समाजु बड़ देखि सीय सकुचानि ।
लागि बिलोकन सखिन्ह तन रघुबीरहि उर आनि ॥[१२७१]

यहाँ 'उपमा सकल मोहि लघु लागी' आदि व्यंजनापूर्ण वाक्यों से तथा 'जौ छबि सुधा पयोनिधि होई' आदि यद्यर्थातिशयोक्ति के द्वारा जगज्जननी सीता के वर्णनातीत सौन्दर्य की व्यंजना की गयी है। पद्मपुराण में सीता का वर्णन करते समय रविषेण ने नख-शिख-वर्णन का आश्रय लिया है एवं ब्यौरेवार प्रत्येक अग का आलंकारिक वर्णन प्रस्तुत किया है जबकि तुलसी सीता के वर्णन के लिए उपमा देने को कुकवि की उपाधि का कारण मानते हैं।

शृंगारिक वर्णनों का जितना आधिक्य पद्मपुराण में है उतना मानस में नही; फिर भी कुछ स्थल ऐसे हैं जिनमें शृगार के संयोग-पक्ष से सम्बद्ध वर्णन अत्यन्त भव्य रूप मे निबद्ध हुए हैं। उदाहरण के लिए मानस का राम-सीता-मिलन का वर्णन लिया जा सकता है। सीता सखियों के साथ गिरिजा-पूजन के लिए जाती है। एक सखि, पुष्पवाटिका मे राम-लक्ष्मण को देखकर सीता से उनके रूप-सौन्दर्य का वर्णन करती है। सीता प्रिय सखी के साथ राम-लक्ष्मण को देखने चलती है और सीता को देखकर श्रीराम लक्ष्मण से उसके अलौकिक सौन्दर्य का वर्णन करते हैं। इसके बाद सीता और राम के पूर्वराग का सांकेतिक, व्यंजनापूर्ण एवं उदात्त वर्णन हुआ है।[१२७२]

इस वर्णन मे पद्मपुराण के अञ्जना-पवनञ्जय-सम्भोग-वर्णन जैसी वर्णनात्मकता तथा पार्थिवता नही है, अपितु सूक्ष्म-सांकेतिकता तथा गम्भीर प्रभाववत्ता विद्यमान है। रविषेण, ऐसे स्थलों पर सांगोपांग वर्णन करके अभिधा के चमत्कार से मानो यह कहना चाहते हैं कि 'मैं वर्णन करते हुए छोटी-सी भी वस्तु को उपेक्षित नही करता' जबकि तुलसी व्यंजना का आश्रय लेकर यह बता देना चाहते हैं कि

१२७१. मानस, बालकाण्ड, २४६-२४८
१२७२. देखिए, मानस बालकाण्ड, २२८-२३४

'वर्णनीय वस्तुओं का शब्दों के द्वारा वास्तविक वर्णन नहीं हो सकता, उसके लिए सहृदय की कल्पना अपेक्षित है।' **'बरनि न जाई देखि मन मोहा।', 'स्याम गौर किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी।', 'देखि सीय सोभा सुख पावा। हृदय सराहत बचनु न आवा॥', 'सब उपमा कवि रहे जुठारी। केहिं पटतरौं बिदेह कुमारी॥'** आदि वाक्यों से उनकी व्यंजनात्मकता सिद्ध होती है। कहने का यह तात्पर्य बिल्कुल नहीं है कि रविषेण व्यंजना का आश्रय नहीं लेते। उन्होंने भी **'यथा ब्रवीति वैवर्ण्यं, यथाज्ञापयति स्मरः। अनुरागो यथा शिखां प्रयच्छति महोदयः॥ तथा तयो रतिः प्राप्ता बम्पत्योर्वृद्धिमुत्तमाम्॥'** आदि वाक्यों से अनुभवैकगम्य का कहीं-कहीं सांकेतिक वर्णन किया है, किन्तु अधिकांशतः उन्होंने अभिधा के चमत्कार से युक्त ही संयोग-वर्णन किये हैं।

युद्ध-वर्णन मानस की अपेक्षा पद्मपुराण में अधिक सजीव और प्रभूत हैं। मानस के युद्ध वर्णनों में प्रायः वे सभी घिसी-पिटी बातें पायी जाती हैं, जो किसी औसत दर्जे के पौराणिक काव्य में मिलती हैं। उसमें वीरों के नाम, अस्त्रों के नाम, एक-दूसरे को ललकारना, विविध माया फैलाना आदि तथ्यपरक वाक्यों की योजना अधिक है। पद्मपुराण जैसी बिम्बोत्पादकता मानस के युद्ध वर्णनों में नहीं है। मेघनाद-लक्ष्मण-युद्ध-वर्णन को उदाहरण के लिए लिया जा सकता है।[१२७३] इस प्रसंग में कुछ स्थलों पर तो केवल तथ्यकथन है और कहीं-कहीं उपमादि अलकारों से परिपुष्ट कुछ बिम्ब उभरते हैं।

सक्षेप मे, पद्मपुराण और मानस के वर्णनों पर दृष्टिपात करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि वर्णन करने मे दोनों ही कवि निपुण हैं किन्तु जितने विविध, आलकारिक तथा विस्तृत वर्णन पद्मपुराण मे पाये जाते हैं उतने मानस में नहीं। भावालाप-वर्णनों मे तो रविषेण ने कमाल ही कर दिया है जिसे देखकर बाण और दण्डी स्मृतिपथ मे उतर आते हैं। एक-एक वस्तु के उन्होने नये से नये ढंग से मुहुर्मुहुः वर्णन किये हैं। मानस में ऐसा नहीं है। इसका कारण स्पष्ट है। तुलसी ने मानस जनसाधारण तक पहुँचाने के लिए लिखा था, काव्यमार्गियों में अपनी प्रौढ़ता दिखाने के लिए नहीं। दूसरे उन्होंने मर्यादा एवं लोकमंगल की भावना का पूरी तरह पालन किया है। अतः वे स्वच्छन्द वर्णन नहीं कर पाये। अत एव जहाँ पद्मपुराण के वर्णन एक ही वस्तु का बारम्बार अभिनव व्याख्यान करने वाले, आलंकारिक तथा स्वच्छन्द हैं वहाँ मानस के वर्णन अपुनरुक्तिपूर्ण, तीव्रगतिमय, संक्षिप्त, चित्रमय, स्वाभाविक, सांकेतिक, व्यंजनापूर्ण, सरल तथा मर्यादित। पद्मपुराण के वर्णन व्यास-शैली के हैं और मानस के समास-शैली के। इसका

१२७३. देखिए, मानस, लङ्काकाण्ड, ४९-५४

कारण स्पष्ट है। तुलसी का ध्येय समस्त चराचर के उपास्य श्रीराम का चरित्र कथन करना था, अन्य वस्तुओं के सांगोपांग विवरण देने का उन्हें अवकाश नहीं था। इसीलिए श्रीराम से सम्बद्ध वर्णन कुछ विस्तृत हैं, शेष अति संक्षिप्त।

सारांश यह है कि रविषेण और तुलसीदास दोनों ही ने अपने ग्रन्थों को भाव-सम्पदा और कला-कौशल से सजाने की पूरी चेष्टा की है। दोनों कवि भावपक्ष और कलापक्ष से अपने ग्रन्थ को समृद्ध बनाने के लिए जागरूक हैं। पद्मपुराण के अन्तिम पर्व में रविषेण ने लिखा है कि इस ग्रन्थ मे व्यंजनांत, स्वरांत, अर्थ के वाचक, शब्द, लक्षण, अलंकार, वाच्य, प्रमाण, छन्द, आगम आदि सब कुछ यहाँ विद्यमान है।[१२७४] तुलसीदास ने भी मानस-रूपक की रचना करते समय काव्य से सम्बद्ध समस्त सामग्री के प्रयोग के प्रति अपनी जागरूकता प्रकट करते हुए लिखा है कि सुंदर चार संवाद इस मानस के चार घाट हैं; सप्त प्रबंध इसके सुंदर सोपान हैं, रघुपति की महिमा का वर्णन इस मानस में रहनेवाला अगाध जल है; राम और सीता के यश रूपी सुधोपम जल में उपमारूपी सुंदर लहरों का विलास होता है; चारु चौपाई उस जल मे रहनेवाली पुटकिनी हैं और सुंदर युक्तियाँ मणि और सीप के समान सुशोभित है, छन्द-सोरठा और सुन्दर दोहे इस मानस में खिलने वाले बहुरंगी कमल है जिनके मकरन्द और सुवास के रूप में अनुपम अर्थ एवं सुन्दर भाषा से युक्त सुन्दर भाव विद्यमान है, सुकृतों के पुंज मंजुल भ्रमरमाला के रूप में तथा ज्ञान और विराग के विचार हंसों के रूप मे विद्यमान है; ध्वनि, अवरेव, कवित्व, गुण और जाति इस मानस में विचरण करने वाली मछलियाँ है। पुरुषार्थचतुष्टय, ज्ञान-विज्ञान के विचार, नवरस, जप, तप, योग और विराग इस मानस में विचरण करने वाले जलचर हैं। पुण्यात्माओं एवं सज्जनों के नाम के गुणगान विचित्र जल-विहंगों के समान है। इसमें उल्लिखित संतों की सभा चारों दिशाओं में रहनेवाली अमराई के समान है और श्रद्धा वसंत ऋतु के समान छायी हुई है। विविध विधानों से भक्ति का निरूपण, क्षमा, दया, और दम लता-वितान के समान हैं। शम, यम और नियम फूल के समान हैं एवं ज्ञान फल के समान है, जिनमे हरि के चरणों में प्रेम का रस समाया हुआ है। कथा के अनेक अपर प्रसंग बहुवर्णक शुक और पिक आदि विहंगों के समान हैं।[१२७५]

इन दोनों उल्लेखों से रविषेण और तुलसीदास के काव्य-वैभव के प्रति दत्तावधान होने का स्पष्ट साक्ष्य मिलता है। राम के चरित्र का वर्णन करने के माध्यम से दोनों ही कवियों ने अपने काव्यप्रणयनपटुत्व का अपने देश और काल के

१२७४. पद्म०, १२३।१८५-१८६

१२७५. मानस, बालकाण्ड, ३६-३७

अनुसार, सफल परिचय दिया है। इतना तो कहना ही पड़ेगा कि पद्मपुराण का कलापक्ष अधिक चमत्कारपूर्ण है क्योंकि रविषेण ने अपने समय में उपलब्ध प्रौढ़ काव्य-सरणि का यथेष्ट अनुसरण किया है एवं मानस का कलापक्ष स्वाभाविक और सरल क्योंकि इस 'भाषा-निबन्ध' का प्रणयन विद्वानों के साथ जन-साधारण के लिए भी किया गया है, भले ही शब्दों से 'स्वान्तःसुख' की बात कही गयी हो।

'पद्मपुराण' और 'मानस' दोनों ग्रन्थों का धार्मिक दृष्टि से भी महत्त्व है। पद्मपुराण के प्रतिपाद्य धर्म की चर्चा पीछे की जा चुकी है। यहाँ मानस के प्रतिपाद्य धर्म की संक्षिप्त चर्चा करके दोनों ग्रंथों की धार्मिक दृष्टि से तुलना की जा रही है।

'मानस' का मुख्य प्रतिपाद्य भक्ति है। 'धर्म और भक्ति का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। गोस्वामीजी इन दोनों में से प्रत्येक को दूसरे का पूरक मानते हैं। उनकी दृष्टि में भक्ति और धर्म में अंगांगिभाव सम्बन्ध है। किसी अंग के रुग्ण होने पर जैसे समस्त शरीर की विकलता को कोई नहीं रोक सकता, उसी प्रकार धर्म के किसी आडम्बर या अनाचार से ग्रस्त हो जाने पर भक्ति का विकृत हो जाना भी अनिवार्य है। भक्ति का विमल और यथार्थ प्रकाश प्रस्फुटित हो और उससे विश्व का अभ्युदय होता रहे, इसके लिए नितान्त आवश्यक है कि साधक की उपासना किसी प्रकार के अनाचार से पंकिल और रहस्य से आवृत न हो—यह बात गोस्वामी जी भली भाँति जानते थे, इसी से इन्होंने इनको रामोपासना में रंचमात्र भी स्थान नहीं दिया, प्रत्युत इन्हें मिटाने का प्रयास किया है।[१२७६]

'मानस के अनुसार धर्म के क्षेत्र में आडम्बर घातक है। उसके अनुसार मन की निर्मलता के बिना भगवत्प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती।[१२७७] मानस में नैतिक भाविक और बौद्धिक आधार पर धर्म की स्थापना की गयी है। नैतिक का सम्बन्ध हमारे उन सभी कार्यों में है जो परस्पर व्यवहार के लिए आवश्यक है। भाविक तत्त्व की प्रधानता हमारे उन सभी कृत्यों में रहती है जिनमें हमारी अन्तर्वृत्तियों को भी खुल-खेलने का अवसर मिलता है। इष्टानिष्ट परिणाम की ओर दृष्टि रखकर साधक-बाधक तर्क-वितर्कों का मन्थन करके जो कार्य किया जाता है वह बौद्धिक कोटि में आता है।[१२७८] तुलसी ने जिस व्यापक धर्म का निर्देश किया, वह उनका कोई व्यक्तिगत नया धर्म न था। वह प्राचीन भारत का सनातन

१२७६. डा० राजपति दीक्षित: तुलसीदास और उनका युग, पृ० ७६

१२७७. 'मानस' ५।४३।५

१२७८. दे० डा० राजपति दीक्षित : तुलसीदास और उनका युग, पृ० ८३-८४।

धर्म ही है जो मनुष्य मात्र के लिए सामान्य धर्म के नाम से अनादिकाल से चला आ रहा है।[१२७९] नाना-पुराण-निगमागम के अध्ययन से उनके सारभूत धर्म को ही मानस में तुलसी ने प्रस्तुत किया है।

'मानस' में धर्मपालकों के प्रति अपार आस्था प्रदर्शित की गयी है।[१२८०] उसके अनुसार, धर्मशील के पीछे समस्त सुख सम्पति उसी प्रकार दौड़कर आती हैं जिस प्रकार समुद्र के पीछे सरिताएँ।[१२८१] परम पुरुषार्थ का प्रथम सोपान भी धर्म ही है[१२८२]। धर्म की महिमा के विषय मे 'मानस' वैसे ही विचार देता है जैसे कि प्राचीन ब्राह्मण-धर्मग्रन्थ।[१२८३]

'मानस' मे धर्म-भावना का स्वरूप उसी प्रकार निर्दिष्ट है जैसा कि मनु-स्मृति, रामायण, महाभारत, भागवत आदि में कथित है।[१२८४] धर्म के अवयव ये हैं—शौर्य, धैर्य, सत्य, शील, विवेक, दम, परहित, क्षमा कृपा, समता, ईशभक्ति, विरति, सन्तोष, दान, बुद्धि, श्रेष्ठज्ञान, अचल पवित्र मन, सम, यम, नियम, विप्र-गुरु-पूजन आदि।[१२८५] मनुष्यमात्र इन गुणों को ग्रहण करने का अधिकारी है। इस व्यापक धर्म के विरोधी दुर्गुण ही अधर्म हैं और निन्दनीय हैं। धर्म के सभी अवयव प्रशंसा के पात्र हैं।

'मानस' के अनुसार—सत्य सभी सुकृतो का मूल है और उसके समान दूसरा धर्म नही है।[१२८६] शील बड़े भाग्य से प्राप्त होता है।[१२८७] मनोनिग्रह परम आवश्यक धर्मांग है। बिना मन को वश मे किये मनुष्य परम लक्ष्य को कदापि नही प्राप्त कर सकता। ईश्वर को मन की शुद्धता बड़ी प्यारी होती है।[१२८८]

असत्य के समान कोई पातक का पुज नही है।[१२८९] ऐसे पातक और अधर्म से प्राणि मात्र को बचना चाहिए। पर-नारी को चौथ के चाँद के समान छोड़ देना चाहिए, उसे नही देखना चाहिए।[१२९०]

१२७९. वही, पृ० ८७

१२८०. मानस, २।९४।३, ४

१२८१. वही, १।२९३।२, ३

१२८२. वही, ३।१५।१

१२८३. दे० मनुस्मृति, ४।२४१

१२८४. दे० महाभारत, शान्ति ० २७०।५५, राज० १०९।१०, १२
मनुस्मृति, ६।२२, १०।६३ याज्ञवल्क्यस्मृति, १।१२२
महाभारत, शान्ति०, ६०।७ भागवत, ७।११।१२

१२८५. मानस, ६।७९।५-११

१२८६. वही, ७।८९।६

१२८७. वही, २।२७।५

१२८८. वही, २।२७।६, २।९४।५

१२८९. वही, १।२३०।५,

१२९०. वही, ५।३७।५, ६

'मानस' के अनुसार हिंसा पाप है।[१२९१] आसुरी प्रकृति वाले व्यक्ति ही सर्वभूत-द्रोहरत होते हैं। परद्रोह परम गर्हित पाप है।[१२९२] परोपकार परम धर्म है।[१२९३] परहित-व्रत-परायण को संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं है।[१२९४] परोपकार धर्म है और परपीड़न अधमता—"**परहित सरिस धरम नहिं भाई। परपीड़ा-सम नहिं अधमाई॥ निरनय सकल पुरान बेद कर। कहेउँ तात जानहिं कोबिद नर॥**"[१२९५] दया का स्थान भी धर्म में अत्युच्च एवं उदात्त है।[१२९६]

'मानस' के अनुसार, वैष्णवधर्म का अहिंसावाद सर्वोच्च माना गया है। धर्म के कठिन विधि-विधानों की अपेक्षा राम-नाम जप सरलतम है।

मानस के अनुसार—भक्ति अति सुखदायिनी है। रामभक्त होने के लिए शिव की भक्ति भी अनिवार्य है।[१२९७]

सनातन धर्म की वर्णाश्रम-व्यवस्था एवं उसमें प्रतिष्ठित नियम, व्रत, उपवास, स्वाध्याय, यज्ञ, पूजा-पाठ, स्नान-ध्यान, तिलक-मुद्रा-प्रभृति धर्म के बाह्य स्वरूपों के प्रति भी 'मानस' में आस्था प्रकट की गयी है और भूलकर भी इनकी निन्दा नहीं की गयी है। संक्षेप में, 'मानस' में उस धर्म का प्रतिपादन किया गया है जो भक्ति-प्रधान लोक-धर्म कहा जा सकता है।

'पद्मपुराण' और 'मानस' का धार्मिक दृष्टि से अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि दोनों में ही मानव कल्याण के लिए धर्म का विधान किया गया है पद्मपुराण सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-युक्त जैन-धर्म का एडवोकेट है और मानस वर्णाश्रम-व्यवस्था का। विचार करने पर दोनों ही धर्मिक दृष्टियाँ कल्याणकारी हैं और अपने युग की आवश्यक उपज हैं। किन्तु ये धर्मदृष्टियाँ एक दूसरे से भिन्न मानी मानी जाती रही है। यही कारण है कि रविषेण और तुलसी-दोनों की धार्मिक विचारधाराएँ भिन्न हैं। जहाँ 'पद्मपुराण' यज्ञादि का खण्डन करता है वहाँ 'मानस' उनका पोषण। जहाँ 'पद्मपुराण' का धर्म व्यावहारिक दृष्टि से अधिक कठिन है वहाँ 'मानस' का धर्म लोक-धर्म होने के कारण अधिक सुगम और ग्राह्य। 'पद्मपुराण' के धर्म को समझने के लिए दार्शनिक पृष्ठभूमि अपेक्षित है, 'मानस' के धर्म के अनुसरण के लिए सरल हृदय। 'पद्मपुराण' में ब्राह्मण धर्म की मिथ्यादर्शन के रूप में निन्दा करके अपने धर्म की प्रतिष्ठा की गयी है, 'मानस'

१२९१. वही, १।१८३, १।१८०-१८४, १।१८०।१

१२९२. वही, १।१८३।५

१२९३. वही, १।८३।१, २

१२९४. वही, ३।३०।९

१२९५. वही, ७।४०।१, २

१२९६. वही, ७।१११।१०

१२९७. वही, १।१०३।५

में धर्म की प्रतिष्ठा करके अधर्म की निन्दा की गयी है। 'पद्मपुराण' का आदर्श धर्म है—कट्टर, कठोर जैनधर्म और 'मानस' का लोक-धर्म, जिसकी समाज में रहकर सरलता से साधना की जा सकती है। 'पद्मपुराण' का धर्म प्रचार की भावना से युक्त है और 'मानस' का धर्म सुधार का भावना से।

साहित्य और संस्कृति एक दूसरे के पूरक और स्मारक होते है। अतीत के गर्भ में विलान होने वाली मानव की जिजीविषा की सहचर क्रियाओं का पुनदर्शन साहित्य के माध्यम से अनागत तक में होता रहता है और शब्द और अर्थ मे छिपी चिरन्तन मूल वृत्तियों की प्रायोगिक कक्षाएँ जीवन में जगती रहती हैं। यही है साहित्य और संस्कृति का अन्योन्याश्रय-सम्बन्ध। 'पद्पुराण' और ,मानस' सास्कृतिक दृष्टि से भी हमें कुछ देते हैं। 'पद्मपुराण' मे निविष्ट सांस्कृतिक सामग्री का परिचय पीछे दिया जा चुका है। यहाँ 'मानस' के सांकृतिक सूचना-दान का उल्लेख करके दोनों ग्रंथों के सांस्कृतिक पक्ष पर तुलनात्मक दृष्टि डाली जा रही है।

'रामचरितमानस' में संस्कृति : 'रामचरितमानस में उपनिबद्ध संस्कृति आदर्श हिन्दू-सस्कृति है। यहाँ सस्कृति का यथार्थ रूप अधिकन. प्रस्फुरित नही हो सका है। मर्यादावादी एव लोकसंग्रहवादी होने के कारण तुलमी ने मानस मे राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा अन्य क्षेत्रों मे मर्यादा का आदर्श रखा है, अत. वहाँ तत्कालीन संस्कृति का यथार्थ दर्शन कठिन है। फिर भी व्यंजना से उन्होंने इसकी बहुत कुछ झलक दे दी है। डा० भगीरथ मिश्र के शब्दों में 'गोस्वामी तुलसीदास का काव्य लिखने का वास्तविक उद्देश्य लोक-जीवन का यथार्थ चित्रण करना नही था, वरन् उसके आदर्श की ओर सकेत करना था। इसलिए राम के चरित्र का वर्णन करने मे प्रधान रूप से लोक-जीवन का यथार्थ चित्रण कही भी नहीं मिलता। साथ ही-साथ अपने काव्य सम्बन्धी आदर्श स्पष्ट करते हुए उन्होने प्राकृत जन के गुणगान न करने का भी संकल्प प्रकट कर दिया है। ऐसी दशा में बहुत विस्तारपूर्वक पूर्ण व्यापक और यथार्थ तथा निरपेक्ष जन-जीवन के वर्णन की आशा हम कर भी नही सकते, किन्तु तुलसी का उद्देश्य अपनी काव्य-रचना में जन-जीवन-सुलभ वस्तुओं को देना है। इसलिए गौणरूप में प्रकारान्तर से लोक-जीवन की झलक हमें मिल जाती है। पर संस्कृति जीवन का आदर्श रूप प्रस्तुत करती है, अतः उसका चित्रण गोस्वामी जी के ग्रन्थों में 'राम-चरितमानस' के माध्यम से बराबर हुआ है।[१२९८] भाव यह है कि पूर्वपक्ष के

१२९८. डा० भगीरथ मिश्र . तुलसी रसायन, पृ० १५८।

अन्तर्गत संस्कृति के यथार्थ चित्रण की झलक है और उत्तरपक्ष के अन्तर्गत आदर्श की। यहाँ हमें इस सांस्कृतिक चित्रण पर विचार करना है।

तुलसीदास ने 'मानस' मे राजनीतिक आदर्शों को हमारे सम्मुख रखा है। उनके अनुसार जिस राजा के राज्य में प्रजा दुखारी हो वह राजा अवश्य ही नरक का अधिकारी है। इससे सिद्ध है कि तुलसी के समय राजा से प्रजा दुखी थी। **'नृप पाप परायन धर्म नहीं। कर दंड बिडंब प्रजा नितहीं ॥'**[१२९९]—से तत्कालीन राजाओं की अन्यायपरता ध्वनित होती है। 'रामराज्य' की कल्पना आदर्श राज्य की कल्पना है जहाँ राजा प्रजा का हितकारी होकर यह कहता है—

'जो कछु अनुचित भाषौं भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई ॥'

युद्ध आदि के वर्णनों से कोई विशेष निष्कर्ष नहीं निकलता। पारम्परिक बाते ही युद्ध के प्रसगों में आयी हैं।

समाज-व्यवस्था के विषय में पर्याप्त प्रकाश पडता है। गोस्वामीजी ने वर्णाश्रम-व्यवस्था को आदर्श रूप में रखा है जो प्राचीनकाल से वेदशास्त्रानुमोदित रही है।[१३००] वे ब्राह्मणों की बड़ी प्रशंसा करते हैं।[१३०१] किन्तु यह सब आदर्श ही है। गोस्वामीजी के समय समाज का स्तर बहुत नीचे गिरा प्रतीत होता है। वर्णाश्रम-व्यवस्था विलुप्त-सी लगती है—**'बरन धर्म नहिं आश्रम चारी। श्रुति बिरोध रत सब नर नारी ॥'** मानस के उत्तरकाण्ड में ब्राह्मण से लेकर शूद्र तक की अव्यवस्था का संकेत है—

सूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ग्याना। मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना ॥
सूद्र करहिं जप तप व्रत दाना। बैठि बरासन कहहिं पुराना ॥
बिप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ बृषली स्वामी ॥

गोस्वामीजी ने ऐसे विशृंखल समाज को सुशृंखल बनाने के लिए समन्वय की भावना वाली आदर्श सस्कृति प्रस्तुत की।

'रामचरितमानस' में वर्णित जातियों के तीन वर्ग किये जा सकते हैं—दिव्य जातियाँ (गन्धर्व, अप्सरा आदि), मनुष्य जातियाँ (ब्राह्मण, भाट, बंदी, मागध, सूत आदि) तथा वन्य जातियाँ (निषाद, कोल, किरात आदि)। इन जातियों के

१२९९. 'मानस' ७।१००।६।

१३००. वर्णाश्रम-व्यवस्था की प्राचीनता के लिए देखिये—ऋग्वेद १०।९०।१२-१३, यजुर्वेद, २१।११-१२, अथर्ववेद १६।६।६-७, गीता ४।१३, भागवत २।५।३७। इनके अतिरिक्त 'मनुस्मृति' आदि ग्रन्थो में तो वर्णाश्रम धर्म की विशद व्यवस्था है ही।

१३०१. देखिये 'मानस' ३।३३।१,२१, ७।४४।७-८, १०८।१३-१४, ४।१६।८, १।१६४।३६ आदि।

उल्लेख और वर्णन से उनकी संस्कृति का कुछ आभास मिलता है।[१३०२] मागध, बन्दी, और भाटों के विरुदावली-गान का उल्लेख है—

"बन्दी मागध सूतगन बिरुद बदहिं मति धीर।
करहिं निछावर लोग सब हय गय धन मनि चीर।"[१३०३]
"कतहुँ बिरिद बंदी उच्चरहीं।"[१३०४]
"मागध सूत बिदुष बंदी जन।"[१३०५]
"बन्दि मागधन्हि गुनगन गाए।"[१३०६]

वन्य जातियों में उल्लेख तो बहुत सी जातियों का है जैसे कोल, किरात, भील, आदि परन्तु निषादों का चित्रण विशद रूप मे मिलता है। निषादराज गुह ने अपनी जाति नीच बताई है—"मैं जनु नीच सहित परिवारा।" निषाद मछली पकड़ते तथा शिकार खेलते थे। मछली पकड़ने का संकेत इस बात से मिलता है कि भरत को भेंट देने समय निषाद मछलियाँ भी भेट करता है—"मीन-पीठ पाठीन पुराने। भरि-भरि भार कहारन्ह आने॥" प्रतीत होता है कि निषादों का जीवन कठोर था। उसमें कोमल भावनाओं के लिए कोई स्थान नही था। कठोर जीवन के साथ ही वह जाति इतनी नाच समझी जाती थी कि लोग उसकी छाया से भी घृणा करते थे—'लोक वेद सब भाँतिहि नीचा। जासु छाँह छुइ लेइय सींचा॥" (मानस २।१९३।२)

गोस्वामी जी ने आदर्श परिवार की कल्पना की है। उसमे उन्होने दाम्पत्य-प्रेम, भ्रातृ-स्नेह, पिता-पुत्र का आदर्श सम्बन्ध, सास-बहू और ससुर का प्रेम, गुरु-भक्ति आदि सभी कुछ दिखाया है। इस आदर्श की व्यंजना यही है कि इस समय ऐसा प्रायः नहीं था। यदि यह सब होता तो वे ऐसा आदर्श उपस्थित क्यों करते ?

'मानस' के उत्तरकाण्ड में तत्कालीन आर्थिक दशा के संकेत भी मिलते हैं। 'कलि बारहिं बार अकाल परे' से तत्कालीन दयनीय स्थिति की ध्वनि निकलती है। इसे सुधारने के लिए भी तुलसी आदर्श रामराज्य की कल्पना करते हे जहाँ—

"मणि दीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरी विद्रुम रची।
मनि खंभ भीति बिरंचि बिरची कनक मनि मरकत खची॥"[१३०७] आदि

१३०२ चन्द्रभान : रामचरितमानस में लोक वार्ता।
१३०३. 'मानस' १।२६२
१३०४ वही, १।२९६-२९७ के बीच।
१३०५. वही, १।३०८-३०९
१३०६. वही, १।३५७-३५८ के बीच।
१३०७. मानस, उत्तर०, २६वें दोहे के बाद का छन्द।

धार्मिक जीवन के संकेत भी मानस के उत्तरकाण्ड में मिलते हैं। धार्मिक आडम्बर और ढोंग समाज में अधिक फैल चुके प्रतीत होते हैं। धुने-जुलाहे धर्माचार्य बने लगे थे। 'मूंड मुँडाकर संन्यासी' होने वालों की भी कमी नहीं थी। तुलसी ने ऐसे धर्म को सुधारने के लिए लोकधर्म की स्थापना का।

संस्कृति का सर्वाधिक यथार्थ चित्रण 'मानस' में हमें विविध संस्कारों के प्रसंग में मिलता है। रामजन्म-संस्कार के अवसर पर लोक-संस्कृति का यथार्थ चित्रण हुआ है—

"नांदीमुख सराध करि, जात करम सब कीन्ह।
हाटक धेनु बसन मनि नृप बिप्रन्ह कहँ दीन्ह॥"[१३०८]

यहाँ 'जातकर्म' करने से उन समस्त लौकिक कृत्यों की ओर निर्देश है जो 'जन्ति' के समय स्त्री-समाज की ओर से होते है। आगे चलकर कवि ने नगरवासियों के समारोह का वर्णन किया है। 'मगलकलस' मंगलसूचक माना जाता था—

'बृंद-बृंद मिलि चली लोगाई। सहज सिंगार किए उठि धाईं॥
कनक-कलस मंगल भरि थारा। गावत पैठहिं भूप दुआरा॥
करि आरति निवछावर करहीं।'[१३०९]

नाम सस्कार भी जन्म-संस्कार की एक प्रमुख घटना है। वसिष्ठजी ने श्रीराम का नाम रखा है। आगे चूडाकरण आदि का उल्लेख है। दूसरा प्रधान संस्कार विवाह-संस्कार है। 'मानस' मे दो विवाह प्रमुख हैं—पहला शिव-पार्वती-विवाह और दूसरा राम-सीता-विवाह। शंकर की बारात के नगर के निकट पहुँचने पर उसकी अगवानी की जाती है। वह प्रथा आज भी है। साथ ही 'परिछन' लेने की प्रथा भी है। पार्वती की माता 'परिछन' करने चलती है :—

'मैनाँ सुभ आरती सँवारी। संग सुमंगल गावहिं नारी॥
कंचन थार सोह बर पानी। परिछन चली हरहि हरषानी॥'[१३१०]

मंगलगान के अतिरिक्त 'जेवनार' के समय 'गारी' का भी उल्लेख मिलता है। इन गारियों में नाम ले-लेकर परिहास किया जाता था—

'नारि बृन्द सुर जेवत जानी। लगी देन गारी मृदु बानी॥'[१३११]

राम-सीता-विवाह में भी 'गारी' देने का उल्लेख है—

१३०८. मानस, १।१९३।
१३०९. मानस, १।१९३।२-३।
१३१०. वही, १।९५।१-२।
१३११. वही, १।९८।४।

मानस की लोक-संस्कृति में काने, कूबरे और खोरे कुटिल, कुचाली और अशुभ माने गये हैं। कैकेयी मंथरा से कहती है—

'काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि।
तिय बिसेषि पुनि चेरि कहि भरत मातु मुसकान।।'[१३२३]

छींक-सम्बन्धी-विश्वास का भी मानस में उल्लेख हुआ है। निषादराज जिस समय राम-मिलन के लिए चित्रकूट जाते हुए भरत से मोर्चा लेने के लिए सन्नद्ध होता है, उस समय छींक होती है—

'एतना कहत छींक भई बाएँ। कहेउ सगुनिअन्हि खेत सुहाए।।
बूढ़ एकु कह सगुन बिचारी। भरतहिं मिलिह न होइहि हारी।।'[१३२४]

'शिष्टाचार और कलात्मक सजधज का जो वर्णन तुलसी ने किया है उसमें भी उनके यथार्थवादी और आदर्शात्मक दृष्टिकोण का समन्वय है। शिष्टाचार में व्यक्ति के परिवार के विभिन्न जातियों से व्यवहार और अभिवादन के प्रसंग हैं या व्यक्ति के समाज के विभिन्न व्यक्तियों के साथ के व्यवहार हैं। इसमें सामान्यतया गुरु, मित्र राजा, पुरोहित, सेवक, शत्रु आदि के वार्तालापों के प्रसंग आते हैं। सुमन्त्र सचिव और राजा की बातचीत में तुलसी ने शिष्टाचार सम्बन्धी अभिवादन सूचक शब्द 'जय जीव' का प्रयोग किया है जैसे—

'देखि सचिव जयजीव कहि कीन्हेउ दण्ड प्रणाम।'[१३२५]

अथवा

'कहि जय जीव सीस तिन्ह नाए।'[१३२६]

यह 'जयजीव' एक विशिष्ट शब्द है। 'जय' तो अब भी प्रचलित है, पर 'जय-जीव' नहीं।'[१३२७]

माताओं के द्वारा बच्चों के प्रयाण या विलम्ब के बाद आगमन पर उनके शिर सूँघने का उल्लेख भी तुलसी ने किया है।

'कलात्मक सज-धज के अनेक अवसर तुलसी द्वारा वर्णित रामचरित के भीतर आये हैं और सर्वत्र तुलसी की कलादृष्टि की बारीकी को स्पष्ट करते हैं। उन्होंने संकेत रूप से वस्तु, चित्र, नृत्य, संगीत, काव्य आदि कलाओं का उल्लेख किया है। परन्तु विशेष रूप से मोहक विवरण विवाह आदि संस्कारों में की गयी कलात्मक सजधज के हैं। तुलसी की कलासम्बन्धी सूझ का पूर्ण स्पष्टीकरण 'राम-

---

१३२३ वही, २।१४ १३२४. वही, २।१९१-२
१३२५ वही, २।१४८ १३२६. वही, २।४।१
१३२७. डा० भगीरथ मिश्र : तुलसी रसायन, पृ० १६३-६४।

चरितमानस' में वर्णित जनकपुरी-सजावट के प्रसंग में हो जाता है।'[१३२८]
यथा—

> 'बिधिहि बंदि तिन कीन्ह अरंभा। बिरचे कनक कदलि कर खंभा॥
> हरित मनिन्ह के पत्र फल, पदुमराग के फूल।
> रचना देखि बिचित्र अति, मन बिरंचि के भूल॥
> बेनु हरित मनिमय सब कीन्हें। सरल सपरब परहि नहि चीन्हें॥
> कनक कलित अहिबेलि बनाई। लखि नहिं परइ सपरन सुहाई॥
> तेहि के रचि पचि बंध बनाए। बिच बिच मुकता दाम सुहाए॥
> मानिक मरकत कुलिस पिरोजा ... ...आदि॥'[१३२९]

शिव-पार्वती, वनदेवी-वनदेव, कुलदेवता आदि लोक देवताओं का भी तुलसी ने मानस में उल्लेख किया है। गिरिजा की सीता ने पूजा की है।[१३३०] गणेश की भी पूजा हुई है—'आचारु करि गुर गौरि गनपति मुदित बिप्र पुजावहीं।' कौशल्या ने बनदेवों की मनौती की है—'पितु बनदेव मातु बनदेवी।'[१३३१] सीता भी वनदेवों में विश्वास रखती है—'बनदेवी बनदेव उदारा।'[१३३२] पितरों की पूजा का भी संकेत है—'देव पितर पूजे बिधि नीकी।'[१३३३]

'मानस में 'भौगोलिक नाम ५० से अधिक नहीं हैं। कुछ नाम बार-बार आते हैं। अवध या उसके पर्यायवाची अवधपुर, अवधपुरी, अयोध्या, कोशल, कौशला, कौशलपुर, कौशलपुरी, रामपुर, रामपुरी या दशरथपुर—ये नाम सौ से अधिक बार आये हैं। अकेले अयोध्याकाण्ड में अवध का नाम ५४ बार आया है। सुरसरी और उसके पर्यायवाची सुरसरिता देवसरि, देव-धुनी, बिबुध-नदी और गंग या गंगा का नाम ५० बार से अधिक मिलता है। ३५ बार लंका, २६ बार हिमगिरि, २३ बार प्रयाग, १८ बार चित्रकूट, १६ बार सरयू, ११ बार यमुना, १० बार कैलाश, ८ बार मिथिला, ७ बार काशी और त्रिवेणी, ६ बार दण्डक और पंचवटी, ५ बार शृंगवेरपुर या सिंगरौर, ४ बार मन्दाकिनी, विन्ध्याचल और गोदावरी, ३ बार तमसा, गोमती, प्रवर्षणगिरि, त्रिकूट गिरि, अशोकवन और २ बार से कम कर्मनाशा, मेकलसुता, सई, नीलगिरि, सेतुबन्ध और सुबेल के नाम नहीं आये। प्रसंगानुसार नन्दि-ग्राम, बदरी-वन, नैमिष, केकयदेश, मग, मरु-देश, मालव, उज्जैन, सोननद, मानस, पम्पा-सरोवर, ऋष्यमूक, रामेश्वर आदि

१३२८. डा० भगीरथ मिश्र : तुलसी रसायन, पृष्ठ १६४।
१३२९. मानस, २।२८७।१-२
१३३०. वही, १।२२७।१-३
१३३१. वही, २।५५-५६
१३३२. वही, २।६५।१
१३३३. वही, १।३५०।१

का नाम भी कम से कम एक बार तो आ ही गया है। कहीं-कहीं पौराणिक भूगोल के नाम भी आ गये हैं, सुमेरु, सरस्वती, सप्तद्वीप, भोगवती, अमरावती, मंदर, मैनाक, आदि। कई स्थलों में राजाओं आदि के नाम भौगोलिक नामों पर से बतलाए गये हैं। जैसे—अवधेश, अवधपति, कौशलेश, कौशलाधीश। 'लंकाकाण्ड' में तो कौशलाधीश की भरमार है। इसी प्रकार जनक के नाम मिथिलेश, तिरहुतिराउ, विदेह और उनकी लड़की का नाम मैथिली, वैदेही आदि से कई स्थलों में सूचित किया गया है। रावण के लिए लंकापति, लंकेश आदि का प्रयोग किया गया है।'[१३३४]

'पद्मपुराण' और 'मानस' का सांस्कृतिक दृष्टि से अध्ययन करने के उपरान्त यह निष्कर्ष निकलता है कि जहाँ 'पद्मपुराण' भारत के सुख-शान्ति-वैभव-आदि से समन्वित संस्कृति का यथार्थ परिचय देता है वहाँ 'मानस' आदर्श संस्कृति का रूप प्रस्तुत करता है। पहले में यदि 'क्या था' पर बल दिया गया है तो दूसरे में 'क्या होना चाहिए' पर। इसका यह आशय नहीं कि मानस में यथार्थ संस्कृति का रूप है ही नही। उसमें लोक संस्कृति का चित्रण पर्याप्त मात्रा में है परन्तु राजनीतिक रहन-सहन, स्थापत्यकला, व्यापार-व्यवस्था आदि का यथार्थ चित्रण 'पद्मपुराण' के सदृश नही है। जो कुछ भी इसका संकेत 'मानस में मिलता है वह सुने गये के आधार पर ही है यथा—युद्धवर्णन आदि। इसलिए यह करने मे कोई कोई संकोच नहीं करना चाहिए कि तत्कालीन भारतीय संस्कृति का अध्ययन करने के लिए जितना महत्त्व 'पद्मपुराण' का है उतना 'मानस' का नहीं।

'पद्मपुराण' का 'रामचरितमानस' पर प्रभाव

'रामचरितमानस' पर 'पद्मपुराण' का प्रभाव अभी तक शब्दप्रमाण के आधार पर तो प्रतिपादित किया ही नही गया है, प्रत्यक्ष और अनुमान भी अभी तक मौन से ही हैं। हम प्रत्यक्ष और अनुमान के सहारे इस समस्या पर विचार करेंगे।

मानस के प्रारम्भ में आया 'नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि'—श्लोक ही एक ऐसा स्रोत है जिसके आधार पर तुलसी के रामचरितमानस के उपजीव्य ग्रन्थों का अनुमान किया जा सकता है। 'नानापुराण' और 'क्वचिदन्यतोऽपि'—शब्द (ही) कथंचित् 'पद्मपुराण' के मानस पर प्रभाव की वकालत कर सकते हैं क्योंकि 'पद्मपुराण' 'पुराण' संज्ञा

१३३४. 'तुलसी और उनका काव्य' पृ० १६९-१७० पर उद्धृत पुरातत्वज्ञ स्व० हीरालाल जी का एक लेख जो 'माधुरी' सं० १९६० श्रावण में छपा था।

वाला भी है और यदि 'पंचलक्षण पुराण' भेद में पद्मपुराण का अन्तर्भाव न हो सकता हो तो फिर उपर्युक्त सूची में 'अन्यतोऽपि' के अन्तर्गत यह आ सकता है।

केवल इन्हीं दो शब्दों के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि सम्भवतः तुलसी ने 'पद्मपुराण' को देखा हो।

दूसरी सरणि है प्रत्यक्ष दर्शन की। रविषेण और तुलसी के ग्रंथों में अनेक समानधर्मा पद्य आये हैं यथा—

'आचाराणां विघातेन कुदृष्टीनां च सम्पदा।
धर्मं ग्लानिपरिप्राप्तमुच्छ्रयन्ते जिनोत्तमाः॥'[1335] (रविषेण)

'जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी।
o o o
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥'[1336]
(तुलसी)

अथवा—

'एवमुक्ता सती सीता पराचीनव्यवस्थिता।
अन्तरे तृणमाधाय जगादाकम्पिताक्षरम्॥[1337] (रविषेण)

'तृन धरि ओट कहति बैदेही। सुमिरि अवधपति परम सनेही॥'[1338] (तुलसी)

इन समान उक्तियों से पद्मपुराण के मानस पर प्रभाव की बात कही जा सकती है। यह कहा जा सकता है कि 'पद्मपुराण' के आधार पर 'मानस' में ये उक्तियाँ लिखी गयी हैं। किन्तु वस्तुतः ऐसा कहना वस्तुस्थिति से मुँह मोड़ना है।

पहली बात तो यह है कि ये उक्तियाँ मानसकार ने रविषेण से नहीं ली हैं अपितु दोनों ने इन्हें किसी तीसरे ग्रथ से ही सीधे लिया है। उदाहरणार्थ उपर्युक्त 'आचाराणां विघातेन ... ...' एवं 'जब जब होइ धरम कै हानी ... ...' आदि गीता के इन श्लोकों के रूपान्तर हैं:—

'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥'[1339]

इसी प्रकार 'अन्तरे तृणमाधाय' और 'तृन धरि ओट' भी 'वाल्मीकिरामायण' अथवा 'अध्यात्मरामायण' का सीधा अनुकरण है:—

१३३५. पद्म०, ५।२०७
१३३६. मानस, १।१२०।३-४
१३३७. पद्म०, ४६।११
१३३८. मानस, ५।८।३
१३३९. गीता, ४।७-८

'उवाचाधोमुखी भूत्वा निधाय तृणमन्तरे' (अध्यात्म०)

'तृणमन्तरतः कृत्वा प्रत्युवाच शुचिस्मिता।
निवर्तय मनो मत्तः स्वजने प्रियतां मनः ॥'[१३४०] (वाल्मीकि)

ऐसे स्थलों के कारण पद्मपुराण का मानस पर प्रभाव सिद्ध करना साहस ही होगा।

दूसरी बात यह है कि जब हम किसी ग्रन्थ का किसी ग्रन्थ पर प्रभाव सिद्ध करते हैं तो हमारा आशय यह होता है कि उपजीव्य ग्रंथ का मनोयोगपूर्वक अनुकरण किया गया है। पद्मपुराण और मानस के विषय में ऐसा निर्णय कदापि नहीं दिया जा सकता। पद्मपुराण की कथावस्तु और पात्रों का पार्थक्य पीछे दिखाया जा चुका है। जब दोनों ग्रन्थों का 'वस्तु' तत्त्व ही पृथक् है तो फिर एक का दूसरे पर प्रभाव कैसा ? जैसा 'अध्यात्मरामायण' आदि ग्रन्थो का प्रभाव मानस पर है वैसा पद्मपुराण का तो त्रिकाल में भी सिद्ध नही किया जा सकता।

इस प्रकार अनुमान और प्रत्यक्ष भी पद्मपुराण के मानस पर सीधे और यथावस्थित प्रभाव को सिद्ध नहीं कर पाते। हाँ, एक बात अवश्य कही जा सकती है कि संभवतः गोस्वामी जी ने पद्मपुराण को देखा होगा क्योंकि जैन कवि बनारसी उनके परिचितों में थे। यह भी कथंचित् कहा जा सकता है कि उन्होने इसकी कुछ सूक्तियों को पढ़कर या सुनकर अपने मानस में उनके भाव की सूक्तियाँ रखी होंगी किन्तु यह पद्मपुराण का मानस पर प्रभाव नही, अपितु गोस्वामी जी की मधुकरी वृत्ति का निदर्शन है। प्रभाव तो तब माना जाता जब वे मानस में पद्मपुराण के कथानक के किसी अंश को निविष्ट करते। उन्होंने लक्ष्मण-शक्ति पर अयोध्या की रणसज्जा तक का संकेत नही किया। यदि वे पद्मपुराण को आद्योपान्त ध्यान से पढ़ते तो कम-से-कम कुछ प्रसंगों को तो अवश्य वे मानस में स्थान देते। अयोध्या की रणसज्जा का प्रसंग तो उनके कथानक को और भी चारु बना देता और इसमें कोई सैद्धांतिक विरोध भी नही आता था। अतः पद्मपुराण के मानस पर यथावस्थित प्रभाव की चर्चा खपुष्पत्रोटन ही है। जो उक्तियाँ इन दोनों ग्रन्थों मे समान भावों वाली मिलती हैं, वे प्रायः या तो 'घुणाक्षरन्यायसिद्ध' मानी जानी चाहिएँ अथवा उनका स्रोत कोई तीसरा ही ग्रन्थ मानना चाहिए यथा—वाल्मीकिरामायण, गीता, पंचतन्त्र आदि। यहाँ हम कुछ ऐसे तुलनात्मक उद्धरण प्रस्तुत कर रहे हैं—

१. रविषेण—'सत्कथाश्रवणौ यौ च श्रवणौ तौ मतौ मम।
अन्यौ विदूषकस्येव श्रवणाकारधारिणौ ॥

१३४०. वाल्मीकिरामायण. ५।२१।३

सच्चेष्टावर्णना वर्णा घूर्णन्ते यत्र मूर्धनि ।
अयं मूर्द्धाऽप्यमूर्द्धा तु नालिकेरकरंकवत् ॥
सत्कीर्तनसुधास्वादसक्तं च रसनं स्मृतम् ।
अन्यच्च दुर्वचोधार कृपाणदुहितुः फलम् ॥
श्रेष्ठावोष्ठौ च तावेव यौ सुकीर्तनवर्तिनौ ।
न शम्बूकास्यसंयुक्तजलौकापृष्ठसन्निभौ ॥
दन्तास्त एव ये शान्तकथासंगमरंजिताः ।
दोषाः सश्लेष्मनिर्वाणद्वारबन्धाय केवलम् ॥
मुख श्रेयःपरिप्राप्तेर्मुखं मुख्यकथारतम् ।
अन्यत्तु मलसम्पूर्णं दन्तकीटाकुल बिलम् ॥
वदिता योऽथवा श्रोता श्रेयसां वचसां नरः ।
पुमान् स एव शेषस्तु शिल्पिकल्पितकायवत् ॥'[१३४१]

तुलसी—'जिन हरि कथा सुनहि नहिं काना ।
स्रवन रध्र अहि भवन समाना ॥
० ० ०
जो नहिं करइँ राम गुनगाना ।
जीह सो दादुर जीह समाना ॥'[१३४२]

२. रविषेण—'ससारे पर्यटन्नेष बहुयोनिसमाकुले ।
मनुष्यभावमायाति चिरेणात्यन्तदुःखतः ॥'[१३४३]

तुलसी—'बड़े भाग मानस तन पावा ।
सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा ॥
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा ।
पाइ न जेहि परलोक सँवारा ॥'[१३४४]

३. रविषेण—'प्रिय त्व तिष्ठ चात्रैव गच्छाम्यहृ पुरान्तरम् ।
ततो जगाद साध्वी सा यत्र त्व तत्र चाप्यहम् ॥'[१३४५]

१३४१ पद्म०, १।२८-३४ १३४२. मानस, १।११२।२,६
ऐसे भाव भागवत में भी व्यक्त हुए हैं, यथा—
'बिले बतोरुक्रमविक्रमान् ये न शृण्वत: कर्णपुटे नरस्य ।
जिह्वा सती दार्दुरिकेव सूत न चोपगायत्युरुगायगाथा: ॥'(श्रीमद्भागवत, २।३।२०)
'श्वविड्वराहोष्ट्रखरैः सस्तुतः पुरुष. पशुः ।
न यत्कर्णपथोपेतो जातु नाम गदाग्रजः ॥' (वही, २।३।१९)
१३४३. पद्म०, २।१६८ १३४४. मानस, ७।४२।४
१३४५. पद्म०, ३१।१८५

तुलसी—'आपन मोर नीक जौं चहहू। बचन हमार मान गृह रहहू ।।

० ० ०

प्राननाथ करुनायतन सुन्दर सुखद सुजान।
तुम बिनु रघुकुल कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान ।।[१३४६]
प्राननाथ तुम बिनु जग माहीं।
मो कहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं ।।[१३४७]

४. रविषेण—'वितत्य सकलं लोकं शशांककरनिर्मला।
कीर्तिर्व्यवस्थिता माभूत् सैवं सति मलीमसा ।।'[१३४८]

तुलसी—'रिसि पुलस्ति जसु बिमल मयंका।
तेहि ससि महुँ जनि होहु कलंका ।।'[१३४९]

५. रविषेण—रन्ध्रं प्राप्य वने भीमे हा केनास्मि दुरात्मना।
हरता जानकीं कष्टं हतो दुष्करकारिणा।।
दर्शयंस्तामथोत्सृष्टां हरन् शोकमशेषतः।
को नाम बान्धवत्वं मे वनेऽस्मिन् परमेष्यति ।।
भो वृक्षाश्चम्पकच्छाया सरोजदललोचना।
सुकुमाराह्लिका भीरुस्वभावा वरगामिनी ।।
चित्तोत्सवकरा पद्मरजोगन्धिमुखानिला।
अपूर्वा यौषिती सृष्टिर्दृष्टा स्यात् काचिदंगना ।।
कथं निरुत्तरा यूयमित्युक्त्वा तद्गुणैर्हृतः।
पुनर्मूर्छापरीतात्मा धरणीतलमागमत् ।।

० ० ०

भो भो महीधराधीश धातुर्भिर्विविधैश्चित।
सूनुर्दशरथस्य त्वां पद्माख्यः परिपृच्छते ।।
विपुलस्तननम्रांगा बिम्बौष्ठी हंसगामिनी।
सन्निनम्वा भवेद् दृष्टा सीता मे मनसः प्रिया ।।
दृष्टादृष्टेति किं वक्षि ब्रूहि ब्रूहि क्व सा क्व सा।
केवलं निगदस्येव प्रतिशब्दोऽयमीदृशः ।।

० ० ०

१३४६. वही, २।६४
१३४७. मानस, २।६४।३
१३४८. पद्म०, ४४।७०
१३४९. वही, ५।२२।४

भूयो भूयो बहु ध्यायन् क्षणनिश्चलविग्रहः ।
निराशतां परिप्राप्तः सूत्कारमुखराननः ।।[१३५०]

तुलसी—'आश्रम देखि जानकी हीना । भए बिकल जस प्राकृत दीना ।।
हा गुनखानि जनकी सीता । रूप सील ब्रत नेम पुनीता ।।
लछिमन समुझाए बहु भाँती । पूछत चले लता तरु पाँती ।।
हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी । तुम्ह देखी सीता मृगनैनी ।।
० ० ०
ऐहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी ।
मनहुँ महा बिरही अति कामी ।।'[१३५१]

६. रविषेण—'भस्मभावगते गेहे कूपखानश्रमो वृथा ।'[१३५२]
तुलसी—'का बरषा जब कृषी सुखाने ।

७ रविषेण—'भवत्कीर्तिलताजालैर्जटिलं वलयं दिशाम् ।
मा धाक्षीदयशोदावः प्रसीद स्थितिकोविद ।।
परदाराभिलाषोऽयमयुक्तोऽतिभयकरः ।
लज्जनीयो जुगुप्स्यश्च लोकद्वयनिषूदनः ।।'[१३५३]

तुलसी—'जो आपन चाहै कल्याना ।
सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना ।।
सो परनारि लिलार गोसाईं ।
तजउ चउथि के चंद कि नाईं ।।'[१३५४]

८ रविषेण—'ता दुःखहेतवः सर्वा वैदेही हन्तुमुद्यताः । [१३५५]
तुलसी—भवन गयउ दसकंधर इहाँ पिसाचिनि वृन्द ।
सीतहि त्रास दिखावहि धरहि रूप बहु मंद ।।'[१३५६]

९ रविषेण—'इत्युक्ते. रुदती सीता समाश्वास्य प्रयत्नतः ।
यथाज्ञापयसीत्युक्त्वा निरैत्सीताप्रदेशतः ।।'[१३५७]

तुलसी—'जनकसुतहि समुझाइ करि बहु बिधि धीरजु दीन्ह ।
चरन कमल सिरु नाइ कपि गवनु राम पहि कीन्ह ।।'[१३५८]

१०. रविषेण—'चूडामणिमिम चोद्धं दृढप्रत्ययकारणम् ।

१३५०. पद्म०, ४४।११४-१४९
१३५१. मानस, ३।२९।१-८
१३५२. पद्म०, ४६।६९
१३५३. पद्म०, ४६।१२२-१२३
१३५४. मानस, ५।३७।३
१३५५. वही, ५३।१२३
१३५६. वही, ५।१०
१३५७ वही, ५३।१७०
१३५८. वही, ५।२७

दर्शयिष्यसि नाथाय तस्यात्यन्तमयं प्रिय: ।।'[१३५९]

तुलसी–'चूड़ामनि उतारि तब दयऊ ।
हरष समेत पवनसुत लयऊ ।।'[१३६०]

११. रविषेण–'उत्पाट्य वायुपुत्रोऽपि निःशस्त्रो धीरपुंगवः ।
सघातं तुंगवृक्षाणां शिलानां वारमक्षिपत् ।।[१३६१]
० ० ०
बभंज त्वरितं कांश्चिदपरानुदमूलयत् ।
मुष्टिपादप्रहारेण पिपेषान्यान् महाबलः ।।'[१३६२]

तुलसी–'चलेउ नाइ सिरु पैठेउ बागा । फल खाएसि तरु तोरैं लागा ।।
रहे तहाँ बहु भट रखवारे । कछु मारेसि कछु जाइ पुकारे ।।
० ० ०
कछु मारेसि कछु मर्देसि कछु मिलएसि धरि धूर ।
कछु पुनि जाइ पुकारे प्रभु मर्कट बल भूरि ।।[१३६३]

१२. रविषेण–सर्वस्वेनापि यः पूज्यो यद्यप्यसकृदागतः ।
सुचिरादागतो द्रोही त्वं निग्राह्यस्तु वर्तसे ।।
दुर्मैनिगदितैः क्रोधात् प्रहस्योवाच मारुतिः ।
को जानाति विना पुण्यैर्निग्राह्यः को विधेरिति ।।
स्वयं दुर्मतिना सार्द्धमनेनासन्नमृत्युना ।
इतो दिनैः कतिपयैर्द्रक्ष्यामः क्व प्रयास्यथ ।।[१३६४]

तुलसी–'मृत्यु निकट आई खल तोही । लागेसि अधम सिखावन मोही ।।
उलटा होइहि कह हनुमाना । मतिभ्रम तोर प्रगट मैं जाना ।।[१३६५]

१३. रविषेण–'इत्युक्तः क्रोधसंरक्तः खड्गमालोक्य रावणः ।
जगाद दुर्विनीतोऽयं सुदुर्वचननिर्भरः ।।
त्यक्तमृत्युभयो बिभ्रत्प्रगल्भत्वं ममाग्रतः ।
द्राक् खलीक्रियतां मध्ये नगरस्य दुरीहितः ।।'[१३६६]

तुलसी–'सुनि कपि बचन बहुत खिसिआना । बेगि न हरहु मूढ़ कर प्राना ।।
सुनत बिहँसि बोला दसकंधर । अंग भंग करि पठइअ बंदर ।।[१३६७]

१३५९. वही, ५३।१६७
१३६०. वही, ५।२६।१
१३६१ पद्म०, ५३।१९४
१३६२. वही, ५३।१९८
१३६३ मानस, ५।१७।१४,१८
१३६४. पद्म०, ५३।२४२-२४३
१३६५. मानस, ५।२३।२
१३६६ पद्म०, ५३।२४६-२४७
१३६७. मानस, ५।२३।३, ५

१४. रविषेण—'प्रमोदं जानकी प्राप्ता विषादं च मुहुर्मुहुः।'[१३६८]
'ययौ हर्षविषादं च जनः सक्ताश्रुलोचनः॥'[१३६९]

तुलसी—'हरष बिषाद हृदय अकुलानी।'[१३७०]

१५. रविषेण—'प्रिया जीवति ते भद्रेत्येवमागत्य मारुतिः।
वेदयिष्यति मे साधुरिति चिन्तामुपागतम्॥
क्षीणमत्यभिरामाभं क्षीयमाणं निरंकुशम्।
वियोगवह्निना नागं दावेनेवाकुलीकृतम्॥
० ० ०
किन्तु त्वद्विरहोदारदावमध्यविवर्त्तिनी।
गुणौघनिम्नगा बाला नेत्राम्बुकृतदुर्दिना॥
वेणीबन्धच्युतिच्छायमूर्द्धजात्यन्तदुःखिता।
मुहुर्निःश्वसती दीनं चिन्तासागरवर्तिनी॥'[१३७१]

तुलसी—'नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट॥'
'सीता कै अति बिपति बिसाला।
बिनहिं कहें भलि दीनदयाला॥'[१३७२]
'कृस तनु सीस जटा एक बेनी।'[१३७३]

१६. रविषेण—'विस्तीर्णा प्रवरा सम्पन्महेन्द्रस्येव ते प्रभो।
स्थिता च रोदसी व्याप्य कीर्तिः कुन्ददलामला॥
स्त्रीहेतोः क्षणमात्रेण सेयं मागाः परिक्षयम्।
स्वामिन् सन्ध्याभ्ररेखेव प्रसीद परमेश्वर॥
क्षिप्रं समर्प्यतां सीता तव किं कार्यमेतया।
दृश्यते न च दोषोऽत्र प्रस्पष्टः केवलो गुणः॥'[१३७४]

तुलसी—'तात चरन गहि मागउँ राखहु मोर दुलार।
सीता देहु राम कहुँ अहित न होइ तुम्हार॥'[१३७५]

१७. रविषेण—'नैषा सीता समानीता पित्रा तव कुबुद्धिना।
रक्षोभोगबिलं लंकामेषानीता विषौषधिः॥'[१३७६]

तुलसी—तव कुल कुमुद बिपिन दुखदाई। सीता सीत निसा सम आई॥[१३७७]

१३६८. पद्म०, ५३।२६७ १३६९. वही, ११३।२१
१३७०. मानस, ५।१२।१ १३७१. पद्म०, ५४।५-२०
१३७२. मानस, ५।३०।५ १३७३. वही, ५।७।४
१३७४. पद्म०, ५।९-११ १३७५. मानस, ५।४०
१३७६. पद्म०, ५५।२५ १३७७. मानस, ५।३५।५

१८. रविषेण—'एवं प्रवदमानं तं क्रोधप्रेरितमानसः।
उत्थाय रावणः खड्गमुद्गतो हन्तुमुद्यतः॥'[१३७८]

तुलसी—'अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा।'[१३७९]

१९. रविषेण—'देवागमननिर्मुक्ते कालेऽतिशयवर्जिते।
प्रनष्टकेवलोत्पादे हलचक्रधरोज्झिते॥
भवद्विधमहाराजगुणसंघातरिक्तके।
भविष्यन्ति प्रजा दुष्टा वंचनोद्यतमानसाः॥
निःशीला निर्व्रताः प्रायः क्लेशव्याधिसमन्विताः।
मिथ्यादृशो महाघोरा भविष्यन्त्यसुधारिणः॥
अतिवृष्टिरवृष्टिश्च विषमा वृष्टिरीतयः।
विविधाश्च भविष्यन्ति दुस्सहाः प्राणधारिणाम्॥
मोहकादम्बरीमत्ता रागद्वेषात्ममूर्तयः।
नर्तितभ्रूकराः पापा मुहुर्गर्वस्मिता नराः॥
कुवाक्यमुखराः क्रूरा धनलाभपरायणाः।
विचरिष्यन्ति खद्योता रात्राविव महीतले॥
गोदण्डपथतुल्येषु मूढास्ते पतिताः स्वयम्।
कुधर्मेषु जनानन्यान्पातयिष्यन्ति दुर्जनाः॥
अपकारे समासक्ताः परस्य स्वस्य चानिशम्।
ज्ञास्यन्ति सिद्धमात्मानं नरा दुर्गतिगामिनः॥
कुशास्त्रमुक्तहुंकारैः कर्मम्लेच्छैर्मदोद्धतैः।
अनर्थजनितोत्साहैर्मोहसतमसावृतैः॥
छेत्स्यन्ते सततोद्युक्तैर्मन्दकालानुभावतः।
हिंसाशास्त्रकुठारेण भव्येतरजनाधिपाः॥'[१३८०]

'धर्मनन्दनकालेषु व्ययं यातेष्वनुक्रमात्।
भविष्यति प्रचण्डोऽत्र निर्धर्मसमयो महान्॥
दुःपाषण्डैरिदं जैन शासनं परमोन्नतम्।
तिरोधायिष्यते क्षुद्रं रंजोभिर्भानुबिम्बवत्॥
श्मशानसदृशा ग्रामाः प्रेतलोकोपमाः पुरः।
क्लिष्टा जनपदाः कुत्स्या भविष्यन्ति दुरीहिताः॥

१३७८. पद्म०, ५५।३१ १३७९. मानस, ५।४।३

१३८०. पद्मपुराण, २०।९२-१०१

कुकर्मनिरतैः क्रूरैश्चौरैरिव निरन्तरम् ।
दुःपाषण्डैरयं लोको भविष्यति समाकुलः ॥
महीतलं खलं द्रव्यपरिमुक्ताः कुटुम्बिनः ।
हिंसाक्लेशसहस्राणि भविष्यन्तीह सन्ततम् ॥
पितरौ प्रति निस्नेहाः पुत्रास्तौ च सुतान् प्रति ।
चौरा इव च राजानो भविष्यन्ति कलौ सति ॥
सुखिनोऽपि नराः केचिन् मोहयन्तः परस्परम् ।
कथाभिर्दु र्मैतीशाभी रस्यन्ते पापमानसा. ॥
नक्ष्यन्त्यतिशयाः सर्वे त्रिदशागमसादयः ।
कषायबहुले काले शत्रुघ्न समुपागते ॥
जातरूपधरान् दृष्ट्वा साधून् व्रतगुणान्वितान् ।
संजुगुप्सां करिष्यन्ति महामोहान्विता जनाः ॥
अप्रशस्ते प्रशस्तत्वं मन्यमानाः कुचेतसः ।
भयपक्षे पतिष्यन्ति पतंगा इव मानवाः ॥
प्रशान्तहृदयान् साधून् निर्भर्त्स्य विहसोद्यताः ।
मूढा मूढेषु दास्यन्ति केचिदन्नं प्रयत्नतः ॥
इत्थमेतं निराकृत्य प्राहूयान्य समागतम् ।
यतिनो मोहिनो देय दास्यन्त्यहितभावनाः ॥[१३८१]

तुलसी—'सो कलिकाल कठिन उरगारी । पाप परायन सब नर नारी ॥
कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भए सदग्रन्थ ।
दभिन्ह निज मति कल्पि करि प्रकट किए बहु पंथ ॥
भए लोग सब मोह बस लोभ ग्रसे सुभ कर्म ।
सुनु हरिजान ग्यान निधि कहउँ कछुक कलिधर्म ॥
बरन धर्म नहिं आश्रम चारी । श्रुति बिरोध रत सब नर नारी ॥
द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन । कोउ नहिं मान निगम अनुसासन ॥
मारग सोइ जा कहुँ जोइ भावा । पंडित सोइ जो गाल बजावा ॥
मिथ्यारंभ दंभ रत जोई । ता कहुँ संत कहइ सब कोई ॥
सोइ सयान जो परधन हारी । जो कर दंभ सो बड़ आचारी ॥
जो कह झूँठ मसखरी जाना । कलिजुग सोइ गुनवंत बखाना ॥
निराचार जो श्रुति पथ त्यागी । कलिजुग सोइ ग्यानी सो बिरागी ॥
जाकें नख अरु जटा बिसाला । सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला ॥

१३८१. वही, ९२।५४-६५

असुभ बेष भूषन धरें भच्छाभच्छ जे खाहिं।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर पूज्य ते कलिजुग माहिं ।।
जे अपकारी चार, तिन्ह कर गौरव मान्य तेइ।
मन क्रम बचन लबार, तेइ बकता कलिकाल महुँ ।।

नारि बिबस नर सकल गोसाईं। नाचहिं नट मर्कट की नाईं ।।
सूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ग्याना। मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना ।।
सब नर काम लोभ रत क्रोधी। देव बिप्र श्रुति संत बिरोधी ।।
गुन मंदिर सुंदर पति त्यागी। भजहिं नारि पर पुरुष अभागी ।।
सौभागिनीं बिभूषन हीना। बिधवन्ह के सिंगार नबीना ।।
गुर सिष बधिर अंध का लेखा। एक न सुनइ एक नहिं देखा ।।
हरइ सिष्य धन सोक न हरई। सो गुर घोर नरक महुँ परई ।।
मातु पिता बालकन्हि बोलावहिं। उदर भरै सोइ धर्म सिखावहिं ।।

ब्रह्म ग्यान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरि बात।
कौड़ी लागि लोभ बस करहिं बिप्र गुर घात ।।
बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन हम तुम्ह ते कछु घाटि।
जानइ ब्रह्म सो बिप्रबर आँखि देखावहिं डाटि ।।

पर त्रिय लंपट कपट सयाने। मोह द्रोह ममता लपटाने ।।
तेइ अभेदबादी ग्यानी नर। देखा मैं चरित्र कलिजुग कर ।।
आपु गए अरु तिन्हहू घालहिं। जे कहुँ सत मारग प्रतिपालहिं ।।
कल्प-कल्प भरि एक-एक नरका। परहिं जे दूषहिं श्रुति करि तरका ।।
जे बरनाधम तेलि कुम्हारा। स्वपच किरात कोल कलवारा ।।
नारि मुई गृह संपति नासी। मूड़ मुड़ाइ होहिं सन्यासी ।।
ते बिप्रन्ह सन आपु पुजावहिं। उभय लोक निज हाथ नसावहिं ।।
बिप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ बृषली स्वामी ।।
सूद्र करहिं जप तप ब्रत नाना। बैठि बरासन कहहिं पुराना ।।
सब नर कल्पित करहिं अचारा। जाइ न बरनि अनीति अपारा ।।

भए बरन संकर कलि भिन्नसेतु सब लोग।
करहिं पाप पावहिं दुख भय रुज सोक बियोग ।।
श्रुति संमत हरि भक्ति पथ संजुत बिरति बिबेक।
तेहिं न चलहिं नर मोह बस कल्पहिं पंथ अनेक ।।

बहु दाम संवारहिं धाम जती। बिषया हरि लीन्हि न रही बिरती ।।
तपसी धनवंत दरिद्र गृही। कलि कौतुक तात न जात कही ।।

कुलवंति निकारहिं नारि सती। गृह आनहिं चेरि निबेरि गती॥
सुत मानहिं मातु पिता तब लौं। अबलानन दीख नहीं जब लौं॥
ससुरारि पिआरि लगी जब तें। रिपुरूप कुटुंब भए तब तें॥
नृप पाप परायन धर्म नहीं। करि दंड बिडंब प्रजा नितहीं॥
धनवंत कुलीन मलीन अपी। द्विज चिन्ह जनेउ उघार तपी॥
नहिं मान पुरान न बेदहि जो। हरि सेवक संत सही कलि सो।
कबि बृंद उदार दुनी न सुनी। गुन दूषक ब्रात न कोपि गुनी॥
कलि बारहिं बार दुकाल परै। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै॥
सुनु खगेस कलि कपट हठ दंभ द्वेष पाखंड।
मान मोह मारादि मद ब्यापि रहे ब्रह्मंड॥[१३८२]

२०. रविषेण–'अभिमानोन्नतिं त्यक्त्वा प्रसादय रघूत्तमन्।
मा कलंकं स्ववंशस्य कार्षीर्योषिन्निमित्तकम्॥'[१३८३]

तुलसी–'रिषि पुलस्ति जसु बिमल मयंका।
तेहि ससि महुँ जनि होहु कलंका॥'[१३८४]
'परिहरि मान मोह मद भजहु कोसलाधीस।'[१३८५]

२१. रविषेण–'क्व सौमित्रिः क्व सौमित्रिरिति गाढं समुत्सुकः।
लोकोऽपि हि समस्तो मे प्रक्ष्यति प्रेमनिर्भरः॥
रत्नं पुरुषवीराणां हारयित्वा त्वकामहम्।
मन्ये जीवितमात्मीयं हृतं निहतपौरुषः॥
कामार्थाः सुलभाः सर्वे पुरुषस्यागमास्तथा।
विविधाश्चैव सम्बन्धा विष्टपेऽस्मिन् यथा तथा॥
पर्यट्य पृथिवीं सर्वां स्थान पश्यामि तन्नन्।
यस्मिन्नवाप्यते भ्राता जननी जनकोऽपि वा॥'[१३८६]

तुलसी–'सुत बित नारि भवन परिवारा।
होहिं जाहिं जग बारहिं बारा॥
अस बिचारि जियँ जागहु ताता।
मिलइ न जगत सहोदर भ्राता॥
जैहउँ अवध कौन मुहु लाई।
नारि हेतु प्रिय भाइ गँवाई॥

१३८२. मानस, ७।९७-१०१
१३८३. पद्म०, ६२।२६
१३८४. मानस, ५।२२।१
१३८५ वही, ५।३९क
१३८६. पद्म०, ६३।९, १०, १३, १४

बरु अपजस सहतेउँ जग नाहीं।
नारि हानि विशेष छति माही।।'[१३८७]

२२. रविषेण–'अथवा वेत्ति नारीणां चेतसः को विचेष्टितम्।
दोषाणां प्रभवो यासु साक्षाद्वसति मन्मथः।।
धिक्स्त्रियं सर्वदोषाणामाकरं तापकारणम्।
विशुद्धकुलजातानां पुंसां पंकं सुदुस्त्यजम्।।
अभिहन्त्रीं समस्तानां बलानां रागसंश्रयाम्।
स्मृतीनां परमं भ्रंशं मत्यस्खलनखातिकाम्।।
विघ्नं निर्वाणसौख्यस्य ज्ञानप्रभवसूदनीम्।
भस्मच्छन्नाग्निसंकाशां दर्भसूचीसमानिकाम्।।
दृक्मात्ररमणीयां ता निर्मुक्तमिव पन्नगः।
तस्मात् त्यजामि वैदेही महादुःखजिहासया।।'[१३८८]

तुलसी–'काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि।
तिन्ह महँ अति दारुन दुखद मायारूपी नारि।।
सुनु मुनि कह पुरान श्रुति संता। मोह बिपिन कहुँ नारि बसंता।।
जप तप नेम जलाश्रय भारी। होइ ग्रीषम सोषइ सब नारी।।
काम क्रोध मद मत्सर भेका। इन्हिहि हरषप्रद बरषा एका।।
दुर्बासना कुमुद समुदाई। तिन्ह कहँ सरद सदा सुखदाई।।
धर्म सकल सरसीरुह बृंदा। होइ हिम तिन्हहि दहइ सुख मंदा।।
पुनि ममता जवास बहुताई। पलुहइ नारि सिसिर ऋतु पाई।।
पाप उलूक निकर सुखकारी। नारि निबिड़ रजनी अँधियारी।।
बुधि बल सील सत्य सब मीना। बनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना।।
अवगुन मूल सूलप्रद प्रमदा सब दुख खानि।
ताते कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जियँ जानि।।[१३९५]

२३. रविषेण–'सुकृतस्य फलेन जन्तुरुच्चैः पदमाप्नोति सुसम्पदां निधानम्।
दुरितस्य फलेन तत्तु दुःखं कुगतिस्थं समुपैत्ययं स्वभावः।।'[१३८९]

तुलसी–'जहाँ सुमति तहँ संपति नाना।
जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना।।'[१३९०]



१३८७. मानस, ६।६०।४, ६
१३८८. पद्म०, ९९।६१-६५
१३८९. मानस, ३।४३-४४
१३९०. पद्म०, १२३।१७६
१३९१. मानस, ५।३९।३

परिशिष्ट

परिशिष्ट—१

पद्मपुराण के सुभाषित

१ मत्तवारणसंक्षुण्णे व्रजन्ति हरिणा पथि ।
प्रविशन्ति भटा युद्ध महाभटपुरस्सरा ॥१।१६

२ भास्वता भासितानर्थान् सुखेनालोकते जन ।
सूचीमुखविनिर्भिन्न मणि विशति सूत्रकम् ॥१।२०

३ व्यक्ताकारादिवर्णा वाग् लम्भिता या न सत्कथाम् ।
सा तस्य निष्फला जन्तो पापादानाय केवलम् ॥१।२३

४ वृद्धि व्रजति विज्ञान यशश्चरति निर्मलम् ।
प्रयाति दुरित दूर महापुरुषकीर्तनात् ॥१।२४

५ अल्पकालमिद जन्तो शरीर रोगनिर्भरम् ।
यशस्तु सत्कथाजन्म यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥१।२५
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पुरुषेणात्मवेदिना ।
शरीर स्थास्नु कर्तव्य महापुरुषकीर्तनात् ॥१।२६

६ लोकद्वयफल तेन लब्ध भवति जन्तुना ।
यो विधत्ते कथा रम्या सज्जनानन्ददायिनीम् ॥१।२७

७ सत्कथाश्रवणौ यौ च श्रवणौ तौ मतौ मम ।
अन्यौ विदूषकस्येव श्रवणाकारधारिणौ ॥१।२८

८ सच्चेष्टवर्णना वर्णा घूर्णन्ते यत्र मूर्धनि ।
अथ मूर्धाऽप्यमूर्धा तु नालिकेरकरकवत् ॥१।२९

९ सत्कीर्तनसुधास्वादसक्त च रसन स्मृतम् ।
अन्यच्च कुर्वचोधार कृपाणस्तुहितु फलम् ॥१।३०

१० श्रेष्ठावोष्ठौ च तावेव यौ सुकीर्तनवर्तिनौ ।
न शम्बूकास्यसभुक्तजलौकापृष्ठसन्निभौ ॥१।३१

११. दन्तास्त एव ये शान्तकथासंगमरञ्जिताः ।
शेषाः सश्लेष्मनिर्वाणद्वारबन्धाय केवलम् ॥ २।३२

१२. मुखं श्रेयःपरिप्राप्तेर्मुखं मुख्यकथारतम् ।
अन्यस्तु मलसम्पूर्णं दन्तकीटाकुलं बिलम् ॥२।३३

१३. वदिता योऽथवा श्रोता श्रेयसां वचसां नरः ।
पुमान् स एव शेषस्तु शिल्पिकल्पितकायवत् ॥१।३४

१४. गुणदोषसमाहारे गुणान् गृह्णन्ति साधवः।
क्षीरवारिसमाहारे हंसाः क्षीरमिवाखिलम् ॥१।३५

१५. गुणदोषसमाहारे दोषान् गृह्णन्त्यसाधवः ।
मुक्ताफलानि सत्यज्य काका मांसमिव द्विपात् ॥१।३७

१६. अदोषामपि दोषाक्तां पश्यन्ति रचनां खलाः ।
रविमूर्तिमिवोलूकास्तमालदलकालिकाम् ॥१।३७

१७. सरोजलागमद्वारजालकानीव दुर्जनाः ।
धारयन्ति सदा दोषान् गुणबन्धनवर्जिताः ॥१।३८

१८. स्वभावमिति संचिन्त्य सज्जनस्येतरस्य च ।
प्रवर्तन्ते कथाबन्ध स्वार्थमुद्दिश्य साधवः ॥१।३९

१९. सत्कथाश्रवणाद् यच्च सुखं सम्पद्यते नृणाम् ।
कृतिनां स्वार्थ एवासौ पुण्योपार्जनकारणम् ॥२।४०

२०. सन्मार्गे प्रकटीकृते हि रविणा कस्ताग्रवृष्टिः स्खलेत् ॥१।९०३

२१. मनुष्यभावमासाद्य सुकृतं ये न कुर्वते ।
तेषां करतलप्राप्तममृतं नाशमागतम् ॥२।१६७

२२. सम्प्राप्तं रक्षितं द्रव्यं भुञ्जानस्यापि नो क्षमः ।
प्रतिवासरसंवृद्धगर्द्धाग्निपरिवर्तनात् ॥२।१७७

२३. हिंसातः संसृतेर्मूलं दुःखं संसारसञ्ज्ञकम् ॥२।१८१

२४. प्रष्टव्या गुरवो नित्यमर्थं ज्ञातमपि स्वयम् ।
स तैर्निश्चयमानीतो ददाति परमं सुखम् ॥२।२५२

२५. न विना पीठबन्धेन चित्रातुं सद्य शक्यते ।
कथाप्रस्तावहीनं च वचनं छिन्नमूलकम् ॥३।२८

२६. साधौ तमोऽगारे प्रतालङ्कृतविग्रहे ।
सर्वग्रन्थविनिर्मुक्ते दत्तं दानं महाफलम् ॥३।६९

२७. यथवाधीयते वस्तु दर्पणे, तस्य दर्शनम् ॥३।७२

२८. अस्मिंस्त्रिभुवने कृत्स्ने जीवानां हितमिच्छताम्।
शरणं परमो धर्मस्तस्माच्च परमं सुखम् ॥४।३५

२९. सुखार्थं चेष्टितं सर्वं तच्च धर्मनिमित्तकम्।
एवं ज्ञात्वा सदा यत्नात् कुरुध्वं धर्मसङ्गमम् ॥४।३६

३०. वृष्टिर्विना कुतो मेघैः क्व सस्यं बीजवर्जितम्।
जीवानां च विना धर्मात् सुखमुत्पद्यते कथम् ॥४।३७

३१. गन्तुकामो यथा पङ्गुर्मूको वक्तुं समुद्यतः।
अन्धो दर्शनकामश्च तथा धर्मादृते सुखम् ॥४।३८

३२. परमाणोः परं स्वल्पं न चान्यन्नभसो महत्।
धर्मादन्यश्च लोकेऽस्मिन् सुहृन्नास्ति शरीरिणाम् ॥४।३९

३३. न कल्पते। साधूनामीदृशी भिक्षा या तदुद्देशसंस्कृता ॥४।६५

३४. प्राणा धर्मस्य हेतवः ॥४।६७

३५. अहो वत महाकष्टं जैनेश्वरमिदं व्रतम् ॥४।९९

३६. प्राप्यते सुमहद् दुःखं जन्तुभिर्भवसागरे ॥५।१२१

३७. कष्टं यैरेव जीवोऽयं कर्मभिः परितप्यते।
तान्येवोत्सहते कर्तुं मोहितः कर्ममायया ॥
आपातमात्ररम्येषु विषवद् दुःखदायिषु।
विषयेषु रतिः का वा दुःखोत्पादनवृद्धिषु ॥
कृत्वापि हि चिरं सङ्गं धने कान्तासु बन्धुषु।
एकाकिनैव कर्तव्यं संसारे परिवर्तनम् ॥
तावदेव जनः सर्वः प्रियत्वेनानुवर्तते।
दानेन गृह्यते यावत्सारमेयशिशुर्यथा ॥
इयता चापि कालेन को गतः सह बन्धुभिः।
परलोकं कलत्रैर्वा सुहृद्भिर्बान्धवेन वा ॥
नागभोगोपमा भोगा भीमा नरकपातिनः।
तेषु कुर्यान्नरः सङ्गं को वा यः स्यात्सचेतनः ॥
अहो परमिदं चित्रं सद्भावेन यदाश्रितान्।
लक्ष्मीः प्रतारयत्येव दुष्टत्वं किमतः परम् ॥
स्वप्ने समागमो यद्वत्तद्वद् बन्धुसमागमः।
इन्द्रचापसमानं च क्षणमात्रं च तैः सुखम् ॥
जलबुद्बुदवत्कायः सारेण परिवर्जितः।
विद्युल्लताविलासेन सदृशं जीवितं चलम् ॥५।२२९-२३७

३८. महातरौ यथैकस्मिन्नुषित्वा रजनीं पुनः।
प्रभाते प्रतिपद्यन्ते ककुभो दश पक्षिणः॥
एवं कुटुम्ब एकस्मिन् सङ्गमं प्राप्य जन्तवः।
पुनः स्वां स्वां प्रपद्यन्ते गतिं कर्मवशानुगाः॥५।२६५-२६६

३९. बलवद्भ्यो हि सर्वेभ्यो मृत्युरेव महाबलः।
आनीता निधनं येन बलवन्तो बलीयसा॥५।२६८

४०. फेनोर्मीन्द्रधनुःस्वप्नविद्युद्बुद्बुदसन्निभाः।
सम्पदः प्रियसम्पर्का विग्रहाश्च शरीरिणाम्॥५।२७०

४१. नास्ति कश्चिन्नरो लोके यो व्रजेदुपमानताम्।
यथायममरस्तद्वद्वयं मृत्यूज्झिता इति॥५।२७१

४२ येऽपि शोषयितुं शक्ताः समुद्रं ग्राहसङ्कुलम्।
चूर्णयेयुर्वा करयुग्मेन चूर्णं मेरुमहीधरम्॥
उद्धर्तुं धरणीं शक्ता ग्रसितुं चन्द्रभास्करौ।
प्रविष्टास्तेऽपि कालेन कृतान्तवदनं नराः॥५।२७२-२७३

४३. मृत्योर्दुर्लङ्घितस्यास्य त्रैलोक्ये वशतां गते।
केवलं व्युज्झिताः सिद्धा जिनधर्मसमुद्भवाः॥५।२७४

४४. शोकं कुर्याद्विबुद्धात्मा को नरो भवकारणम्? ५।२७६

४५. सङ्घस्य निन्दनं कृत्वा मृत्युमेति भवे भवे॥५।२९३

४६. चिगिच्छामन्तर्वर्जिताम् ।५।३०७

४७. मधुदिग्धासिधाराया लेहने कीदृशं सुखम्।
रसनं प्रत्युतायाति शतधा यत्र खण्डनम्॥५।३११
विषयेषु तथा सौख्यं कीदृशं नाम जायते।
यत्र प्रत्युत दुःखानामुपर्युपरि सन्ततिः॥५।३१२

४८. यथा स्वजीवितं कान्तं सर्वेषां प्राणिनां तथा॥५।३२८

४९. दुर्लभं सति जन्तुत्वे मनुष्यत्वं शरीरिणाम्।
तस्मादपि सुरूपत्वं ततो धनसमृद्धता॥
ततोऽप्यार्यत्वसम्भूतिस्ततो विद्यासमागमः।
ततोऽप्यर्थज्ञता तस्माद् दुर्लभो धर्मसङ्गमः॥५।३३३-३३४

५०. परपीडाकरं वाक्यं वर्जनीयं प्रयत्नतः।
हिंसायाः कारणं तद्धि सा च संसारकारणम्॥५।३४१
तथा स्तेयं स्त्रियाः सङ्गं महाद्रविणकाङ्क्षनम्।
सर्वमेतत्परित्याज्यं पीडाकारणतां गतम्॥५।३४२

५१. भवान्तरकृतेन तपोबलेन सम्प्राप्नुवन्ति पुरुषा मनुजेषु भोगाम् ॥५।४०५
५२. दुष्कर्मसक्तमतयः परमां लभन्ते निन्दां जना इह भवे मरणात्परं च ।५।४०६
५३. पापतमसो रवितां भजध्वम् ॥५।४०६
५४. आचाराणां विघातेन कुदृष्टीनां च सम्पदा।
धर्मं ग्लानिपरिप्राप्तमुच्छ्रयन्ते जिनोत्तमाः ॥
ते तं प्राप्य पुनर्धर्मं जीवा बान्धवमुत्तमम्।
प्रपद्यन्ते पुनर्मार्गं सिद्धस्थानाभिगामिनः ॥५।२०६-२०७
५५. कालप्राप्तं नयं सन्तो युञ्जाना यान्ति तुङ्गताम् ॥६।२५
५६. स्वभाव एव कन्यानां यत्परागारसेवनम् ॥६।४३
५७. शुद्धाभिजनता मुख्या गुणानां वरभाजिनाम् ॥६।४६
५८. स्वयमेव तु कन्यायै रोचते क्रियतेऽत्र किम् ? ६।५०
५९. हा कष्टं क्षुद्रशक्तीनां मनुष्याणां धिगुन्नतिम् ॥६।१४४
६०. मनोज्ञं प्रायशो रूपं धीरस्यापि मनोहरम् ॥६।१६७
६१. कान्ताभिप्रायसामर्थ्यात् सुरूपमपि नेष्यते ॥६।१७१
६२. मङ्गलं यस्य यत्पूर्वं पुरुषैः सेवितं कुले।
प्रत्यवायेन सम्बन्धो निरासे तस्य जायते ॥
क्रियमाणं तु तद्भक्त्या करोति शुभसम्पदम् ॥६।१८६
६३. अभिमानेन तुङ्गाना पुरुषाणामिदं व्रतम्।
नमयन्त्येव यच्छत्रु द्रविणे विगताशयाः ॥६।१९५
६४. प्रायशो विषवल्लीव दृष्टा पूर्वनृपद्युतिः ॥६।२००
६५. पूर्वोपार्जितपुण्यानां पुरुषाणां प्रयत्नतः।
संजातासु न लक्ष्मीषु भावः सञ्जायते महान् ॥
यथैव ताः समुत्पन्नास्तेषामल्पप्रयत्नतः।
तथैव त्यजतामेषां पीडा तासु न जायते ॥
तथा कथञ्चिदासाद्य सन्तो विषयजं सुखम्।
तेषु निर्वेदमागत्य वाञ्छन्ति परमं पदम् ॥६।२०१-२०३
६६. यत्नोपकरणैः साध्यमास्मायत्तं निरन्तरम्।
महद्दत्तेन निर्मुक्तं सुखं तत् को न वाञ्छति ? ६।२०४
६७. लक्षणं यस्य यल्लोके स तेन परिकीर्त्यते ॥६।२०८
६८. तपो हि श्रम उच्यते ॥६।२११
६९. परां हि कुरुते प्रीतिं पूर्वाचरितसेवनम् ॥६।२१६
७०. आचार्ये म्रियमाणे यस्तिष्ठत्यन्तिकगोचरे।

करोत्याचार्यकं मूढः शिष्यतां दूरमुत्सृजन् ।।
नासौ शिष्यो न चाचार्यो निर्धर्मः स कुमार्गगः ।
सर्वतो भ्रंशमायातः स्वचारात्साधुनिन्दितः ।।६।२६४-२६५
७१. अहो परममाहात्म्यं तपसो भुवनातिगम् ।।६।२६७
७२. मार्गोऽयमिति यो गच्छेद् दिशामज्ञाय मोहवान् ।
प्राधीयसापि कालेन नेष्टं स्थानं स गच्छति ।।६।२७८
७३. धर्मस्य हि दया मूलं तस्या मूलमहिंसनम् ।।६।२८६
७४. अन्यः कस्तस्य कथ्येत धर्मस्य परमो गुणः ।
त्रिलोकशिखरं येन प्राप्यते सुमहासुखम् ।।६।२६५
७५. अय (मनुष्यभवः) हि दुर्लभो लोके धर्मोपादानकारणम् ।।६।३७६
७६. वाञ्छिते हि वरत्वेन वृष्टिरचञ्चलता व्रजेत् ।।६।३६४
७७. बीजं युद्धस्य योषितः ।।६।४५०
७८. दारजातं पराभवम् ।।६।४६३
७९. शोको हि पण्डितैर्दृष्टः पिशाचो भिन्ननामकः ।।६।४८०
८०. कर्मणां विनियोगेन वियोगः सह बन्धुना ।
प्राप्ते तत्रापर दुःखं शोको यच्छति सन्ततम् ।।६।४८१
८१. अविधाय नराः कार्यं ये गर्जन्ति निरर्थकम् ।
महान्तं लाघवं लोके शक्तिमन्तोऽपि यान्ति ते ।।६।५४६
८२. प्रेक्षापूर्वप्रवृत्तेन जन्तुना सप्रयोजनः ।
व्यापारः सततं कृत्यः शोकश्चायमनर्थकः ।।६।४८१
८३. प्रत्यागमः कृते शोके प्रेतस्य यदि जायते ।
ततोऽन्यानपि सगृह्य विदधीत जनः शुचम् ।।६४८३
८४. शोकः प्रत्युत देहस्य शोषीकरणमुत्तमम् ।
पापानामयमुद्रेको महामोहप्रवेशनः ।।६।४८४
८४. (अ) नानुबन्धं (सत्कारं) त्यजन्त्यरिः ।।
८४. (आ) बलीयसि रिपौ गुप्तिं प्राप्य कालं नयेद् बुधः ।
तत्र तावदवाप्नोति न निकार (पा. विकार)-मरातिकम् ।।६४८८
८४. (इ) प्राप्य तत्र स्थितः कालं कुतश्चिद् द्विगुणं रिपुम् ।
साधयेत्तद्धि भूतानामेकस्मिन् सर्वदा रतिः ।।६।४८९
८४. (ई) भग्नाः किलानुसर्तव्याः शत्रवो न ।।६।४९६
८४. (उ) अनुकम्पा हि कर्तव्या महता दुःखिते जने ।।६।४९८

८४. (ऊ) पृष्ठस्य दर्शनं येन कारितं कातरात्मना ।
जीवन्मृतस्य तस्यास्तु क्रियतां किं मनस्विना ? ६।४९९

८४. (ऋ) मनुष्यजन्म चात्यन्तदुर्लभं भवसङ्कटे ।।६।५०३

८५. अभिप्रेत्य वधं शत्रोरारुह्य जयिन क्षिपम् ।
प्रस्थितः पौरुष विभ्रत्कथं भूयो निवर्तते ? ७।५०

८६. भटः किं विनिवर्त्तते ? ७।५२

८७. 'असौ पलायितो भीतो वराक' इतिभाषितम् ।
कथमाकर्णयद्वीरो जनताया सुचेतसः ।। ७।५६

८८. यत्नेन महतान्विष्य हन्तव्या लोककण्टकाः । ७।६६

८९. पक्षपातो भवत्येव योगिनामपि सज्जने । ७।१६०

९०. ज्ञातव्येषु हि नारीणां प्रमाणं प्रियमानसाम् । ७।१८४

९१. भवेदमृतवल्लीतो विषस्य प्रसवः कथम् ? ७।१९७

९२. मूल हि कारण कर्म स्वरूपविनियोजने ।
निमित्तमात्रमेवास्य जगतः पितरौ स्मृतौ । ७।१९९

९३. हेतुसम फलम् । ७ २०२

९४. वितथ नैव जायते यतिभाषितम् । ७।२२०

९५. अवाप्त मरणं पुसा स्वस्थानभ्रंशतो वरम् ।७।२४०

९६. कुर्वन्त्याराधनं यत्नात्साधवस्तपसो यथा ।
आराधन तथा कृत्य विद्यायाः श्रम-मोक्षजैः ।। ७।२५४

९७. कापुरुषा एव स्खलन्ति प्रस्तुताशयात् । ७।२८०

९८. स्वसरि प्रेम हि प्रायः पितृभ्यां सोदरे परम् । ७।३०३

९९. विद्या हि साध्यते पुत्राः ! स्वजनानां समृद्धये ।। ७।३०४

१००. पुत्रा हि मदिताः पित्रोः प्ररोहा इव धारकाः । ७।३०६

१०१. निश्चयात् किं न लभ्यते ? ७।३१५

१०२. निश्चयोऽपि पुरोपात्ताल्लभ्यते कर्मणः सितात् ।
कर्माण्येव हि यच्छन्ति विघ्न दुःखानुभाविनः ।। ७।३१६

१०३. काले दानविधि पात्रे क्षेमे चायुःस्थिति क्षयम् ।
सम्यग्बोधिफला विद्या नाभव्यो लब्धुमर्हति ।। ७।३१७

१०४. कस्यचिद्दशभिर्वर्षैर्विद्या मासेन कस्यचित् ।
क्षणेन कस्यचित्सिद्धिं यान्ति कर्मानुभावतः ।।७।३१८

१०५. शरण्यां स्वपितु त्यागं करोतु चिरमम्भसः ।
मज्जत्वप्सु दिवानक्तं गिरेः पततु मस्तकात् ।।

विषत्तां पञ्चतायांग्यां क्रियां विग्रहशोषिणीम् ।
पुण्यैर्विरहितो जन्तुस्तथापि न कुतो भवेत् ।। ७।३१९-३२०

१०६. अन्नमात्रं क्रियाः पुंसां सिद्धैः सुकृतकर्मणाम् ।
अकृतोत्तमकर्माणो यान्ति मृत्युं निरर्थकाः ।। ७।३२१

१०७. सर्वादरान्मनुष्येण तस्मादाचार्यसेवया ।
पुण्यमेव सदा कार्यं सिद्धिः पुण्यैर्विना कुतः ।। ७।३२२

१०८. पूर्वभवार्जितेन पुरुषाः पुण्येन यान्ति श्रियम् ।। ७।३६४

१०९. अग्नेः किं न कणः करोति विपुलं भस्म क्षणात् काननम् ? ७।३६४

११०. मत्तानां करिणा भिनत्ति निवहं सिंहस्य वा नार्भकः ? ७।३६४

१११. बोधं ह्याशु कुमुद्वतीषु कुरुते शीतांशुरोचिर्लवः
सन्ताप प्रणुदन् दिवाकरकरैरुत्पादितं प्राणिनाम् ।
निद्राविद्रुतिहेतुभिरच समये जीमूतमालाभिभं
ध्वान्तं दूरमपाकरोति किरणैरुद्योतमात्रो रविः ।। ७।३६५

११२. कन्यानां यौवनारम्भे सन्तापाग्निसमुद्भवे ।
इन्धनत्वं प्रपद्यन्ते पितरौ स्वजनैः समम् ।।८।६
एवमर्थं ददत्यस्या जन्मनोऽनन्तरं बुधाः ।
लोचनाञ्जलिभिस्तोयं दुःखाकुलितचेतसः ।।८।७

११३. कन्यानां देहपालने ।
जनन्य उपयुज्यन्ते पितरो दानकर्मणि ।।८।१०

११४. भर्तृच्छन्दानुवर्तिन्यो भवन्ति कुलबालिकाः ।।८।११

११५. प्रपद्यन्ते परिभ्रंशं कुलजा नोपचारतः ।।८।३१

११६. कं न कुर्वन्ति सज्जनाः दर्शनोत्सुकम् ? ८।४८

११७. सता हि कुलविद्येयं यन्मनोहरभाषणम् ।।८।४९

११८. प्रतिकूलसमाचारा न भवन्त्येव साधवः ।।८।५१

११९. नीयन्ते विषयैः प्रायः सत्त्ववन्तोऽपि वश्यताम् ।।८।७३

१२०. सह्यो तापत्रपा तावद् दुःसहाः स्मरवेदना ।।८।१०७

१२१. शशाङ्केन विमुक्तानां तारणां काभिरूपता ? ।।८।११०

१२२. एकाकी पृथुकः सिंहः प्रस्फुरत्सितकेसरः ।
किं वा नानयते ध्वंसं यूथं सबदवन्तिनाम् ।।८।१२७

१२३. आनन्दं पुत्रतो गम्यत् प्रीतेरायतनं परम् ।।८।१५७

१२४. तिरश्चां मानुषाणां च प्रायो भेदोऽयमेव हि ।
कृत्याकृत्यं न जानन्ति यदेकेऽन्ये तु तद्विदः ।।८।१६६

१२५ विस्मरन्ति च नो पूर्वं वृत्तान्त दृढमानसा ।
आतायामपि कस्याञ्चिद्भूतौ विशुत्समद्युतौ ।।८।१७०
१२६ को हि स्वकुलनिम्ं लब्धसहेतुक्रियां भजेत् ।।८।१७१
१२७ हृदयस्थेन नाथेन पिशाचेनेव चोदिता ।
दूता वाचि प्रवर्तन्ते यन्त्रदेहा इवावशा ।।८।१८८
१२८ अकीर्तिरुद्रवत्युर्वीलोके क्षुद्रवचे कृते ।।८।१८६
१२६ नहि गण्डूपदान् हन्तु वैनतेय प्रवतते ।।८।१६०
१३० धिग् भृत्य दु खनिर्मितम् ! ८।१६२
१३१ धिक् कष्ट ससार दु खभाजनम ।
चक्रवत्परिवतन्त प्राणिनो यत्र योनिषु ।।८।२२०
१३२ कृत्वा प्राणिवध जन्तुर्मनोज्ञविषयाशया ।
प्रयाति नरक भीम सुमहादु खसङ्कुलम् ।।८।२२४
१३३ यथैकदिवस राज्य प्राप्त सवत्सर वधम् ।
प्राप्नोति सदृश तेन निश्चय विषयैं सुखम् ।।८।२२५
१३४ चक्षु पक्ष्मपुटाम ङ्क्षणिक ननु जीवितम् ।।८।२२६
१३५ मत्तस्तम्बेरमाच्छैमण्डलाग्रकरैर्नरै ।
क्रियत मारण शत्रोर्न तु घमनिवदनम् ।।८।२२८
१३६ कुर्वाणो हि निज कम पुरुषो नैव लज्जते ।।८।२३०
१३७ वीयमक्षतकायाना शूराणा नहि वधते ।।८।२३३।।
१३८ वीराणा शत्रुभङ्गेन कृतत्व न धनादिना ।।८।२४२
१३९ एतदर्थं न वाञ्छन्ति सन्तो विषयज सुखम् ।
यदेतदध्रुव म्तोक सान्तराय सदु खकम ।।८।२४६
१४० निमित्तमात्रता येषामसुखस्य सुखस्य वा ।
बुधास्तेभ्यो न कुप्यन्ति ससारस्थितिवेदिन ।।८।२४८
१४१ भव्य करय न सम्मत ? ।।८।२६६
१४२ मृदु पराभवत्येष लोक प्रखलचेष्टित ।
उदवृत्याप्यमुख कर्तुं नाभिवाञ्छति वकवो ।।८।३३२
१४३ परकार्येषु यो रत ।
कार्ये तस्य कथ स्वस्मिन्नौदासीन्य भविष्यति ? ८।३७७
१४४ विविधरत्नसमागमसम्पद प्रबलशत्रुसमूलविमर्दनम् ।
सकलविष्टपगामि यशा सित भवति निर्मितनिर्मलकर्मणाम् ।।८।५३०

१४५. रिपव उग्रतरा विषयाख्या अपनयन्ति भुवक्तिन्नतये स्मृतिम् ।
बहिरवस्थितशत्रुगणः पुनः सततमानमते यतमन्तरम् ॥८।५३१

१४६. इति विचिन्त्य न मुक्तमुपासितुं विषयशत्रुगणं पुरुषोत्तमः ॥
अमरमेति जनस्तमसा ततं न तु रवेः किरणैरवभासितम् ॥८।३२

१४७. स्त्रीणां स्वाभाविकी क्षमा ॥९।३५

१४८. कन्या नाम प्रभो ! देया परस्मायेव निश्चयात् ।
उत्पत्तिरेव तासां हि तादृशी सार्वलौकिकी ॥९।३२

१४९. हिंसित्वा जन्तुसंघातं नितान्तं प्रियजीवितम् ।
दुःखं कृतसुखाभिख्यं प्राप्यते तेन को गुणः ? ॥९।८१

१५०. अरघट्टघटीयन्त्रसदृशाः प्राणधारिणः ।
शश्वद्भवमहाकूपे भ्रमन्त्यत्यन्तदुःखिताः ॥९।८२

१५१. क्व धर्मः क्व च संक्रोधः ? ॥१०।१३२

१५२. इन्द्राणामपि सामर्थ्यमीदृशं नाथ नेक्ष्यते ।
यादृक् तपःसमृद्धानां मुनीनामल्पयत्नजम् ॥९।१६३

१५३. पुण्यवन्तो महासत्वा मुक्तिलक्ष्मीसमीपगाः ।
तारुण्ये विषयांस्त्यक्त्वा स्थिता ये मुक्तिवर्त्मनि ॥९।१७२

१५४. जिनवन्दनया तुल्यं किमन्यद्विद्यते सुखम् ? ॥९।२०१

१५५. जिनेन्द्रवन्दनातुल्यं कल्याणं नैव विद्यते ॥९।२०२

१५६. ददाति परिनिर्वाणसुखं या समुपासिता ।
जिननत्या तया तुल्यं न भूतं न भविष्यति ॥९।२०६

१५७. असाध्यं जिनभक्तेर्यत्साधु तन्नैव विद्यते ॥९।२०५

१५८. आस्तां तावदिदं स्वल्पं व्याघाति भवजं सुखम् ।
मोक्षजं लभ्यते भक्त्या जिनानामुत्तमं सुखम् ॥९।२०७

१५९. एकया दशया कस्य कालो गच्छति सज्जन !
विपदोऽनन्तरा सम्पत् सम्पदोऽनन्तरा विपत् ॥९।२११

१६०. धिङ्मनोभवदूषितम् ! ॥१०।११३

१६१. महेच्छा हि तुष्यन्त्यप्रणतिमात्रतः ॥१०।२१

१६२. बलानां हि समस्तानां बलं कर्मकृतं परम् ॥१०।२६

१६३. प्रायो हि सोदरस्नेहात् परः स्नेहो न विद्यते ॥१०।३२

१६४. पराभिभवमात्रेण क्षत्रियाणां कृतार्थता ॥१०।१४७

१६५. स्वर्गं धिक् च्युतिकोपेन किम् येन दुःखसाधनम् ॥१०।६३

१६६. प्रवयसां नृणाम् । प्रव्रज्या शोभते ॥१०।१६५॥

१६७. नैव मृत्युर्विवेककान् । शरद्घन इवाकस्माद्देहो नाशं प्रपद्यते ।।१०।१६६

१६८. येन केनचिदुदात्तकर्मणा कारणेन रिपुणेतरेण वा ।
निर्मितेन समवाप्यते मतिः श्रेयसी न तु निकृष्टकर्मणा ।।१०।१७७

१६९. यः प्रयोजयति मानसं शुभे यस्य तस्य परमः स बान्धवः ।
भोगवस्तुनि तु यस्य मानसं यः करोति परमारिः कस्य सः ।।१०।१७८

१७०. निसर्गोऽयं यदाप्तस्य पुरः शोको विवर्द्धते । ११।३०

१७१. प्राणनाथपरित्यक्ता का वा स्त्री सुखमृच्छति ? ११।५४

१७२. सत्यं वदन्ति राजानः पृथिवीपालनोद्यताः ।
ऋषयस्ते हि भाष्यन्ते ये स्थिता जन्तुपालने ।। ११।५८

१७३. यतो धर्मस्ततो जयः ।। ११।७४

१७४. हिंसायज्ञमिमं घोरमाचरन्ति न ये जनाः ।
दुर्गतिं ते न गच्छन्ति महादुःखविधायिनीम् ।। ११।१०४

१७५. कष्टं पश्यत नर्त्यन्ते कर्मभिर्जन्तवः कथम् ? ११।१२३

१७६. यथा हि छर्दितं नान्नं भुज्यते मानुषै. पुनः ।
तथा त्यक्तेषु कामेषु न कुर्वन्ति मतिं बुधाः ।। ११।१२६

१७७. दह्यमाने यथागारे कथञ्चिदपि निःसृतः ।
तत्रैव पुनरात्मानं प्रक्षिपेन्मूढमानसः ।। ११।१३२
यथा च विवरं प्राप्य निष्क्रान्तः पञ्जरात् खगः ।
निवृत्य प्रविशेद् भूयस्तत्रैवाज्ञानचोदितः ।। ११।१३३
तथा प्रव्रजितो भूत्वा यो यातीन्द्रियवश्यताम् ।
निन्दितः स भवेल्लोके न च स्वार्थं समश्नुते ।। ११।१३४

१७८. प्राणिनो ग्रन्थसंगेन रागद्वेषसमुद्भवः ।
रागात् सञ्जायते कामो द्वेषाज्जन्तुविनाशनम् ।। ११।१३६
कामक्रोधाभिभूतस्य मोहेनाक्रम्यते मनः ।
कृत्याकृत्येषु मूढस्य मतिर्न स्याद्विवेकिनी ।। ११।१३७
यत्किञ्चित्कुर्वतस्तस्य कर्मोपार्जयतोऽशुभम् ।
संसारसागरे घोरे भ्रमणं न निवर्तते ।। ११।१३८
एतान् संसर्गजान् दोषान् विदित्वाशु विपश्चितः ।
वैराग्यमधिगच्छन्ति नियम्यात्मानमात्मना ।। ११।१३९

१७९. अरण्यान्यां समुद्रे वा स्थितं वारातिपञ्जरे ।
स्वयंकृतानि कर्माणि रक्षन्ति न परो जनः ।। ११।१४७

यः पुनः प्राप्तकालः स्याज्जनन्यङ्कगतोऽपि सः ।
ह्रियते मृत्युना जीवः स्वकर्मवशतां गतः ॥ ११।१४८

१८०. अपूर्णैः क्षुद्रैर्भिः प्रोक्तं वचनं स्यान्मलीमसम् ॥ ११।१६६

१८१. सति सर्वज्ञतायोगे वक्ता हि सुतरां भवेत् ॥ ११।१८५

१८२. गुणैर्वर्णव्यवस्थितिः ॥ ११।१६८

१८३. ब्राह्मण्यं गुणयोगेन न तु तद्योनिसम्भवात् ॥ ११।२००

१८४. न जातिर्गर्हिता काचिद् गुणाः कल्याणकारणम् । ११।२०३

१८५. विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुचि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥ ११।२०४

१८६. शास्त्रमुच्यते । तद्धि यन्मातृवच्छास्ति सर्वस्मै जगते हितम् । ११।२०६

१८७. प्रायश्चित्तं च निर्दोषे वक्तुं कर्मणि नोचितम् ॥ ११।२१०

१८८. किञ्चिन्न कृत्यं प्राणिहिंसया ॥ ११।३००

१८९. अज्ञानेन हि जन्तूनां भवत्येव दुरीहितम् ॥ ११।३०५

१९०. पुण्यसम्पूर्णदेहाना सौभाग्यं केन कथ्यते ? ११।३५१

१९१. नाम श्रुत्वा प्रणमति जनः पुण्यभाजां नराणाम् ॥ ११।३८३

१९२. पुण्यबन्धे यतध्वम् ॥ ११।३८३

१९३. ज्येष्ठो व्याधिसहस्राणां मदनो मतिसूदनः ।
येन सम्प्राप्यते दुःखं नरैरक्षतविग्रहैः ॥ १२।३३

१९४. प्रधानं दिवसाधीशः सर्वेषां ज्योतिषां यथा ।
तथा समस्तरोगाणां मदनो मूर्ध्नि वर्तते ॥ १२।३४

१९५. आमगर्भेषु दुःखानि प्राप्नुवन्ति चिरं जनाः ।
ये शरीरस्य कुर्वन्ति स्वस्याविधिनिपातनम् ॥ १२।४८

१९६. अहो कष्टः संसारः सारवर्जितः ॥ १२।५०

१९७. पृथक् पृथक् प्रपद्यन्ते सुखदुःखकरीं गतिम् ।
जीवाः स्वकर्मसंपन्नाः कोऽत्र कस्य सुहृज्जनः ? १२।५१

१९८. विजिगीषुत्वं क्रियते दीर्घदर्शिना ॥ १२।६४

१९९. समानं ख्याति येनातः सखिशब्दः प्रवर्तते ॥ १२।१००

२००. सख्यो हि जीवितालम्बनं परम् । १२।१०१

२०१. विधवा भर्तृसंयुक्ता प्रमदा कुलबालिका ।
वेश्या च रूपयुक्तापि परिहार्या प्रयत्नतः ॥ १२।१२४

२०२. लोकद्वयपरिभ्रष्टः कीदृशो वद मानवः ? १२।१२५

२०३. नरान्तरमुखक्लेदपूर्णेऽन्याङ्गविमर्दिते।
उच्छिष्टभोजने भोक्तुं (भद्रे !) वाञ्छति को नरः? ८।१२६

२०४. उदारा भवन्ति हि दयापराः॥ १२।१३१

२०५. प्राणिनां रक्षणे धर्मः श्रूयते प्रकटो भुवि॥ १२।१३२

२०६. उत्तिष्ठतो मुखं भंक्तुमधरेणापि शक्यते।
कण्टकस्यापि यत्नेन परिणाममुपेयुषः॥ १२।१६०

२०७. उत्पत्तावेव रोगस्य क्रियते ध्वसनं सुखम्।
व्यापी तु बद्धमूल. स्यादूर्ध्वं स क्षेत्रियोऽथवा॥ १२।१६१

२०८. जायते विफलं कर्माप्रेक्षापूर्वकारिणाम्॥ १२।१६५

२०९. भवत्यर्थस्य संसिद्ध्यै केवलं च न पौरुषम्।
कर्षकस्य विना वृष्ट्या का सिद्धिः कर्मयोगिनः? १२।१६०

२१०. समानमहिमानाना पठतां च समादरम्।
अर्थभाजो भवन्त्येके नापरे कर्मणां वशात्॥ १२।१६७

२११. प्रकृष्टवयसा पुसा धीर्यात्येवाथवा क्षयम्॥ १२।१७२

२१२. हतानेककुरंगं कि शबरो हन्ति नो हरिम्॥ १२।१७६

२१२(क). संग्रामे शस्त्रसम्पातजातज्ज्वलनजालके।
वरं प्राणपरित्यागो न तु प्रतिनरानतिः॥ १२।१७७

२१३. प्राणानभिमुखीभूता मुञ्चन्ति न तु सायकान्॥ १२।२०४

२१४. नखेन प्राप्यते छेदं वस्तु यत्स्वल्पयत्नतः।
व्यापारः परशोस्तत्र ननु (तात !) निरर्थकः॥ १२।२२८

२१५. तन्दुलेषु गृहीतेषु ननु शालिकलापतः।
त्यागस्तुषपलालस्य क्रियते कारणाद्विना॥ १२।३५२

२१६. धिगतिचपलं मानुषसुखम्। १२।३७५

२१७. रविरुचिकरं यान्तु सुकृतम्॥ १२।३७६

२१८. परगर्वापसादं हि समीहन्ते नराधिपाः॥१३।४

२१९. (किन्तु) मातेव नो शक्या त्यक्तुं जन्मवसुन्धरा।
सा हि क्षणाद्वियोगेन कुरुते चित्तमाकुलम्॥१३।२८

२२०. जन्मभूमेः किमुच्यताम्? १३।३०

२२१. धिग् विद्यागोचरैश्वर्यं विलीनं यदिति क्षणात्।
शारदानामिवाब्दानां वृन्दमत्यन्तमुन्नतम्॥१३।४०

२२२. अथवा कर्मणामेतद्वैचित्र्यं कोऽन्यथा नरः।
कर्तुं शक्नोति तेषां हि सर्वमन्यद्बलाधरम्॥१३।४२

२२३. कर्मणामुचितं तेषां जायते प्राणिनां फलम् ॥१३।६८
२२४. हेतुना न विना कार्यं भवतीति किमद्भुतम् ? १३।६६
२२५. लोकत्रयेऽपि तन्नास्ति तपसा यन्न साध्यते।
बलानां हि समस्तानां स्थितं मूर्ध्नि तपोबलम् ॥१३।६२
२२६. न सा त्रिदशनाथस्य शक्तिः कान्तिर्द्युतिर्धृतिः।
तपोधनस्य या साधोर्यथाभिमतकारिणः ॥१३।६३
२२७. विधाय साधुलोकस्य तिरस्कारं जना महत्।
दुःखमत्र प्रपद्यन्ते तिर्यक्षु नरकेषु च ॥१३।६४
२२८. मनसापि हि साधूनां पराभूतिं करोति यः।
तस्य सा परमं दुःखं परत्रेह च यच्छति ॥१३।६५
२२९. यस्त्वाक्रोशति निर्ग्रन्थं हन्ति वा क्रूरमानसः।
तत्र किं शक्यते वक्तुं जन्तौ दुष्कृतकर्मणि ॥१३।६६
२३०. कायेन मनसा वाचा यानि कर्माणि मानवाः।
कुर्वते तानि यच्छन्ति निकचानि फलं ध्रुवम् ॥१३।६७
२३१. साधोः सङ्गमनाल्लोके न किञ्चिद्दुर्लभं भवेत्।
बहुजन्मसु न प्राप्ता बोधिर्येनाधिगम्यते ॥१३।१०१
२३२. प्रायेण महतां शक्तिर्यादृशी रौद्रकर्मणि।
कर्मण्येव विशुद्धेऽपि परमा चोपजायते ॥१३।१०८
२३३. स्तोकमपीह न चाद्भुतमस्ति न्यस्य समस्तपरिग्रहसङ्गम्।
यत्क्षणतो दुरितस्य विनाशं ध्यानबलाज्जनयन्ति बृहन्तः ॥१३।१११
२३४. अर्जितमत्युरुकालविधानादिन्धनराशिमुदारमशेषम्।
प्राप्य परं क्षणतो महिमानं किं न दहत्यनिलः कणमात्रः ॥१३।११२

(चतुर्दश पर्व में अनन्तबल केवली का उपदेश है। उसमें प्रायः विचारात्मक पद्य ही हैं जिन्हें धार्मिक सुभाषित कहा जा सकता है। उनमें कुछ यहाँ दिये जा रहे हैं।)

२३५. सुप्तमेतेन जीवेन स्थलेऽम्भसि गिरौ तरौ।
गहनेषु च देशेषु भ्राम्यता भवसंकटे ॥१४।३६
२३६. तिलमात्रोऽपि देशोऽसौ नास्ति यत्र न जन्तुना।
प्राप्तं जन्म विनाशो वा संसारावर्तपातिना ॥१४।३८
२३७. सर्वं तु दुःखमेवात्र सुखं तत्रापि कल्पितम् ॥१४।४६

२३८. कृत्वा चतुर्गती नित्यं भवे भ्राम्यन्ति जन्तवः।
अरघट्टघटीयन्त्रसमानत्वमुपागताः ॥१४।५०

२३९. सम्यग्दर्शनशक्त्या च प्राप्नुते मुक्तयो जनान् ॥१४।५५

२४०. दर्शनेन विशुद्धेन ज्ञानेन च यदन्वितम्।
चारित्रेण च तत्पात्रं परमं परिकीर्तितम् ॥१४।५६

२४१. दानं निन्दितमप्येति प्रशंसां पात्रभेदतः।
शुक्तिपीतं यथा वारि मुक्तीभवति निश्चयम् ॥१४।७७

२४२. अन्तरङ्गं हि संकल्पः कारणं पुण्यपापयोः।
विना तेन बहिर्दानं वर्षः पर्वतमूर्धनि ॥१४।७९

२४३. वाणिज्यसदृशो धर्मस्तत्रान्वेष्याल्पभूरिता।
बहुना हि पराभूतिः क्रियतेऽल्पस्य वस्तुनः ॥१४।९१

२४४. यथा विषकणः प्राप्तः सरसी नैव दुष्यति।
जिनधर्मोद्यतस्यैवं हिंसालेशो वृथोद्भवः ॥१४।९२

२४५. आशापाशवशा जीवा मुच्यन्ते धर्मबन्धुना ॥१४।१०२

२४६. नैव किञ्चिदसाध्यत्वं धर्मस्य प्रतिपद्यते ॥१४।१२५

२४७. सारस्त्रिभुवने धर्मः सर्वेन्द्रियसुखप्रदः।
क्रियते मानुषे देहे ततो मनुजता परा ॥१४।१५५

२४८. तृणानां शालयः श्रेष्ठाः पादपानां च चन्दनाः।
उपलानां च रत्नानि भवानां मानुषो भवः ॥१४।१५६

२४९. पतितं तन्मनुष्यत्वं पुनर्दुर्लभसङ्गमम्।
समुद्रसलिले नष्टं यथा रत्नं महागुणम् ॥१४।१५९

२५०. इहैव मानुषे लोके कृत्वा धर्मं यथोचितम्।
स्वर्गादिषु प्रपद्यन्ते सर्वं प्राणभृतः फलम् ॥१४।१६०

२५१. न शीलं न च सम्यक्त्वं न त्यागः साधुगोचरः।
यस्य तस्य भवाम्भोधितरणं जायते कथम् ॥१४।२२९

२५२. संसारसागरे भीमे रत्नद्वीपोऽयमुत्तमः।
यदेतन्मानुषं क्षेत्रं तद्धि दुःखेन लभ्यते ॥१४।२३४

२५३. यथात्र सूत्रार्थं कश्चित् संचूर्णयेन्मणीन्।
विषयार्थं तथा धर्मरत्नानां चूर्णको जनः ॥१४।२३६

२५४. स्वल्पं स्वल्पमपि प्राज्ञैः कर्त्तव्यं सुकृतार्जनम्।
पतद्भिर्बिन्दुभिर्जाता महानद्यः समुद्रगाः ॥१४।२४४

२५५. वर्जनीया निशाभुक्तिरनेकापायसंगता ॥१४।३०८

२५६. धर्मो मूलं सुखोत्पत्तेरधर्मो दुःखकारणम् ।
इति ज्ञात्वा भजेद्धर्ममधर्मं च विवर्जयेत् ॥१४।३१०

२५७. आगोपालाङ्गनं लोके प्रसिद्धिमिदमागतम् ।
यथा धर्मेण शर्मेति विपरीतेन दुःखितम् ॥१४।३११✓

२५८. हुताशनशिखा पेया बद्धव्यो वायुरंशुके ।
उत्क्षेप्तव्यो धराधीशो निर्ग्रन्थत्वमभीप्सता ॥१४।३६३

२५९. भवन्ति कर्माणि यदा शरीरिणां प्रशान्तियुक्तानि विमुक्तिभाविनाम् ।
तदोपदेशं परम गुरोर्मुखादवाप्नुवन्ति प्रभव शुभस्य ते ॥१४।३८०

२६०. अत्यन्तव्याकुलप्रायः कन्यादुःख मनस्विनाम् ॥१५।२३

२६१. गमिष्यति पति श्लाघ्यं रमयिष्यति तं चिरम् ।
भविष्यत्युज्झिता दोषैरतिचिन्ता नृणां सुता ॥१५।२८

२६२. स्त्रीहेतो. किं न वेध्यते ? १५।३५

२६३. अथवा वचनज्ञानमस्पष्टमुपजायते ॥१५।५२

२६४. हताशं धिगनङ्गकम् ॥१५।१०१

२६५. मृदुचित्ताः स्वभावेन भवन्ति किल योषितः ॥१५।११२

२६६. अथवा सर्वकार्येषु साधनीयेषु विष्टपे ।
मित्रं परममुज्झित्वा कारण नान्यदीक्ष्यते ॥१५।११०

२६७. कुटुम्बी क्षितिपालाय, गुरवेऽन्तेवसन्, प्रिया ।
पत्यै, वैद्याय रोगार्त्तो, मात्रे शैशवसङ्गतः ॥१५।१२२
निवेद्य मुच्यते दुःखाद्यथात्यन्तपुरोरपि ।
मित्रायैवं नरः प्राज्ञः ॥१५।१२३

२६८. जीवितं ननु सर्वस्यादिष्टं सर्वशरीरिणाम् ।
सति तत्रान्यकार्याणामात्मलाभस्य सम्भवः ॥१५।१२७

२६९. श्लाघ्यसम्बन्धजस्तोषो वधूनामभवत्परः ॥१५।१४१

२७०. इतरस्यापि नो युक्तं कर्तुं नारीविपादनम् ॥१५।१७३

२७१. विचित्रा चेतसो वृत्तिर्जनस्यात्र न कुप्यते ॥१५।१७५

२७२. सन्देहविषमावर्त्ता दुर्भावग्राहसङ्कुला ।
दूरतः परिहर्तव्या पररक्ताङ्गनापगा ॥१५।१७६

२७३. कुभावगहनात्यन्तं हृषीकव्यालजालिनी ।
बुधेन नार्यरण्यानी सेवनीया न जातुचित् ॥१५।१८०

२७४. किं राजसेवनं शत्रुसमाश्रयसमागमम् ।
श्लथं मित्रं स्त्रियं चान्यसक्तां प्राप्य कुतः सुखम् ? १५।१८१

२७५. इष्टान् बन्धून् सुतान् दारान् बुधा मुञ्चन्त्यसत्कृताः ।
परामवजलाध्माताः क्षुद्रा नश्यन्ति तत्र तु ॥१५।१८२

२७६. मदिरारागिणं वैद्यं द्विपं शिक्षाविवर्जितम् ।
अहेतुवैरिणं क्रूरं धर्मं हिंसनसङ्गतम् ॥१५।१८३
मूर्खगोष्ठीं कुमर्यादं देशं चण्डं शिशुं नृपम् ।
वनितां च परासक्तां सूरिर्दूरेण वर्जयेत् ॥१५।१८४

२७७. अविदिततत्त्वस्थितयो विदधति यज्जन्तवः परेऽशर्म ।
तत्तत्र मूलहेतौ कर्मरवौ तापके दृष्टम् ॥१५।२२७

२७८. अस्मत्प्रयतनासाध्यो गोचरो ह्येष कर्मणाम् ॥१६।३०

२७९. नोदाराणां यतः कृत्ये मुच्यते चेतसा रसः ॥१६।५४

२८०. भर्तापि तेजसा कृत्यं कुरुतेऽरुणसङ्गतः ॥१६।६६

२८१. जगद्दाहे स्फुलिङ्गस्य किं वा वीर्यं परीक्ष्यते ? १६।७६

२८२. रमणेन वियुक्तायाः पल्लवोऽप्येति खड्गताम् ।
चन्द्रांशुरपि वज्रत्वं स्वर्गोऽपि नरकायते ॥१६।११६

२८३. धिगस्मत्सदृशान् मूर्खानप्रेक्षापूर्वकारिणः ।
जनस्य ये विना हेतु यत्कुर्वन्त्यसुखासनम् ॥१६।१२१

२८४. निश्चित्य विहिते कार्ये लभन्ते प्राणिनः सुखम् ॥१६।१२६

२८५. कर्मवशीकृतम् ।
जगत्सर्वमवाप्नोति दुःखं वा यदि वा सुखम् ॥१६।१५९

२८६. ननु चन्द्रेण शर्वर्याः संगमे का न चारुता ? १६।१६३

२८७. भवत्यथवा काले कल्याण कर्मचोदितम् ॥१६।१६५

२८८. क्षेमाय दीर्घदर्शित्वं कल्पते प्राणधारिणाम् ॥१६।२३२

२८९. कदाचिदिह जायते स्वकृतकर्मपाकोदयात्,
सुखं जगति संगमादभिमतस्य सद्वस्तुनः ।
कदाचिदपि संभवत्यसुभृतामसौख्यं परम्,
भवे भवति न स्थितिः समगुणा यतः सर्वदा ॥१६।२४२

२९०. यत्रैव जनकः क्रुद्धो विदधाति निराकृतिम् ।
तत्र शेषजने काऽऽस्था तच्छन्दकृतचेष्टिते ॥१७।६१

२९१. नेत्रे निमील्य सोढव्यं कर्म पाकमुपागतम् ॥१७।८१

२९२. सर्वेषामेव जन्तूनां पृष्ठतः पार्श्वतोऽग्रतः ।
कर्म तिष्ठति ॥१७।८२

२९३. अप्सरःशतनेत्रालीनिलयीभूतविग्रहाः ।
प्राप्नुवन्ति परं दुःखं सुकृतान्ते, सुरा अपि ॥१७।८३

२९४. चिन्तयत्यन्यथा लोकः प्राप्नोति फलमन्यथा ।
लोकव्यापारसक्तात्मा परमो हि गुरुर्विधिः ॥१७।८४

२९५. हितङ्करमपि प्राप्तं विधिर्नाशयति क्षणात् ।
कदाचिदन्यदा धत्ते मानसस्याप्यगोचरम् ॥१७।८५

२९६. गतय. कर्मणां कस्य विचित्रा परिनिश्चिताः ॥१७।८६

२९७. साधुवर्गो हि सर्वेभ्यः प्राणिभ्यः शुभमिच्छति ॥१७।१७१

२९८. भवे चतुर्गतौ भ्राम्यन् जीवो दुःखैश्चित. सदा ।
सुमानुषत्वमायाति शमे कटुककर्मणः ॥१७।१७५

२९९. यानि यानि हि सौख्यानि जायन्ते चात्र भूतले ।
तानि तानि हि सर्वाणि जिनभक्ते विशेषतः ॥१७।२०५

३००. रोगमूलस्य हि च्छाया न स्निग्धा जायते तरोः ॥१७।३३२

३०१. दु.ख हि नाशमायाति सज्जनाय निवेदितम् ।
महता ननु शैलीयं यदापद्गततारणम् ॥१७।३३४

३०२ स्खलन्ति न विधातव्ये वनेऽपि गुणिनो जनाः ॥१७।३५७

३०२. सम्भवतीह भूधररिपुः पविरपि कुसुमं,
वह्निरपीन्दुपादशिशिरं पृथु कमलवनम् ।
खड्गलतापि चारुवनिता सुमृदुभुजलता,
प्राणिषु पूर्वजन्मजनितात्सुचरितबलतः ॥१७।४०५

३०४. एष तपत्यहो परिदृढं जगदनवरतं
व्याधिसहस्ररश्मिनिकरो ननु जननरविः ॥१७.४०६

३०५. विवेकेन हि निर्युक्ता जायन्ते दुःखिनो जनाः । १८।४७

३०६. अपरीक्षणशीलाना सहसा कार्यकारिणाम् ।
पाश्चात्तापो भवत्येव जनानां प्राणधारिणाम् ॥ १८।६२

३०७. न त्वापन्नहितोन्मुक्ता महात्मानो भवन्ति हि ॥ १८।७९

३०८. उपायेभ्यो हि सर्वेभ्यो वशीकरणवस्तुनि ।
कामिनीसङ्गमुज्झित्वा नापरं विद्यते परम् ॥ १८।९९

३०९. किं शिवस्थानं कदाचिल्लब्धमाप्यते ? १९।११

३१०. पुण्यस्य पश्यतौदार्यं यदुद्भवति तद्भवति ।
बहूनामुद्भवः पुंसां पतिते पतनं तथा ॥ १९।६८

३११. कर्मवैचित्र्याल्लोकोऽयं चित्रचेष्टितः ॥ १९।७९

३१२. पालिका मुग्धलोकस्य शत्रुलोकस्य नाशिका।
गुरुशुश्रूषिणी चेष्टा ननु चेष्टा महात्मनाम् ॥१६।८६

३१३. ग्रहणं ननु वीराणां रणे सत्कीर्तिकारणम्। १६।८६

३१४. द्वयमेव रणे वीरैः प्राप्यते मानशालिभिः।
ग्रहणं मरणं वापि कातरैश्च पलायितुम् ॥ १६।६०

३१५. एकापि यस्येह भवेद् विरूपा
नरस्य जाया प्रतिकूलचेष्टा।
रतेः पतित्वं स नरः करोति
स्थितः सुखे संसृतिधर्मजाते ॥ १६।१३१

३१६. विषयवशमुपेतैर्नष्टतत्त्वार्थबोधैः
कविभिरतिकुशीलैर्नित्यपापानुरक्तैः।
कुरचितगरहेतुग्रन्थवाग्वागुराभिः
प्रगुणजनमृगौघो वध्यते मन्दभाग्यः ॥ १६।१३६

३१७. कुलानामिति सर्वेषां श्रावकाणां कुलं स्तुतम्।
आचारेण हि तत्पूतं सुगत्यर्जनतत्परम् ॥ २०।१४०

३१८. असारां धिगिमां शोभां मर्त्यानां क्षणिकामिति ॥ २०।१६०

३१९. न पाथेयमपूपादि गृहीत्वा कश्चिद्गच्छति।
लोकान्तरं न चायाति किन्तु तत्सुकृतेतरम् ॥ २०।१६६

३२०. कैलासकूटकल्पेषु वरस्त्रीपूर्णकुक्षिषु।
यद्वसन्ति स्वगारेषु तत्फलं पुण्यवृक्षजम् ॥ २०।१६७

३२१. शीतोष्णवातयुक्तेषु कुगृहेषु वसन्ति यत्।
दारिद्र्यपङ्कनिर्मग्नास्तदधर्मतरोः फलम् ॥ २०।१६८

३२२. विन्ध्यकूटसमाकारैर्वारणेन्द्रैर्व्रजन्ति यत्।
नरेन्द्राश्चामरोद्धूताः पुण्यशालेरिदं फलम् ॥ २०।१६६

३२३. तुरङ्गैर्यदल स्वङ्गैर्गम्यते चलचामरैः।
पादातमध्यगैः पुण्यनृपतेस्तद्विचेष्टितम् ॥ २०।२००

३२४. कल्पप्रासादसङ्काशं रथमारुह्य यज्जनाः।
व्रजन्ति पुण्यशैलेन्द्रात् स्रुतोऽसौ स्वादुनिर्झरः ॥ २०।२०१

३२५. स्फुटिताभ्यां पदाङ्घ्रिभ्यां मलग्रस्तपटच्चरैः।
भ्रम्यते पुरुषैः पापविषवृक्षस्य तत्फलम् ॥ २०।२०२

३२६. अन्नं यदमृतप्रायं हेमपात्रेषु भुज्यते।
स प्रभावो मुनिश्रेष्ठैरुक्तो धर्मरसायनः ॥ २०।२०३

३२७. देवाधिपतिता चक्रचुम्बिता यच्च राजता।
लभ्यते भव्यशार्दूलैस्तदहिंसालताफलम् ॥ २०।२०४

३२८. रामकेशवयोर्लक्ष्मीर्लभ्यते यच्च पुङ्गवैः।
तद्धर्मफलम् ॥ २०।२०५

३२९. सनिदानं तपस्तस्माद्वर्जनीयं प्रयत्नतः।
तद्धि पश्चान्महाघोरदुःखदानसुशिक्षितम् ॥ २०।२१५

३३०. केचिद्गच्छन्ति मोक्ष कृतपुरुतपसः स्तोकपङ्काश्च केचित्।
केचिद्भ्राम्यन्ति भूयो बहुभवगहनां संसृति निर्विरामाः ॥ २०।२४६

३३१. चक्रवत्परिवर्तन्ते व्यसनानि महोत्सवैः।
शनैर्मायादयो दोषाः प्रयान्ति परिवर्द्धनम् ॥२१।५६

३३२. शुभाशुभसमासक्ता व्यतिक्र.मन्ति मानवाः ॥२१।७१

३३३. जातस्य सुन्दरावश्यं मृत्यु. प्रेतम्य सम्भवः ॥२१।११३

३३४. मृत्युजन्मघटीयन्त्रमेतद् भ्राम्यत्यनारतम्।
विद्युत्तरङ्गदुष्टाहिरसनेभ्योऽपि चञ्चलम् ॥२१।११४

३३५. स्वप्नभोगोपमा भोगा जीवितं बुद्बुदोपमम् ॥२१।११५

३३६. सन्ध्यारागोपम स्नेहस्तारुण्यं कुसुमोपमम् ॥२१।११६

३३७. परिहासेन किं पीतं नौषधं हरते रुजम ॥२१।११७

३३८. अर्थो धर्मश्च कामश्च त्रयस्ते तरुणोचिताः।
जरापरीतकायस्य दुष्कराः प्राणधारिणः ॥२१।१३६

३३९ कष्टमहो न शक्यते
विधिर्विनेतुं प्रकटीकृतोदयः । २१।१४६

३४०. उत्सार्य यो भीषणमन्धकारं
करोति निष्कान्तिकमिन्दुबिम्बम्।
असौ रविः पद्मवनप्रबोधः
स्वर्भानुमुत्सारयितुं न शक्तः ॥२१।१४७
तारुण्यसूर्योऽप्ययमेवमेव
प्रणश्यति प्राप्तजरोपसंगः।
जन्तुर्वराको वरपाशबद्धो
मृत्योरवश्यं मुखमभ्युपैति ॥२१।१४८

३४१. धर्मे विनष्टे वद किं न नष्टम्? २१।१५५

३४२. पश्य श्रेणिक! संसारे संमोहस्य विचेष्टितम्।
यत्राभीष्टस्य पुत्रस्य माता गात्राणि खादति ॥२२।६३

किमतोऽन्यत्परं कष्टं यज्जन्मान्तरमोहिताः।
बान्धवा एव गच्छन्ति वैरितां पापकारिणः ॥२२।६४

३४३. कर्मभूमिमिमां प्राप्य धन्यास्ते युवपुङ्गवाः।
व्रतपोतं समारुह्य तेरुर्ये भवसागरम् ॥२२।१११

३४४. अधोगति(र्यतो) राज्यादत्यक्तादुपजायते।
सम्यग्दर्शनयोगात्तु गतिरूर्ध्वमसंशया ॥२२।१७८

३४५. जीवितायाखिलं कृत्यं क्रियते (नाथ!) जन्तुभिः।
त्रैलोक्येशत्वलाभोऽपि (वद) तेनोज्झितस्य कः? २३।३८

३४६. उपर्युपरि हि प्रायश्चलन्ति विदुषां धियः ॥२३।४५

३३७. जन्तुभ्यो यो ददात्यभयं नरः।
किं न तेन भवेद्दत्तं साधूना धुरि तिष्ठता? २३।४६

३४८. यद्यत्र यावच्च यतश्च येन
दुःखं सुखं वा पुरुषेण लभ्यम्।
तत्तत्र तावच्च ततश्च तेन
सम्प्राप्यते कर्मवशानुगेन ॥२३।६२

३४९. दुःशिक्षितार्थैर्मनुजैरकार्ये
प्रवर्तते जन्तुरसारबुद्धिः ॥२३।६४

३५० आशीविषाङ्कप्रभवोऽपि सर्प-
स्तार्क्ष्यस्य शक्नोति किमु प्रहर्तुम्? २३।६०

३५१. क्वेभः सशङ्को मदमन्दगामी
क्व केसरी वायुसमानवेगः? २३।६१

३५२. कालज्ञान हि सर्वेषां नयानां मूर्धनि स्थितम् ॥२४।१००

३५३. अवस्थितं जगद्व्याप्य नुदेदर्कः कथं तमः।
सव्येष्टा चेद्भवेदस्य न मूर्तिररुणात्मिका ॥२४।१२८

३५४. दुराचारयुक्ताः परं यान्ति दुःख
सुख साधुवृत्ता रविप्रख्यभासः ॥२४।१३५

३५५. द्रविणोपार्जनं विद्याग्रहणं धर्मसंग्रह.।
स्वाधीनमपि तत्प्रायो विदेशे सिद्धिमश्नुते ॥२५।४४

३५६. ज्ञानं सम्प्राप्य किञ्चिद् व्रजति परमतां तुल्यमन्यत्र यातं
तावत्वेनापि नैति क्वचिदपि पुरुषे कर्मवैषम्ययोगात्।
अत्यन्तं स्फीतिमेति स्फटिकगिरितटे तुल्यमन्यत्र देशे
यात्येकान्तेन नाशं तिमिरवति रवेरंशुवृन्दं खगौघैः ॥२५।५६

३५७. विद्याधर्मविगाहश्च जायतेऽस्त्रहितात्मनाम् । २६।७

३५८. पुरा संसर्गतः प्रीतिः प्राणिनामुपजायते ।
प्रीतितोऽभिरतिप्राप्ती रतेर्विश्रम्भसम्भवः ॥
सद्भावात्प्रणयोत्पत्तिः प्रेमैवं पञ्चहेतुकम् ।
दुर्मोचं बध्यते कर्म पातकैरिव पञ्चभिः ॥ २६।८-९

३५९. भीषितानां दरिद्राणामार्तानां च विशेषतः ।
नारीणां पुरुषाणां च सर्वेषां शरणं नृपः ॥ २६।२२

३६०. स्नेहस्य किमु दुष्करम् । २६।४२

३६१. आखोर्गिरिबिलस्थस्य किं करोतु मृगाधिपः । २६।४६

३६२. दुःखिताना दरिद्राणा वर्जितानां च बान्धवैः ।
व्याधिसंपीडिताना च प्रायो भवति धर्मधीः ॥ २६।६१

३६३. माता पिता च पुत्रश्च मित्राणि च सहोदराः ।
भक्षितास्तेन यो मांसं भक्षयत्यधमो नरः ॥ २६।७४

३६४. ननु रविकरसङ्गस्योचिता पद्मलक्ष्मीः । २६।१७१

३६५. न ह्याखूना विरोधेन क्षुभ्यन्ति वरवारणा ।
न चापि तूलदाहार्थं सन्नह्यति विभावसुः ॥ २७।३७

३६६. सद्य उत्पन्नो भृशमल्पोऽपि पावकः ।
कथं दहति विस्तीर्णं महद्भिः किं प्रयोजनम् ॥ २७।४०

३६७. बालः सूर्यस्तमो घोरं द्युतीर् ऋक्षगणस्य च ।
एको नाशयति क्षिप्रं मूर्तिभिः किं प्रयोजनम् ॥ २७।४१

३६८. सत्त्वत्यागादिवृत्तीना क्षत्रियाणामियं स्थितिः ।
उत्सहन्ते प्रयातुं यद्विहातुमपि जीवितम् ॥ २७।४३

३६९. अथवा क्षयमप्राप्ते जन्तुरायुषि नाश्नुते ।
मरणं गहनं प्राप्तः परं यद्यपि जायते ॥ २७।४४

३७०. स्थ ननु कर्म पुंसाम् ।
समागमे गच्छति हेतुभावं वियोजने वा सुजनेन साकम् ॥ २७।६३

३७१. शिशोर्विषफले प्रीतिर्निःस्वस्य बदरादिषु ।
ध्वाङ्क्षस्य पादपे शुष्के स्वभावः खलु दुस्त्यजः ॥ २८।१४३

३७२. अत्यन्तविपुलः क्षारसागरः ।
न तत्करोति यद्वाप्यः स्तोकस्वादुपयोभृतः ॥ २८।१४६

३७३. अत्यन्तघनबन्धेन तमसा भूयसापि किम् ।
अल्पेन तु प्रदीपेन जम्यते लोकचेष्टितम् ॥ २८।१४७

३७४. असंख्या अपि मातङ्गा मदिनः कुर्वते न तत् ।
केशरी यत्किशोरः संश्चन्द्रनिर्मलकेसरः ॥ २८।१४८

३७५. अर्हन्तस्त्रिजगत्पूज्याश्चक्रिणो हरयो बला. ।
उत्पद्यन्ते नरा यस्यां सा कथं निन्दिता मही ॥ २८।१५४

३७६. वायसा अपि गच्छन्ति नभसा तेन किं भवेत् ।
गुणेष्वत्र मनः कृत्यमिन्द्रजालेन को गुणः ॥ २८।१६५

३७७. शरीरे सति कामिन्यो भविष्यन्ति मनीषिताः ॥ २८।१८४

३७८. ननु कर्माजितं पुरा ।
नर्तयत्यखिलं लोकं नृत्ताचार्यो ह्यसौ परः ॥ २८।२०२

३७९. पद्मगर्भदलच्छाया साक्षाल्लक्ष्मीरिवोज्ज्वला ।
ईदृशी पुरुपुण्यस्य पुसो भवति भामिनी ॥ २८।२५५

३८०. यादृग् येन कृतं कर्म भुङ्क्ते तादृक् स तत्फलम् ।
न ह्युप्तान् कोद्रवान् कश्चिदश्नुते शालिसम्पदम् ॥ २८।२६५

३८१. समवगम्य जनाः शुभकर्मणः फलमुदारमशोभनतोऽन्यथा ।
कुरुत कर्म बुधैरभिनन्दितं भवत येन रवेरधिकप्रभाः ।२८।२७५

३८२. सर्वतो मरणं दुःखम् ॥२९।२६

३८३. प्रसादध्वनिपर्यन्तप्रकोपा हि महास्त्रियः ॥२९।२९

३८४. प्रणयादपराधेऽपि ननु तुष्यन्ति योषितः ॥२९।३७

३८५. दयिते क्रियते यावत्कोपो दारुणमानसे ।
तावत्संसारसौख्यस्य विघ्नं जानीहि शोभने ॥२९।३८

३८६. यत्प्राप्तव्यं यदा येन यत्र यावद्यतोऽपि वा ।
तत्प्राप्यते तदा तेन तत्र तावत्ततो ध्रुवम् ॥२९।८३

३८७. असिधाराव्रतं जैनो जनोऽसक्तं निषेवते ॥२९।९७

३८८. शक्नोति न सुरेन्द्रोऽपि विधातुं विधिमन्यथा ॥३०।२८

३८९. शासनस्य जिनेन्द्राणामहो माहात्म्यमुत्तमम् ॥३०।४७

३९०. करणं यदतिक्रान्तं मृतमिष्टं च बान्धवम् ।
हृतं विनिर्गतं नष्टं न शोचन्ति विचक्षणाः ॥३०।७२

३९१. कातरस्य विषादोऽस्ति दयिते प्राकृतस्य च ।
न कदाचिद्विषादोऽस्ति विक्रान्तस्य बुधस्य च ॥३०।७३

३९२. चरितं निरगाराणां शूराणां शान्तमीहितम् ।
शिवं सुदुर्लभं सिद्धं सारं क्षुद्रभयावहम् ।:३०।८३

३९३. कुतः श्रद्धाविमुक्तस्य धर्मो धर्मफलानि च ? ३१।२०

३९४. पुण्येन लभते सौख्यमपुण्येन च दुःखिता।
कर्मणामुचितं लोकः सर्वं फलमुपाश्नुते ॥३१।७९

३९५. अहो कष्टं दुश्छेद्यं स्नेहबन्धनम् ॥३१।९५

३९६. जन्तुरेकक एवायं भवपादपसङ्कुले।
मोहान्धो दुःखविपिने कुरुते परिवर्तनम् ॥३१।९९

३९७. अत्यंतं दुर्धरोद्दिष्टा प्रव्रज्या जिनसत्तमैः ।.३१।१०९

३९८. मृत्युः प्रतीक्षते नैव बालं तरुणमेव वा ॥३१।१३३

३९९. गृहाश्रमे महावत्स ! श्रूयते धर्मसञ्चयः।
अशक्यः कुनरैः कर्त्तुं कुरुते राज्यसंगत. ॥३१।१३४

४००. कामक्रोधादिपूर्णस्य का मुक्तिर्गृहसेविनः ॥३१।१३५

४०१. न करोति यतः पातं पित्रोः शोकमहोदधौ।
अपत्यत्वमपत्यस्य तद्वदन्ति सुमेधसः ॥३१।१५३

४०२. न हि सागररत्नानामुत्पत्तिः सरसो भवेत् ॥३१।१५५

४०३. भ्राजते त्रायमान. सन् वाक्य तत्पितृकस्य यत्।
लब्धवर्णैरिदं भ्रातुर्भ्रातृत्वं परिकीर्तितम् ॥३१।१६३

४०४. स्वार्थं संसक्तनित्याशा धिक् स्त्रैणमनपेक्षितम् ॥३१।१९३

४०५. सर्वासामेव शुद्धीना मन.शुद्धिः प्रशस्यते।

४०६. अन्यथालिङ्ग्यते पत्यमन्यथालिङ्ग्यते पतिः ॥३१।२३३

४०७. नानाकर्मस्थितौ त्वस्या को नु शोचति कोविद. ॥३१।२३७

४०८. असमाप्तेन्द्रियसुखं कदाचित्स्थितिसक्षये।
पक्षी वृक्षमिव त्यक्त्वा देहं जन्तुर्गमिष्यति ॥३१।२३९

४०९. धिग्भोगान्भोगिभोगाभान् भङ्गुरान्भीतिभाविनः ॥३२।५९

४१०. वियोगमरणव्याधिजराव्यसनभाजनम्।
जलबुद्बुदनिःसार कृतघ्नं धिक् शरीरकम् ॥३२।६१

४११. भाग्यवन्तो महासत्त्वास्ते नरा. श्लाघ्यचेष्टिताः।
कपिभ्रूभङ्गुरा लक्ष्मी ये तिरस्कृत्य दीक्षिताः ॥३२।६२

४१२. धिक् स्नेह भवदुःखाना मूलम् ॥ ३२।८३

४१३. नहि भक्तेर्जिनेन्द्राणां विद्यते परमुत्तमम् ॥३२।१८२

४१४. हितं करोत्यसौ स्वस्य भूताना यो दयापरः।
दीक्षितो गृहयातो वा बुधो निर्मलमानसः ॥३३।१०२

४१५. साहस कुरुते किं न मानवो योषितां कृते ॥३३।१४९

४१६. यथा किलाविनीतानां भृत्यानां विनयाहृतौ ।
कुर्वन्ति स्वामिनो यत्नं विरोधः कोऽत्र दृश्यते ॥३३।२१६

४१७. ननु योषित्सु कारुण्यं कुर्वन्ति पुरुषोत्तमाः ॥३३।२७३

४१८. प्रणम्य त्रिजगद्वन्द्यं जिनेन्द्रं परम शिवम् ।
तुङ्गेन शिरसा तेन कथमन्यः प्रणम्यते ॥३३।२९५

४१९. मकरन्दरसास्वादलब्धवर्णो मधुव्रतः ।
रासभस्य पद पुच्छे प्रमत्तोऽपि करोति किम् ? ३३।२९६

४२०. अपकारिणि कारुण्यं यः करोति स सज्जनः ।
मध्ये कृतोपकारे वा प्रीतिः कस्य न जायते ॥३३।३०६

४२१. प्रायो माङ्गलिके लोको व्यवहारे प्रवर्तते ॥३४।४३

४२२. श्रमणा ब्राह्मणा गावः पशुस्त्रीबालवृद्धकाः ।
सदोषा अपि शूराणां नैते वध्याः किलोदिता ॥३५।२८

४२३. धिग् धिग् नीचसमासङ्ग दुर्वचःश्रुतिकारणम् ।
मनोविकारकरण महापुरुषवर्जितम् ॥३५।३०

४२४. वर तरुतले शीते दुर्गमे विपिने स्थितम् ।
परित्यज्याखिल ग्रन्थं विहृत भुवने वरम् ॥
वरमाहारमुत्सृज्य मरण सेवितु सुखम् ।
अवज्ञातेन नान्यस्य गृहे क्षणमपि स्थितम् ॥३५।३१-३२

४२५. अणुव्रतधरो यो ना गुणशीलविभूषित ।
तं राम. परया प्रीत्या वाञ्छितेन समर्चति ॥३५।८०

४२६. धनवान् पूज्यते नित्यं यथादित्यो हिमागमे ॥३५।१८

४२७. द्रविणानीह पूज्यन्ते ॥३५।१५९

४२८. यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवा. ।
यस्यार्था. स पुमाँल्लोके यस्यार्था. स च पण्डित. ॥३५।१६१

४२९. अर्थेन विप्रहीनस्य न मित्र न सहोदरः ।
तस्यैवार्थसमेतस्य परोऽपि स्वजनायते ॥३५।६२

४३०. सार्थो धर्मेण यो युक्तो सो धर्मो यो दयान्वितः ।
सा दया निर्मला ज्ञेया मांसं यस्या न भुज्यते ॥३५।१६३

४३१. मांसाशनान्निवृत्तानां सर्वेषां प्राणधारिणाम् ।
अन्या मूलेन सम्पन्नाः प्रशस्यन्ते निवृत्तय ॥३५।१६४

४३२. अनभिज्ञो विशेषस्य विशेषं कमवाप्तवान् ? ३५।१७१

४३३. अयमन्यश्च विवशो जनैः स्वकृतभोगिभिः ।
न योऽवगम्यते यत्र न स तत्र जनोऽर्च्यते ।।३५।१७२

४३४. सर्वेषामेव जीवानां धनमिष्टसमागमः ।
जायते पुण्ययोगेन यच्चात्मसुखकारणम् ।।३५।७८

४३५. योजनानां शतेनापि परिच्छिन्ने श्रुतान्तरे ।
इष्टो मुहूर्त्तमात्रेण लभ्यते पुण्यभागिभिः ।।३६।७९

४३६. ये पुण्येन विनिर्मुक्ताः प्राणिनो दुःखभागिनः ।
तेषां हस्तमपि प्राप्तमिष्टवस्तु पलायते ।।३६।८०

४३७. अरण्यानां गिरेर्मूर्ध्नि विषमे पथि सागरे ।
जायन्ते पुण्ययुक्तानां प्राणिनामिष्टसङ्गमाः ।।३६।८१

४३८. सिंहे करीन्द्रकीलालपङ्कलोहितकेसरे ।
शान्तेऽपि शावकस्तस्य कुरुते करिपातनम् ।।३७।४४

४३९. किं तारा भान्ति भास्करे ? ३७।६४

४४०. जातो वशलतातोऽपि मणिः सगृह्यते ननु ।।३७।६५

४४१. सहसारभ्यमाण हि कार्यं व्रजति संशयम् ।। ३७।६७

४४२. प्रस्तुतमत्यक्त्वा समारब्ध प्रशस्यते ।।३७।६८

४४३. कष्टमेककयोर्जाते विरोधे कारण विना ।
पक्षद्वय मनुष्याणां जायते विवशक्षयम् ।।३७।७९

४४४. अज्ञाता एव ये कार्यं कुर्वन्ति पुरुषाद्भुतम् ।
तेऽतिश्लाघ्या यथात्यन्तं निवृष्य जलदा गताः ।। ३७।९१

४४५. चकासति रवौ पापलक्ष्मीर्दोषाकरस्य का ।। ३७।१२२

४४६. को दोषः कर्मसामर्थ्याद्यदायान्त्यापद नराः ।
रक्ष्या एव तथाप्येते दधतामतिसाधुताम् ।। ३७।१४१

१४७. इतरोऽपि खलीकर्तुं साधूना नोचितो जनः । ३७।१४२

४४८. महतामेव जायन्ते सम्पदो विपदन्विताः ।३७।१५०

४४९. षट्खण्डा यैरपि क्षोणी पालितेय महानरैः ।
न तृप्तास्ते ऽपि ।। ३७।१५५

४५०. प्रभावं तपसः पश्य त्रिदशेष्वपि दुर्लभम् ।।३८।७

४५१. समस्तेभ्यो हि वस्तुभ्यः प्रियं जगति जीवितम् ।
तदर्थमितरत् सर्वमिति को नावगच्छति ।।३८।६९

४५२. वर्तिकाग्रहणे को वा बहुमानो गरुत्मतः।।३८।१०२

४५३. ये जन्मान्तरसञ्चितातिसुकृताः सर्वासुभाजां प्रियाः
यं यं देशमुपव्रजन्ति विविधं कृत्यं भजन्तः परम् ।
तस्मिन् सर्वहृषीकसौख्यचतुरस्तेषां विना चिन्तया
मृष्टान्नादिविधिर्भवत्यनुपमो यो विष्टपे दुर्लभः ॥३८।१४२

४५४. भोगैर्नास्ति मम प्रयोजनमिमे गच्छन्तु नाशं खलाः
इत्येषां यदि सर्वदापि कुरुते निन्दामलं द्वेषकः ।
एतैः सर्वगुणोपपत्तिपटुभिर्यातोऽपि शृङ्ग गिरेः
नित्यं याति तथापि निर्जितरविर्दीप्त्या जनः सङ्गमम् ॥३८।१४३

४५५. कालं देशं च विज्ञाय नीतिशास्त्रविशारदैः ।
क्रियते पौरुषं तेन न जातु विपदाप्यते ॥३९।२२

४५६. निःसारमीहितं सर्वं संसारे दुःखकारणम् ॥३९।३६

४५७. मित्राणि द्रविणं दाराः पुत्राः सर्वे च बान्धवाः ।
सुखदुःखमिदं सर्वं धर्म एक सुखावहः ॥३९।३७

४५८. नैव वारयितुं शक्यास्तपस्तेजोऽतिदुर्गमाः ।
त्रिदशैरपि दिग्वस्त्राः किमुतास्माद्दृशैर्जनैः ॥३९।१०३

४५९. करिबालककर्णान्तचपलं ननु जीवितम् ।
मानुष्यक च कदलीसारसाम्य बिभर्त्यदः ॥३९।११३

४६०. स्वप्नप्रतिममैश्वर्यं सक्तं च सह बान्धवैः ॥३९।११४

४६१. धिगत्यन्ताशुचि देहं सर्वाशुभनिधानकम् ।
क्षणनश्वरमत्राणं कृतघ्नं मोहपूरितम् ॥३९।११७

४६२. शरीरसार्थं एतस्मिन् परलोकप्रवासिनि ।
मुष्णन्तः प्रसभं लोकं तिष्ठन्तीन्द्रियदस्यवः ॥३९।१२०

४६३. रमते जीवनृपतिः कुमतिप्रमदावृतः ।
अवस्कन्देन मृत्युस्तं कदर्थयितुमिच्छति ॥३९।१२१

४६४. मनो विषयमार्गेषु मत्तद्विरदविभ्रमम् ।
वैराग्यबलिना शक्य रोद्धुं ज्ञानांकुशश्रिता ॥३९।१२२

४६५. परस्त्रीरूपसस्येषु बिभ्राणा लोभमुत्तमम् ।
अमी हृषीकतुरगा धृतमोहमहाजवाः ॥
शरीररथमुन्मुक्ताः पातयन्ति कुवर्त्मसु ।
चित्तप्रग्रहमत्यन्तं योग्यं कुरुत तद्दृढम् ॥३९।१२३-१२४

४६६. यथथा निर्मितं पूर्वं तथोग्यं जायतेऽमुना ।
संसारवाससक्तानां जीवानां गतिरीदृशी ॥३९।१४२

४६७. किमधीतैरिहानर्थग्रन्थैरौशसनादिभिः।
एकमेव हि कर्तव्यं सुकृत सुखकारणम् ॥३६।१४३

४६८. न शृणोति स्मरग्रस्तो न जिघ्रति न पश्यति।
न जानात्यपरस्पर्शं न बिभेति न लज्जते ॥३६।२०८

४६९. आश्चर्यं मोहतः कष्टमनुतापं प्रपद्यते।
अन्धो निपतितः कूपे यथा पन्नगसेविते ॥३६।२०६

४७०. इह यत् क्रियते कर्म तत्परत्रोपभुज्यते।
पुराकृतानां पुण्यानामिह सम्पद्यते फलम् ॥४०।३७

४७१. अस्माकमत्र वसतां बिभ्रतां सुखसम्पदाम्।
अमी ये दिवसा यान्ति न तेषां पुनरागम. ॥४०।३८

४७२. नदीनां चण्डवेगानामायुषो दिवस्य च।
यौवनस्य च सौमित्रे यद्गतं गतमेव तत् ॥४०।३६

४७३. स्त्रीचित्तहरणोद्युक्ताः किं न कुर्वन्ति मानवाः ॥४१।६२

४७४. दृष्टान्तः परकीयोऽपि शान्तेर्भवति कारणम्।
असमञ्जसमात्मीयं किं पुनः स्मृतिमागतम् ॥४१।१०१

४७५. इद कर्मविचित्रत्वाद् विचित्रं परमं जगत् ॥४१।१०५

४७६. तिर्यञ्चोऽपि ह्यते रम्यं परुषकृतिरहितमनसा विन्दन्ति समीहितम् ॥४२।८१

४७७. यथावस्थितभावानां श्रद्धानं परम सुखम्।
मिथ्याविकल्पितार्थानां ग्रहण दुःखमुत्तमम् ॥४३।३०

४७८. जनोऽविदितपूर्वो यो जने बध्नाति सौहृदम्।
अनाहूतश्च सामीप्यं व्रजति त्रपयोज्झितः॥
अनादृत· प्रभूतं च भाषते शून्यमानसः।
उत्पादयति विद्वेष कस्य नासौ क्रमोज्झित· ॥४३।१०५-१०६

४७९. न्यायेन सङ्गतां साध्वी सर्वोपप्लववर्जिताम्।
को वा नेच्छति लोकेऽस्मिन् कल्याणप्रकृतिस्थितम् ॥४३।१०८

४८०. दधति परमशोकं बालवद् बुद्धिहीनाः ॥४३।१२२

४८१. किमिदमिह मनो मे किं नियोज्यं तदिष्ट कथमनुगतकृत्यैः प्राप्यते शं मनुष्यैः।
इति कृतमतिरुच्चैर्यो विवेकस्य कर्ता रविरिव विमलोऽसौ राजते लोकमार्गे ॥
४३।१२३

४८२. क्वाबला क्व पुमान् बली ॥४४।२०

४८३. धिगिदं शौर्यमस्माकं सहायान् यदि वाञ्छति ॥४४।३५

४८४. चित्रा हि मनसो गतिः ॥४४।६५

४८५. लोको हि परमो गुरुः ॥४४।७१

४८६. महाप्रकृष्टपूरस्य नवस्योदाररंहसः।
तटयोः पातने शक्तिः केन न प्रतिपद्यते ॥४४।७६

४८७. न प्रसादयितुं शक्यः क्रुद्धः शीघ्रं नरेश्वरः।
अभीष्टं लब्धुमथवा द्युतिर्वा कीर्तिरेव वा॥
विद्या वाभिमता लब्धुं पग्नोर्कक्रियाऽपि वा।
प्रिया वा मनसो भार्या यद्वा किञ्चित् समीहितम् ॥४४।९६-९७

४८८. प्रतीक्षते हि तत्काल मृत्यु कर्मप्रचोदितः ॥४४।१००

४८९. मानुषत्वं परिभ्रष्ट गहने भवसङ्कटे।
प्राप्तुमत्यद्भुतं भूयः प्राणिनाशुभकर्मणा॥
त्रैलोक्यगुणवद्रत्न पतितं निम्नगापतौ
लभेत क पुनर्धन्य. कालेन महताप्यलम ॥४४।१२३-१२४

४९०. अहो दुःखस्य चित्रता ॥४४।१४४

४९१. अहो दुःखार्णवो महान् ॥४४।१४५

४९२. प्रायोऽनर्था बहुत्वगाः ॥१४६

४९३. न ये भवप्रभवविकारसङ्गतेः पराङ्मुखा जिनवचनान्युपासते।
वशीकृतान् शरणविवर्जितानमून् तपत्यलं स्वकृतरविः सुदुस्सहः ॥४४।१५१

४९४. कृत्स्न विधिवश जगत् ॥४५।५२

४९५. शोको हि नाम कोऽप्येष विषभेदो महत्तमः।
नागयत्याश्रितं देह का कथान्येषु वस्तुषु ॥४५।८१

४९६. जीवन् पश्यति भद्राणि धीरश्चिरतरादपि।
ग्रही ह्रस्वमतिर्भद्रं कृच्छादपि न पश्यति ॥४५।८३

४९७. औदासीन्यमिहानर्थं कुरुते परमं पुरा ॥४५।८४

४९८. अरण्यमपि रम्यत्व याति कान्तासमागमे।
कान्ताविंयोगदग्धस्य सर्व विन्ध्यवनायते ॥४५।९९

४९९. यद्यप्याशा पूर्वकर्मानुभावात् सङ्गं कर्तुं जायते प्राणभाजाम्।
प्राप्य ज्ञान साधुवर्गोपदेशाद् गन्त्री नाश सा रवेः शर्वरीव ॥४५।१०५

५००. राजते चारुभावानां सर्वथैव हि चारुता ॥४६।५

५०१. शक्नोति सुखधीः पातुं कः शिखामाशुशुक्षणे।
को वा नागवधूमूर्ध्नि स्पृशेद् रत्नशलाकिकाम् ॥४६।२१

५०२. जगत्प्राणिहितं सर्वं प्राप्नोत्यत्र न संशयः ॥४६।३२

५०३. प्राणा मूलं सर्वस्य वस्तुनः ॥ ४६।६४

५०४. निवृत्तिरेकापि ददाति परमं फलम् ॥४६।५६
५०५. जन्तूनां दुःखभूयिष्ठभवसन्ततिसारिणाम् ।
पापान्निवृत्तिरल्पापि संसारोत्तारकारणम् ॥४६।५७
५०६. येषां विरतिरेकापि कुतश्चिन्नोपजायते ।
नरास्ते जर्जरीभूतकलशा इव निर्गुणाः ॥४६।५८
५०७. कर्मानुभावतः सर्वे न भवन्ति समक्रियाः ॥४६।६२
५०८. भस्मभावङ्गते गेहे कूपखानश्रमो वृथा ॥४६।६६
५०९. आत्मार्थं कुर्वतः कर्म सुमहासुखसाधनम् ।
दोषो न विद्यते कश्चित्सर्वं हि सुखकारणम् ॥४६।७७
५१०. सज्जनस्याग्रे नूनं शोकः प्रवर्द्धते ॥४६।११४
५११. परदाराभिलाषोऽयमयुक्तोऽतिभयङ्करः ।
लज्जनीयो जुगुप्स्यश्च लोकद्वयनिषूदनः ॥४६।१२३
५१२. धिक्शब्दः प्राप्यते योऽस्य सज्जनेभ्यः समन्ततः ।
सोऽयं विदारणे शक्तो हृदयस्य सुचेतसाम् ॥४६।१२४
५१३. यो ना परकलत्राणि पापबुद्धिर्निषेवते ।
नरकं स विशत्येष लोहपिण्डो यथा जलम् ॥४६।१२६
५१४. सर्वथा प्रातरुत्थाय पुरुषेण सुचेतसा ।
कुशलाकुशलं स्वस्य चिन्तनीयं विवेकतः ॥४६।१२०
५१५. चित्रं हि स्मरचेष्टितम् ॥४६।१८६
५१६. मन्त्रणीयं हि सम्बद्धं स्वामिने हितमिच्छता ॥४६।२११
५१७. उद्योगेन विमुक्ताना जनानां सुखिता कुतः ॥४७।११
५१८. नवोऽनुरागवन्द्यो हि चन्द्रो लोकस्य नान्यदा ॥४७।१२
५१९. मन्त्रदोषमसत्कारं दानं पुण्यं स्वशूरताम् ।
दुःशीलत्वं मनोदाहं दुर्मित्रेभ्यो न वेदयेत् ॥४७।१५
५२०. सद्भावं हि प्रपद्यन्ते तुल्यावस्था जना भुवि ॥४७।१७
५२१. अथवाश्रयसामर्थ्यात् पुंसां किं नोपजायते ॥४७।२०
५२२. मद्यपस्यातिवृद्धस्य वेश्याव्यसनिनः शिशोः ।
प्रमदानां च वाक्यानि जातु कार्याणि नो बुधैः ॥४७।६३
५२३. अत्यन्तदुर्लभा लोके गोत्रशुद्धिः ॥४७।६४
५२४. समानेषु प्रायः प्रे मोपजायते ॥४७।६१
५२५. मानसानि मुनीनां हि सुदिग्धान्यनुकम्पया ॥४८।४८
५२६. मोहो जयति पापिनाम् ॥४८।४५

५२७. शक्तिं दधताऽपि परां प्राप्यापि परं प्रबोधमारम्भे।
भवितव्यं नयरतिना रविरिव काले स यात्युदयम् ॥४८।२५०

५२८. क्षुद्रशक्तिसमासक्ता मानुषास्तावदासताम्।
न सुरैरपि कर्माणि शक्यन्ते कर्तुमन्यथा ॥४९।७

५२९. श्वपाकादपि पापीयान् लुब्धकादपि निर्घृणः।
असम्भाष्यः सतां नित्यं योऽकृतज्ञो नराधमः ॥४९।९४

५३०. दुर्लभः सङ्गमो भूयः पूजितः सर्ववस्तुषु।
ततोऽपि दुर्लभो धर्मो जिनेन्द्रवदनोद्गतः ॥४९।१०६

५३१. महात्मनामुन्नतगर्वशालिनो भवन्ति वश्याः पुरुषा बलान्विताः ॥५०।५४

५३२. अहो नो भवितव्यता ॥५१।२३

५३३. न मुनेर्वाक्यं कदाचिज्जायतेऽनृतम् ॥५१।३३

५३४. गुणान्वितैर्भवति जनैरलङ्कृता समस्तभूः शुभललितैः सुसुन्दरः।
विना जन मनसि कृतास्पदं सदा व्रजत्यसौ गहनवनेन तुल्यताम् ॥५१।५०

५३५. पुराकृतादतिनिचितात्समुत्कटाज्जनः परां रतिमनुयाति कर्मण.।
ततो जगत्सकलमिदं स्वगोचरे प्रवर्तते विधिरविणा प्रकाशते ॥५१।५१

५३६. राज्यविधौ स्थिता।
पित्रादीनपि निघ्नन्ति नराः कर्मबलेरिताः ॥५२।६४

५६७. अस्मिन् हि सकले लोके विहितं भुज्यते ॥५२।६५

५३८. कृत्यं प्रत्युपकारस्य बान्धवैरनुमोदितम् ॥५२।७५

५३९. चित्रमिदं परमत्र नृलोके, यत्परिहाय भृशं रसमेकम्।
तत्क्षणमेव विशुद्धशरीर जन्तुरुपैति रसान्तरसङ्गम् ॥५२।८४

५४०. उचित किमिदं कर्तुं यद्वास्यार्द्धपतिः स्वयम्।
कुरुते क्षुद्रवत्कश्चिच्चोरण परयोषितः ॥५३।४

५४२. मर्यादानां नृपो मूलमापगानां यथा नगः।
अनाचारे स्थिते तस्मिन् लोकस्तत्र प्रवर्तते ॥५३।५

५४२. विमलं चरितं लोके न केवलमिहेष्यते।
किन्तु गीर्वाणलोकेऽपि रचिताञ्जलिभिः सुरैः ॥५३।६

५४३. परार्थं यः पुरस्कृत्य पुनः स्व विनिगूहति।
सोऽतिभीरुतयात्यन्तं जायते निकृतो नरः ५३।३६

५४४. परमापदि सीदन्तं जनं सन्धारयन्ति ये।
अनुकम्पनशीलानां तेषां जन्म सुनिर्म्मलम् ॥५३।४०

५४५. हानिः पुरुषकारस्य न चात्मनि निदर्शिते।
प्रकाश्ये गुरुतां याति जगति श्रीर्यशस्विनी ॥५३।४१

५४६. विग्रहो निःप्रयोजनः ॥५३।८५

५४७. कार्यसिद्धिरिहाभीष्टा सर्वथा नयशालिभिः ॥५३।८५

५४८. शूराः सत्त्वयशोऽन्विताः।
गुणोत्कटा न शंसन्ति धीराः स्वं स्वयमुत्तमाः ॥५३।६१

५४९. सुखं प्रसादतो यस्य जीव्यते विभवान्वितः।
अकार्य वाञ्छतस्तस्य दीयते न मतिः कथम् ॥५३।१०१

५५०. आहारम् भोक्तुकामस्य विज्ञात विषमिश्रितम्।
मित्रस्य कृतकामस्य कथं न प्रतिषिध्यते ? ५३।१०२

५५१ रविरश्मिकृतोद्योतं सुपवित्रं मनोहरम्।
पुण्यवर्द्धनमारोग्य दिवाभुक्तं प्रशस्यते ॥५३।१४१

५५२. सहायैर्मृगराजस्य कुर्वतो मृगशासनम्।
कियद्भिरपरैः कृत्यं त्यक्त्वा सत्त्वं सहोद्भवम् ॥५३।२००

५५३. चिह्नानि विटजातस्य सन्ति नाङ्गेषु कानिचित्।
अनार्यमाचरन् किञ्चिज्जायते नीचगोचरः ॥५३।२३६

५५४. मत्ताः केसरिणोऽरण्ये शृगालानाश्रयन्ति किम्?
नहि नीचं समाश्रित्य जीवन्ति कुलजा नराः ॥५३।२४०

५५५. को जानाति विना पुण्यैर्निग्राह्यः को विधेरिति ॥५३।२४२

५५६. या येन भाविता बुद्धिः शुभाशुभगता दृढम्।
न सा शक्याऽन्यथाकर्तुं पुरन्दरसमैरपि ॥५३।२४७

५५७. निरर्थकं प्रियशतैर्दुर्मतौ दीयते मतिः ॥५३।२४२

५५८. विहितेन हतो हतः ॥५३।२४८

५५९. प्राप्ते विनाशकालेऽपि बुद्धिर्जन्तोर्विनश्यति।
विधिना प्रेरितस्तेन कर्मपाकं विचेष्टते ॥५३।२४६

५६०. इति सुविहितवृत्ताः पूर्वजन्मन्युदाराः
सकलभुवनरोधिव्याप्यकीर्तिप्रधानाः ।
अभिसरपरिमुक्ताः कर्म तत्कर्तुमीशा.
जनयति परमं तद्विस्मयं दुर्विचिन्त्यम् ॥५३।२७३

५६१. भजत सुकृतसङ्ग तेन निर्मुच्य सर्वं
विरसफलविधायि क्षुद्रकर्म प्रयत्नात्।

भवत परमसौख्यास्वादलोभप्रसक्ताः
परिजितरविभासो जन्तवः कान्तलीलाः ॥५३।२७४

५६२. यं यं देशं विहितसुकृताः प्राणभाजः श्रयन्ते,
तस्मिंस्तस्मिन् विजितरिपवो भोगसङ्गं भजन्ते।
न ह्यं तेषां परजनमतं किञ्चिदापद्युतानाम्
सर्वं तेषां भवति मनसि स्थापितं हस्तसक्तम् ॥५४।७९

५६३. तस्माद् भोगं भुवनविकटं भोक्तुकामेन कृत्यः,
श्लाघ्यो धर्मो जिनवरमुखादुद्गतः सर्वसारः।
आस्तां तावत्क्षयपरिचितो भोगसङ्गोऽपि मोक्षम्
धर्मादस्माद् व्रजति रवितोऽप्युज्ज्वलं भव्यलोक ? ॥५४।८०

५६४. यदर्थं मत्तमातङ्गमहावृन्दान्धकारिणि ।
पतद्विविधशस्त्रौघे सङ्ग्रामेऽत्यन्तभीषणे ॥
हत्वा शत्रून् समुद्वृत्तास्तीक्ष्णया खड्गधारया।
भुजेनोपार्ज्यते लक्ष्मीः सुकृच्छ्राद् वीरसुन्दरी ॥
सुदुर्लभमिदं प्राप्य तत्स्त्रीरत्नमनुत्तमम्।
मूढवन्मुच्यते कस्मात् ? ५५।१७-१९

५६५. परस्पराभिघाताद्वा कलुषत्वमुपागतम्।
प्रसादं पुनरप्येति कुलं जलमिव ध्रुवम् ॥५५।५३

५६६. द्रव्यादिलोभेन भ्रात्रादीनामपि स्फुटम्।
संसारे जायते वैरं यौनबन्धो न कारणम् ॥५५।६८

५६७. भ्राता ममायं सुहृदेष वश्यो
ममैव बन्धुः सुखदः सदेति।
संसारवैचित्र्यविदा नरेण
नैतन्मनीष(रविणा विचिन्त्या ॥५५।९५

५६८. लोकं स्वचरितरविरेव प्रेरयत्यात्मकार्ये ॥५६।३६

५६९. आभिमुख्यगतं मृत्युं वरं प्राप्ता महाभटाः।
पराङ्मुखा न जीवन्तो धिक्शब्दमलिनीकृताः ॥५७।८

५७०. नरास्ते(दयिते!) श्लाघ्या ये गता रणमस्तकम्।
त्यजन्त्यभिमुखा जीवं शत्रूणां लब्धकीर्त्तयः ॥५७।२१

५७१. उद्भिन्नदन्तिदन्ताग्रदोलादुर्लडितं भटाः।
कुर्वन्ति न विना पुण्यैः शत्रुभिर्घोषितस्तवाः ॥५७।२२

५७२. गजदन्ताग्रभिन्नस्य कुम्भदारणकारिणः ।
यत्सुखं नरसिंहस्य तत् कः कथयितुं क्षमः ? ५७।२३

५७३. दोषोऽपि हि गुणीभावं प्रस्तावे प्रतिपद्यते ।।५७।४४

५७४. प्राप्ते काले कर्मणामानुरूप्याद्
दातुं योग्यं तत्फलं निश्चयाप्यम् ।
शक्तो रोद्धुं नैव शक्रोऽपि लोके
वार्तान्येषां कैव वाङ्मात्रभाजाम् ? ५७।७३

५७५. बिभर्ति तावद् दृढनिश्चयं जनः. प्रभोर्मुखं पश्यति यावदुन्नतम् ।
गते विनाशं स्वपतौ विशीर्यते, यथारचक्रं परिशीर्णतुम्बकम् ।।५८।४७

५७६. सुनिश्चितानामपि सन्नराणां, विना प्रधानेन न कार्ययोगः ।
शिरस्यपेते हि शरीरबन्धः, प्रपद्यते सर्वत एव नाशम् ।।५८।४८

५७७. प्रधानसम्बन्धमिदं हि सर्वं, जगद्यथेष्टं फलमभ्युपैति ।
राहूपसृष्टस्य रवेर्विनाशं, प्रयाति मन्दो निकरः कराणाम् ।।५८।४९

५७८. पूर्वकर्मानुभावेन स्थितिर्दुःकृतिनामियम् ।
असौ मारयिता तस्य यो येन निहतः पुरा ।।५९।४
असौ मोचयिता तस्य बन्धनव्यसनादिषु ।
यो येन मोचिता पूर्वमनर्थे पातितो नरः ।।५९।५

५७९. हतवान् हन्यते पूर्वं पालकः पाल्यतेऽधुना ।
औदासीन्यमुदासीने जायते प्राणधारिणाम् ।।५९।२१

५८०. य वीक्ष्य जायते कोपो दृष्टकारणवर्जितः ।
निःसन्दिग्धं परिज्ञेयः स रिपुः पारलौकिकः ।।५९।२२

५८१. यं वीक्ष्य जायते चित्तं प्रह्लादि सह चक्षुषा ।
असन्दिग्धं सुविज्ञेयो मित्रमन्यत्र जन्मनि ।।५९।२३

५८२. क्षुब्धोर्मिणि जले सिन्धोः शीर्णपोतं झषादयः ।
स्थले म्लेच्छाश्च बाधन्ते यत्तद् दुःकृतजं फलम् ।।५९।२४

५८३. मर्तैर्गिरिनिभैर्नागैर्योधैर्बहुविधायुधैः ।
सुवेगैर्वाजिभिर्दृप्तैर्भृत्यैश्च कवचावृतैः ।।५९।२५

५८४. विग्रहेऽविग्रहे वापि निःप्रभावस्य सन्ततम् ।
जन्तोः स्वपुण्यहीनस्य रक्षा नैवोपजायते ।।५९।२६

५८५. निरस्तमपि निर्यन्त यत्र तत्र स्थितं परम् ।
तपोदानानि रक्षन्ति न देवा न च बान्धवाः ।।५९।२७

५८६. दृश्यते बन्धुमध्यस्थः पित्राप्यालिङ्गितो धनी ।
म्रियमाणोऽतिशूरश्च कोऽन्यः शक्तोऽभिरक्षितुम् ॥५६।१८

५८७. पात्रदानैः व्रतैः शीलैः सम्यक्त्वपरितोषितैः ।
विग्रहेऽविग्रहे वापि रक्ष्यते रक्षितैर्नरः ॥५६।२६

५८८. दयादानादिना येन धर्मो नोपार्जितः पुरा ।
जीवितं चेष्यते दीर्घं वाञ्छा तस्यातिनिःफला ॥५६।३०

५८९. न विनश्यन्ति कर्माणि जनानां तपसा विना ।
इति ज्ञात्वा क्षमा कार्या विपश्चिद्भिररिष्वपि ॥५६।३१

५९०. एष ममोपकरोति सुचेताः दुष्टतरोऽपकरोति ममायम् ।
बुद्धिरियं निपुणा न जनानां कारणमत्र निजार्जितकर्म ॥५६।३५

५९१. इत्यधिगम्य विचक्षणमुख्यैर्बाह्यमुख्यासुखगौणनिमित्तैः ।
रागतरं कलुषं च निमित्तं कृत्यमयोज्झितकुत्सित चेष्टैः ॥५६।३३

५९२. भूविवरेषु निपातमुपैति ग्रावणि सज्जति गच्छति सर्पम् ।
सन्तमसा पिहिते पथि नेत्री नो रविणा जनितप्रकटत्वे ॥५६।३४

५९३. नखच्छेद्ये तृणे किं वा परशोरुचिता गतिः ? ६०।६८

५९४. विना हि प्रतिदानेन महती जायते त्रपा ॥६०।८७

५९५. पुण्यानुकूलितानां हि नैरन्तर्यं न जायते ॥६०।९०

५९६. धर्मस्यैतद्विधियुतकृतस्यानवद्यस्य धीरै-
र्ज्ञेयं स्तुत्यं फलमनुपमं युक्तकालोपजातम् ।
यत्सम्प्राप्य प्रमदकलिताः दूरमुक्तोपसर्गाः
सञ्जायन्ते स्वपरकुशल कर्त्तुमुद्भूतवीर्याः ॥६०।१४२

५९७. आस्तां तावन्मनुजजनिताः सम्पदः कांक्षितानां
यच्छन्तीष्टादधिकमतुलं वस्तु नाकश्रितोऽपि ।
तस्मात्पुण्यं कुरुत सतत हे जनाः सौख्यकांक्षाः ।
येनानेकं रविसमरुचः प्राप्नुताश्चर्ययोगम् ॥६०।१४३

५९८. इहैवलोके विकटं परं यशो, मतिप्रगल्भत्वमुदारचेष्टितम् ।
अवाप्यते पुण्यविधिश्च निर्मलो नरेण भक्त्यार्पितसाधुसेवया ॥६१।२०

५९९. तथा न माता न पिता न वा सुहृत् सहोदरो वा कुरुते नृणां प्रियम् ।
प्रदाय धर्मे मतिमुत्तमां यथा हितं परं साधुजनः शुभोदयाम् ॥२१।२१

६००. उपात्तपुण्यो जनान्तरे जनः करोति योगं परमैरिहोत्सवैः ।
न केवलं स्वस्य परस्य भूयसा रविर्यथा सर्वपदार्थदर्शनात् ॥६१।२४

६०१. मोहस्य दुस्तरं किं वा बलिनो बलिनामपि ? ६२।२७

६०२. इति निजचरितस्यानेकरूपस्य हेतो-
र्व्यतिगतभवजस्यावश्यलभ्योदयस्य ।
इह जनुषु विचित्रं कर्मणो भावयन्ते
फलमविरतयोगाज्जन्तवो भूरिभावाः ॥६२।६६

६०३. व्रजति विधिनियोगात्कश्चिदेवेह नाशं
हतरिपुरपरश्च स्वं पदं याति धीरः ।
विफलितपृथुशक्तिर्बन्धनं सेवतेऽन्यो
रविरुचितपदार्थोद्भासने हि प्रवीणः ॥६२।१००

६०४. कामार्थाः सुलभाः सर्वे पुरुषस्यागमास्तथा ।
विविधाश्चैव सम्बन्धा विष्टपेऽस्मिन् यथा तथा ॥१३।१३
पर्यट्य पृथिवी सर्वां स्थानं पश्यामि तन्नतु ।
यस्मिन्नवाप्यते भ्राता जननी जनकोऽथ वा ॥६३।१४

६०५. उत्तमा उपकुर्वन्ति पूर्वं पश्चात्तु मध्यमाः ।
पश्चादपि न ये तेषामधमत्वं हतात्मनाम् ॥६३।१८

६०६. भवन्तीह प्रतीकाराः प्रायो विपदमीयुषाम् ॥६३।२३

६०७. भवन्ति च प्रतीकाराश्चित्रं हि जगतीहितम् ॥६४।१६

६०८. भवन्ति हि बलीयांसो बलिनामपि विष्टपे ॥६४।१११

६०९. इति स्थितानामपि मृत्युमार्गे जनैरशेषैरपि निश्चितानाम् ।
महात्मनां पुण्यफलोदयेन भवत्युपायो विदितोऽसुदाया ॥६४।११४

६१०. अहो महान्तः परमा जनास्ते येषां महापत्तिसमागतानाम् ।
जनो वदत्युद्भवताम्युपायं रवे समस्तत्वनिवेदनेन ॥६४।११५

६११. नीतिज्ञैः सतत भाव्यमप्रमत्तैः सुपण्डितैः ॥६५।१६

६१२. एतावतैव संसारः सुसारः प्रतिभाति मे ।
ईदृशानि प्रसाध्यन्ते यत्पांसीह जन्तुभिः ॥६५।५१

६१३. प्राप्यते येन निर्वाणं किमन्यन्तस्य दुष्करम् ॥६५।५५

६१४. इति विहितसुचेष्टाः पूर्वजन्मन्युदाराः
परमपि परिजित्य प्राप्तमायुर्विनाशम् ।
द्रुतमुपगतचारुद्रव्यसम्बन्धभाजो
विधुरविगुणतुल्यां स्वामवस्थां भजन्ते ॥६५।८१

६१५. परमार्थौ हि निर्भीकैरुपदेशोऽनुजीविभिः ॥६६।३

६१६. प्रीत्यैव शोभना सिद्धिर्युद्धतस्तु जनक्षयः ।
असिद्धिश्च महान् दोषः सापवादाश्च सिद्धयः ॥६६।२४

६१७. ननु सिंहो गुहां प्राप्य महाद्रेर्जायते सुखी ।।६६।२६

६१८. नरेण सर्वथा स्वस्य कर्त्तव्यं बुद्धिशालिना ।
रक्षणं सततं यत्नाद्दारैरपि धनैरपि ।।६६।४०

६१९. नासौ संक्षोभमायाति सिंहः प्रचलकेसरः ।।६६।५३

६२०. प्रतिशब्देषु कः कोपः छायापुरुषकेऽपि वा ।
तिर्यक्षु वा शुकाद्येषु यन्त्रबिम्बेषु वा सताम् ।।६६।५४

६२१. न पद्मवातेन सुमेरुरुह्यते न सागरः शुष्यति सूर्यरश्मिभिः ।
गवेन्द्रभृङ्गैर्धरणी न कम्पते न साध्यते त्वत्सदृशैर्दशाननः ।।६६।८७

६२२. न जम्बुके कोपमुपैति सिंहः ।
गजेन्द्र कुम्भस्थलदारणेन क्रीड़ा स मुक्तानिकरैः करोति ।।६६।८९

६२३. नरेश्वरा अजितशौर्यचेष्टा न भीतिभाजां प्रहरन्ति जातु ।
न ब्राह्मणं न श्रमण न शून्यं स्त्रियं न बालं न पशु न दूतम् ।।६६।९०

६२४. बहु विदितमलं सुशास्त्रजाल नयविषयेषु सुमन्त्रिणोऽभियुक्ताः ।
अखिलमिदमुपैति मोहभावं पुरुषरवौ घनमोहमेघरुद्धे ।।६६।९५

६२५. धन्याः सद्युति कारयन्ति परम लोके जिनानां गृहम् ।।६७।२७

६२६. वित्तस्य जातस्य फलं विशालं वदन्ति सुज्ञाः सुकृतोपलम्भम् ।
धर्मश्च जैनः परमोऽखिलेऽस्मिञ्जगत्यभीष्टस्य रविप्रकाशो ।।६७।२८

६२७. समुचितविभवयुतानां जिनेन्द्रचन्द्रान् सुभक्तिभारधराणाम् ।
पूजयतां पुरुषाणां कः शक्तः पुण्यसञ्चयान् प्रचोदयितुम् ।।६८।२३

६२८. भुक्त्वा देवविभूति लब्ध्वा चक्राङ्कभोगसंयोगम् ।
रवितोऽपि तपस्तीव्रं कृत्वा जैनं व्रजन्ति मुक्ति परमाम् ।।६८।२४

६२९. भीतादिष्वपि नो तावत् कर्तुं युक्तं विहिंसनम् ।
किं पुनर्नियमावस्थे जने जिनगृहस्थिते ।।७०।६

६३०. यो यस्य हरते द्रव्यं प्रयत्नेन समर्जितम् ।
स तस्य हरते प्राणान् बाह्यमेतद्धि जीवितम् ।।७०।८३

६३१. तावद् भवति जनानामधिका प्रीतिः समाश्रयासक्ता ।
यावन्निर्दोषत्वं रविमिच्छति कः सहोत्पातम् ।।७०।१०१

६३२. प्रमादाद्विकृतिं प्राप्तं मनः समुपदेशतः ।
प्रायः पुण्यवतां पुंसां वशीभावेऽवतिष्ठते ।। ७२।६२

६३३. योद्धव्यं करुणा चेति द्वयमेतद्विरुध्यते । ७२।६४

६३४. यत् किञ्चित्करणोन्मुक्तः सुखं जीवति निर्घृणः ।
जीवत्यस्मद्विधो दुःखं करुणामृदुमानसः ।। ७२।६६

६३५. क्षीणेष्वात्मीयपुण्येषु याति शक्रोऽपि विच्युतिम्।
जनता कर्मतन्त्रेयं गुणभूतं हि पौरुषम् ॥ ७२।८६
६३६. लभ्यते खलु लब्धव्यं नातः शक्यं पलायितुम्।
न काचिच्छूरता दैवे प्राणिनां स्वकृताशिनाम् ॥ ७२।८७
६३७. मरणात्परमं दुःखं न लोके विद्यते परम् । ७२।६०
६३८. निकाचितं कर्म नरेण येन यत्तस्य भुंक्ते स फलं नियोगात् ।
कस्यान्यथा शास्त्ररवौ सुदीप्ते तमो भवेन्मानुषकौशिकस्य ॥ ६२।६७
६३९. या काचिद्भविता बुद्धिर्नृणां कर्मानुवर्त्तिनाम् ।
अशक्या साऽन्यथाकर्त्तुं सेन्द्रैः सुरगणैरपि ॥ ७३।२७
६४०. अर्थसाराणि शास्त्राणि नयमौशनसं परम् ।
जानन्नपि त्रिकूटेन्द्रःपश्य मोहेन बाध्यते ॥ ७३।२८
६४१. महापूरकृतोत्पीडः पयोवाहसमागमे ।
दुष्करो हि नदो धर्तुं जीवो वा कर्मचोदितः ॥ ७३।३०
६४२. अविरुद्धं स्वभावस्थं परिणामसुखावहम् ।
वचोऽप्रियमपि ग्राह्यं सुहृदामौषधं यथा ॥ ७३।४८
६४३. कज्जलोपमकारीषु परनारीषु लोलुपः।
मेरुगौरवयुक्तोऽपि तृणलाघवमेति ना ॥ ७३।५६
६४४. देवैरनुगृहोतोऽपि चक्रवर्त्तिसुतोऽपि वा ।
परस्त्रीसङ्गपङ्केन दिग्धोऽकीर्त्ति व्रजेत्पराम् ॥ ७३।६०
६४५. योऽन्यप्रमदया साकं कुरुते मूढको रतिम् ।
आशीविषभुजङ्गयाऽसौ रमते पापमानसः ॥ ७३।६१
६४६. न कश्चित्स्वयमात्मानं शासन्नाप्नोति गौरवम् ।
गुणा हि गुणता याति गुष्यमानाः परानरैः ॥ ७३।७४
६४७. विषयाऽभिषसक्तात्मन् पापभाजन चञ्चल ।
धिगस्तु हृदयत्वं ते हृदय क्षुद्रचेष्टिता ॥ ७३।८४
६४८. अयं पुमानियं स्त्रीति विकल्पोऽयममेधसाम् ।
सर्वतो वचनं साधु समीहन्ते सुमेधसः ॥ ७३।६१
६४९. किं भूरिजनहिंसया ॥ ७३।६४
६५०. तदेव वस्तु संसर्गाद्धत्ते परमचारुताम् । ७३।१३६
६५१. धर्मो रक्षति मर्माणि धर्मो जयति दुर्जयम् ।
धर्मः सञ्जायते पक्षः धर्मः पश्यति सर्वतः ॥ ७४।५६
६५२. न गजस्योचिता घण्टा सारमेयस्य शोभते ॥ ७४।६३

६५३. कर्मण्युपेतेऽभ्युदयं पुराणे संप्रेरके सत्यतिदारुणाङ्के ।
तस्यौचित्तं प्राप्तफलं मनुष्याः क्रियापवर्गप्रकुलं भजन्ते ॥ ७४।११५

६५४. उदाररसरंभवशं प्रपन्नाः प्रारब्धकार्यार्थनियुक्तचित्ताः ।
नरा न तीव्रं गणयन्ति शस्त्रं न पावकं नैव रविं न वायुम् ॥ ७४।११६

६५५. धिगिमां नृपतेर्लक्ष्मीं कुलटासमचेष्टिताम् ।
भोक्तुमेकपदे पापान् त्यजन्ती चिरसंस्तुतान् ॥ ७६।१२

६५६. किम्पाकफलवद्भोगा विपाकविरसा भृशम् ।
अनन्तदुःखसम्बन्धकारिणः साधुगर्हिताः ॥ ७६।१३

६५७. क्षुद्रजन्तूनां खलेनाऽपि महोत्सवम् ॥ ७६।२६

६५८. धिगीदृशी श्रियमतिचञ्चलात्मिका विवर्जितां सुकृतसमागमाशया ।
इति स्फुटं मनसि निधाय भो जनास्तपोधना भवत रवेर्जितौजसः ॥७६।४३

६५९. योनिं यामश्नुते जन्तुस्तत्रैव रतिमेति सः ॥ ७७।६८

६६०. ननु स्वकृतसम्प्राप्तिप्रवणाः सर्वदेहिनः ॥ ७७।६९

६६१. मरणान्तानि वैराणि जायन्ते हि विपश्चिताम् ॥ ७८।१

६६२. परं कृतापकारोऽपि मानी निर्व्यूढभाषितः ।
अत्युन्नतगुणः शत्रुः श्लाघनीयो विपश्चिताम् ॥ ७८।२९

६६३. अमूर्तत्वं यथा व्योम्नश्चलत्वमनिलस्य च ।
महामुनेर्निसर्गेण लोकस्याह्लादनं तथा ॥ ७८।५७

६६४. पञ्चानामर्थयुक्तत्वमिन्द्रियाणां तदैव हि ।
यदाभीष्टसमायोगे जायते कृतनिर्वृतिः ॥८०।८०

६६५. विषयः स्वर्गतुल्योऽपि विरहे नरकायते ।
स्वर्गायते महारण्यमपि प्रियसमागमे ॥८०।८२

६६६. एकेन व्रतरत्नेन पुरुषान्तरवर्जिना ।
स्वर्गारोहणसामर्थ्यं योषितामपि विद्यते ॥८०।१४७

६६७. वीरुदश्वेभलोहानामुपलद्रुमवाससाम् ।
योषितां पुरुषाणां च विशेषोऽस्ति महान् नृप ! ॥८०।१५३

६६८. नहि चित्रभृतं वल्ल्यां वल्ल्या कूष्माण्डमेव वा ।
एवं न सर्वनारीषु सद्वृत्तं नृप विद्यते ॥८०।१५४

६६९. पूर्वभाग्योदयाद्राजन् संसारे चित्रकर्मणि ।
राज्यं कश्चिदवाप्नोति प्राप्तं नश्यति कस्यचित् ॥८०।२०३

६७०. अप्येकस्माद् गुरोः प्राप्य जन्तूनां धर्मसङ्गतिम् ।
निदाननिर्निदानाभ्यां मरणाभ्यां पृथग्गतिः ॥८०।२०४

६७१. उत्तरन्त्युदधिं केचिद्रत्नपूर्णाः सुखान्विताः।
मध्ये केचिद्विशीर्यन्ते तटे केचिद्धनाधिपाः ॥८०।२०५

६७२. पुण्यवान् स नरो लोके यो मातुर्विनये स्थितः।
कुरुते परिशुश्रूषां किंकरत्वमुपागतः ॥८१।०६

६७३. एकोऽपि कृती नियमः प्राप्तोऽभ्युदय जनस्य सद्बुद्धेः।
कुरुते प्रकाशमुच्चै रविरिव तस्मादिमं कुरुत ॥८२६६

६७४. कृतानि कर्माण्यशुभानि पूर्वं सन्तापमुग्रं जनयन्ति पश्चात्।
तस्माज्जनाः कर्म शुभं कुरुध्वं रवौ सति प्रस्खलनं न युक्तम् ॥८३।१३४

६७५. चिरं संसारकान्तारे भ्राम्यता पुण्यकर्मतः।
मानुष्यकमिद कृच्छ्रात् प्राप्यते प्राणधारिणा ॥८५।१०६

६७६. जानानः को जनः कूपे क्षिपति स्वं महाशयः।
विषं वा कः पिबेत् को वा भृगी निद्रा निषेवते ॥८५।१११

६७७. को वा रत्नेप्सया नागमस्तकं पाणिना स्पृशेत्।
विनाशकेषु कामेषु धृतिजयित कस्य वा ॥८५।१११

६७८. सुकृतासक्तिरेकैव श्लाघ्या मुक्तिसुखावहा।
जनानां चञ्चलेऽत्यन्तं जीविते निस्पृहात्मनाम् ॥८५।११२

६७९. ईदृशी कर्मणां शक्तिर्यज्जीवाः सर्वयोनिषु।
वस्तुतो दुःखयुक्तासु प्राप्नुवन्ति परां रतिम् ॥ ८५।१६५

६८०. कमरिण्यमिद विहाय विषमं धर्मे रमध्वं बुधाः ॥८५।१७४

६८१. समुद्गते भव्यजनस्य कस्य रवौ प्रकाशेन न युक्तिरस्ति ॥ ८६।२७

६८२. तस्यैकस्य मतिः शुद्धा तस्य जन्मार्थसंगतम्।
विषान्नमिव यस्त्यक्त्वा राज्यं प्राव्रज्यमास्थितः ॥ ८८।१६

६८३. पूज्यता वर्ण्यता तस्य कथ परमयोगिनः।
देवेन्द्रा अपि नो शक्ता यस्य वक्तुं गुणाकरम् ॥ ८८।१७

६८४. स्वेच्छाविधानमात्र हि ननु राज्यमुदाहृतम् ॥ ८८।२४

६८५. तावदेव प्रपद्यन्ते भङ्ग भीत्यानुगामिनः।
यावत्स्वामिनमीक्षन्ते न पुरो विकचाननम् ॥ ८९।८५

६८६. प्रदीप्ते भवने कीदृक् तडागखननादरः।
को वा भुजङ्गदष्टस्य कालो मन्त्रस्य साधने ॥ ८९।१०२ ✓

६८७. नियताचारयुक्तानां प्रभवन्ति मनीषिणाम्।
भावा निरतिचाराणा श्लाघ्याः पूर्वकपुण्यजाः ॥ ९०।१०

६८८. सुरासुरपिशाचाद्या बिभ्यति व्रतचारिणाम् ।
तावद् यावन्न ते तीक्ष्णं निश्चयासिं जहत्यहो ।। ६०।१२८

६८९. मद्यामिषनिवृत्तस्य तावदूर्ध्वस्तशतान्तरम् ।
लङ्घयन्ति न दुःसत्वा यावत् सालोऽस्य नैयमः ।। ६०।१३

६९०. प्रवीरः कातरैः शूरसहस्रेण च पण्डितः ।
सेव्यः किञ्चिद्भजेन्मूर्खमकृतज्ञं परित्यजेत् ।। ६०।१६

६९१. स्वप्न इव भवति चारुसयोगः प्राणिनां यदा तनुकालः ।
जनयति परम तापं निदाघरविरश्मिजनिताधिकम् ।। ६०।२६

६९२. गृहस्थ शाखिनो वाऽपि यस्य च्छायां समाश्रयेत् ।
स्थीयते दिनमप्येकं प्रीतिस्तत्रापि जायते ।। ६१।४५

६९३. किं पुनर्यत्र भूयोऽपि जन्मभिः सगतिः कृता ।
संसारभावयुक्तानां जीवानामीदृशी गतिः ।। ६१।४६

६९४. धर्मेण रहितैर्लभ्यं न हि किञ्चित्सुखावहम् ।।६१।४८

६९५. अनेकमपि सञ्चित्य जन्तुर्दुःखमलक्षये ।
धर्मतीर्थे श्रुते (श्रयेत्) शुद्धि जलतीर्थमनर्थकम् ।।६१।४६

६९६. श्रुत्वा परमं धर्मं न भवति येषां सदीहिते प्रीतिः ।
शुभनेत्राणां तेषा रविरुदितोऽनर्थकीभवति ।।६१।५१

६९७. साधुरूप समालोक्य न मुञ्चत्यासनं तु य ।
दृष्ट्वाऽप्यमन्यते यश्च स मिथ्यादृष्टिरुच्यते ।।६२।३४

६९८. बीज शिलातले न्यस्त सिच्यमान सदापि हि ।
अनर्थकं यथा दान तथा शीलेषु गेहिनाम् ।।६२।६६

६९९. साधुसमागमसक्ताः पुरुषाः सर्वमनीषित सेवन्ते ।।६२।६२

७००. पूर्वं जनितपुण्याना प्राणिनां शुभचेतसाम् ।
आरम्भ जन्मतः सर्वं जायते सुमनोहरम् ।।६४।३८

७०१. निर्मितानां स्वय शश्वत् कर्मणामुचित फलम् ।
ध्रुव प्राणिभिराप्तव्यं न तच्छक्यनिवारणम् ।।६६।५

७०२. अथवा वेत्ति नारीणां चेतसः को विचेष्टितम् ।
दोषाणां प्रभवो यासु साक्षाद्वसति मन्मथः ।।६६।६१

७०३. धिक् स्त्रियं सर्वदोषाणामाकरं तापकारणम् ।
विशुद्धकुलजातानां पुंसां पङ्कं सुदुस्त्यजम् ।।६६।६२

७०४. अभिहन्त्रीं समस्तानां बलानां रागसंश्रयाम् ।
स्मृतीनां परमं भ्रंशं सत्यस्खलनखातिकाम् ।।६६।६३

७०५. विघ्नं निर्वाणसौख्यस्य ज्ञानप्रभवसूदनीम्।
भस्मच्छन्नाग्निसङ्काशां दर्भसूचीसमानिकाम् ॥६६।६४

७०६. अकीर्त्तिः परमल्पापि याति वृद्धिमुपेक्षिता।
कीर्त्तिरल्पापि देवानामपि नार्थं. प्रयुज्यते ॥६७।१६

७०७. पद्यामभोजवनानन्दकारिणस्तिग्मतेजसः।
अस्तं यातस्य को रात्रौ सत्यामस्ति निवर्तकः ॥६७।१६

७०८. असत्त्वं वक्तु दुर्लोक. प्राणिनां शीलधारिणाम्।
न हि तद्वचनात्तेषां परमार्थत्वमश्नुते ॥६७।२७

७०९. गृह्यमाणोऽतिकृष्णोऽपि विषदूषितलोचनैः।
सितत्वं परमार्थेन न विमुञ्चति चन्द्रमाः ॥६७।२८

७१०. आत्मा शीलसमृद्धस्य जन्तोर्व्रजति साक्षिताम्।
परमार्थाय पर्याप्तं वस्तुतत्त्व न बाह्यतः ॥६७।२६

७११. नो पृथग्जनवादेन संक्षोभं यान्ति कोविदाः।
न शुनो भषणादृन्ती वैलक्ष्य प्रतिपद्यते ॥६७।३०

७१२. शिलामुत्पाट्य शीतांशु जिघांसुर्मोहवत्सलः।
स्वयमेव नरो नाशमसन्दिग्धं प्रपद्यते ॥६७।३२

७१३. किमनर्थकृतार्थेन सविषेणौषधेन किम्।
किं वीर्येण न रक्ष्यन्ते प्राणिनो येन भीगताः ॥६७।३७

७१४. चारित्रेण न तेनार्थो येन नात्मा हितीवृभव.।
ज्ञानेन तेन किं येन ज्ञातो नाध्यात्मगोचर. ॥६०।३८

७१५. प्रशस्तं जन्म नो तस्य यस्य कीर्तिवधू वराम्।
बली हरति दुर्वादस्ततस्तु मरण वरम् ॥६७।३६

७१६. दर्शनं चिरसौख्यदम् ॥६७।१२१

७१७. रत्न पाणितल प्राप्त परिभ्रष्ट महोदधौ।
उपायेन पुनः केन सङ्गतिं प्रतिपद्यते ॥६७।१२३

७१८. क्षिप्त्वामृतफलं कूपे महाऽऽपत्तिभयङ्करे।
परं प्रपद्यते दुःख पश्चात्तापहतः शिशु ॥६७।१२४

७१९. यस्य यत्सदृश तस्य प्रवदत्वनिवारितः।
को ह्यस्य जगतः कर्त्तुं शक्नोति मुखबन्धनम् ॥६७।१२५

७२०. धिग् भृत्यतां जगन्निद्यां यत्किञ्चनविधायिनीम्।
परायत्तीकृतात्मानं क्षुद्रमानवसेविताम् ॥६७।१४०

७२१. यन्त्रचेष्टिततुल्यस्य दुःखैकनिहितात्मनः।
मृत्यस्य जीविताद् दूरं वरं कुक्कुरजीवितम् ॥६७।१४१

७२२. नरेन्द्रशक्तिवश्यः सन् निम्नामा पिशाचवत्।
विदधाति न किं भृत्यः किं वा न परिभाषते ॥६७।१४२

७२३. चित्रचापसमानस्य निःकृत्यगुणधारिणः।
नित्यनम्रशरीरस्य निन्द्यं भृत्यस्य जीवितम् ॥६७।१४३

७२४. सङ्कारकूटकस्येव पश्चाभिवृत्तचेतसः।
निर्माल्यवाहिनो धिग्धिग्भृत्यनाम्नोऽसुधारणम् ॥६७।१४४

७२५. उन्नत्या त्रपया दीप्त्या वर्जितस्य निजेच्छया।
मा स्म भूज्जन्म भृत्यस्य पुस्तकर्मसमात्मनः ॥६७।१४६

७२६. विमानस्यापि मुक्तस्य गत्या गुरुतया समम्।
अधस्ताद् गच्छतो नित्यं धिग्भृत्यस्यासुधारणम् ॥६७।१४७

७२७. निःसत्त्वस्य महामांसविक्रय कुर्वतः सदा।
निर्मदस्यास्वतन्त्रस्य धिग्भृत्यस्यासुधारणम् ॥६७।१४८

७२८. तिर्यगूर्ध्वमधस्ताद्वा स्थानं तन्नास्ति विष्टपे।
जीवेन यत्र न प्राप्ता जन्ममृत्युजरादयः ॥६८।८६

७२९. परिभ्रष्टं प्रमादेन महार्घगुणमुज्ज्वलम्।
रत्नं को न पुनर्विद्वानन्विष्यति महादरः ॥६८।१००

७३०. चरितं सत्पुरुषस्य व्यपगतदोष परोपकारनिर्युक्तम्।
क्षपयति कस्य न शोक जिनमतनिरतप्रगाढचेतस्य ॥६८।१०४

७३१. प्राप्तव्य येन यल्लोके दुःखं कल्याणमेव वा।
स त स्वयमवाप्नोति कुतश्चिद्व्यपदेशतः ॥६९।८६

७३२. आकाशमपि नीतः सन् वन वा श्वापदाकुलम्।
मूर्धनि वा महीध्रस्य पुण्येन स्वेन रक्ष्यते ॥६९।८७

७३३. भास्करेण विना का द्यौः का निशा शशिना विना ? ६९।६५

७३४. नोपायः पश्चात्तापो मनीषिणे ॥६९।१०३

७३५. उपदेश ददत्पात्रे गुरुर्याति कृतार्थताम्।
अनर्थकः समुद्योतो रवेः कौशिकगोचरः ॥१००।५२

७३६. ईदृगेव हि धीराणां कुलशीलनिवेदनम्।
शस्यते न तु भारत्या तद्धि सन्देहभाजनम् ॥१०१।६०

७३७. प्रणाममात्रतः प्रीता जायन्ते मानशालिनः।
नोन्मूलयन्ति नद्योघा वेतसान् प्रणतात्मकान् ॥१०१।६५

७३८. रणे पृष्ठं न दीयते ॥१०३।२२

७३९. अनाथानामबन्धूनां दरिद्राणां सुदुःखिनम् ।
जिनशासनमेतद्धि शरणं परमं मतम् ॥१०४।७०

७४०. वरं हि मरणं श्लाघ्यं न वियोगः सुदुःसहः ।
श्रुतिस्मृतिहृतोऽसौ हि परमः कोऽपि निन्दितः ॥१०५।११

७४१. यावज्जीवं हि विरहस्तापं यच्छति चेतसः ।
मृतेति छिद्यते स्वैरं कथाकांक्षा च तद्गता ॥१०५।१२

७४२. रसनस्पर्शनासक्ता जीवास्तत्कर्म कुर्वते ।
गरिष्ठा नरके येन पतन्त्यायसपिण्डवत् ॥१०५।११६

७४३. हिंसावितथचौर्यान्यस्त्रीसङ्गादनिवर्तनाः ।
नरकेषूपजायन्ते पापभारगुरूकृताः ॥१०५।११७

७४४. मनुष्यजन्म सम्प्राप्य सततं भोगसङ्गता ।
जनाः प्रचण्डकर्माणो गच्छन्ति नरकावनिम् ॥१०५।११८

७४५. विधाय कारयित्वा च पाप समनुमोद्य च ।
रौद्रार्त्तप्रवणा जीवा यान्ति नारकबीजताम् ॥१०५।११९

७४६. तस्मात्फलमधर्मस्य ज्ञात्वेदमतिदुःसहम् ।
प्रशान्तहृदया सन्तः सेवध्वं जिनशासनम् ॥१०५।१३६

७४७. यथा सुवर्णपिण्डस्य वेष्टितस्यायसा भृशम् ।
आत्मीया नश्यति च्छाया तथा जीवस्य कर्मणः ॥१०५।१७८

७४८. मृत्युजन्मजराव्याधिसहस्रैः सततं जनाः ।
मानसैश्च महादुःखैः पीड्यन्ते सुखमत्र किम् ॥१०५।१७९

७४९. असिधारामधुस्वादसमं विषयजं सुखम् ।
दग्धे चन्दनवह्निर्व्यं चक्रिणां सविषान्नवत् ॥१०५।१८०

७५०. ध्रुवं परमनाबाधमुपमानविवर्जितम् ।
आत्मस्वाभाविकं सौख्यं सिद्धानां परिकीर्त्तितम् ॥१०५।१८१

७५१. सुप्त्या किं ध्वस्तनिद्राणां नीरोगाणां किमौषधैः ?
सर्वज्ञाना कृतार्थानां किं दीपतपनादिना ? १०५।१८२

७५२. आयुधैः किमभीतानां निर्मुक्तानामरातिभिः ।
पश्यतां विपुलं सर्वसिद्धार्थानां किमीहया ॥१०५।१८३

७५३. महात्मसुखतृप्तानां किं कृत्यं भोजनादिना ।
देवेन्द्रा अपि यत्सौख्यं वाञ्छन्ति सततोन्मुखाः ॥१०५।१८४

७५४. सुखं नापरमुत्कृष्टं विद्यते सिद्धसौख्यतः ॥१०५।१९०

७५५. गत्यागतिविमुक्तानां प्रक्षीणक्लेशसम्पदाम् ।
लोकशेखरभूतानां सिद्धानामसमं सुखम् ॥१०५।१९४

७५६. जिनेन्द्रशासनादन्यशासने रघुनन्दन ।
न सर्वयत्नयोगेऽपि विद्यते कर्मणां क्षयः ॥१०५।२०४

७५७. भार्यावाटीप्रविष्टः सन् मनुष्यो वनवारणः ।
विषयामिषसक्तश्च मत्स्यो बन्धं समश्नुते ॥१०५।२५७

७५८. मोक्षो निगडबद्धस्य भवेदन्धाच्च कूपतः ।
निबद्ध. स्नेहपाशैस्तु ततः कृच्छ्रेण मुच्यते ॥१०५।२५९

७५९ बोधि मनुष्यलोकेऽपि जैनेन्द्री सुष्ठु दुर्लभाम् ।
प्राप्तुमर्हत्यभव्यस्तु नैव मार्गं जिनोदितम् ॥१०५।२६०

७६०. घनकर्मकलङ्काक्ता अभव्या नित्यमेव हि ।
संसारचक्रमारूढा भ्राम्यन्ति क्लेशवाहिना ॥१०५।२६१

७६१. सन्धावतोऽस्य संसारे कर्मयोगेन देहिन. ।
कृच्छ्रेण महता प्राप्तिर्मुक्तिमार्गस्य जायते ॥१०६।६४

७६२. सन्ध्याबुद्बुदफेनोर्मिविद्युदिन्द्रधनुःसमः ।
भङ्गुरत्वेन लोकोऽयं न किञ्चिदिह सारकम् ॥१०६।६५

७६३. नरके दुःखमेकान्तादेति तिर्यक्षु वाऽसुमान् ।
मनुष्यत्रिदशानां च सुखेनैवैष तृप्यति ॥ १०६।६६

७६४. माहेन्द्रभोगसम्पद्भिर्यो न तृप्तिमुपागतः ।
स कथं क्षुद्रकैस्तृप्तिं व्रजेन्मनुजभोगकैः ॥ १०६।६७

७६५. कथञ्चिद् दुर्लभं लब्ध्वा निधानमधनो यथा ।
नरत्वं मुह्यति व्यर्थं विषयास्वादलोभतः ॥ १०६।६८

७६६. काग्ने. शुष्केन्धनैस्तृप्तिः काम्बुधेरापगाजलैः ।
विषयास्वादसौख्यैः का तृप्तिरस्य शरीरिणः ॥ १०६।९९

७६७. मज्जन्निव जले खिन्नो विषयामिषमोहितः ।
दक्षोऽपि मन्दतामेति तमोऽन्धीकृतमानसः ॥ १०६।१००

७६८. दिवा तपति तिग्मांशुर्मदनस्तु दिवानिशम् ।
समस्ति वारणं भानोर्मदनस्य न विद्यते ॥ १०६।१०१

७६९. जन्ममृत्युजरादुःखं संसारे स्मृतिभीतिदम् ।
अरहट्टघटीयन्त्रसन्ततं कर्मसम्भवम् ॥ १०६।१०२

७७०. अजङ्गमं यथाऽन्येन यन्त्र कृतपरिभ्रमम् ।
शरीरमध्रुवं पूति तथा स्नेहोऽत्र मोहतः ॥ १०६।१०३

७७१. जलबुद्बुदनिःसारं ज्ञात्वा मनुजसम्भवम् ।
निर्विण्णाः कुलजा मार्गं प्रपद्यन्ते जिनोदितम् ।। १०६।१०४

७७२. उत्साहकवचच्छन्ना निश्चयाश्वसवादिनः ।
ध्यानखड्गधरा धीराः प्रस्थिताः सुगतिं प्रति ।। १०६।१०५

७७३. अन्यच्छरीरमन्योऽहमिति सञ्चिन्त्य निश्चिताः ।
त्यक्त्वा शरीरके स्नेहं धर्मं कुरुत मानवाः ।। १०६।१०६

७७४. सुखदुःखादयस्तुल्याः स्वजनेतरयोः समाः ।
रागद्वेषविनिर्मुक्ताः श्रमणाः पुरुषोत्तमाः ।। १०६।१०७

७७५. भारत्यपि न वक्तव्या दुरितादानकारिणी ।। १०६।२२४

७७६. धारयन्ति न निर्यातिं वह्निज्वालाकुलालयात् ।
दयावन्तो यथा तद्वद् दुःखतप्ताद् भवादपि ।। १०७।१०

७७७. कदाचिच्चलति प्रेम न्यस्तं भर्तरि योषिताम् ।
स्वस्तन्यकृतपोषेषु जातेषु न तु जातुचित् ।। १०७।६२

७७८. एवं विदित्वा सुलभौ नितान्तं जीवस्य लोके पितरौ सदैव ।
कर्त्तव्यमेतद् विदुषां प्रयत्नाद्विमुच्यते येन शरीरदुःखात् ।। १०८।५१

७७९. विमुच्य सर्वं भववृद्धिहेतुं कर्मोरुदुःखप्रभवं जुगुप्सम् ।
कृत्वा तपो जैनमतोपदिष्टं रविं तिरस्कृत्य शिव प्रयात ।। १०८।५२

७८०. संसारस्य स्वभावोऽयं रङ्गमध्ये यथा नरः ।
राजा भूत्वा भवेद्भृत्यः प्रेष्यश्च प्रभुतां व्रजेत् ।। १०९।६७

७८१. एवं पितापि तोकत्वमेति तोकश्च तातताम् ।
माता पत्नीत्वमायाति पत्नी चायाति मातृताम् ।। १०९।६८

७८२. उद्घाटनघटीयन्त्रसदृशेऽस्मिन् भवात्मनि ।
उपर्यधरतां यान्ति जीवाः कर्मवश गता. ।। १०९।६९

७८३. साधून्वीक्ष्य जुगुप्सन्ते सद्योऽनर्थं प्रयान्ति ते ।
न पश्यन्त्यात्मनो दौष्ट्य दोषं कुर्वन्ति साधुषु ।। १०९।११२

७८४. यथाऽऽदर्शतले कश्चिदात्मानमवलोकयन् ।
यादृशं कुरुते वक्त्रं तादृशं पश्यति ध्रुवम् ।।
तद्वत्साधुं समालोक्य प्रस्थानादिक्रियोद्यतः ।
यादृशं कुरुते भावं तादृक्षं लभते फलम् ।। १०९।११३-११४

७८५. प्ररोदनं प्रहासेन कलहं परुषोक्तितः ।
वधेन मरणं प्रोक्त विद्वेषेण च पातकम् ।। १०९।११५

७८६. साधोर्नियुक्तेन परिनिन्द्येन वस्तुना।
फलेन तादृशेनैव कर्त्ता योगमुपाश्नुते ॥ १०६।११६

७८६. (अ) को दोषोऽन्यप्रियारतौ ? १०६।१५३

७८७. ये पारदारिका दुष्टा निग्राह्यास्ते न संशयः ॥ १०६।१५४

७८८. दण्ड्याः पञ्चकदण्डेन निर्वास्या. पुरुषाधमाः।
स्पृशन्तोऽप्यबलामन्यां भाषयन्तोऽपि दुर्मताः॥
सन्मूढाः परदारेषु ये पापादनिवर्त्तिनः।
अधःप्रपतनं येषा ते पूज्याः कथमीदृशाः ॥ १०६।१५५-१५६

७८९. यथा राजा तथा प्रजा ॥ १०६।१५६

७९०. येन बीजा प्ररोहन्ति जगतो यच्च जीवनम्।
जातस्ततो जलाद्वह्निः किमिहापरमुच्यताम् ॥ १०६।११६

७९१. भोगमवर्तनो (येन) कर्मणा नावमुच्यते ॥ १०६।१६३

७९२. सतां हि माधुसम्बन्धाच्चित्तमानन्दमीयते ॥ ११०।२५

७९३. स्वभावाद्वनिता जिह्वा विशेषादन्यचेतसः।
ततः सुहृदयस्तासामर्थे को विकृति भजेत् ॥ ११०।३१

७९४. अथवा विस्मय. कोऽत्र किमपीद जगद्गतम्।
कर्मवैचित्र्ययोगेन विचित्र यच्चराचरम् ॥ ११०।३६

७९५. प्रागेव यदवाप्तव्यं येन यत्र यथा यतः।
तत्परिप्राप्यतेऽवश्यं तेन तत्र तथा ततः ॥ ११०।४०

७९६. रम्भास्तम्भसमानाना नि सारासारां हतात्मनाम्।
कामाना वशगाः शोकं हास्य नो कर्त्तुमर्हथ ॥ ११०।४४

७९७. सर्वे शरीरिणः कर्मवशे वृत्तिमुपाश्रिताः।
न तत्कुरुथ किं येन तत्कर्म परिणश्यति ॥ ११०।४५

७९८. गहने भवकान्तारे प्रणष्टा. प्राणधारिणः।
ईदृक्षि यान्ति दुःखानि निरस्यत ततस्तकम् ॥ ११०।४६

७९९. भवानां किल सर्वेषां दुर्लभो मानुषो भवः।
प्राप्य त स्वहितं यो न कुरुते स तु वञ्चितः ॥ ११०।४९

८००. ऐश्वर्यं पात्रदानेन तपसा लभते दिवम्।
ज्ञानेन च शिवं जीवो दुःखदा गतिमहसा ॥ ११०।५०

८०१. विद्युदाकालिकं ह्येतज्जगत्सारविवर्जितम् ॥ ११०।५५

८०२. नास्य माता पिता भ्राता बान्धवाः सुहृदोऽपि वा।
सहायाः कर्मतन्त्रस्य परित्राणं शरीरिणः ॥ ११०।५८

८०३. अतृप्त एव भोगेषु जीवो दुर्मित्रविभ्रमः।
इमं विमोक्ष्यते देहं किं प्राप्तं जायते तदा ॥ ११०।६१

८०४. मातरः पितरोऽन्ये च संसारेऽस्मद्यो गताः।
स्नेहबन्धनमेतानामेतद्धि चारकं गृहम् ॥ ११०।७२

८०५. पापस्य परमारम्भं नानादुःखाभिवर्द्धनम्।
गृहपञ्जरकं मूढाः सेवन्ते न प्रबोधिनः ॥ ११०।७३ ✓

८०६. शरीरं मानसं दुःखं मा भूद् भूयोऽपि नो यथा।
तथा सुनिश्चिताः कुर्मः किं वयं स्वस्य वैरिणः ॥ ११०।७४

८०७. निर्दोषोऽहं न मे पापमस्तीत्यपि विचिन्तयन्।
मलिनत्वं गृही याति शुक्लांशुकमिव स्थितम् ॥ ११०।७५

८०६. उत्थायोत्थाय यन्नृणा गृहाश्र मनिवासिनाम्।
पापे रतिस्ततस्त्यक्तो गृहिधर्मो महात्मभिः ॥ ११०।७६

८१०. पिबन्तं मृगकं यद्वद् व्याधो हन्ति तृषा जलम्।
तथैव पुरुषः मृत्युर्हन्ति भोगैरतृप्तकम् ॥ ११०।७८

८११. विषयप्राप्तिसंसक्तमस्वतन्त्रमिदं जगत्।
कामैराशीविषैः साकं क्रीडत्यज्ञानमौषधम् ॥ ११०।७९

८१२. जगत्स्वकर्मणां वश्यम् ॥ ११०।८१

८१३. ध्रुवं यदा समासाद्यो विरहो बन्धुभिः समम्।
असमञ्जसरूपेऽस्मिन्संसारे का रतिस्तदा ॥ ११०।८३

८१४. अयं मे प्रिय इत्याऽऽस्था व्यामोहोपनिबन्धना।
एक एव यतो जन्तुर्गत्यागमनदुःखभाक् ॥ ११०।८४

८१५. नानायोनिषु संभ्रम्य कृच्छ्रात्प्राप्ता मनुष्यताम्।
कुर्मस्तथा यथा भूयो मज्जामो नात्र सागरे ॥ ११०।८६

८१६. सर्वारम्भविरहिता विहरन्ति नित्यं निरम्बरा विधियुक्तम्।
क्षान्ता दान्ता मुक्ता निरपेक्षाः परमयोगिनो ध्यानरताः ॥ ११०९३

८१७. तृष्णाविषादहन्तॄणां क्षणमप्यस्ति नो शमः।
मूर्धोपकण्ठदत्ताङ्घ्रिमृत्युः कालमुदीक्षते ॥ १११।१४

८१८. अस्य दग्धशरीरस्य कृते क्षणविनाशिनः।
हताशः कुरुते किं न जीवो विषयदासकः ॥ १११।१५

८१९. ज्ञात्वा जीवितमानाय्यं त्यक्त्वा सर्वपरिग्रहम्।
स्वहिते वर्तते यो न स नश्यत्यकृतार्थकः ॥ १११।१६

८२० सहस्रेणापि शास्त्राणां किं येनात्मा न शाम्यति ।
तृप्तमेकपदेनापि येनात्मा शममश्नुते ॥१११।१७
८२१ कर्तुमिच्छति सद्धर्मं न करोति यथाप्ययम् ।
दिवं यियासुर्विच्छिन्नपक्षकाक इव श्रमम् ॥१११।१८
८२२ विमुक्तो व्यवसायेन लभते चेतसमीहितम् ।
न लोके विरही कश्चिज्जुवेदद्रविणा'पि वा ॥१११।१६
८२३ अतिथिं द्वागतं साधुं गुरुवाक्यं प्रतिक्रियाम ।
प्रतीक्ष्य सुकृतं चाश नावमीदति मानव ।१११।२०
८२४ नानाव्यापारशतैराकुलहृदयस्य दुःखिन प्रतिदिवसम् ।
रत्नमिव करतलस्थं भ्रश्यत्यायु प्रमादत प्राणभृत ॥१११।२१
८२६ जिनचन्द्रार्चनन्यस्तविरामिनयना जना ।
नियमावहितात्मान शिवं निदधते करे ॥११२।६३
८२६ न तथा दुर्लभं किञ्चित् कल्याणं शुद्धचेतसाम ।
य जिनेन्द्रार्चनासक्ता जना मंगलदर्शना ॥११२।६४
८२७ श्रावकान्वयसम्भूतिर्भक्तिर्जिनवरे दृढा ।
समाधिनावसानं च पर्याप्तं जन्मन फलम ॥११२।६५
८२८ हा कष्ट ससारे नास्ति तत्पदम् ।
यत्र न क्रीडति स्वेच्छं मृत्यु सुरगणेष्वपि ॥११२।७७
८२६ तडिदुल्कातरङ्गातिभङ्गुरं जन्म सर्वत ।
देवानामपि यत्र स्यात् प्राणिनां तत्र का कथा ॥११२।७८
८३० अनन्तशो न भुक्तं यत्ससारे चेतनावता ।
न तदास्ति सुखं नाम दुःखं वा भुवनत्रये ॥११२।७६
८३१ अहो मोहस्य माहात्म्यं परमेतद्बलान्वितम् ।
एतावन्तं यतः कालं दुःखपर्यटितं भवेत् ॥११२।८०
८३२ उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यौ भ्रान्त्वा कृच्छ्रात्सहस्रश ।
अवाप्यते मनुष्यत्वं कष्टं नष्टमनाप्तवत् ॥११२।८१
८३३ विनश्वरसुखासक्ता सौहित्यपरिवर्जिता ।
परिणामं प्रपद्यन्ते प्राणिनस्तापसङ्कटम् ॥१११।८२
८३४ चलान्युत्पथवृत्तानि दुःखदानि पराणि च ।
इन्द्रियाणि न शाम्यन्ति विना जिनपथाश्रयात् ॥११२।८३
८३५ आनायेन यथा दीना बध्यन्ते मृगपक्षिण ।
तथा विषयजालेन बध्यन्ते मोहिनो जना ॥११२।८४

८३६. आशीविषसमानैर्यो रमते विषयैः समम् ।
परिणामे स मूढात्मा दह्यते दुःखवह्निना ॥११२।८५
८३७. को ह्येकदिवसं राज्यं वर्षमन्विष्य यातनाम् ।
प्रार्थयेत विमूढात्मा तद्विषयसौख्यभाक् ॥११२।८६
८३८. कदाचिद् बुद्धयमानोऽपि मोहतस्करवञ्चितः ।
न करोति जनः स्वार्थं किमतः कष्टमुत्तमम् ॥११२।८७
८३९. भुक्त्वा त्रिविष्टपे धर्मं मनुष्यभवसञ्चितम् ।
पश्चान्मुषितवद्दीनो दुःखी भवति चेतनः ॥११२।८८
८४०. भुक्त्वापि त्रैदशान् भोगान् सुकृते क्षयमागते ।
शेषकर्मसहायः सन् चेतनः क्वापि गच्छति ॥११२।८९
८४१. जन्तोर्निजं कर्म बान्धवः शत्रुरेव वा ॥११२।९०
८४२. तदलं निन्दितैरेभिर्भोगैः परमदारुणैः ।
विप्रयोग सहामीभिरवश्यं येन जायते ॥११२।९१
८४३. श्रीमत्यो हरिणीनेत्रा योषिद्गुणसमन्विताः ।
अत्यन्तदुस्त्यजा मुग्धाः ॥११२।९३
८४४. दीर्घं कालं रत्वा नाके गुणयुवतीभिः सुविभूतिभिः ।
मर्त्यक्षेत्रेऽप्यसम भूयः प्रमदवरललितवनिताजनैः परिललितः ।
को वा यातस्तृप्तिं जन्तुर्विविधविषयसुखरतिभिर्नदीभिरिवोदधिः ।
नानाजन्मभ्रान्त श्रान्त व्रज हृदय !
शममपि किमाकुलित भवेत् ॥११२।९५-९६
८४५. किं न श्रुता नरकभीमविरोध रौद्र-
स्तीव्रासिपत्रवनसङ्कटदुर्गमार्गा ॥११२।९७
८४६. उत्तरन्तं भवाम्भोधिं तत्रैव प्रक्षिपन्ति ये ।
हितास्ते कथमुच्यन्ते वैरिणः परमार्थतः ॥११३।७
८४७. माता पिता सुहृद्भ्राता न तदागात्सहायताम् ।
यदा नरकवासेषु प्राप्त दुःखमनुत्तमम् ॥११३।८
८४८. मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य बोधिं च जिनशासने ।
प्रमादो नोचित कर्त्तुं निमेषमपि धीमतः ॥११३।९
८४९. देवासुरमनुष्येन्द्राः स्वकर्मवशवर्तिनः ।
कालदावानलालीढाः के वा न प्रलयं गताः ॥११३।११
८५० गताऽमरविमेदांतु मत्तोऽपि सुमहाबलम् ।
अपरं नाम कर्मास्ति ॥११३।१३

८५१. महामहाजन. प्रायो रतिबद्धिरतौ भृशम् ॥११३।४२

८५२. सन्तं सन्त्यज्य ये भोग प्रव्रजन्त्यायतेक्षणाः।
नूनं ग्रहगृहीतास्ते वायुना वा वशीकृताः ॥११४।२

८५३. भुज्यमानाऽल्पसौख्येन संसारपदमीयुषाम्।
प्रायो विस्मयते सौख्यं श्रुतमप्यतिमंसृति ॥

८५४. सर्वेषां बन्धनानां तु स्नेहबन्धो महादृढ़ः ॥११४।४६

८५५. हस्तपादांगबद्धस्य मोक्षः स्यादसुधारिणः।
स्नेहबन्धनबद्धस्य कुतो मुक्तिर्विधीयते ॥११४।५०

८५६. योजनाना सहस्राणि निगडैः पूरितो व्रजेत्।
शक्तो नांगुलमप्येक बद्ध स्नेहेन मानवः ॥११४।५१

८५७. कर्मणामिदमीदृशमीहित बुद्धिमानपि यदेति विमूढताम्।
अन्यथा श्रुतमर्थनिजायति क. करोति न हित सचेतन· ॥११४।५४

८५८. कृत्यमत्र भवाग्निविनाशन यत्नमेत्य परम सुचेतमा ॥११४।५५

८५९. अप्रेक्ष्यकारिणा पापमानसाना हृतात्मनाम्।
अनुष्ठितं स्वय कर्म जायते तापकारणम् ॥११५।१७

८६०. धिगसार मनुष्यत्वं नाऽतोऽस्त्यन्यन्महाधमम्।
मृत्युर्यच्छत्यवस्कन्द यदज्ञानो निमेषनः ॥११५।५५

८६१. यो न निर्व्यूहितु शक्य. सुरविद्याधरैरपि।
नारायणोऽप्यसौ नीत. कालपाशेन वश्यताम् ॥११५।५६

८६२. आनाय्येन शरीरेण किमनेन धनेन च ? ११५।५७

८६३. कर्मनियोगेनैवं प्राप्तेऽवस्थामशोभनामाप्तजने।
सशोकं वैराग्यं च प्रतिपद्यन्ते विचित्रचित्ता. पुरुषा. ॥११५।६३

८६४. कालं प्राप्य जनाना किञ्चिच्च निमित्त मात्रक परभावम्।
सम्बोधरविरुद्वेति स्वकृतविपाकेऽन्तरंगहेतौ जाते ॥११५।६४

८६५. न कृशानुर्दहत्येवं नैवं शोषयते विषम्।
उपमानविनिर्मुक्त यथा भ्रातु परायणम् ॥११६।१८

८६६. जातैमावश्यमर्त्त्व्यमत्र संसारपञ्जरे।
प्रतिक्रियास्ति नो मृत्योरुपायैर्विविधैरपि ॥११७।८

८६७. आनाय्ये नियतं देहे शोकस्यालम्बनं मुधा।
उपायैर्हि प्रवर्त्तन्ते स्वार्थस्य कृतबुद्धयः ॥११७।९

८६८. आक्रन्दितेन नो कश्चित्परलोकगतो गिरम्।
प्रयच्छति ॥११७।१०

८६९. नारीपुरुषसंयोगाच्छरीराणि शरीरिणाम् ।
उत्पद्यन्ते व्ययन्ते च प्राप्तसाम्यानि बुद्बुदैः ॥११७।११

८७०. लोकपालसमेतानामिन्द्राणामपि नाकतः ।
नष्टा योनिजदेहानां प्रच्युतिः पुण्यसंक्षये ॥११७।१२

८७१. गर्भाक्लिष्टे रुजाकीर्णे तृणबिन्दुचलाचले ।
क्लेदकैकससङ्घाते काऽऽस्था मर्त्यशरीरके ॥११७।१३

८७२. अजरामरणंमन्यः किं शोचति जनो मृतम् ।
मृत्युदंष्ट्रान्तरक्लिष्टमात्मानं किं न शोचति ॥ ११७।१४

८७३. यदैव हि जनो जातो मृत्युनाधिष्ठितस्तदा ।
तत्र साधारणे धर्मे ध्रुवे किमिति शोच्यते ॥ ११७।१६

८७४. अभीष्टसङ्गमाकांक्षी मुधा शुष्यति शोकवान् ।
शबरार्त्त इवारण्ये चमरः केशलोभतः ॥ ११७।१७

८७५. लोकस्य साहस पश्य निर्भीस्तिष्ठति यत्पुर. ।
मृत्योर्वज्राग्रदण्डस्य सिंहस्येव कुरङ्गकः ॥ ११७।१९

८७६. संसारमण्डलापन्न दह्यमानं सुगन्धिना ।
सदा च विन्ध्यदावाभ भुवनं कि न वीक्षसे ॥ ११७।२१

८७७. पर्यट्य भवकान्तार प्राप्य कामभुजिष्यताम ।
मत्तद्विपा इवाऽऽयान्ति कालपाशस्य वश्यताम् ॥ ११७।२२

८७८. धर्ममार्गं समासाद्य गतोऽपि त्रिदशालयम् ।
अशाश्वततया नद्या पात्यते तटवृक्षवत् ।। ११७।२३

८७९. सुरमानवनाथानां चया. शतसहस्रशः ।
निधन समुपानीताः कालमेघेन वह्नयः ॥ ११७।२४

८८०. दूरमम्बरमुल्लङ्घ्य समापत्य रसातलम् ।
स्थान तन्न प्रपश्यामि यत्त्व मृत्योरगोचरः ॥ ११७।२५

८८१. षष्ठकालक्षये सर्वं क्षीयते भारत जगत् ।
धराधरा विशीर्यन्ते मर्त्यकाये तु का कथा ॥

८८२. वज्रर्षभवपुर्बद्धा अप्यवध्याः सुरासुरैः ।
नश्वनित्यतया लब्धा रम्भागर्भोपमैस्तु किम् ॥ ११७।२७

८८३. जनन्यापि समाश्लिष्ट मृत्युर्हरति देहिनम् ।
पातालान्तर्गतं यद्वत् काद्रवेयं द्विजोत्तमः ॥ ११७।२८

८८४. हा भ्रातर्दयिते पुत्रेत्येवं क्रन्दन् सुदुःखितः ।
कालाहिना जगद्व्यङ्गो ग्रासतामुपनीयते ॥ ११७।३०

८८५. करोम्येतत्करिष्यामि वदत्येवमनिष्टधीः ।
जनो विशति कालास्यं भीमं पोत इवार्णवम् ॥ ११६।३०

८८६. जनं भवान्तरं प्राप्तमनुगच्छेज्जनो यदि ।
द्विष्टैरिष्टैश्च नो जातु जायेत विरहस्ततः ॥ ११७।३१

८८७. परे स्वजनमानी यः कुरुते स्नेहसम्मतिम् ।
विशति क्लेशवह्निं स मनुष्यकलभो ध्रुवम् ॥ ११७।३२

८८८. स्वजनौघाः परिप्राप्ताः संसारे येऽसुधारिणाम् ।
सिन्धुसैकतसङ्ख्याता अपि सन्ति न तत्समाः ॥ ११७।३३

८८९. य एव लालितोऽन्यत्र विविधप्रियकारिणा ।
स एव रिपुतां प्राप्तो हन्यते तु महारुषा ॥ ११७।३४

८९०. पीतौ पयोधरौ यस्य जीवस्य जननान्तरे ।
त्रस्ताहतस्य तस्यैव खाद्यते मांसमत्र धिक् ॥ ११७।३५

८९१. स्वामीति पूजितः पूर्वं यः शिरोनमनादिभिः ।
स एव दासतां प्राप्तो हन्यते पादताडनैः ॥ ११७।३६

८९२. विभो पश्यत मोहस्य शक्तिं येन वशीकृतः ।
जनोऽन्विष्यति सयोग हस्तेनेव महोरगम् ॥ ११७।३७

८९३ प्रदेशस्तिलमात्रोऽपि विष्टपे न स विद्यते ।
यत्र जीव· परिप्राप्तो न मृत्यु जन्म एव वा ॥ ११७।३८

८९४. ताम्रादिकलिल पीत जीवेन नरकेषु यत् ।
स्वयम्भूरमणे तावत्सलिलं नहि विद्यते ॥ ११७।३९

८९५. वराहभवयुक्तेन यो नीहारोऽशनीकृत. ।
मन्ये विन्ध्यसहस्रेभ्यो बहुशो-त्यन्तदूरत ॥ ११७।४०

८९६. परस्परस्वनाशेन कृता या मूर्द्धसहतिः ।
ज्योतिषां मार्गमुल्लङ्घ्य यायात्सा यदि ग्ध्यते ॥ ११७।४१

८९७. शर्कराधरणीयातैर्दु.ख प्राप्तमनुत्तमम् ।
श्रुत्वा तत्कस्य रोचेत मोहेन सह मित्रता ॥ ११७।४२

८९८ विरुद्धा अपि हंसस्य खद्योताः कि नु कुर्वते ?
यस्याभीषुसहस्राप्तं परिजाज्वल्यते जगत् ॥ ११८।४७

८९९. महान् मरणेऽप्यस्ति गुणो जीवन् हि मानवः ।
कदाचिदेति कल्याणं स्वकर्मपरिपाकतः ॥ ११८।४९

९००. परेत सिञ्चसे मूढ कस्मादेनमनोकहम् ?
कलेवरे हलं प्राण्णि बीजं हारयसे कुतः ? ११८।७८

९०१. नीरनिर्मथने लब्धिर्नवनीतस्य किं कृता।
बालुकापीडनाद् बालस्नेहः सञ्जायतेऽथ किम् ॥ ११८।७९

९०२. बालाग्रमात्रकं दोषं परस्य क्षिप्रमीक्षसे।
मेरुकूटप्रमाणान् स्वान् कथं दोषान्न पश्यसि ॥ ११८।८७

९०३. सदृशः सदृशेष्वेव रज्यन्ति ॥ ११८।८८

९०४. अहो तृणाग्रसंसक्तजलबिन्दुचलाचलम्।
मनुष्यजीवितं यद्वत्क्षणान्नाशमुपागतम् ॥ ११८।१०३

९०५. कस्येष्टानि कलत्राणि कस्यार्थाः कस्य बान्धवाः।
संसारे सुलभं ह्येतद् बोधिरेका सुदुर्लभा ॥ ११८।१०५

९०६. तेषां सर्वसुखान्येव ये श्रामण्यमुपागताः ॥ ११८।११०

९०७. कामोपभोगेषु मनोहरेषु सुहृत्सु सम्बन्धिषु बान्धवेषु।
वस्तुष्वभीष्टेषु च जीवितेषु कस्यास्ति तृप्तिर्नु रवे भवेऽस्मिन् ॥ ११८।१२७

९०८. किमनेन समस्तेन विनाशित्वावसादिना ? ११९।२१

९०९. सनातननिराबाधपरातिशयसौख्यदम्।
मनीषितं परं युक्तं जिनधर्मं वगाहितुम् ॥ ११९।२२

९१०. जैने शक्त्या च भक्त्या च शासने सङ्गतत्पराः।
जना बिभ्रति लभ्यार्थं जन्म मुक्तिपदान्तिकम् ॥ ११९।५६

९११. जिनाक्षरमहारत्ननिधानं प्राप्य भो जनाः।
कुलिङ्गसमयं सर्वं परित्यजत दुःखदम् ॥ ११९।५७

९१२. कुग्रन्थैर्मोहितात्मानः सदम्भकलुषक्रियाः।
जात्यन्धा इव गच्छन्ति त्यक्त्वा कल्याणमन्यतः ॥ ११९।५८

९१३. नानोपकरणं दृष्ट्वा साधनं शक्तिवर्जिताः।
निर्दोषमिति भाषित्वा गृह्णते मुखराः परे ॥ ११९।५९

९१४. व्यर्थमेव कुलिङ्गास्ते मूढैरन्यैः पुरस्कृताः।
प्रक्लिन्नतनवो भारं वहन्ति मृतका इव ॥ ११९।५०

९१५. ऋषयस्ते खलु येषां परिग्रहे नास्ति याचने वा बुद्धिः ॥ ११९।५१

९१६. कर्मणः पश्यताधानं ह्री शुभाशुभयोः पृथक्।
विचित्रं जन्म लोकस्य ॥ १२२।१७

९१७. कुर्वन्तु वाञ्छितं बाह्याः क्रियाजालमनेकधा।
प्रच्यवन्ते न तु स्वार्थात्परमार्थविचक्षणाः ॥ १२२।६३

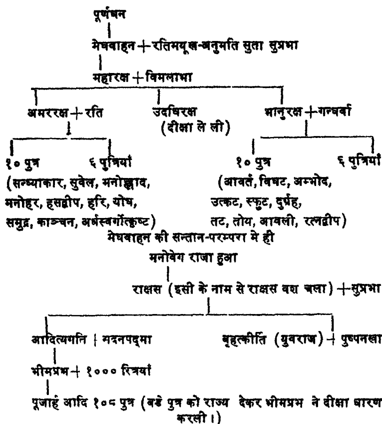
९१८. किमनेनाभिमानेन परमानर्थहेतुना ॥ १२३।१९

६१९. अदृष्टलोकपर्यन्ता हिंसानृतपरस्विन ।
रौद्रध्यानपरा प्राप्ता नरकस्य प्रतिद्विष ।।१२३।२८
६२० भोगाधिकारससक्तास्तीव्रक्रोधादिरञ्जिता ।
विकर्मनिरता नित्य सम्प्राप्ता दु खमीदृशम् ।। १२३।२९
६२१ अहो मोहस्य माहात्म्य यत्स्वार्थादपि हीयते ।। १२३।३४
६२२ विषयामिषलुब्धाना प्राप्ताना नरकासुखम् ।
स्वकृतप्राप्तिवश्याना कि करिष्यन्ति देवता ।। १२३।४०
६२३ एतत्स्वोपचित कर्म भोक्तव्यम् । १२३।४१
६२४ कर्मप्रमथन शुद्ध पवित्र परमार्थदम् ।
अप्राप्तपूर्वमाप्त वा दुर्गृहीत प्रमादिनाम् ।। १२३।४४
६२५ दुर्विज्ञेयमभव्याना बृहद्भवभयानकम् ।
कल्याण दुर्लभ सुष्ठु सम्यग्दर्शनमूर्जितम् ।। १२३।४५
६२६ अर्हद्भिर्गदिता भावा भगवद्भिर्महोत्तमै ।
तथैवेति दृढ भक्त्या सम्यग्दर्शनमिष्यते ।। १२३।४८
६२७ मुक्तिर्वैराग्यनिष्ठस्य रागिणो भवमज्जनम ।। १२३।७४
६२८ अवलम्ब्य शिला कण्ठे दोर्भ्या तर्त्तु न शक्यते ।
नदी तद्वन्न रागाद्यैस्तरितु ससृति क्षमा ।। १२३।७५
६२९ ज्ञानशीलगुणासङ्गैस्तीयते भवसागर ।
ज्ञानानुगतचित्तेन गुरुवाक्यानुवर्त्तिना ।। १२३।७६
६३० आदिमध्यावमानेषु वेदितव्यमिद बुधै ।
सर्वेषा यन्महातेजा केवली ग्रसते गुणान् ।। १२३।७७
६३१ पात्रभूतान्नदानाच्च शक्त्याद्यास्तपयन्ति ये ।
ते भोगभूमिमासाद्य प्राप्नुवन्ति पर पदम ।। १२३।१०६
६३२ स्वर्गे भोग प्रभुञ्जन्ति भोगभमेश्च्युता नराः ।
तत्रस्थाना स्वभावोऽय दानैर्भोगस्य सम्पद ।। १२३।१०७
६३३ दानतो ज्ञानप्राप्तिश्च स्वर्गमोक्षैककारणम । १२३।१०८
६३४ अपि नाम शिव गुणानुबन्धि व्यसनस्फातिकर शिवतरम् ।
तद्विषयस्पृहया तदेति मैत्रीमशिव तेन न शान्तय कदाचित् ।। १२३।१७१
६३५ स्वकलत्रसुख हित रहित्वा परकान्ताभिरति करोति पापः ।
व्यसनार्णवमत्युदारमेव प्रविशत्येव विशुष्कदारुकल्प ।। १२३।१७४
६३६ सुकृतस्य फलेन जन्तुरुच्चै पदमाप्नोति सुसम्पदा निधानम् ।
दुरितस्य फलेन तत्तु दुःख कुगतिस्थ समुपैत्यय स्वभाव ।। १२३।१७६

परिशिष्ट—२

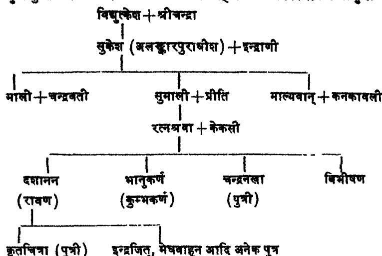
पद्मपुराण की प्रमुख वंशावलियाँ

राक्षस-वंश

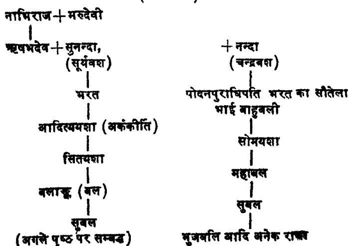


जिन भास्कर, सम्पन्नकीर्ति, सुग्रीव, हरिग्रीव, श्रीग्रीव, सुमुख, सुव्यक्त, अमृतवेग, भानुगति, चिन्तागति, इन्द्र, इन्द्रप्रभ, मेघ, मृगारिदमन, पवि, इन्द्रजित्, भानुवर्मा, भानु, भानुप्रभ, सुरारि, त्रिजट, भीम, मोहन, उद्धारक, रवि, चकार, वज्रमध्य, प्रमोद, सिंहविक्रम, चामुण्ड, मारण, भीष्म, द्वीपवाहु, अरिमर्दन, निर्वाण-भक्ति, उग्रश्री, अर्हद्भक्ति, अनुत्तर, गतभ्रम, अनिल, चण्ड, लङ्काशोक, मयूरवान् महाबाहु, मनोरम्य. भास्कराभ, बृहद्गति, बृहत्कान्त, अरिसन्त्रास, चन्द्रावर्त,

महारव, मेघध्वान, गृहक्षोभ, नक्षत्रदमन आदि करोड़ों विद्याधर इस वंश में हुए। चिरकाल बाद लंकाधिपति घनप्रभ (जिसकी रानी पद्मा थी) इस वंश में हुआ जिसका पुत्र कीर्तिधवल हुआ (जिसकी रानी अतीन्द्र की सुता देवी थी।) भगवान् मुनि सुव्रत के तीर्थ में इसी वंश में वानरवंशी महोदधि का समकालीन राजा हुआ—



इक्ष्वाकु-वंश
(रामपर्यन्त)



महाबल
|
अतिबल
|
अमृतबल
|
समुद्रसागर
|
भद्र
|
रवितेजा
|
शशी
|
प्रभूततेजा
|
तेजस्वी
|
तपन
|
प्रतापवान्
|
अतिवीर्य
|
सुवीर्य
|
उदितपराक्रम
|
महेन्द्रविक्रम
|
सूर्य
|
इन्द्रद्युम्न
|
महेन्द्रजित्
|
प्रभु
|
विभु

अतिध्वंस
|
वीतभी
|
वृषभध्वज
|
गरुडाङ्क
|
मृगाङ्क
|
अन्य बहुत से राजा। भगवान् आदिनाथ का युग समाप्त होने पर, अनेकों राजाओं के व्यतीत होने पर अयोध्या में हुआ—

धरणीधर + श्रीदेवी
|
त्रिदशञ्जय + इन्दुरेखा
|
जितशत्रु + विजया
|
अजितनाथ + सुनयना, नन्दा आदि अनेक रानियाँ।

विजयसागर + सुमङ्गला
|
सगर चक्रवर्ती + ९६ हजार रानियाँ
|
जह्नु आदि ६० हजार पुत्र
|
भगीरथ

चिरकालोपरान्त इसी इक्ष्वाकुवंश में अयोध्यानगरी में हुआ—

विजय + हेमचूला
|
सुरेन्द्रमन्यु + कीर्तिसमा
|
वज्रबाहु + मनोदया (दीक्षित)
पुरन्दर + पृथिवीमती
|
(अगले पृष्ठ पर सम्बद्ध)

कीर्तिधर + सहदेवी (कोसलेन्द्रसुता)

सुकोशल + विचित्रमाला

हिरण्यगर्भ + अमृतवती

नघुष + सिंहिका

सौदास (सिंहसौदास) + कनकाभा

सिंहरथ

ब्रह्मरथ

चतुर्मुख

हेमरथ

शतरथ

मान्धाता

वीरसेन

प्रतिमन्यु

कमलबन्धु

रविमन्यु

वसन्ततिलक

कुबेरदत्त

कीर्तिमान्

कुन्थुभक्ति

शरभरथ

द्विरदरथ

सिंहदमन

हिरण्यकशिपु

पुञ्जस्थल

ककुत्थ

रघु

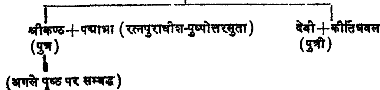
अनरण्य + पृथिवीमती

अनन्तरथ (दीक्षित)

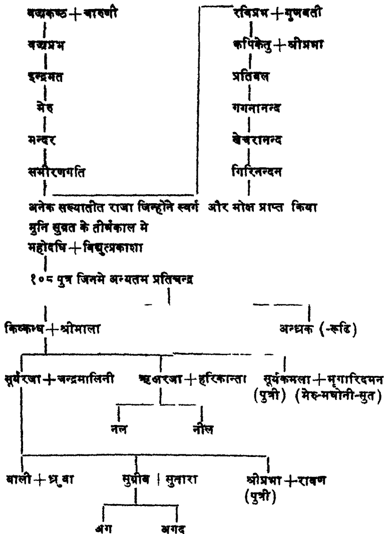
दशरथ + अपराजिता, सुमित्रा, सुप्रभा, केकया

राम लक्ष्मण शत्रुघ्न भरत

वानर-वंश



(अगले पृष्ठ पर सम्बद्ध)


वज्रकण्ठ + चारुणी
वज्रप्रभ
इन्द्रमत
मेरु
मन्दर
समीरणगति
रविप्रभ + गुणवती
कपिकेतु + श्रीप्रभा
प्रतिबल
गगनानन्द
खेचरानन्द
गिरिनन्दन
अनेक सख्यातीत राजा जिन्होंने स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त किया
मुनि सुव्रत के तीर्थकाल मे
महोदधि + विद्युत्प्रकाशा
१०८ पुत्र जिनमे अन्यतम प्रतिचन्द्र
किष्कन्ध + श्रीमाला
अन्धक (-रूढि)
सूर्यरजा + चन्द्रमालिनी
ऋक्षरजा + हरिकान्ता
सूर्यकमला + मृगारिदमन
(पुत्री) (मेरु-मघोनी-सुत)
नल
नील
बाली + ध्रुवा
सुग्रीव + सुतारा
श्रीप्रभा + रावण
(पुत्री)
अंग
अंगद

परिशिष्ट—३

संकेतित-ग्रन्थ-सूची

१. अकबरनामा : अबुलफजल
२. अथर्ववेद
३. अध्यात्मरामायण : व्यास
४. अनर्घराघव : मुरारि
५. अनामकं जातकम्
६. अमरुशतक : अमरुक
७. अष्टमहाश्रीचैत्यस्तोत्र : हर्ष
८. आश्चर्यचूडामणि : शक्तिभद्र
९. आदिपुराण : जिनसेन
१०. उत्तरपुराण : जिनसेन
११. उत्तररामचरित : भवभूति
१२. उदात्तराघव : मायुराज
१३ उदारराघव : साकल्यमल्ल
१४ उन्मत्तराघव : भास्करभट्ट
१५. उल्लासराघव सोमेश्वर
१६. ऐहोल शिलालेख
१७. कथाकोषप्रकरण : जिनविजय
१८. कवितावली : तुलसी
१९. कल्याण (मानसांक)
२०. कहावली : भद्रेश्वर
२१. कात्यायनश्रौतसूत्र
२२. कादम्बरी : बाणभट्ट
२३. काव्यप्रकाश : मम्मट
२४. काव्यादर्श : दण्डी
२५. काव्यालंकार : रुद्रट
२६ काशिका
२७. किरातार्जुनीय : भारवि
२८. कुन्दमाला . दिङ्नाग
२९. कुवलयमाला : उद्योतनसूरि
३०. कृष्णगीतावली : तुलसी
३१. कुमारसम्भव : कालिदास
३२. गीतावली : तुलसी
३३ चउपन्नमहापुरिसचरियं : शीलाचार्य
३४. चण्डीशतक : बाण
३५. चारित्तपाहुड : कुन्दकुन्द
३६. चित्रबन्धरामायण : वेंकटेश
३७. छक्कम्मोवएस : अमरकीर्ति
३८. छन्दमाला : कुलशेखर
३९. जानकीपरिणय : चक्रकवि
४०. जानकीहरण : कुमारदास
४१. जिनरामायण : चंद्रसागर वर्णी
४२. जीवनसम्बोधन : बन्धुवर्मा
४३ जैनसाहित्य और इतिहास : नाथूराम प्रेमी
४४. डेवलपमेण्ट ऑफ ट्रेड एण्ड इण्डस्ट्री अण्डर दी मुगल्स : एस. एस. कुलश्रेष्ठ
४५. तत्त्वार्थसूत्र : उमास्वाति
४६. तुलसी : डा० उदयभानुसिंह
४७. तुलसीदास : डॉ० माताप्रसाद गुप्त
४८. तुलसीदास और उनका युग : डॉ० राजपति दीक्षित

४९. तुलसी और उनका काव्य : डॉ० रामनरेश त्रिपाठी
५०. तुलसी रसायन : डॉ० भगीरथ मिश्र
५१. तुलसी-ग्रन्थावली : सं० रामचन्द्र शुक्ल, भगवानदीन, ब्रजरत्नदास
५२. तिलोयपण्णत्ति : यतिवृषभ
५३. तिसठ्ठीमहापुरिसगुणालंकार : पुष्पदन्त
५४. त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित : हेमचंद्र
५५. त्रिषष्टिशलाकापुरुषपुराण : चामुण्डराय
५६. दशकुमारचरित : दण्डी
५७. दी हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दी इण्डियन पीपिल-दी क्लैसिकल एज : आर. सी. माजूमदार आदि।
५८. दी कलेक्टेड वर्क्स ऑफ भन्डारकर, वाल्यूम-३
५९. दूतांगद : सुभट्ट
६०. दोहावली : तुलसी
६१. धर्मपरीक्षा
६२. धूर्ताख्यानम् हरिभद्र
६३. नीतिशतक : भर्तृहरि
६४. पम्परामायण : अभिनव पम्प
६५. पउमचरिउ : स्वयंभू
६६. पउमचरिय : विमलसूरि
६७. पद्मचरित (पद्मपुराण) : रविषेण
६८. पंचतंत्र . विष्णु शर्मा
६९. पंचसंग्रह (संस्कृतानुवाद : अमितगतिसूरि
७०. पार्वतीमंगल : तुलसी
७१. पुण्याश्रवकथाकोष : रामचन्द्र मुमुक्षु
७२. पुण्याश्रवकथासार : नागराज
७३. पुराणविमर्श : बलदेव उपाध्याय
७४. पुराणविषयानुक्रमणी (राजनैतिक) : डा० राजबली पाण्डेय
७५. पुरुषसूक्त (ऋग्वेद)
७६. पृथ्वीराज रासो : चन्दबरदाई
७७. पंचास्तिकाय : कुन्दकुन्द
७८. प्रतिमानाटक : भास
७९. प्रवचनसार . कुन्दकुन्द
८०. प्रसन्नराघव : जयदेव
८१. प्राचीन भारत का इतिहास : रमाशंकर त्रिपाठी
८२. प्राचीन भारत का इतिहास : वी० डी० महाजन
८३. प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका : डा० रामजी उपाध्याय
८४. बरवै रामायण : तुलसी
८५. बालरामायण : राजशेखर
८६. भक्तामरस्तोत्र : मानतुंग
८७. भगवती आराधना
८८. भारत का प्राचीन इतिहास : एन० एन० घोष
८९. भारतीय दर्शन : डॉ. राधाकृष्णन्
९०. भारतीय संस्कृति : डा० बलदेव-प्रसाद मिश्र

९१. भावसंग्रह : देवसेन
९२. भावार्थरामायण : एकनाथ
९३. मध्ययुगीन वैष्णव संस्कृति और तुलसीदास : डा० रामरतन भटनागर
९४. मनुस्मृति
९५. महाभारत
९६. महावीरचरित : भवभूति
९७. मानस का कथाशिल्प : श्रीधरसिंह
९८. मालतीमाधव : भवभूति
९९. मिडिल मिस्टीसिज्म ऑफ इण्डिया
१०० मिडीवल इण्डिया अण्डर मुहमडन रूल : डा० स्टेनली लेनपूल
१०१ मुगल्स एडमिनिस्ट्रेशन : सर यदुनाथ सरकार
१०२. मेघदूत . कालिदास
१०३. मैथिलीकल्याण · हस्तिमल्ल
१०४. याज्ञवल्क्यस्मृति
१०५. रघुवंश : कालिदास
१०६. राघवनैषधीय . हरदत्तसूरि
१०७. राघवपाण्डवीय : धनंजय
१०८. राघवपाण्डवीय . माधवभट्
१०९. रामकथा . कामिल बुल्के
११०. रामकथावतार देवचन्द्र
१११. रामचरित : अभिनन्द
११२. रामचरित पद्मदेवविजयगणि
११३. रामचरित : सन्ध्याकरनन्दि
११४. रामचरित (रामपुराण) सोमसेन
११५. रामचरितमानस : तुलसी
११६. रामचरित रामायण : भूपति
११७. रामचरितमानस में लोकवार्ता : चन्द्रभान
११८. रामदेवपुराण (रामायण) · जिनदास
११९. रामलक्खणचरिय : भुवनतुंगसूरि
१२०. रामलला नहछू : तुलसी
१२१. रामलीलामृत . कृष्णमोहन
१२२. रामविजय : देवप्प
१२३. रामविवाह : भालण
१२४. रामायण : कुमुदेन्दु
१२५. रामायण . कृत्तिवास
१२६. रामायणमंजरी : क्षेमेन्द्र
१२७. रामार्चनपद्धति : रामानन्द
१२८. रामाज्ञाप्रश्न : तुलसी
१२९. रावणवध (भट्टिकाव्य) : भट्टि
१३०. लघुत्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित : सोमप्रभ
१३१. लघुत्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित : मेघविजय गणिवर
१३२. लोकविभाग : सर्वनन्दि
१३३. वरांगचरित : जटिलमुनि
१३४. वाल्मीकिरामायण : वाल्मीकि
१३५. वासवदत्ता : सुबन्धु
१३६. विनयपत्रिका : तुलसी
१३७. विषापहारस्तोत्र : धनंजय
१३८. वैराग्यशतक : भर्तृहरि
१३९. शिशुपालवध : माघ
१४०. शृंगारशतक : भर्तृहरि
१४१. श्रीमद्भागवत : व्यास
१४२. श्रीमद्भगवद्गीता : व्यास
१४३. समयसार : कुन्दकुन्द
१४४. साकेत: एक अध्ययन : डा० नगेन्द्र

१४५. साहित्यदर्पण : विश्वनाथ १४६. साहित्य, शिक्षा और संस्कृति : डा० राजेन्द्र प्रसाद
१४७. सीयाचरिय : भुवनतुंगसूरि १४८. सूर्यशतक : बाणभट्ट
१४९. संस्कृत-कवि-दर्शन : डॉ० भोलाशंकर व्यास
१५०. संस्कृत साहित्य का इतिहास : कन्हैयालाल पोद्दार
१५१. संस्कृत साहित्य का इतिहास : वाचस्पति गैरोला
१५२. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा : चन्द्रशेखर पाण्डेय
१५३. हर्षचरित · बाणभट्ट १५४. हर्षचरितः एक सांस्कृतिक अध्ययन : डा० वासुदेवशरण अग्रवाल
१५५. हरिवंशपुराण : जिनसेन १५६. हंससन्देश (हंसदूत) : वेंकटेश
१५७. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप-विकास : डा० शम्भुनाथसिंह
१५८. हिन्दी साहित्य का इतिहास . आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
१५९. हिन्दी-साहित्य-कोश, भाग १ . सं० धीरेन्द्र वर्मा
१६०. हिस्ट्री ऑफ इण्डिया एज टोल्ड बाइ इट्स ओन हिस्टोरियन्स . इलियट एण्ड डौसन
१६१. हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर : ए. ए. मैक्डानल

